राजस्थान-पुरातन-ग्रन्थमाला

राजस्थानराज्यद्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषत राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदिभाषानिबद्ध

विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान सपादक

पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

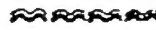
[ऑनरेरि मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य

भाण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर, पूना, गुजरात साहित्यसभा, अहमदाबाद,

विश्वेश्वरानन्दवैदिकशोधनप्रतिष्ठान, होशियारपुर, निवृत्त सम्मान्यनियामक-

(ऑनरेरि डायरेक्टर)-भारतीयविद्याभवन, बम्बई,



ग्रन्थाङ्कः २९

देवर्षिश्रीकृष्णभट्टविरचितम्

ईश्वरविलासमहाकाव्यम्



प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषणमन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

वैशाख
विक्रमाब्द २०१५
राष्ट्रीय शकाब्द १८८०

अप्रेल
खिस्ताब्द १९५८

देवर्षिश्रीकृष्णभट्टविरचितम्

ईश्वरविलासमहाकाव्यम्



संपादक:

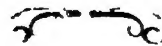
कविशिरोमणिदेवर्षिभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्यः

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थानराज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषणमन्दिर

जयपुर (राजस्थान)



विक्रमाब्द २०१५] भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८० [ख्रिस्ताब्द १९५८

प्रथमावृत्ति ७५० प्रतियाँ ❁ मूल्य रु० ११·५०

मुद्रक :—मूल पाठ पृष्ठ १४० तक राजस्थान टाइम्स लिमिटेड अजमेर मे और शेष सामग्री राजस्थान प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, जयपुर मे छपी।

राजथानपुरातनग्रन्थमाला के कुछ ग्रन्थ

प्रकाशित ग्रन्थ

संस्कृत भाषा ग्रन्थ—१. प्रमाणमञ्जरी-तार्किकचूडामणि सर्वदेवाचार्य, मूल्य ६'०० । २ यन्त्रराजरचना-महाराजा सवाई जयसिंह मू० १'७५ । ३. महर्षिकुलवैभवम्-स्व० श्री मधुसूदन ओझा मू० १०'७५ । ४ तर्कसंग्रह-प० क्षमाकल्याण मू० ३ ०० । ५. कारकसम्बन्धोद्योत-प०रभसनन्दि मू० १ ७५ । ६. वृत्तिदीपिका-प० मौनि श्रीकृष्णभट्ट २'०० । ७. शब्दरत्नप्रदीप मू० २'०० । ८. कृष्णगीति-कवि सोमनाथ मू० १'७५ । ९. शृङ्गारहारावलि-हर्षकवि मू० २'७५ । १०' चक्रपाणिविजयमहाकाव्य-प० लक्ष्मीधर भट्ट मू० ३ ५० । ११. राजविनोद-कवि उदयराज मू० २ २५ । १२ नृत्तसंग्रह मू० १'७५ । १३ नृत्यरत्नकोश प्रथम भाग-महाराणा कुंभा मू० ३'७५ । १४. उक्तिरत्नाकर-प० साधुसुन्दर गणि मू० ४'७५ । १५. दुर्गापुष्पाञ्जलि-प० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी मू० ४'२५ । १६ कर्णकुतूहल तथा कृष्णलीलामृत-भोलानाथ मू० १'५० । १७. ईश्वरविलास-महाकाव्यम्-श्रीकृष्णभट्ट मू०११'५० ।

राजस्थानी भाषा ग्रन्थ—१ कान्हडदे प्रबन्ध-कवि पद्मनाभ मू० १२ २५ । २. क्यामखारासा कवि जान मू० ४'७५ । ३. लावारासा—गोपालदान मू० ३'७५ । ४. वांकीदासरीख्यात-महाकवि वांकीदास मू० ५'५० । ५. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १, मू० २'२५ ।

प्रेसों में छप रहे ग्रन्थ

संस्कृतभाषा ग्रन्थ—१. त्रिपुरा भारती लघुस्तव-लघुपंडित । २. शकुनप्रदीप-लावण्यशर्मा । ३. करुणामृतप्रपा-ठक्कुर सोमेश्वर । ४. बालशिक्षा व्याकरण-ठक्कुर संग्रामसिंह । ५ पदार्थरत्नमञ्जूषा, प० कृष्णमिश्र । ६. काव्यप्रकाशसंकेत-भट्ट सोमेश्वर । ७. वसन्तविलास फागु । ८ नृत्यरत्नकोश भाग २ । ९. नन्दोपाख्यान । १०. रत्नकोश । ११. चन्द्रव्याकरण । १२. स्वयंभूछन्द-स्वयंभू कवि । १३. प्राकृतानंद-कवि रघुनाथ । १४. मुग्धावबोध आदि औक्तिकसंग्रह । १५ कविकौस्तुभ-प० रघुनाथ मनोहर । १६. दशकण्ठवधम्-प० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी । १७. पद्यमुक्तावली-कवि श्रीकृष्ण भट्ट । १८ रसदीर्घिका-विद्याराम भट्ट ।

राजस्थानी और हिन्दी भाषाग्रन्थ—१. मुंहता नैणसीरी-ख्यात-मुंहता नेणसी । २. गोराबादल पदमिणी चऊपई-कवि हेमरतन । ३. राठोड वंशरी विगत आदि, वार्ताएं । ४. सुजान संवत-कवि उदयराम । ५. चन्द्रवंशावली-कवि मोतीराम । ६. राजस्थानी दूहासंग्रह । ७ जुगलविलास-कवि पीथल । ८ वीरवाण-ढाढी बादर । ९. कवीन्द्रकल्पलतिका-कवीन्द्राचार्य । १० राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषण-मन्दिर पुस्तकालय की हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, को भाग १ ।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त अनेकानेक संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा में रचे गये ग्रन्थों का संशोधन और सम्पादन किया जा रहा है ।

प्रधान सम्पादकीय वक्तव्य

भारतीय इतिहाससम्बन्धी आधारग्रन्थो के रूप में अरबी, फारसी, तुर्की और अंग्रेजी आदि विदेशीय भाषाओं के अतिरिक्त सस्कृत और देशी भाषाओं में भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे गये हैं। किन्तु आवश्यकता अनुभव करते हुए भी पाश्चात्य अथवा उनका अनुकरण करने वाले भारतीय इतिहासकारों का ध्यान सस्कृत और देशभाषाओ में रचित सम्बन्धित ग्रन्थों की ओर विशेष नहीं आकर्षित हुआ है। इसका प्रधान कारण यही है कि ऐसे ग्रन्थो को पर्याप्त मात्रा में सुसम्पादितरूप में प्रकाशित होने का सुयोग अभी तक नही प्राप्त हुआ है।

अवश्य ही प्राचीन काल में हमारे यहाँ इतिहासलेखन की सुयोजित परम्परा नही थी किन्तु हमारे यहा के साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री का अभाव हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्राचीन साहित्य में विधिवत् ऐतिहासिक सामग्री की खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन की, भारतीय इतिहास के नवनिर्माण के लिये, विशेष आवश्यकता है।

भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् तो सस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, व्रज आदि भारतीय भाषाओं में भी इतिहासलेखन की परपरा प्रारभ हो चुकी थी। परिणामस्वरूप प्रचुरमात्रा में ऐतिहासिक सामग्री अब तक प्राप्त हो चुकी है। भारतीय भाषाओं में शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त कई ऐतिहासिक काव्यो की रचनाए भी हुई। इन काव्यों में मुख्यत. आश्रय-दाता नरेशों की विरुदावलि प्रस्तुत की गई है। ऐसे ग्रन्थों में काव्यत्व की प्रधानता होने से कवि-कल्पना का तो अनूठा प्रयोग दिखाई देता ही है, पर साथ में हमारे इतिहास के लिये भी इनका विशेष उपयोग है ही।

राजस्थानपुरातत्वान्वेषणमन्दिर द्वारा भारत के इतिहास के साधनस्वरूप ऐसे काव्यग्रन्थो को प्रकाश में लाने का भी एक मुख्य लक्ष्य हमारा प्रारभ से ही रहा है और तदनुसार, प्रस्तुत श्री-कृष्णभट्टरचित "ईश्वरविलासमहाकाव्यम्" को भी अन्य ग्रन्थों के साथ, प्रकाशन के लिये स्वीकार किया गया और राजस्थान टाइम्स प्रेस, अजमेर में इसका मुद्रणकार्य प्रारभ किया गया। ग्रन्थ का लगभग आधा भाग ही छपा था कि उक्त प्रेस ने अपना काम बन्द कर दिया, इसलिये इस ग्रन्थ के अवशिष्ट मुद्रण का प्रबन्ध राजस्थान प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर में किया। मुझे विशेष प्रसन्नता है कि अब यह ग्रन्थ "राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला" के ८९ वें रत्न के रूप में प्रकाशित होकर उत्सुक पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्त्ता देवर्षि श्रीकृष्णभट्ट ग्रन्थसम्पादक भट्टश्रीमथुरानाथजी के पूर्वज थे। देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट राजस्थान में अपने समय के विशेष सम्मानित विद्वान् और कवि थे। इनके रचे हुए विविधविषयक ग्रन्थ पुस्तकभडारों में मिलते हैं। हमें सन्तोष है कि सम्मान्य ग्रन्थ-सम्पादक ने अपने पूर्वजद्वारा रचित ग्रन्थ के सम्पादन में आवश्यक रुचि लेकर अपनी व्याख्या, भूमिका, परिशिष्ट आदि से इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी बना दिया है। हमारे सहकारी विद्वान् श्री गोपाल नारायणजी बहुरा ने भी प्रस्तुत ग्रन्थ में आवश्यक ज्ञातव्य जोड़कर इसकी उपयोगिता में वृद्धि की है।

हमारे अभिन्नहृदय विद्वन्मित्र डा० श्री परशुराम कृष्ण गोडे ने भी कई प्रकार से इस महत्वपूर्ण कार्य में योग दिया है। आपने महत्वपूर्ण प्राक्कथन के अतिरिक्त ग्रन्थ की मूल प्रति भी उपलब्ध की है। इसलिये ग्रन्थसम्पादक के साथ श्रीगोडेमहोदय भी हमारे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। इति।

प्रताप ग्राम विद्यापीठ,
सर्वोदय साधना आश्रम,
पो० चन्देरिया स्टेशन, जि० चित्तौड़गढ़,
महावीर जयन्ती, २०१५ वि०

मुनि जिनविजय

———

मुद्रकः—राजस्थान प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, जयपुर।

FOREWORD

It gives me great pleasure to write this brief foreword to this edition of the *Ishvaravilasakavya*, the historical importance of which was first discovered by me during my search for contemporary evidence to prove the performance of the As'vamedha Sacrifice at Jaipur by Maharaja Sawai Jayasingh of Amber (A.D. 1699-1743). This As'vamedha Sacrifice was the last of such sacrifices performed by Hindu kings from very ancient times. My friend Dr Dinesh Chandra Sircar, now Epigraphist to the Government of India, expressed a doubt regarding the historicity of the tradition about this sacrifice current in Benares and Rajputana. My friend, the late Dr. Hara Datta Sharma, who believed in this tradition, asked me to write some papers to vindicate this belief as supported by the current tradition. I told him that unless I discovered contemporary evidence, I cannot enter into any controversy with my learned friend Dr. Sircar as I am not in the habit of waging wordy warfare by writing inconclusive articles on historical or literary subjects.

My search for evidence in support of the As'vamedha tradition was beset with many difficulties as I was then a complete stranger to the history of Rajputana. However, I began to note down every reference to this Asvamedha in contemporary and subsequent sources, Sanskrit and non-Sanskrit. It was by a mere accident that I came upon the rare manuscript of the *Ishvaravilaskavya* in the Government Manuscripts Library at the Bhandarkar Oriental Research Institute. A perusal of this poem brought to my notice two chapters in it devoted to the description of this As'vamedha by its author Krishna kavi. These chapters composed by a court-poet of Maharaja Sawai Jaya Singh of Amber added new strength to my elbow and gave me new joy as they supported all the evidence about this historic event, I had gathered prior to my

discovery of this poem. My friend Dr. Hara Datta Sharma was very much pleased with my evidence gathered during the course of about two years and asked me to publish my papers on this As'vamedha in quick succession. Accordingly I published the following papers on this topic and distributed them to all scholars:—

(1) Some Contemporary Evidence regarding the As'vamedha Sacrifice performed by Sawai Jaya Singh of Amber (A D 1699-1744)

—*Journal of Indian History*, Madras, Vol. xv, pp 364-367 (1937)

(2) The As'vamedha performed by Sawai Jaya Singh of Amber (A.D 1699-1744)

—*Poona Orientalist*, Vol ii, pp 166-180 (1937)

(3) Description of the As'vamedha performed by Sawai Jaya Singh of Jaipur (A D. 1699-1744) as given in the *Ishvaravilasakavya* of Krishnakavi

—*Mimamsa Prakasa*, *Poona*, 1937, Vol ii, pp. 43-46

(4) Some Contemporary evidence regarding the As'vamedha of Sawai Jaya Singh of Amber in a Hindi work on Dietetics (Bhojanasara) of A D. 1739 (A summary of this paper was published in the *Proceedings of the Indian History Congress* Aligarh, 1943, p 378. The original paper was mislaid or lost by the Indian History Congress)

As a result of the publication of these papers I came into closer touch with scholars in Rajputana through the good offices of my friend at Jaipur the late Shri Hari Narayan Purohit to whom I had then been introduced by my friend Rao Bahadhur Sardar M. V. Kibe of Indore. Shri Purohit, himself a great scholar in the field of the history of Rajputana, asked me to send copies of some of the above papers to his friend Bhatta Shri Mathuranath, the learned editor of the *Ishvaravilasakavya*. Accordingly, these papers were sent to Mathuranathji, who read them with great interest and to my great surprise I got one day a parcel from him containing many books written by him in Sanskrit and Hindi. In one

of these Volumes *viz.* the *Sahityavaibhavam* I found a complete account of the history of Shri Mathuranathji's family during the last 300 years. It was really a pleasure to learn from this account that Krishnakavi, the author of the *Ishvaravilasakavya* was an ancestor of Shri Mathuranathji and that the tradition of learning and scholarship started and continued by his ancestors found in Shri Mathuranathji a perfect embodiment as vouched by the volumes of his writings before me. Subsequently I developed a liking for Krishnakavi and began to search for evidence regarding the Sanskrit and Hindi works composed by him. As a basis for further study in this connection I published the following papers:—

(1) Krishnakavi, the Author of *Ishvaravilasakavya*, his works and descendants-

—*Bharata Itihasa Samshodhana Mandal Quarterly* (1941), Vol. xii, pp. 15-23

(2) Vrttamuktavali, a rare sanskrit work on Prosody by Krishnakavi, the court-poet of Sawai Jaya Singh (A.D 1699-1743)-*Indian Culture* (1944), Vol xi, pp 25-31

I may mention here the following published papers of mine inspired by my study of the *Ishvaravilasakavya:*—

(1) Prabhakarabhatta, the brother of Ratnakarabhatta, the Guru of Sawai Jaya Singh of Amber *Indian Culture* (1939), Vol.v, pp. 293-296

(2) Some new evidence regarding Devabhatta Mahashabde, the father of Ratnakarabhatta, the Guru of Sawai Jaya Singh of Amber (A D 1699-1743)-*Poona Orientalist* (1944) Vol viii, Nos 3 and 4, pp. 129-138

(3) Two Contemporary Tributes to minister Vidyadhara, the Bengali Architect at the Court of Sawai Jaya Singh of Amber (AD 1699-1744) *Dr. C. K. Raja Presentation Volume* (Madras, 1946, pp 285-294

(4) Vishvanatha Mahadeva Ranade, a Cittapavan Court-poet of Raja Rama Singh I of Jaipur and his works (between A D. 1650 and 1700)-*Journal of the Bombay Branch of the Royal. Asiatic Society* (1941), N. S. Vol 17, pp 43-55

The evidence recorded by me in my papers on the Asvamedha performed by Sawai Jaya Singh is genuine. It has removed the doubt of my friend Dr. Dinesh Chandra Sircar about the historicity of this great religious event of the reign of Sawai Jaya Singh of Amber. In fact, Dr. Sircar publicly acknowledged the genuineness of my evidence in his Appendix on the Asva-medha sacrifices to his book on the Satavahana Kings (1) and presented a copy of this book to me unlike some other scholars who were successfully controverted by me in respect of their chronology of certain authors and their works which was wrong by no less than three hundred years. These scholars occupying high positions in Government service did not care even to acknowledge receipt of the offprints of my papers against their views, though they stopped all their further writing in support of their views

Some of the unpublished texts. the historical or cultural importance of which was brought to the notice of scholars by me in several papers, were taken up for publication by respon-sible scholars Some years ago my esteemed friend Muni Shri Jinavijayaji, the Hon. Director of the Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, was appointed by the Government of Rajasthan as the Honorary Director of the Rajasthan Puratattva Mandir at Jaipur. With his unique experience in the organisation and editing of numerous rare texts in the *Singhi Jain Series*, of which he has been both the founder and General Editor, Muniji lost no time in organising and editing a special series of rare works bearing on Indian history in general and the history of Rajasthan in particular. In this series called the *Rajasthan Puratana Granthamala* twenty works have been already published and more than *twenty* works are being printed. Among these works the following three works are by authors on whom I published special papers years ago:—

---

1. *Successors of the Satavahanas* (Calcutta, 1939).

(1) *Rajavinoda Kavya* by Udayraja, Court-poet of Mahmud Begda, Sultan of Gujarat (See my article on this work in the *Journal of the Bambay University*, Vol ix part 2, pp 101-115 (1940)

—Edited by Pandit Gopal Narayan Bahura.

(2) *Kavi Kaustubha* by Raghunath Manohara (See my article on this author in the *Poona Orientalist*, Vol vii, pp 157-164 (1943).

—Edited by Prof N. A. Gore.

(3) *Ishvaravilasakavya* by Krishnakavi (See my papers on this work mentioned above)

—Edited by Bhatta Shri Mathuranath.

It is a sacred duty for our National Government and for Provincial Governments to spend liberally on the publication of known and unknown sources of Indian history and culture and I feel confident that the series of works started by my friend Muni Shri Jinavijayaji will before long take its honoured place among the different series of Sanskrit and Prakrit works started by different states years ago. I congratulate very heartily the Government of Rajasthan upon the laudable beginning they have made in this direction and Muni Shri Jinavijayaji upon his shouldering the heavy responsibility of guiding all the research and publication activities of the Rajasthan Puratattva Mandir at Jaipur in a purely disinterested manner befitting his life of a Muni devoted entirely to the service of Sarasvati.



Bhatta Shri Mathuranathji has spared no pains in making this edition of the *Ishvaravilasakavya* as useful as possible. Apart from his careful editing of the Sanskrit text of this poem he has added to it the following material with a view to providing a complete historical and literary perspective for it:-

(1) His *Prastavana* or Preface (in Sanskrit), pointing out the historical importance of the poem and the circumstances under which it was composed by Krishna Kavi.

(2) A detailed topical analysis of the poem in 14 chapters (in Sanskrit).

(3) A Sanskrit rendering of my paper on the *As'vamedha* performed by Sawai Jaya Singh published in the *Poona Orientalist* (vol. II, pp. 166–180). This rendering was made by Pandit Vrajanath Shastri, who unfortunately passed away before the completion of the printing of this poem ! Pandit Vrajanath Shastri was the nephew of Shri Mathuranathaji and took great interest in his uncle's work.

(4) An elaborate note on Maharaja Mansingh (in Sanskrit), the most influential and heroic ruler of Rajasthan during the reign of Emperor Akbar. Mansingh knew no defeat on the battle-field and the memories of his exploits and liberality are still green in Rajasthan. His patronage to learning and arts has become proverbial in the whole of this Bharatavarsha.

(5) A detailed life-sketch in Sanskrit of Krishna Kavi, the author of the *Ishvaravilasakavya* and many other Sanskrit and Hindi works. Shri Mathuranathaji here deals with the contact of Krishna Kavi with the Jaipur rulers and the influence he held over them through his learning and scholarship. He also takes in this account a brief survey of Krishna Kavi's Sanskrit and Hindi literary productions. It appears that this poet travelled to other provinces of India, where he was highly honoured by the public and the princes in these provinces.

(6) *Appendix 1–Jayasimhavarnanam* (in Sanskrit) or Desciiption of Maharaja Sawai Jaya Singh and his achievements as given in 37 verses of *Padyatarangini*, an anthology composed by Vrajanatha in A. D. *1753*.

(7) *Appendix 2*—This is an elaborate note by Shri Gopal Narayan Bahura on the hero of the *Ishvaravilasakavya* viz. Maharaja Ishvarisimha, son of Sawai Jaya Singh. Shri Bahura points out that there are three Sanskrit historical works pertaining to the history of the Jaipur rulers *viz*:—

(i) *Ishvaravilasa* by Krishana Kavi composed by the order of Ishvarisimha (A. D. 1744-1751).

(ii) *Jayavamshamahakavya* by Sitarama Parvanikar composed during the reign of Sawai Jaya Singh II (A.D. 1819-1835). This work was edited by Prof. Pattabhirama Shastri and published by the University of Rajputana in 1952.

(iii) *Kachchhuvamshamahakavya* by Krishnarama composed during the reign of Madhava Singh II (A.D. 1881-1923 . A rare manuscript of this work is now in the possession of the present descendants of this poet.

Of the three works mentioned above the *Ishvaravilasakavya* is an important contemporary source of the history of Jaipur during the reigns of Maharaja Sawai Jaya Singh and his son Ishvarisimha.

Shri Gopal Narayan concludes his scholarly note with the reproduction of a document in Hindi (Miscell. No. 94 from the Record Office, Jaipur). This document is important as it gives some valuable information about the personal history of Sawai Ishvarisimha with definite dates which need to be verified.

Lovers of Sanskrit should be grateful to Shri Gopal Narayan for bringing to their notice an unknown Sanskrit work of Krishna Kavi called "*Rama Gita*" which is a '*Giti Kavya*' like Jayadeva's *Gita Govinda* as proved by the numerous quotations from it given by Shri Gopal Narayan.

(iv) An account of Maharaja Ishvarisimha as given in the Kachchhavamsamahakavya—

Relevant portions from chapters XI, XII and XIII of this kavya are reproduced here from the unpublished manuscript of this work referred to above.

(8) Sanskrit Commentary called Vilasini on the available fourteen Sargas of the Ishvaravilasakavya by the editor, Shri Mathuranatha—

In writing this learned and lucid commentary the editor has not only laid all lovers of Sanskrit under a deep obligation but he has discharged his debt to his learned ancestors and especially Krishnakavi in a manner worthy of the scholarly traditions of his house. It was really a lucky moment when I

entered the field of the history of Rajasthan without a sword or shield and made many friends there like Shri Mathuranatha but for whose genuine interest in this work of his ancestor it would have been difficult to produce a critical and comprehensive edition of a work represented by a single manuscipt. I hope that scholars in Rajputana will succeed in the near future in their search for some more manuscripts of the *Isvharavilasakavya*.

In concluding this Foreword I have to record my most cordial thanks to Muni Shri Jinavijayaji for giving me an opportunity to associate myself with his valuable work as the General Editor of the *Rajasthan Puratana Granthamala* and the Honorary Director of the Rajasthan Puratattva Mandir In the editing of this *Granthamala* as also the *Singhi Jain Series* he has all along maintained a broad outlook and selected for editing all works which are likely to promote the cause of Indian literary and cultural history. It is, therefore, in the fitness of things, that the German Oriental Society recognised the value of his great services to Indology and conferred on him their Honorary Membership some years ago I wish him long and energetic life to continue his services to Sarasvati in a purely disinterested manner like the ancient Acharyas, whose monumental work has been a perennial source of inspiration to all lovers of our ancient Indian heritage.

I have also to convey my cordial thanks to my esteemed friends Bhatta Shri Mathuranathaji and his learned pupil Pandit Gopal Narayanji for their scholarly co-operation in the production of the present edition of the Ishvaravilasakavya, worthy of the *Rajasthan Puratana Granthamala* organised by my illustrious friend Muni Shri Jinavijayaji. The Government of Rajasthan are also to be congratulated heartily upon their starting and supporting the Rajasthan Puratattva Mandir, which promises to take before long an honoured place in the front rank of Oriental Research Institutes now pervading this Bharatavarsha.

Bhandarkar O R Institute
10th May 1957.

P. K. Gode



महाराजा सवाई ईश्वरीसिंहजी (जन्म १७७८–मृत्यु १८०७ वि० स०)

प्रस्तावना

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरा-मरण-जं भयम् ॥

मानवसभ्यताप्रवर्तकस्य भारतवर्षस्य वेदोपनिषत्-स्मृत्यादिना आर्यसाहित्येन समग्रेऽपि भूमण्डले सर्वतोऽधिक गौरव यथा चिरकालात्प्रतिष्ठितम्, तथा भारत-भू-भवैः कविभिरपि अनुपमेन निज-काव्यसाहित्येन समग्रेऽपि सभ्यससारे भारतस्याऽस्य मस्तकमुन्नतीकृतम् । को वा ईदृशः सभ्यो भवेद् येन महाकवेः कालिदासस्य, भवभूतेर्बाणस्य, श्रीहर्षस्य, पण्डितराजस्य वा काव्यकथा कर्णाभ्यामपि नाऽऽकर्णिता स्यात् ? काव्य हि हृदयशालिनो हृदये प्रविश्य तमेन सहृदयमात्माऽभीष्टमर्थं प्रबोधयतीति सर्वविदित नूनम् । अत एव हि नीति-सदाचारादीनां शिक्षा काव्यमार्गेण चिरकालाद् भारतेऽस्मिन्प्रचलिता ।

प्रकारेणाऽनेन (काव्यरूपेण) पुरातनस्येतिहासस्याऽपि भूमण्डले भूयान्प्रचारोऽभवत् । प्राचीनेतिहासस्य रटनमत्यर्थं शुष्को विषयः । नैतस्मिन् विषये सहृदयस्य पुरुषस्य प्रणयात्प्रवृत्तिर्भवति । किन्तु काव्यपद्धत्या यदि कश्चिदितिहासः संनिबध्यते तर्हि तस्मिन् सर्वस्याऽहि जनस्य मनोयोगो भवति, चिरकालार्थं च स विषयो मनुष्यसमाजे सुस्थिर भवति । अनेकयुगेभ्यः पूर्वं प्रवृत्त कौरव-पाण्डवादीना वृत्त को वा जनोऽद्य कण्ठस्थमगदिष्यत् यदि महाभारते तस्योपनिबन्धनं नाऽभविष्यत् ।

महाभारत-पुराणादीना शैल्या शनैः शनैरैतिहासिकाना काव्याना महाकाव्याना चाऽपि देशे प्रचुरः प्रचारः प्राचलत् । गुणग्राहका राजानः परोलक्षमुद्रावार्षिकान् ग्रामादीन् प्रदाय ग्रन्थनिर्मातॄन् समर्थकवीन् प्रौढपण्डिताश्च निजसमीपे निवासयामासुः । महाकविः कालिदासो न केवल कल्पनाप्रसूताना काव्यानामेव जन्मदाता, अपि तु सोयमैतिहासिककाव्यनिर्मातॄणा समर्थ-कवीनामपि सर्वप्रथमः परिगणयितुमुचितः । एतदीय रघुवशमहाकाव्यमैतिहासिक-काव्येषु सर्वप्रथमतामर्हति, यद्धि निजनाम्नैव स्वीयमैतिहासिकत्व सघोषयति । अत्र हि सूर्यवशीयाना पौराणिकराजाना वशानुक्रमेण ऐतिहासिक चरित्रमावर्णितम् । पुराणाऽपेक्षया काव्येऽस्मिन् सोय विशेषो यत्पुराणेषु प्रारम्भिकान्नरपालानालम्ब्य चरित्रकथा प्रारब्धा । रघुवशे तु दिलीपमेवाऽऽरम्य काव्यकथा प्रवर्तिता । कारणमेतस्याऽऽसीद् रामचरित्रस्य प्राधान्येनोपनिबन्धनमेव । अत एव हि रामचरित्रवर्णनार्थं दिलीप-रघु-प्रभृतयो ये राजनश्चरित्राऽऽदर्शाय काव्यसौष्ठवाय च वर्णयितुमावश्यकास्तानेवाऽवलम्ब्य निजकाव्यस्याऽऽरम्भो विहितः ।

मूलतो गवेषणे आदिकविर्वाल्मीकिस्तत्काव्य रामायणम्, एव भगवान् व्यासस्तत्कृतिर्महाभारतमेव हि सर्वाऽऽदर्शभूत सिध्यति । पुराणकथामस्पृष्ट्वा तदनन्तरजातस्येतिवृत्तस्य निबन्धकाः पुराविदः कवय एव चेदस्मिन्प्रसङ्गे समुपस्थाप्यन्ते, तर्हि तु सेयमन्या कथा ।

यत्किञ्चिदस्तु, इतिहासस्याऽऽश्रयं गृहीत्वा रोचककाव्यनिर्माणस्य सेय परिपाटी सस्कृतसाहित्ये न नून नवीना । गभीरगवेषणेन वेदकालपर्यन्तमस्य सीमा विश्राम्यति । वेदेष्वपि सुदासादयो राजानस्तेषा कथानक च स्थाने स्थाने समुपलभ्यते । परं कविकल्पनाप्रसूतत्वविरहान्नात्र काव्यत्व प्रसज्ज्यते । किन्तु अनन्ताऽनन्तयुगेभ्यः पूर्वमपि समर्थाः कवयः स्वाश्रयदातुः कीर्तिं चिरस्थायिनीमज्जुषणा च कर्तुं तेषा जीवनकालस्य घटनाः मनोरञ्जकविधया समुपनिबन्धुमुद्यम चिरकालादकार्षुरिति सर्वस्य सारः । कवीनाम-

यमुग्म. शुद्धसाहित्यकोटावेव परिगण्यते, न इतिहासकोटौ । यतो हि ऐतिहासिककाव्यनिर्मातारः कवयः स्वाश्रयदातुर्भूपालादेः शुद्धमितिवृत्तं वर्णयितुं न तावद् हृदयेन पक्षपातिनः । ते हि उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति-रूपकादिभिरलङ्कारैः परिष्कृत्य, वर्णनीयानां राजादीनामतिशयप्रख्यापनमेव निजस्योद्देश्यं स्थापयामासुः । उदात्तालङ्कारः अत्युक्तिर्वा राज्ञां शौर्य-वैभववर्णने एव महिमानं प्राप, यस्मिन् शौर्यमदोत्युत्कर्षेण वर्णनमेव चमत्कृतिबीजम् । अत एव प्रतिभाप्रसूतायाः काव्यसामग्र्या एव प्रबलतया काव्यानीमानि साहित्यकोटावेव सन्निवेश्यन्ते ।

१ एवंविधेषु काव्येषु—गुप्तकालभवेन कविवरवत्सभट्टिना निर्मिताः कतिचन प्रशस्तयः सर्वप्रथमाः परिगण्यन्ते । तदनन्तरं सर्वतः प्रख्यातेन बाणभट्टेन 'हर्षचरितं' विलिख्य ऐतिहासिककाव्यनिर्माणस्य मार्गः सर्वाग्रे प्रदर्शितः । परन्तु 'महाकाव्य' दृष्ट्या पद्मगुप्तस्य (परिमलगुप्तस्य कालिदासापरनाम्नः काश्मीरकस्य, मध्यदेशभवस्य वा) काव्यं सर्वप्रथममैतिहासिककाव्यं परिगणयन्ति गवेषकमहाभागाः । तेषां मतेन संस्कृतस्य सर्वप्रथममैतिहासिकमहाकाव्यं 'नवसाहसाङ्कचरितम्' अस्ति । अस्मिन् धाराराजधान्याः सुप्रसिद्धस्य भोजनरेन्द्रस्य पितुः सिन्धुराजस्य ('साहसाङ्क' विरुदस्य) विवाहः शशिप्रभानाम्न्या राजकुमार्या सह सवर्णितः । काव्यस्य निर्माता परिमलगुप्तः पूर्वं सिन्धुराजस्य ज्येष्ठभ्रातुर्मुञ्जस्य सभाकविरासीत्, यस्य हि 'वाक्पतिराज' इत्युपाधिरासीत् । मुञ्जो भृशं गुणग्राही तथा स्वयमपि सरस्वतीसेवकः कविरासीत् । मुञ्जस्य परलोकप्रस्थानानन्तरं पद्मगुप्तः स्वात्मानं निराश्रयं परमविपण्णं च मेने । परं लघीयान् सिन्धुराजः परिमलगुप्तस्य तावन्तं सम्मानमकार्षीद् येन सुप्रसन्नः परिमलगुप्तस्तां प्रसन्नतां काव्यरूपेण प्रकटीचकार । परिमलगुप्तस्य सोयमादिमो महाकाव्यग्रन्थः सहस्रतमे खैष्टवत्सरे व्यलिख्यतेति साम्प्रतिका गवेषकाः समन्यन्ते ।

महाकाव्यस्याऽस्य अष्टादश सर्गाः । एतस्य द्वादशे सर्गे सिन्धुराजात्पूर्ववर्तिनां समस्तानामेव परमारवंशीयानां राज्ञां कालक्रमेण वर्णनमस्ति, यस्य ऐतिहासिकरूपे प्रामाणिकता तत्कालभवैः शिलालेखैः सर्वथा सिद्धाऽभूत् । रचनादृष्ट्या तदिदं महाकाव्यं वैदर्भ्यां रीतेः सर्वोत्कृष्टमुदाहरणम् । विशेषता सेयं यत्तदिदं काव्यमारम्भादन्तपर्यन्तं प्रसादगुणेन पूर्णम् । कोऽपि रसो भवेत्, कुत्राऽप्यर्थबोधे काठिन्यं न नामतोऽपि प्रतीयते । प्राकृतदृश्यवर्णने कविरयं सिद्धहस्तः । शृङ्गाररसे लेखनी सिद्धसाम्राज्या । कालिदासो यैर्गुणैः सर्वकवीनां मौलिमधितिष्ठति, तदनुकरणं परिमलगुप्ते पूर्णरूपेण प्रतीयते । उपमा यथा कालिदासस्य लोकप्रसिद्धा तथा पद्मगुप्तस्यापि ततो न न्यूना । एवं सर्वस्मिन् सत्यपि काव्यमिदं कवितादृष्ट्या यथा सर्वोत्तमं वर्तते, तथा परमारवंशीयानामितिहासदृष्ट्याऽपि सर्वथोपादेयम् । एतान् सर्वान् गुणान् लक्ष्यीकृत्यैव तस्मिन् काले सोयं कालिदास इव सम्मानं लेभे । अत एव हि 'कालिदासाऽपरनामेति' प्रसिद्धिरासीदस्य । मदीये 'जयपुरवैभवे' कविकुलकथाकीर्तनस्य प्रसङ्गे प्रोक्तमस्य विषये—"परिमलपद्गुम्फो मधुगाही । पारिजातपरिमलपरिवाही ॥"*

अस्य विशेषाऽऽलोचनां द्रष्टुमिच्छद्भिर्ग्रन्थस्याऽस्य टीका विलोकनीया । अलङ्कृताऽपि प्रस्फुरत्प्रसादा ह्येतस्य सूक्तिः श्रूयतां वर्णिकाग्ररूपेण—

---

* इदं, तथा एतस्य द्वितीयोभागः [साहित्यवैभवम्] इति पुस्तकद्वयं विश्वप्रसिद्धैः हिन्दी-उर्दू-व्रजादिभाषाप्रसिद्धैर्नानाच्छन्दोभिर्गुम्फितं संस्कृतहिन्दीटीकासहितं सचित्रं सौवर्णाक्षर'जिल्द'बद्धं 'मञ्जुनिकुञ्ज, पृथ्वीराजरोड, जयपुर' इति स्थानात् एतत्काव्यसंपादकस्य सकाशात्प्राप्यम् ।

"सत्यं वदाम्यङ्ग न जातु मिथ्या
यदीयसौधाङ्गणवेदिकासु ।
संमार्जनीभि. परतः क्रियन्ते
विसूत्रहाराऽवलिमौक्तिकानि॥"

अत्र हि महामूल्यमौक्तिकानामपि समार्जनीभिर्दूरीकरणेन उदात्तालकारोऽतिशयोक्तिर्वा सुमधुराऽस्त्येव, तथापि प्रसादगुण· कीदृशोऽस्तीति सहृदयैर्वेद्यम् ।

"सद्यः करस्पर्शमवाप्य चित्र §रणाङ्गणे यस्य कृपाणलेखा ।
तमालनीला शरदिन्दुपाण्डु यशस्त्रिलोक्याभरणं प्रसूते ॥" §'रणे रणे इति पाठः'

इति हि कार्यकारणयोर्विरुद्धगुणवर्णनरूपविषमाऽलकारप्रसङ्गे समुदाहृत काव्यप्रकाशे ।

२. द्वितीयमैतिहासिकमहाकाव्य बिल्हणकृत 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' । अस्मिन् काव्ये तत्कालघटिताना घटनानामैतिहासिकरूपेण वर्णनमन्याऽपेक्षया विलक्षणम् । काव्यस्याऽस्य १८ सर्गाः । अन्तिमे सर्गे कविना निजवशस्य विस्तरेण वर्णन कृतम् । महाकविर्बिल्हण. काश्मीरकः । बिल्हणस्य पितुर्नाम ज्येष्ठकलशः । पितामहस्य राजकलशः, प्रपितामहस्य मुक्तिकलश इति । कवेर्मातुर्नामासीद् नागादेवी । कवेर्द्वौ भ्रातरावास्ताम्—इष्टरामः, आनन्द इति । गुणग्राहकस्य कस्यचिदाश्रयदातुरन्वेषणार्थं काश्मीरेभ्यो विनिष्क्रम्य मथुरा-कान्यकुब्ज-प्रयाग-काशी-प्रभृत्यनेकनगरेषु भ्रमन् दक्षिणभारतस्य तत्कालप्रसिद्धा कल्याणराजधानी प्रापत् । तस्मिन् समये चालुक्यवशीयस्य विक्रमादित्यषष्ठस्य राज्यशासनम् [१००६-११२७] आसीत् । गुणपरीक्षकेण विक्रमादित्येन बिल्हणस्य महान् समानः कृत. ।

समादरसतुष्टेन कविना 'विक्रमाङ्कदेवचरित' महाकाव्ये विक्रमस्य तद्वशीयाना च सुविस्तृत्य वर्णन कृतम् । ऐतिहासिकघटनाना क्रमानुसारिवर्णने कविना तादृशोऽध्यवसायो दर्शितो यत् सोय ग्रन्थः काव्यत्वेऽपि 'कल्याण'शासकाना चालुक्यवशीयानां भूपालानामितिहासपरिज्ञानाय साम्प्रत परमोपयोगी परिगण्यते । काव्यदृष्ट्या बिल्हणो 'वैदर्भी'रीतेरनुयायी । काव्यस्य अष्टादशस्वपि सर्गेषु प्रसाद-माधुर्ययो. पर्याप्तः प्रक्रमः । प्रौढिगुणे सोय कवि· सस्कृतसाहित्ये चिरकालात्प्रसिद्धः । रसेषु—वीरस्तु प्रमुखोऽस्त्येव, किन्तु शृङ्गारस्याऽपि साम्राज्यमस्य रचनाया स्थाने स्थाने विलोकनीयम् । कविरय निजसूक्तिनीविमन्यान्यैः कविभिरुपजीव्यामाचष्टे । 'मम सूक्तीरन्ये कवयोऽपहरिष्यन्ति' इति पूर्वमाशक्य स्वयमुत्तरमभिधत्ते—
"गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टमद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः" इति ।

राजसभासु नरपालानाममीषा सर्वमिद महत्त्व कवीन्द्रकृतमेवेति आत्मप्रशसा मुखतः परिहरन्नपि व्यग्यविधया आह—

'लङ्कापते· सकुचितं यशो यत
यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
स सर्व एवाऽदिकवे प्रभावो
न कोपनीयाः कवय क्षितीन्द्रै ॥'

एतत्काव्यस्य कवेश्च विषये सर्वमपि विशेषं विज्ञातुमिच्छद्भिः—'काश्मीरकमहाकविर्बिल्हणस्तस्य काव्य च' इति सपादकस्याऽस्य निबन्धो दर्शनीयः ।

३. एतदनन्तरम् ऐतिहासिककाव्यं कविकल्हणनिर्मिता 'राजतरङ्गिणी'। अत्र हि काश्मीरनरेशानामितिहासः अतिप्राचीनकालादारभ्य खिष्टीयद्वादशशतकपर्यन्तमतिप्रामाणिकरूपेण वर्णित.। इमं ग्रन्थ काव्यतया अपरिगणय्य विशुद्धेतिहासस्य स्वरूपे एव परिगणयन्ति सर्वेपि गवेषका'। ग्रन्थारम्भे कविना स्ववशस्याऽपि वर्णनमैतिहासिकमकारि। सेय राजतरङ्गिणी काश्मीरनरेशस्य जयसिंहस्य राज्यकाले (११२७–११४९ ई०) निर्मिता। कल्हणस्य गुरोर्नामाऽऽसीन् अलकदत्त इति। यस्य हि श्रीकण्ठचरिते मङ्खकेन वर्णनमकारि। मङ्खकेन कल्हणस्य नाम "कल्याण" इति सूचितम्। कल्हणेति काश्मीरभाषयाऽपभ्रश.। कल्हणेन बिल्हणकवितायाः भूयस्तरामनुशीलनमकारि। अतएव हि बिल्हणकाव्यमस्मिन् सङ्क्रान्तमिति व्यपदिश्यते। ११४८ तमे खिष्टवत्सरे काव्यमिदं प्रारभ्य द्वितीये वर्षे समाप्तमकारि।

कल्हणस्य जन्म काश्मीरकब्राह्मणकुलेऽभवत्। एतस्य पिता चणपको (चम्पक.) महाराजहर्षस्य विश्वासपात्रमासीत्। राजनैतिकविषयेषु सचिवोऽप्यभूत्। किन्तु अकाण्ड एव हर्षस्य वधे जाते कविनाऽनेन राजनीतेर्मार्ग एव परिहृत.। एतस्य पितृव्यः "कनकः" राज्ञो हर्षस्य प्रीतिपात्रमासीत्। तस्यापि मृत्योरनन्तर कल्हण. सर्वं विसृज्य काशीमगाद्, यत्र तेन शान्तिमय जीवनमनुभूतम्। राजनीत्या भृश खिन्नेन कल्हणेन स्पर्धापुरस्सर निजदेशस्य राजनैतिक इतिहासो विलिखितः। अतएव तरङ्गिण्यामस्य तत्कालोपलब्धाया इतिहाससामग्र्या' साधीयान् उपयोगः कृतः।

कल्हणकवे. संस्कृतसाहित्ये विशिष्ट स्थानम्। ऐतिहासिकघटनानां कालक्रमानुसारं तथा वर्णनमनेन कृत याभिः काव्योद्देश्यतया उपदेशोऽपि सर्वत. प्रचार्यते स्म। तरङ्गिण्यामस्या पौराणिककालमारभ्य द्वादशशताब्दीपर्यन्त. क्रमबद्धो राजनैतिकः सांस्कृतिकश्चेतिहासः प्रामाणिक' समुपलभ्यते।

काव्यदृष्ट्याऽपि ग्रन्थस्याऽस्य महान् समादर। प्राञ्जलभाषया ग्रन्थ प्रणयन्नयम् न नाम अलंकारभाराद्ग्रन्थ दुरूह चकार। अयमपि महामहिम्नां नरेशाना शोभा कवीन्द्राणा कृपयैव वर्णयामास। यथा-

'भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशना मेदिन्यासीदसावकुतोभया।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे॥'

४. ततो जैनाचार्यस्य हेमचन्द्रस्य 'कुमारपालचरितं' नाम महाकाव्यम्—यस्मिन् कविना स्वाश्रयदातुर्नरेशस्य अष्टाविंशतिसर्गेषु सुविस्तृत्य वर्णन कृतम्। एषु विंशतिसर्गा. संस्कृते। अन्तिमा अष्ट सर्गास्तु प्राकृतभाषयोपनिबद्धा। भाषाद्वयनिबद्धत्वात् काव्यस्याऽस्य 'द्वयाश्रयकाव्य' मित्यपि प्रसिद्धि. ["बॉम्बे संस्कृतसिरीजे" प्रकाशितम्, सख्या ६०, ६९, ७६]। अस्मिन् हेमचन्द्ररचितयोः, संस्कृत प्राकृतव्याकरणयोरपि रुचिरतया सनिवेश.। गुर्जरदेशे सुप्रसिद्धस्य चालुक्यवंशीयस्य कुमारपालस्येतिहासबोधाय काव्यमिदं नितान्तमुपादेयम्।

५ हिन्दुसाम्राज्यस्याऽन्तिम सम्राजं पृथ्वीराजं को वा ऐतिहासिको न विजानीयात्? किन्तु दुर्दैवस्य दुश्चरित कैश्चनैराक्रोष्टव्य नूनम्, यस्य दुर्दृष्ट्या प्रतापिनोऽस्य सम्राज., "पृथ्वीराजविजयाख्य" मेकमेवाऽऽसीन् चरितकाव्यम्। तदिदमप्यपूर्णम्! एतस्य टीकाकारो जोनराज. [१४४८ खिष्टवत्सरे जातः] काश्मीरक, काव्यनिर्माता कविरपि काश्मीरकः। यस्मिन् समये पृथ्वीराजस्य यशो भारतमात्रे प्रासिध्यत् तस्मिन्काल एव काव्यस्याऽस्य रचनाऽप्यासीत्। ऐतिहासिकदृष्ट्या काव्यस्याऽस्य महत् महत्त्वम् [तदिदं काव्य म० म० प० गौरीशङ्कर हीराचन्द्रओझाद्वारा, अजमेरनगरे प्रकाशितमिति प्रसिद्धिः]।

६ ततः प्राकृतभाषायाः—प्रवरसेननिर्मित सेतुबन्धमहाकाव्य, वाक्पतिराजनिर्मित 'गउडवहो' काव्य चापि प्रकरणेऽस्मिन् उपतिष्ठतः। सेतुबन्धस्य १५ आश्वासाः, येषु सेतुबन्धनमारभ्य रावणवध-पर्यन्ता कथा प्रौढया सरण्याऽभिवर्णिता। दण्डिना तदिद काव्य सूक्तिरत्नाना सागरो निर्दिष्टः। यथा—

'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृत विदु'।
सागरः सूक्तिरत्नाना सेतुबन्धादि यन्मयम्॥'

अस्मिन्नपि काव्ये प्रसादगुणः पर्याप्तमात्रायाम्।

७. वाक्पतिराजः कान्यकुब्जनरेशस्य यशोवर्मणः सभायां रमणीय रत्नमासीत्। महाकविर्भव-भूतिरप्यस्यैव सभायामासीन। वाक्पतिराजो भवभूतेः कवितायाः प्रशसापर एव केवल नाऽऽसीन्, अपि तु ऋणी अप्यासीत्। प्रोक्त वाक्पतिराजेन—"भवभूतेः सूक्तिस्तादृशः पीयूषसागरोऽस्ति यद्रसस्य कतिपये बिन्दवोऽस्यापि (वाक्पतिराजस्यापि) कविताया सक्रान्ताः सन्ति।" अस्य कविताकालः अष्टमशतकस्य पूर्वार्द्धम्। यशोवर्मणा गौडदेशस्य (मगधस्य) कस्यचिन्नरेशस्योपरि अभियान कृतमा-सीत्तस्यैवाऽस्मिन् काव्ये वर्णनम्। काव्ये १२०८ गाथाः सन्ति। ऐतिहासिक महत्त्व काव्यस्याऽस्य काम न भवेत्, किन्तु कवितादृष्ट्या काव्यमिद प्राकृतसाहित्यस्य देदीप्यमानमेक रत्नम्।

राजस्थाने साहित्यसृष्टिः

भारतस्य अन्यान्यप्रदेशेषु यथा आर्षसाहित्यस्य, ऐतिहासिकसाहित्यस्य, काव्यसाहित्यस्य च सृष्टिरभवत्तथा राजस्थानप्रान्तेऽपि सर्वविधसाहित्यस्य प्रगाढा सृष्टिरभवत्। पाश्चात्यदेशीयाना शिक्षामा-साद्य बहुज्ञमन्या अद्यतना भारतीया राज्ञा निन्दा कुर्वन्ति, तैः कृता सेवा नामतोऽपि न स्मरन्ति। किं बहुना, राजशब्दस्य सम्बन्धमपि परिहरन्ति। किन्तु वराकाणामेषा मुग्धता विचार्य दयाया एव प्रादुर्भावो भवति। बहिर्देशीयाना शासकानामेवविधनिन्दाप्रचारे आसीद्राजनैतिकं रहस्यम्। यतो हि पाश्चात्या भारतस्याऽस्य कूटनीत्या अपहर्तारः। ते हि भारतस्य आदर्शशासकाना प्राचीनराजाना निन्दा प्रचार्य भारतीयशिक्षितेषु जातीयाऽभिमानम्, क्षत्रियादीना कृतज्ञता च हृदयादपमार्जयितु वाञ्छन्ति। येन हि शिक्षितभारतीयाना नवीना सृष्टिः आत्मनः प्राचीना महत्ता न प्रत्यभिजानीत। पुरातनाना शासकाना लोकसेवाम्, उदारताम्, 'राजर्षि' नामोचिता लोकरक्षणमहत्ता च शनैः शनैर्विस्मरेत्।

ततश्च वर्तमानयुगीया शासका यथा आत्मम्भरयः सन्तोऽपि उपरितो लोकहितकारकमात्मान दर्शयन्ति, तथा प्राचीनानपि शासकान् "राजर्षि"गौरवतो निपात्य निजसमानान् साधयितुमिच्छन्ति। किन्तु पाश्चात्यगुरूणा भेदनीति-दीक्षामन्त्रेण मुग्धीकृतमानसा. साम्प्रतिका नेद नीतिरहस्य तत्वतो विदन्ति। अतएव हि पाश्चात्याना शब्देषु शब्द मिश्रयन्तस्तेऽपि भारतीयभूपालाना निन्दाध्वनिं प्रचारयन्ति। किन्तु भारतीयैः क्षत्रियैः राजभिः सृष्टेरारम्भाद् या लोकाना रक्षा, सकटेषु च या सहायता विहिता, तस्या. साक्षिणोऽस्माक प्राचीनेतिहासाः सन्ति। यदि राजानः प्राणानपि तृणीकृत्य लोकहितकार्येषु नाऽवातरिष्यन् तर्हि आर्षी सभ्यता, भारतीया सस्कृतिश्च विश्वविश्रुता नाऽभविष्यत्। अस्माक पूर्वजा आर्या. मानवसभ्य-तायाः सपूर्णेऽपि ससारे सस्थापका., वैज्ञानिकप्रकाशस्य च प्रवर्तका आसन्निति यद् भारतीयाना गौरव तस्य वास्तविक श्रेयः सरक्षणकर्मणि जागरूकाणामेषा क्षत्रियाणामेवाऽस्ति। "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते" इति सरक्षणजन्य क्षत्रियराजाना महान्तमुपकार को वा विवेकी न मन्येत?

तत्रापि न केवल रक्षाद्वारेणैव विद्यानां प्रचारसहायका इमे राजानः, अपि तु प्रातिस्विकरूपेणापि विद्याना प्रवर्तका अमी राजानः समभवन्। तैरग्रेसरैर्भूत्वा तत्तत्साहित्यस्य स्वय सृष्टिरकारि, निजाश्रिताना पण्डिताना द्वारेणाऽपि च साहित्यस्य सवर्द्धनमक्रियत। दूरे गमनस्य नाऽस्त्यावश्यकता। अस्मिन् काव्ये कीर्तितैर्नरपालैरेव ज्यौतिषस्य, धर्मशास्त्रस्य, काव्यसाहित्यस्य, सङ्गीतविज्ञानस्य च भूयस्तरा सवर्द्धनमक्रियत। जयपुरराजधानीप्रतिष्ठापकेन महाराजाऽधिराजेन श्रीजयसिंहेन (द्वितीयेन) पाश्चात्यदेशेष्वपि पण्डितान् सम्प्रेष्य, तद्देशे प्रसृत ज्योतिर्विज्ञान समाहृत्य, भारतीयज्यौतिषेण च तस्य समन्वय विधाय न्त्राणि, यन्त्रशालाश्च निर्मिताः। यन्त्राणा विषये 'जयसिंहकारिका' नामको ग्रन्थो महाराजेन स्वय निर्मित। महाराजस्य निर्देशाऽनुसार "लागेरियमस्य" फैञ्चसारिण्याः सस्कृतेऽनुवाद विधाय 'विभाग सारिणी', ज्याचापगणितस्याऽर्थे फैञ्चग्रन्थस्याऽऽधारेण 'मिथ्याजीवाछायासारिणी', डी० ला० हीरे इत्यस्य ग्रहगणितसारण्या आधारेण जयपुरस्य रेखाशोपरि सस्कृते 'दृक्पक्षसारिणी', दृक्पक्षग्रन्थश्च निरमीयन्त।

उलगवेगनिर्मितग्रन्थस्य तारागणिताशस्य कालान्तरसस्कार कृत्वा सस्कृते 'तारासारिणी' निर्मिता। पञ्चाङ्गनिर्माणे सौकर्यार्थं 'जयविनोदसारिणी' रचिता। नयनसुखोपाध्यायेन ब्रतूलमयूननिर्मितस्य आरव्य-भाषाग्रन्थस्य 'ऊकर'स्य सस्कृते तन्नाम्नैवाऽनुवादो विहितः, यस्मिन् रेखागणितसम्बन्धिनस्त्रयोऽध्याया। जयसिंहमहाराजस्यैव सोय प्रतापो यत् संमानितविदुषा हस्तेन आरव्य-युरोपीयज्यौतिषसम्बन्धिगवेषणायाः परिचयो भारतीयविदुषामपि कारित', अन्यथा एतत्संबन्धे भारतीया अपरिचिता एवाऽभविष्यन्। "महाराजो भारते तत्कार्यं समपादयत् यद्धि पोपग्रेगरी (त्रयोदश') युरोपे समपादयत्" [कि० ऑस्ट्रोनॉमिकल् ऑब्जरवेटरी ऑव् जयसिंह, पृ० २, १५, ४१, ६८। वेव् करसीज ऑव् दि हिन्दूस्टेट्स् ऑव् राजपूताना, पृ० ७२, टिप्पणी २]

सम्राड्जगन्नाथेन यूक्लिडस्य सपूर्णं रेखागणितम् आरव्यभाषात' संस्कृतभाषायामनूदितम्। 'अलमजेस्ति'ग्रन्थस्य आरव्यभाषाऽऽधारेण 'सिद्धान्तकौस्तुभः, सम्राट्सिद्धान्तश्च' निर्मित'। पौण्डरीक-रत्नाकरेण व्रततिथीना निर्णयविषये 'जयसिंहकल्पद्रुमो' नाम महाविशालो ग्रन्थो विरचित। एतत्काव्य-निर्मातु श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधेर्द्वारा 'वृत्तमुक्तावली'नामकश्छन्द शास्त्रस्य महाग्रन्थो महाराजजयसिंहेन निर्मापितो यस्मिन् वैदिक-लौकिक-सस्कृत-व्रजभाषाणा च छन्दांसि सलक्षण निर्दिष्टानि। महाराजस्याऽऽ-ज्ञयैव अलकारकलानिधि-मधुकरकलानिधिप्रभृतयो व्रजभाषामया ग्रन्था निरमीयन्त [विशेषदर्शनार्थं काव्यस्याऽस्य पृ० १८०-८२ टिप्पणी विलोकनीया।]

एवप्रकारेण विद्याप्रवर्तनार्थं भारतमात्रे विश्रुतस्य महाराजजयसिंहस्य वीर्यात्प्रसूतो ज्येष्ठपुत्र. श्रीमान् ईश्वरसिंहोऽपि विद्याना तन्त्रशास्त्रस्य च महान् अनुरागी आसीत्। अनेन रा जसिंहासन प्राप्यैव राज्यतिलकमहोत्सवसभायामेव एतत्काव्यनिर्मात्रे श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधये निजवशस्येतिहाससूचक काव्यमेक निर्मातुमाज्ञा प्रदत्ता यथा—

'तत्रैव राज्यतिलकोत्सव एष राजा
श्रीकृष्णभट्टकवये कुरु काव्यमेकम्।
अस्मत्कुलक्रमकथाकथनाऽभिराम-
मित्याज्ञया सह ददौ सुमहाप्रसादम्॥३४'

[पृ० १६०, सर्गः १०]

यन्त्र-तन्त्रादिष्वपि ईश्वरसिंहमहाराजस्य भूयसी प्रवृत्तिरासीत्। लोकप्रसिद्धिरियमपि चिरकालात् प्रचलिता, यन्महाराजेन प्रतिपन्थिभिः साकं युद्धसमयेऽपि मन्त्रचमत्कारस्याऽऽश्रयो गृहीतः। घटे उपदेवतानामावाहनं कृत्वा, अभिमन्त्र्य च सोय घटः समराङ्गणे प्रहितः। किन्तु घटवाहकस्य पुरुषस्य भीरुतया प्रमादाच्च फलं तस्य विपरीतमेव पर्यणमत्। राज्ञोऽस्य तादृशः प्रभावः प्रथितो लोके यत् सोय देवतावत्, उपदेवता(भूमिया) वत् वा शरीराऽवसानोत्तरमपि जनानां श्रद्धा महिमानं चाऽऽसादयति। ब्रह्मपुरीवासिना वृद्धाना मुखादश्रूयत—यत्-निशीथे राजहर्म्याणा पृष्ठे [जयसागर 'राजामल्ल' तडागस्य समीपे] महाराजस्याऽस्य राजसज्जासज्जिता घोटकाऽऽरोहेण यात्राऽपि ('सवारी') बहुधा पुरा समभवद्, या बहुभिर्जनैः सहसा समदृश्यत। अनेकेभ्यो लोकेभ्यो राजोचितेनौदार्येण स्वर्णमुद्रावितरणमपि बहूना मुखादश्रूयत।

अस्तु यत्किञ्चित्। किन्तु महाराजस्येश्वरीसिंहस्य जीवनकालो ह्यतिसङ्क्षिप्त आसीत्। एतावत् स्वल्पसमयेऽपि भूयान् समयो राज्ञा परस्परसंघर्षे, विरोधिनरपालैः प्रदीपिते भ्रात्रा सह विरोधे, अनिच्छयाऽपि कर्तुमापतिते युद्धव्यवसाये सव्यतीतोऽभवत्। अन्यथा यद्यय नरपालो निर्विघ्न निष्कण्टक च राज्यशासन भूयास काल यावदकरिष्यत्तर्हि न जानीमः कां का साहित्यसेवा, लोकहितकार्याणि च समपादयिष्यत्। काव्येनाऽनेन इतिहासस्य भूयान् सम्बन्धः। यावत्काल तत्सामयिक इतिहासो नाऽवबुध्येत तावत्काल काव्यवर्णितघटनाना रहस्य न भवति हृदयगमम्। अतएवाऽत्र स्थाने स्थाने ऐतिहासिकटिप्पण्यो दत्ताः सन्ति। ताभिर्ग्रन्थनायकस्य चरित्र स्पष्टमवबुद्धं भवेत्।



ईश्वरविलासस्य सर्गकथा

[प्रथमः सर्गः]

महाकाव्यमिदं सवाईजयसिंहमहाराजस्य पुत्रं श्रीमन्तमीश्वरसिंहमहाराजमधिकृत्य निर्मितम्। राजसभामध्ये, राज्याधिकारप्राप्तेरुत्सवोपलक्ष्ये एव, महाराजेन ईश्वरीसिंहेन निजवंशपरम्परावर्णनपुरस्सरं काव्यमेकमातनुष्वेति कविमहोदयाय प्रादीयत निदेशः। तदनुसारं प्रथमं कविकीर्तनम्, सुजनदुर्जनाख्यानम्—तत सूर्यवंशप्रशस्तिः। सूर्यवंशे च महाराज पृथ्वीराजमारभ्य राजकीर्तिप्रख्यानम्। तथा हि—पृथ्वीराजस्य भारमल्लः, भारमल्लस्य भगवन्तदासः, भगवन्तदासस्य मानसिंहः। मानसिंहस्य वीरताख्यातिरनेकदुर्गविजयः, महाराणाप्रतापसिंहस्य (उदयपुराधिपतेः) सभाया मानसिंहस्य मनोमालिन्योद्भवः, अतएव दिल्लीसाम्राज्यद्वारा चित्रकूट (चित्तौड) भङ्गः, ततो यमुनातीरे वृन्दावने गोविन्दमन्दिरनिर्माणम्। काशी-गया-प्रयागादिषु वापीकूप प्रासादादिनिर्माणम्। वङ्गप्रदेशात् केदारराय विजित्य शिलामयीदेव्या आनयनम्। काश्या केशव-विश्वनाथादीनां मन्दिरेषु राजोचित परिष्करणम्। अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गादीनां शासनम्। असख्यातेषु युद्धेषु अग्रभागग्रहणम्, सर्वत्रैव च विजयप्राप्तिरिति प्रभावः।

तस्य भावसिंहः, किन्तु न तस्य काचित्ख्यातिरावर्णिता। किन्तु मानसिंहस्य प्रथमः पुत्रो जगत्सिंहः स्वय महावीरोऽपि मानसिंहस्य जीवद्दशायामेव स्वर्गं गत.। तस्य पुत्रो महासिंहः। तस्य तनय. प्रख्यातराजनीतिज्ञो महावीरः श्रीजयसिंहः ['मिर्जाराजा' इति मोगलसाम्राज्याल्लब्धविरुद.]। यस्मादवरङ्गजीवोऽपि सदा बिभ्यदिव शासनं चकार। यस्य प्रतापात् बहुदुर्गाणामधिपति. सर्वतः प्रसिद्धश्छत्रपतिः शिवाजीवीरोऽपि, अवरङ्गजेबस्य समीपमुपागात्। किन्तु मोगलसम्राजः (अवरङ्गजेबस्य) दुर्नयात्कारागारे प्रापितोऽपि शिवाजी जयसिंहस्य प्रतापबलान्मोचितः। दाराशिकोह-शुजाख्यौ [शाहजहानस्य सम्राजः पुत्रौ] द्वावपि पृथक्कृत्य, अयमेव औरङ्गजेब दिल्लीसम्राज चक्रे। जयसिंहो लक्षचण्डीयागमनुष्ठानमकारयत्, तत्पुण्यात् अनेकानि दुर्गाणि विजितवान्, न च कदाचित्पराभवं दृष्टवान्। 'बलख'प्रान्ते महासंकटपतिता सम्राट्सेनामयमेव वीरतया मोचितवान्। सीमाप्रान्तस्य विवादं प्रशमय्य शान्तिं स्थापयामास। १६८२ तमे विक्रमवत्सरे दलेलखानः पठान. प्रबल सैन्य सघटय्य मोगलसम्राजो विरोधायोदतिष्ठत्। सम्राट्प्रेषितो जयसिंह एव पठानं द्रावयामास। [श्लो० ३८] अस्यैव सभाया हिन्दीकविबिहारी, कुलपतिमिश्रश्च निजरचना प्राख्यापयताम्।

तत्पुत्रो रामसिंह , यो हि शिवाजी-सम्भाजीनामकौ महाराष्ट्रवीरौ सम्राज. कारागारान्निजबलसाहसेन मोचयामास। समरयात्रा अतिप्रबलाऽभवन्। अथ रामायणभारतादिकथाप्रणयी, काव्य-नाटक-प्रहसनादिसाहित्योत्कर्षकश्चाभवत् [श्लो० ४२]। अयमपि काबुल-बलख-बुखाराप्रभृतीन् निजशासने आनिनाय [श्लो० ४४]। तस्य पुत्र. कृष्णसिंहः, यो हि बडगूजरराजपुत्राणा 'राजोरगढ' निजशासने आनिनाय [श्लो० ४८] पण्डितानां कवीनां च सोयमति समानं चकार। अस्य वीरतया भीतः अवरङ्गजेबो गुप्तरूपेणाऽस्य जिघांसुरप्यभवत् [श्लो० ४०]

[द्वितीयः सर्गः]

कृष्णसिंहाद् विष्णुसिंहः, अथ सम्राट्शासनात् नन्दाजाट विजित्य भरतपुर-दिल्लीपर्यन्त माथुरमण्डल निष्कण्टकं चकार। राजारामनामको जाटः 'सिंशिनी'पुरी त्यक्त्वा पलायाचक्रे। अथ वृन्दावन-

महावन-प्रभृतीनि द्वादशवनानि परिष्कृत्य तेषु उत्सवादीन् कारयामास। अथ शिवानन्दगोस्वामित श्रीविद्यामन्त्रं जग्राह, तस्मै ग्रामाश्चार्पयामास। अनेन मथुरायाः परपारे विष्णुपुरं वासितम्। विष्णुसिंहस्य पुत्रः श्रीसवाईजयसिंहः, येन अनेके सोमयागाः कृताः। निजगुरूणा पौण्डरीकप्रभृतीना सुवर्णतुलां चकार। स्वस्य, स्वमहिष्याश्च सुवर्णतुलामकार्षीत्। मथुरा-वृन्दावन काशी-प्रयागादिषु नानापुण्यकार्याणि चकार। अथ हिन्दूनामुपरि स्थापित 'जजिया'नामक कर मोगलाना, निवारयामास।

फरुंखसियरस्य राज्ये सैयद अब्दुल्लाखान, हुसेनखानप्रभृतय प्रबला अभवन्। ते सम्राट्तोऽपि प्रबल विरोध दधु.। फरुंखसियरादुत्तरं मुहम्मदशाहस्य समयेऽपि सैयदा उद्रिक्ता अभवन्। ते हि मुहम्मदशाहमपि पदात् च्यावयितु षड्यन्त्र चक्रुः। ततस्तु अहो कालादप्रसन्न. श्रीजयसिंहो हसनपुरस्य समीपे युद्धे इमान् सैयदान् बन्दीचकार। कारागार मुक्त्वा इमे मृताः। मुहम्मदशाहो जयसिंहाय 'राजाधिराज' पद ददौ। 'साभर'झीलतटे सैयदाना सैन्य विध्वंसयामास। ततो हिरण्यपुर (हिण्डौन) समीपे यवनाना सेनामय विजिग्ये। वीरतावर्णनम्। ततो जयसिंहेन वासिताया ब्रह्मपुर्या वर्णनम्। गणेशगढस्य वर्णनम् [श्लो० ३३]। पौण्डरीकभवनस्य वर्णनम्। ब्राह्मणाना गृहेषु वेदगानम्, शुकादीनामपि तदनुकरणम्। ब्रह्मपुरीसमीपे जयसागरतडागवर्णनम्। तत्पार्श्वे यागेश्वरमहादेववर्णनम्।

तृतीयः सर्गः

'जयपुर'राजधान्याः प्रतिष्ठापनम्। नगरवासिना शोभा। रत्नमौक्तिकादीना विक्रेत्र्यः स्त्रियः। रात्रौ सौधेषु शतशः पूर्णचन्द्रा दृश्यन्ते [श्लो० १६]। यस्य नगरस्य अत्युन्नताना सौधकेतुदण्डाना व्याघट्टनस्य शङ्कया सूर्यो दक्षिणायन-उत्तरायणगमन स्वीकरोति, न साक्षान्मध्याकाशे [श्लो० ३०]। हयाना राजमार्गे गमनम्। हस्तिनाम्। रथानाम्। समन्ततः आरामाणा शोभा। जयदुर्ग (जयगढ), जयपुर, जयसागर(साम्प्रत राजामलतडाग)कृत् जयसिंहः सर्वदा जयशब्दयुक्तो भविष्यति।

[चतुर्थः सर्गः]

जयसिंहस्य पुण्यकार्याणि। श्रीवल्लभाचार्यमतानुगामिनस्तस्य श्रौत-कर्मानुरागः। त्रिवार चयनयागकरणम्। वाजपेययागेन सम्राट्पदप्राप्तिः (श्लो० ६)। अश्वमेधयज्ञार्थं विद्वत्सभा। तत्र अश्वमेधकरणार्थं विदुषः प्रति राज्ञः प्रश्नः। कलौ जनमेजयादनन्तरम् अद्यावधि केनाप्यश्वमेधो न कृतः। त्वं तु मद्यसमर्थः। तत. सशयापन्नो जयसिंहो वाराणस्या पण्डितान् प्रति पत्र प्रेषयामास। काशीपण्डितैरैकमत्य विधाय पत्रोत्तर दत्तम्—'त्वया त्रिः चयनयागः कृतः। अधुना त्वम् अश्वमेधयाजी भव। यतो हि यावद् गङ्गा, यावद् वेदाः, यावच्च वर्णाश्रमनियमः, तावत् अश्वमेधोऽपि भवेदेव। किन्तु त्वदन्य श्रद्धालुः समर्थश्च नास्ति। त्वमेव भाग्यवान् विष्णुसिंहस्य तनयोऽसि। अतो याग-दान-संमानादीनसंशय कुरु, इत्यस्माकमाशी.।' इत्युत्तरेण प्रसन्नो राजा वेदविज्ञान् ब्राह्मणान् सम्पूर्णदेशेभ्य आकारयामास। अयाची रामचन्द्रः, काश्याम् उपाध्यायेति प्रसिद्धो द्वितीयो रामचन्द्रः (द्रविड.), प्रतिवर्ष सोमयाजी व्यासशर्मा। तथा यज्ञकरः। काश्या प्रतिष्ठितो गुणाकरः। गोकुलवासिभिः पुरस्कृत. कार्णाटदेशीयो हरिकृष्णशर्मा। एतदतिरिक्त समुद्रपर्यन्तस्थानेभ्यः पर:शता ब्राह्मणा ये श्रौतानुष्ठानपण्डितास्ते यज्ञे समाययुः। जलज-स्थलज-वनेचरपशुपक्षिणां सग्रहः कृतः। तन्दुल-यव-तिल-मुद्गादिधान्याना पर्वता निर्मिताः। आज्य-शर्करादीना महान्त. संचयाः। जयपुरादुत्तरदिशि एकक्रोशदूरे, मानसागरस्य तटे गोविन्दालय [गोविन्दजी की घाटी] आम्बेरमार्गे ध्वजच्छायायां यज्ञवाटो निर्मित। रत्नभित्तियुक्त प्राचीरम्, रत्नजटिताः स्तम्भाः, पत्नीशाला, हविर्गेहादय कारुभिर्निरमीयन्त।

[पञ्चमः सर्गः]

सर्वश्रुत्विग्गणकर्तव्यवेदी ब्रह्मा। काशीवासी 'यज्ञकर' नामा अध्वर्युः। ऋग्वेदी होता, यस्य कण्टमाधुर्यस्य सर्वतः प्रशंसा। धानुष्कै रक्षितस्य अश्वस्य उत्सर्गः। द्वौ वीणया गायकौ यजमानस्य यशो जगतुः। स्वर्णमयस्य यूपस्य स्थापनम्। ब्राह्मणानां मिष्टान्नभोजनम्। सभाजन-दान भोजनानां सातत्यम्। तौ वीणया गायकौ श्रीकृष्ण-कविलक्ष्मणौ जयसिंहयशोऽगायताम्। लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचेरुः। अहर्दिनम् आज्यधाराहोमः। मृगाजिनधारी, हस्ते मृगशृङ्गवाही शिखासूत्रधरो यजमानः शुशुभे। यज्ञवाटस्य परितो वाप्यो निर्मिताः। नवनिर्मितसोपानसनाथे "मानसागरे" अवभृथस्नानम्। चतस्रो राजमहिष्यो राज्ञा सह अवभृथस्नानं चक्रुः।

[षष्ठः सर्गः]

स्वनिर्मिते जयपुरनगरे कल्किमन्दिरनिर्माणम्। मन्दिरस्योच्चता, रत्नादिशोभा। शुभमुहूर्ते तत्र श्रीकल्किस्थापनम्। कल्किनः स्वरूपशोभा। कल्किनः स्तोत्रम्। द्व्यक्षरचित्रम् (श्लो० ४५)। एकाक्षरादिचित्रम् (श्लो० ५३)। कल्किनः अष्टकम्।

[सप्तमः सर्गः]

कल्किनो होलिकामहोत्सवः। नानारङ्गधूलीपटलानां छटा। होलोत्सवः। कल्किनश्चन्दनयात्रा। ज्येष्ठाभिषेकः, रथयात्रा। रथस्य वर्णनम्। वर्षासु हिन्दोलोत्सवः। जन्माष्टमी, दधिक्रीडनकम्। दीपावली, अन्नकूटम्। एवं भक्तिकार्यैः ब्रह्मसूत्र-उपनिषदादिविचारैश्च राज्ञो (जयसिंहस्य) ब्रह्मलाभः। बूँदीराज्याधिपतेर्बुधसिंहस्य जयसिंहभगिन्या निजमहिष्या सह मनोमालिन्यम्। अत एव जयसिंहो बुधसिंहद्वारा प्रतिज्ञामकारयद् 'यद् बुन्दीराज्यस्य स एवाधिकारी भवेद् यं भवान् समन्येत।' किन्तु बुधसिंहेन नेयं प्रतिज्ञा पालिता। अत एव बुधसिंहं बून्दीतो निर्वास्य करवडराज्याधिकारिणं दलेलसिंहं बुन्दीराज्ये स्थापयामास। गोपालसिंहस्य पुत्रो जयसिंहस्य शरणमाययौ, जयसिंहस्तं राज्ये स्थापयामास, वैरिणश्च निर्वासयामास। जयसिंहस्य श्रौतमार्गे रुचिः, भक्तानां निजसमीपे संग्रहः। जयपुरेन्द्रस्य दिल्लीनगरे यद् राजभवनमासीत्तत्र अवरङ्गजीव प्रसाद्य यमुनाधाराया आनयनम् (श्लो० ४६)। औरङ्गजेबतः 'सवाई' पदव्याप्तिः। अवरङ्गजेबस्य मरणे बहादुरशाहः सम्राड् अभूत्, किन्तु लघुभ्राता आजमस्तु संग्रामे निहतः। जयसिंहः आजमस्य पक्षपाती आसीत्। अत एव मुअज्जमो बहादुरशाहनाम्ना सम्राड् भूत्वा लघुभ्रातुः पक्षपातिनं जयसिंहमदण्डयत्। तस्य राज्ये आम्बेरे 'खालसा' (राज्यसात्) प्रबन्धं चकार। अस्मिन्नन्तराले उदयपुराधिपतेः कुमार्या(चन्द्रकुँवरि) सह जयसिंहस्य विवाहोऽभवत्। अत्र प्रतिज्ञाप्यभवद् यत्—"मदीयपुत्र्याः (चन्द्रकुमार्याः) गर्भाद् यः पुत्रः स्याद् स एव जयपुरसिंहासनस्याधिकारी स्यात्।"

उदयपुरनिवाससमये संमिलितैः जयपुर-जोधपुर-उदयपुरराज्याधिकारिभिर्मन्त्रणा कृता यत् इदानीं दिल्लीसम्राजो बहादुरशाहस्य प्रसन्नतामतीक्षा न कर्तव्या। बलात् निजनिजराज्यं समाहरणीयम्। अत एव, एतदनुसारं संमिलिताभिः त्रयाणां राज्ञां सेनाभिः पूर्वं जोधपुरस्योद्धारः कृतः (अर्थात्तस्मात्स्थानात् मुसलमानदलस्य निर्वासनं कृतम्)। ततः आम्बेरराज्यात् 'खालसा' प्रबन्धो दूरीकृतः [श्लो० ४६]।

वल्लभाचार्यस्याग्न्यासनसीन्या ब्रह्मसूत्राणां व्याख्या [जयसिंहद्वारा]। जयपुरे नवीननिवासिते दर्भवतीं(ढोंढ)नद्या आनयनम्। पर्वतोपरि जयगढनिर्माणम्। जयसागरतडागस्य खननम्। एकादश्यादिव्रतविधिना यथावत्सम्पादनं पालनम्। जयसिंहस्य कीर्तिः वीरता। शोभा।

[अष्टमः सर्गः]

जयसिंहराजभवने कुमारस्य ईश्वरसिंहस्य जन्म। तस्य जन्मनि नगरमण्डनम्। पुरे उत्सवः। राजकुमारस्य रूपशोभा, सामुद्रिकाणि सल्लक्षणानि। शरीरे बलशालिना लक्षणानि। विद्याप्राप्तिः, अश्वाद्यारोहणनैपुण्यम्, धनुर्धारणम्। ज्यौतिषिकैः प्रभावशाली अयं भविष्यतीति फलादेशः। जयसिंहेन तस्मै यौवराज्यसमर्पणम्।

[नवमः सर्गः]

दिल्लीपतिमुहम्मदशाहेन महाराष्ट्राणां विजयाय प्रेरितो जयसिंहः ईश्वरसिंहं युवराजमेव तद्विजयाय प्रेरयामास। सेनाप्रयाणस्य अतिदुर्धर्षता। दाक्षिणात्यैः सह युद्धम्। हस्तिना तोमगोलकैर्निपतनम्। द्वन्द्वयुद्धम्, तुमुलयुद्धम्। हस्तिस्थितस्य युवराजस्य 'शत्रूणां समीपे हस्तिनं नय' इति हस्तिपकाय आज्ञा। मन्त्रिणो राजमल्लस्य प्रबोधनम्—'यत् अस्मासु वर्तमानेषु स्वयं तव प्रयासो न योग्यः।' किन्तु वीरो युवराजस्तथापि अग्रे प्रवृद्धय मातङ्गान्, हयाँश्च निजशस्त्रैः पातयामास। युवराजं समीपगतं दृष्ट्वा सैनिकानां द्विगुणं बलं बभूव। युवराजः सैन्यसहितो विजयी बभूव। जयश्रीमण्डितो युवराजः पितुर्जयसिंहस्य पादद्वन्द्वं ववन्दे।

[दशमः सर्गः]

सकलराजभोगानुभवाद् वेदान्तज्ञानाच्च राज्ञो जीवन्मुक्तिः। गोविन्दभक्तिः, गुरुभ्रातृव्यश्रीव्रजनाथकृतशास्त्रचर्चया कालक्षेपः। १८०० वि० आश्विनशुक्लचतुर्दशीदिने जयसिंहस्य परलोकप्राप्तिः। तिस्रो राजमहिष्यः सत्यो बभूवुः। टिप्पण्या जयसिंहमहाराजस्य जीवनचरितम्। ईश्वरसिंहस्य राज्याभिषेकः। राज्ञः शोभा, पौरेषु उत्सवः। सामन्तानां नवराजाय उपायनप्रदानम्। मेवाडपतिर्गजरत्नादीन् प्रेषयामास। बूंदी कोटा गोपालसिंहयादव-कामवनराजजैत्रसिंह-जाटराजवदनसिंहाः गज रत्नादीन्युपायनानि प्रेषयामासुः। दिल्लीश्वरो मुहम्मदशाहः एकं गजं पञ्चाश्वान् रत्नभूषणम् उत्तराधिकारपत्रं च प्रेषयामास। राजसभायामेव श्रीकृष्णभट्टमहाभागाय वंशवर्णनसहितकाव्यनिर्माणस्याज्ञा। ततः कविवरो राजसभायामेव ईश्वरविलासाख्यं काव्यं समर्पयामास। ईश्वरसिंहो हिरण्यपुर (हिण्डौन) सन्निहितं 'कर्मपुरं' ग्रामं ददौ। वङ्गदेशवासि-विद्याधरमन्त्रिणो वर्णनम्। राजमल्लादयो मन्त्रिणः। ईश्वरसिंहस्य युद्धयात्रा। हस्तितुरग-पदातीनां प्रयाणवर्णनम्। दुन्दुभिध्वनिः।

[एकादशः सर्गः]

प्रयाणे सैन्यस्योत्साहः शोभा च। गजानां वर्णनम्, अश्वाः। नवीनस्य राज्ञो गुणग्राहिता। ज्यौतिषिकभिषग्रत्नपरीक्षकगायकादीनां समानः संग्रहश्च। सेनाप्रयाणे अरण्यानां स्वच्छीकरणम्। स्थाने स्थाने पटमण्डपाः। आपणानां प्रसारः, गीतवादित्रघोषः। सैन्यसन्नाहः, ईश्वरसिंहशोभा। एकलिङ्गदेश-(मेवाड)पतिः सम्मानं चकार, प्रणनाम। जयसिंहमृत्योरुत्तरकालिकीं मर्यादां (शोकादिप्रदर्शनम्) निर्वहन् तस्य महतीं प्रशंसां चकार। अयं सर्वदिग्विजयी भविष्यति (श्लो० ४५)। द्वितीयदिने ईश्वरसिंहो राणामहाभागस्य शिबिरे जगाम। गजानां तुरगाणां च शोभा। रथानां वर्णनम्। पदातीनां प्रयाणम्। अद्भुतं सेनासन्नाहं दृष्ट्वा एकलिंगेश्वरस्य भयम्। तदीयजनैरागत्य—"स्वाभाविकोऽयं सेनासन्नाहः, न युद्धादिविकृतिः" इत्याश्वासनम्। ततो जयपुरभूपतेः सम्माननाय समासन्नाहः।

[द्वादशः सर्गः]

मेवाडपतेः सविधे कोटाधिपस्यागमनम्—"बुन्दीराज्यं करवडाधिपतेः पुत्राय दलेलसिंहाय जयसिंहेन दत्तम। तत् पुनः स्वस्वामिने बून्दीपतये देयम्। दलेलसिंहः स्वस्थाने गच्छतु।" इति ईश्वरसिंहाय भवता वक्तव्यम्। ईश्वरसिंहो भवत्स्थाने इदानीमेव आगमिष्यति।" इति कोटाधिपतेर्मनीषा। ईश्वरसिंहस्य महता सन्नाहेन आगमनम्। राणाशिविरद्वारे आगमनम्। राणाद्वारस्य सैन्यतुरगगजादिभिः शोभा। सुवर्णदण्डधारिभिः पदातिभिर्वृत ईश्वरसिंहो द्वारमाययौ। एकलिङ्गक्षितिपः स्वमासदैः सहित अभ्यागमनाय द्वारपर्यन्तमाययौ। द्वावपि बाहुभ्यां परस्परं मिलितौ। ततः ईश्वरसिंहमग्रतः कृत्वा शिविरान्तः प्रविश्य राजासने द्वावपि अधिष्ठितौ। ततः एकलिङ्गाधिपतिः—'एकान्ते किमपि वक्तव्यमस्ति' इति जगाद। ईश्वरसिंहस्तस्य मनोगतं विदित्वा उवाच—"श्रीमद्वक्तव्यं मया ज्ञातम्। अहं श्रीमदुक्तं सर्वं स्वीकरोमि। किन्तु पित्रा यद् राज्यं यस्मै दत्तं तद्विहाय अन्यत्सर्वं स्वीकरोमि। साम्प्रतं दिल्लीपतेर्मुहम्मदशाहस्य राज्यं, तस्याज्ञया दलेलसिंहो बून्दीं प्रशास्ति। अथवा अस्माभिर्बलेन तद्राज्यमपहृतम्। अन्योऽपि बलेन तद्राज्यमपहृत्य अन्यस्मै ददातु। यदि दुर्जनसिंहः (कोटाधिपतिः) एतत्कर्तुं समर्थस्तर्हि मुखं तथा करोतु। हे एकलिंगेश्वर! किं भवानपि तां वार्तामाद्रियते या एकेन वृद्धेन प्रयुक्ता। यस्मिन् समये अस्माकं सैनिकैस्तद्राज्यं हृतं, तदा दुर्जनसिंहः क्व गतोऽभूत्?" इति ईश्वरसिंहस्य वाक्यमाकर्ण्य राणा लज्जितो बभूव। द्वयोर्मनसि या विप्रतिपत्तिर्जाता सा मनस्येव द्वाभ्यां गोपिता। द्वावपि मधुरालापं चक्रतुः। मेवाडपतिना हस्त्यादिसमूहः उपायनीकृतः, तं दृग्दानमात्रेण स्वीचकार। मेवाडपतिना दत्तं ताम्बूलद्वयमादाय गृहान् प्रत्याययौ।

कोटाधिपतेर्दुराग्रहतां विचिन्तयन्, "कदाचित् राणा विकृतचित्तो भवेत्' इति विचार्य रात्रौ ईश्वरसिंहो गुप्तरूपेण निजसेनां सज्जीचकार 'प्रातः शत्रुसैन्योपरि आक्रमणमहं करिष्यामि' इति। महान् सेनासन्नाहोऽस्य राणाकस्यापि विदितोऽभवत्। राणा अतिभीतोऽभवत्। राणा स्वयमीश्वरसिंहस्य समीपमाजगाम। तथा तस्यैव संमुखे दुर्जनसिंहम् अस्मत्स्थानाद्दूरे गन्तुं भर्त्सयित्वा, ईश्वरसिंहमापृच्छ्य स्वगृहमाजगाम।

[त्रयोदशः सर्गः]

मरुदेशस्याधिपः अभयसिंहः ईश्वरसिंहेन सह मैत्रीमियेष। स हि अभयसिंहः तस्य (ईश्वर०) भगिनीपतिः। द्वावपि प्रेम्णा सङ्गतौ। द्वयोर्हिन्दुराजयोः परस्परं सम्मेलने मोगलसम्राजो भयं बभूव। अस्मिन्नेव समये अभयस्यानुजो बखतसिंहः (यो हि अभयसिंहस्य विरोधी) ईश्वरसिंहम् अभयसिंहाद्विरुद्धं कुर्वन्नाजगाम। स हि ईश्वरसिंहं जगाद—"भवत्पित्रा (जयसिंहेन) स्वमतिविरुद्धं कार्यं कुर्वन्नभयसिंहः पराजितः। अत एव पितुर्विरोधिना सह कथं मिलति" इति विरोधमग्न्यं कारयामास। अभयसिंहपश्चात् 'आवा' राज्यस्थानाधिपतिः कुशलसिंहस्तस्य मन्त्री फकीरदास उत्तरं ददौ—"मरुदेशलक्ष्मीर्जयसिंहेन लुण्ठिता, सा कदाचित् आगच्छेदपि। किन्तु वीराणां यद् यशो गतं तत्तु न पुनरागच्छेत्।' इत्याद्युक्त्वा बखतसिंहस्य भेदनीतिं खण्डयामास। ईश्वरसिंहस्य अपारां सेनां विलोक्य बखतसिंहस्य पुनर्भयं बभूव। मरुदेशाधिपतिजयपुराधिपती मिथः समतां दृष्ट्वा विफलप्रयासो बखतः पलाय्य निजपुरं गतः। सर्वे ईश्वरसिंहस्य प्रभावं स्वीचक्रुः। यमककविना यशोवर्णनम्।

[चतुर्दशः सर्गः]

दिल्लीसम्राजः आज्ञया कोटाराज्यदमनार्थमीश्वरसिंहस्य प्रयाणम् । अस्मिन्नवसरे कोटानरेशेन सह मिलितस्य जगत्सिंहराणामहोदयस्य निजभागिनेयाय माधवसिंहाय जयपुरराज्यं दापयितुमीश्वरसिंहविरोधे युद्धयात्रा । इतः ईश्वरसिंहस्यापि दृढतया युद्धाय अभियानम् । सम्राट्प्रेषितान् मन्त्रिपुत्रानपि शीघ्रता-वशान्मध्येमार्गं त्यक्त्वा त्वरितं प्रयाणम् । इतः ईश्वरसिंहस्य मन्त्री राजमल्लो दाक्षिणात्यान् (महाराष्ट्रान्) सैनिकान् सह नीत्वा मार्गे आगच्छतो राणाकसैन्यस्य लुण्ठनम् कुर्वन् अग्रे ववृधे । राजमल्लस्य सेना ईश्वरसिंहमागच्छन्तं श्रुत्वा अतीव प्रबला सवृत्ता । ईश्वरसिंहसैनिकाः राणासैनिकान्—"यूयं नटसदृशाः केवलं दर्शने वीराः, ईश्वरसिंहेन सह भवद्भिर्विरोधः किमिति बद्धः । इदानीं युष्माकमुदयपुरं न स्थास्यति ।" इत्यादि उपहस्यमाना राणासैनिकाः, अग्रतो महाराष्ट्रैः, पश्चाच्च ईश्वरसिंहस्य कच्छवाह-सैनिकैः खेदिता अत्यन्तं दैन्यं जग्मुः । ईश्वरसिंहस्य सैन्येन यदा महाराष्ट्रसैनिकान् स्वस्य सहायकान् विदित्वा, राणाकसैन्योपरि अभियानं कृतं तदा पूर्वतो लुण्ठितं राणासैन्यमत्यन्तं भयं प्राप । सैनिका रुद्धाऽन्नपाना भयादग्रे पदमपि न दधुः । ईश्वरसिंहसेनाया दुन्दुभिभिस्तर्ज्यमाना इव भीताः सैनिका रणा-कृत्य निनिन्दुः । ईश्वरसिंह-कलानाथे गृहीतोदये राणा-सैन्यौघकमलाकरः समकुचत् । ईश्वरसिंहरूपस्य इन्द्रस्य आगमने [येन सह पूर्वपवना', शक्तिरूपा विद्युतश्च सन्ति] राणाहृदये उदितो दर्प-दहनः शान्तोऽभवत् ॥३७॥

उपसंहारे टीकाकृतटिप्पण्याम् ईश्वरसिंहमहाराजस्य "इतिहासपरिशिष्टम्" ।



काव्यस्याऽस्य ऐतिहासिकं महत्त्वम्

इतिहासविषये काव्यस्यास्य भूयस्तरा महत्त्वम्, यद्धि वर्तमानकालिकैरपि प्रसिद्धै रैतिहासिकैरपि सर्वथा स्वीकृतम्। व्यतीयु' कतिपयवर्षाणि। अस्मिन् समये इतिहासविषये सर्वतः सुप्रसिद्धेन डा० दीनेशचन्द्रसरकारमहोदयेन साऽऽडम्बरं साधितमासीद् यत्—"सवाईजयसिंहमहाराजेन न कोऽप्यश्वमेध-याग. पुरा कृतोऽभूत्। केवल तदनुयायिभि प्रशंसामात्रार्थमेतद् वर्णनम् प्रस्तुतम्।"

एतस्य प्रतिवाद. "पुण्यपत्तनस्थ" "भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट" संस्थाया. प्रधानप्रबन्धकेन ('क्यूरेटर') श्री पी० के० गोडे (एम० ए०) महाभागेन कृतोऽभूत्। एतद्विषयका निबन्धा' 'मद्रास' नगरात्प्रकाशमाने "जरनल आफ् इण्डियन हिस्ट्री" पत्रे प्राकाश्यन्त महाभागेनाऽनेन। प्रतिवादस्यास्य प्रधानोपष्टम्भकम् 'ईश्वरविलास'काव्यमेवाऽऽसीत्। येन हि पी० के० गोडे महाभागः सुस्पष्ट प्रमाणयामास यन्महाराजो जयसिंह. अश्वमेधयाग महता समारोहेण संपादयामास। एतद्विषये परस्ताल्लब्धान्यपि प्रमाणानि पूनात. प्रकाशमाने मुखपत्रे नीय विस्तरेण प्रकटयामास। मन्ये, गोडेमहाभागस्य सोय निबन्ध. पाठकाना परिज्ञानाय ऐतिहासिकविनोदाय च भवेदिति अंग्रेजी-भाषात. संस्कृते समनूद्य अविकलमग्रे प्रकाश्यते—

"पूना ओरियंटलिस्ट"
[Vol II, PP 166-180]
(१९३७)

आम्बेरनरेशेन श्रीसवाई जयसिंहेन कृतः अश्वमेधः

[१६९९—१७४८]

'मद्रास'त' प्रकाशमाने 'जरनल ऑफ् इण्डियन हिस्ट्री'पत्रे निबन्धमेकं संप्रकाश्य मया साधितमासीद् यत् 'डा० दीनेशचन्द्रसरकारस्य तदिद कथनं सर्वथा निर्मूलमस्ति यत्-सवाई जयसिंहेन न कोऽप्यश्वमेध. कृतोऽभूदिति।' एतल्लेखप्रकाशनानन्तर मयाऽन्यान्यपि प्रमाणानि प्राप्तानि यै. सुस्पष्टं सिध्यति यत् सवाई जयसिंहेन निश्चितमश्वमेधयाग कृतोऽभूत्। तेष्वेक प्रमाणमस्ति 'पद्यतरङ्गिणी' नामकं काव्यम्, यद्धि पुण्यपत्तनस्थहस्तलिखितपुस्तकालयत. प्राप्तम्। एतस्मात् स्फुट सिध्यति यद् जयसिंहेन अश्वमेधयागः कृत, निश्चितं कृत।

सेय पद्यतरङ्गिणी[1] व्रजनाथेन निर्मिता। एतस्या प्रणयनं सवाईजयसिंहदेवतनयस्य श्रीमाधव-सिंहदेवस्य प्रसादनार्थमभूत्। निर्माणकालोऽस्या. १८०९ विक्रमवत्सरस्य पौषैकादशी रविवारः। अस्या. ३७ पद्यानि, येषु महाराजजयसिंहस्य तत्तनयस्य महाराजमाधवसिंहस्य च प्रशस्तिरुपवर्णिता। मुख्यत. प्रारम्भिकेषु १० श्लोकेषु श्रीमतो जयसिंहस्य तत्कृतस्याश्वमेधस्य च वर्णनमस्ति। यथा—

'के नाऽभवन्नृपतयो बत विक्रमाद्या केनाऽप्यकारि न नृपेण तुरङ्गमेध.।
अस्मिन्युगे निखिलभूपति-सार्वभौमस्तद्यज्ञकृद् विजयते जयसिंह एक ॥३॥

पारीक्षितोऽपि विदधे हयमेधमुच्चै तत्राऽऽप शापमयमुत्तमपूरुषोऽपि।
राजाधिराजजयसिंहनृपश्चकार निर्विघ्नमेनमधुना भगवत्प्रसादात् ॥४॥

---

१ सेय 'तरङ्गिणी' पाठकाना प्रमोदाय अग्रतोऽविकल प्रकाशिता।



महाराजा सवाई जयसिंहजी (जन्म–१७४५–मृत्यु १८०० वि. स.)
(महाराजा साहिब जयपुर के सौजन्य से पोथीखाना से प्राप्त फोटो)

योऽदाद्वनीपकक्कुलेषु सुवर्णपूगान् अम्भः-कणानिव नभःस्थितवारिवाहः ।
वेदोदितेन विधिना हयमेधमुच्चैश्चक्रे तथा क्रतुशतानि महाधनानि ॥५॥
आसन् पूर्वं मानसिंहादयो ये भास्वद्वंश्याः क्षोणिपालाः कियन्तः ।
चक्रुर्भूमिं भूमिपालान् वशे ते श्रौते मार्गे नैव निष्ठामवापुः ॥६॥
राजाधिराजो जयसिंह एकस्तद्वंशजः प्राक्तनपुण्यपुञ्जात् ।
सभावितो दक्षिणदिग्द्विजेन्द्रैः श्रद्धालुरासीच्छ्रुतिधर्म एव ॥७॥
पपाठ वेदं विदधेऽग्निहोत्रं चकार यज्ञान् विविधान् सदैव ।
धनं ददौ ब्राह्मणपुङ्गवेभ्यो ग्रामान् गजाश्चापि तुरङ्गमांश्च ॥८॥
बभौ स तस्य क्रतुराट् तदानीं महेन्द्रसस्पर्द्धिसमृद्धिभाजः ।
अत्राऽऽगतश्चेन्नकुलः स दैवात् स्वर्णार्द्धपार्श्वोऽप्यभविष्यदेव ॥९॥

सन् १७५३ तमे ग्रन्थकर्त्रा तुरङ्गमेधशब्दः (श्लो० ३), हयमेधशब्दः (श्लो० ४–५)श्च योय ग्रन्थे व्यवहृतः, सोय यज्ञविषयकं सपूर्णमेव सदेहमितिहासाऽऽलोचकानामपाकरोति । तरङ्गिणीकारेण स्पष्टा येयमुक्तिः प्रकाशिता यत् "महाराजजयसिंहेन वेदोक्तया पद्धत्या अश्वमेधः कृतः", तया विवेकिना सुस्पष्टीभवेद् यत्तस्यैव राज्यस्याऽऽश्रितो विद्वानेतत्प्रमाणयतीति । पद्यतरङ्गिण्या एतस्या निर्माणाद् द्विवर्षानन्तरं 'श्याम लट्टू' कविना 'माधवसिंहार्याशतकम्' श्रीमाधवसिंहदेवस्य प्रशस्तौ निर्मितं यस्मिन् हि माधवसिंहस्य समये भाविना बहूना विदुषां परिचयः प्रत्तोऽस्ति । तेषु- गङ्गाराम, रामेश्वर, गोपीनाथ, विश्वनाथ, व्रजनाथ, सुधाकरशर्म, यमुनाकरशर्म, हरिदत्तशर्म, केवलराम, सदाशिवशर्म, रविदत्तशर्म, शंकरदत्तशर्माणः सन्ति, ये हि कदाचिन्महाराष्ट्रब्राह्मणा आसन्, येषां राज्ये विशिष्टं स्थानमासीत् । पूर्वोक्तस्य कवेर्व्रजनाथस्य विषये प्रोक्तमत्र—

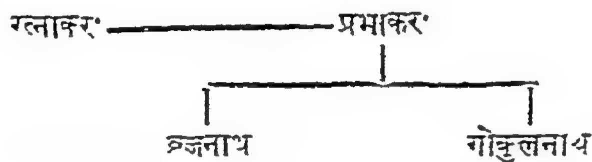
'जयति श्रीव्रजनाथः कविरिह सततं व्रजाधीशे ।
सुकलितदृढतरभक्तिर्जयपुरनगरे पुराधीशे ॥'

उपरिप्रोक्ते पद्ये यदिदमुदीरितं यद् व्रजनाथो माधवसिंहस्य नितरां भक्त आसीत्तदिदं पद्यतरङ्गिणी स्वयं प्रमाणयति । यतो हि माधवसिंहस्य प्रसादनार्थमेव तस्या निर्माणमभूत् । व्रजनाथकवेः परिवारस्य विषये ईश्वरविलासमहाकाव्यरचयिता प०श्रीकृष्णकविरात्मनः काव्ये विवरणमधिकं प्रददाति । एतस्य दशमे प्रपाठके प्राप्यते उल्लेखः—

"धुरधरे राज्यधुरां समस्तां पुत्रे निधायेश्वरसिंहनाम्नि ।
क्रमान्निवृत्ताखिलभोगतृष्णः कृष्णाऽद्वयप्रेमभरं बभार ॥५
विधाय सम्यक् सुकृतात्मकानि कार्याणि विज्ञातपरात्मतत्त्वः ।
गोविन्ददेवस्य पदारविन्दे प्रमाणमेकान्तमनन्यमूहे ॥६
तस्याऽखिले पण्डितराजचक्रे मान्यो गुरुभ्रातृसुतोऽतिविद्वान् ।
श्रीपौण्डरीकाध्वरयाजयोऽभून्नित्यं समीपे व्रजनाथशर्मा ॥७
ऋग्वेदिविप्रप्रवरावतंसो रत्नाकरो नाम गुरुर्नृपस्य ।
प्रभाकरो नाम बभूव तस्य भ्राता सदा यो मथुरैकवासी ॥८
तस्यात्मजः श्रीव्रजनाथनामा तथाऽपरो गोकुलनाथ उक्तः ।
तौ भ्रातरौ सन्निहितौ नृपस्य निरन्तरं शास्त्रकथां दधाते ॥९
प्राज्ञोत्तमश्रीव्रजनाथवक्त्रविनिर्गतां शास्त्रकथामजस्रम् ।
शृण्वन् स विद्वत्समुदायमध्ये धर्मेण कालं सकलं निनाय ॥१०

[एभि. पद्यै स्पष्टं प्रतीयते यत्सवाईजयसिंहदेवेन स्वीयो राज्यभारः स्वीयाय पुत्राय ईश्वरसिंहाय समर्पितोऽभूत्। एतदनन्तरञ्च सर्वोऽपि समयः स्वेष्टदेवस्य श्रीगोविन्ददेवस्य भक्तौ एव तेन व्यतीतः कृतः। एतस्य राजसभायां बहुषु पण्डितेषु सत्स्वपि एतस्य निकटे सर्वदा व्रजनाथशर्मैवैकः प्रतिवसतिस्म। अयं निजगुरोर्भ्रातुः पुत्रो बभूव। अयं हि निजविद्याबलेन सम्मानं लेभे। अयं पौण्डरीकयागमपि चकार। सवाईजयसिंहस्य गुरोर्नाम रत्नाकर इति। एष ऋग्वेदिब्राह्मणानां प्रवरः। एतस्यैको भ्राता प्रभाकरनामाऽभूद् यो हि सर्वदा मथुरापुर्यामेव न्यवसत्। एतस्यैकतमस्य पुत्रस्य नाम व्रजनाथ, अपरस्य च गोकुलनाथः। द्वावपि इमौ भ्रातरौ राज्ञः समीपे न्यवसतां, तस्मै शास्त्राणां मर्माणि च प्राबोधयताम्। तयोरपि व्रजनाथो निजविद्यावैभवेन रात्रिंदिवं राज्ञे शास्त्रकथामबोधयत्। राजापि एतस्य साहचर्येण प्रभावितो निरन्तरं धर्माचरणे प्रवृत्तोऽभवत्।]

ईश्वरसिंहस्य कारुणिकनिधनोत्तरमयं व्रजनाथो निजस्य स्वामिभक्तिं प्रेमाणं च, सवाईजयसिंहस्य द्वितीये पुत्रे माधवसिंहे एव स्थापयामासेति प्रतीयते। अतएव नवीनं स्वामिनं प्रसादयितुं पद्यतरङ्गिणीं प्रवाहयामास। ईश्वरविलासकाव्यानुसारमेतस्य कवेर्वंशावलिरेवं प्रतीयते।

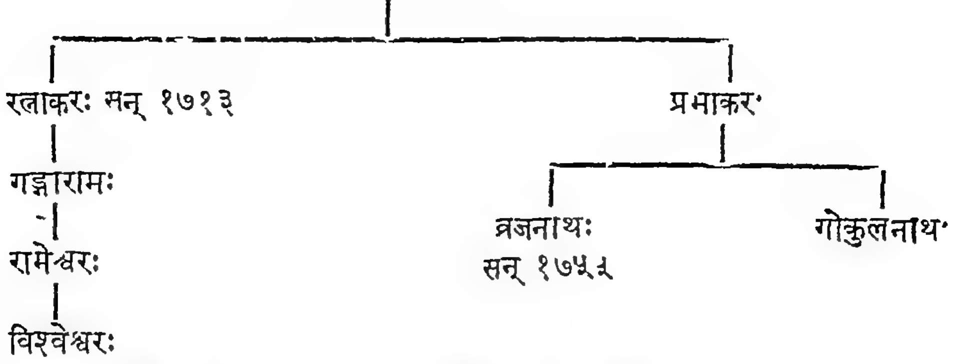


यस्य हि श्रीकृष्णभट्टकविमहोदयेन निजकाव्ये निर्देशः कृतः सोऽयं रत्नाकरः सम्भवतः स एवास्ति येन सवाईजयसिंहस्य प्रार्थनया जयसिंहकल्पद्रुमस्य निर्माणमकारि। रत्नाकरोऽयं शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नः, देवभट्टभट्टस्य तनयः यो हि वाराणस्यामवसत्। ईश्वरविलासकाव्यानुसारं रत्नाकरस्यैक एव भ्रातासीद् यस्य नाम प्रभाकर इति। किन्तु स्वयं रत्नाकरो निजस्य ग्रन्थे जयसिंहकल्पद्रुमे द्वयोर्भ्रात्रोर्निर्देशं करोति।

रत्नाकरो जयसिंहकल्पद्रुमं १७७० तमस्य विक्रमवर्षस्य भाद्रपदमासे समापयामास। सौभाग्यस्य सोऽयं विषयो यद् रत्नाकरवंशजानामनुसन्धानं ममाऽपि समभवत्। डा० हरदत्तशर्मा विश्वेश्वरभट्टस्य निर्णयकौस्तुभ इति नाम्ना स्वीयेन निबन्धेन ममाऽवधानमाचकर्ष। सोऽयं विश्वेश्वरभट्टो रत्नाकरस्य प्रपौत्रः, येन हि निर्णयकौस्तुभनामको धर्मग्रन्थः १७८७-१८०३ तमख्रिष्टीयवत्सरमध्ये निर्मितः। सोऽयं 'महाशब्दो'पनामकः। सोऽयं विश्वेश्वरो निजस्य द्वितीये ग्रन्थे 'प्रतापार्के' स्पष्टं निर्दिशति यदस्योपनाम 'महाशब्द' अयं च रत्नाकरस्य प्रपौत्रः। येन रत्नाकरेण जयसिंहकल्पद्रुमो निर्मितः। सोऽयं विश्वेश्वरो गङ्गारामस्य पौत्रो रामेश्वरस्य च पुत्रः। जयसिंहकल्पद्रुमे रत्नाकरेण निजगोत्रं शाण्डिल्यमिति सूचितम्। विश्वेश्वरेणाऽपि प्रतापार्कवर्णने स्वीयं गोत्रं शाण्डिल्येति निर्दिष्टम्। ततश्च विश्वेश्वरस्य प्रतापार्कतो वंशावलिरेवं प्रतीयते —

देवभट्टः
|
रत्नाकरः
|
गङ्गारामः
|
रामेश्वरः
|
विश्वेश्वरः

सैषा वंशावलिरीश्वरविलासकाव्यतो यदि समिश्रूयते तर्हि, सा एव भवति—



सन् १७५३ तमे व्रजनाथकविना सूचितात् अश्वमेधयज्ञविषयकप्रमाणादतिरिक्तमेकमन्यदपि प्रमाणमत्र सम्प्राप्यते, तद्धि जयपुराधिपतिमहाराजाश्रितस्य पण्डितस्यैकस्य विषये। श्यामलट्ट 'माधव-सिंहार्या' या लिखति—

जयति सदाशिवशर्मा मुनिजनधर्मा सुधर्माग्र्यः।
माधवसिंहसुधर्मा सदसि सुधर्मः स्वधर्माग्र्यः ॥

सम्भवतः सोय सदाशिवशर्मा स एवास्ति येन धर्मशास्त्रस्याऽऽचारस्मृतिचन्द्रिका निरमायि। एतस्याश्चतुर्थं पद्यमतिमहत्त्वपूर्णं, यस्मिन्हि महाराजजयसिंहकृतस्याश्वमेधस्य निर्देशः कृतोऽस्ति। पद्ये-नानेन तदेतदपि स्पष्टीभवति यन्महाराजेन काशीतोऽनेके पण्डिताः सादरमाहूताः, तेषां च द्रव्यादिना प्रभूतः सत्कारः कृत इति। तदेतत्—

'काशीजनपदनिलयास्तुरगमेध सर्वमेध च निर्माय।
अङ्गदिनः कुण्डलिनः कङ्कणिनो येन विरचिता विबुधाः ॥'

अत्र तान्यपि पद्यानि समुद्ध्रियन्ते यानि सदाशिवेन महाराजस्य प्रशसाया लिखितानि—

'मीमासानयमासलाऽतिविमला प्रज्ञा तथा भूयसी
दृष्टिः श्रौतनिबन्धचारचतुरा येषां सदाचारिणाम्।
तेषां दृष्टिपथं प्रयातु सुहृदा सदर्भ एष स्थितः
किं चान्यैर्निजदोषदुष्टमतिभिः प्राज्ञेतरैः प्रार्थितैः ॥'

प्राज्ञश्रीजयसिंहनामनृपतेस्तोषाय या निर्मिता
साऽऽचारस्मृतिचन्द्रिकाऽतिविमला विद्वच्चकोरेष्टदा।
तां पश्यन्तु परीक्षकाः सहृदया निष्पक्षपातं बुधा-
स्तेनेयं गुणवत्तरा हि भविता गौरीपतेस्तुष्टये ॥'

(इतिश्रीमद्दशपुत्रकुलावतंसेन विरचिता सदाशिवपण्डितेनाऽपस्तम्बाचारस्मृतिचन्द्रिका समाप्ता)

अनेनोद्धरणेन सदाशिव स्वीकुरुते यत्सेयं कृतिस्तस्य स्वामिनो महाराजजयसिंहस्य प्रीतयेऽस्ति। अनया अनुमातु शक्यते यत्सेयं धर्मशास्त्रविषयिका कृतिः महाराजजयसिंहस्यैव समये समपद्यत। अर्थात् जयसिंहस्य मृत्योः १७४४ सनतः पूर्वंपूर्वम्। कृतिरियम् अश्वमेधस्य सङ्केतं करोति। ततश्च अश्वमेधयज्ञस्यानन्तरं सेयं निर्मितेति निश्चेतव्यं भवेत्। सदाशिवस्याऽस्य कथनमतिप्रामाणिक

समन्यते। यतो ह्यय महाराजस्याश्रित', तत्समयस्य म्दय चक्षुर्या दृष्टा। जयसिंहरत्नद्रुमे यस्य वर्णन नोपलभ्यते, यतो हि तद्ग्रन्थस्य पूर्तिर्यज्ञात्पूर्वमेव समजायत।

अश्वमेधसमसामयिकाना प्रमाणाना बहुतरवर्षानन्तरमपि जयसिंहकृतस्याश्वमेधस्य प्रमाणानि प्राप्यन्तेऽस्माभि'। जयपुरमहाराजस्य श्रीरामसिंहस्याज्ञया हरिश्चन्द्रेण धर्मसग्रहनामको ग्रन्थ' प्रणीत'। अस्मिन् प्रारम्भे जयपुरनरेशाना वशावलिर्दत्ता। तस्यामेव महाराजजयसिंहस्य तत्कृतस्याश्वमेधस्य च निर्देश प्राप्यते। अनेन सवाईजयसिंह(द्वितीय)तो वशावलि. प्रारब्धा। यथा—सवाई जयसिंह', माधवसिंह:, प्रतापसिंह:, जगत्सिंह, जयसिंह (तृतीय') रामसिंह (द्वितीय')। अस्मिन वशवृक्षे ईश्वरीसिंहस्य पृथ्वीसिंहस्य च नामनिर्देशो नास्ति। कारणमेतस्य—'यत्तस्मिन् समये राजकीयसमृद्धिस्तावती नाऽभवदिति।' एतदेव मद्बुद्ध्या सभवति। मया हि ऊनविंशशताब्द्या भाविनो हरिश्चन्द्रस्य कवे. साक्ष्यमेतत्कारणात्सगृहीत यन्मया सगृहीता तालिका सर्वाङ्गपूर्णा भवेदिति। निबन्धे सगृहीतानां प्रमाणानां साररूपेण अन्ते सग्रह. सोयमस्ति—

१ सदाशिवदशपुत्रस्य साक्ष्यम्–आचारस्मृतिचन्द्रिका (सेय सवाईजयसिंहस्य प्रसादनार्थेव निर्मिता। सोय कविर्जयसिंहस्य समये एव वर्तमान आसीत्। अय स्पष्टै. शब्दैरश्वमेधस्य समय स्वीकरोति। सर्वत' प्रबलमिद प्रमाणम। सन् १७४४)।

२ श्रीकृष्णभट्टकविकृतम् ईश्वरविलासमहाकाव्यम्।।अत्रापि अश्वमेधस्य वर्णन विस्तरतः प्राप्यते। एतस्य रचना जयसिंहस्य मृत्यो' किञ्चित्कालानन्तरमेव जाता।

३ व्रजनाथकवे. साक्ष्यम्, पद्यतरङ्गिणी। १७५३। महाराजेन सह ग्रन्थकर्तुरतिघनिष्ठ' सबन्धः, अतएव एतल्लेख अत्यन्त प्रामाणिक।

४. प० विश्वेश्वरस्य साक्ष्य प्रतापार्के (१७४४–१८०३)।

५ प० हरिश्चन्द्रस्य साक्ष्यम् धर्मसग्रहे (ऊनविंश्या शताब्द्या मध्यभाग.)।

वाराणसेयपण्डितसमाजे परम्परातस्तदिद सुप्रसिद्ध' यत् शब्देन्दुशेखर-परिभाषेन्दुशेखर-मञ्जूषादिनिर्मातुर्महावैयाकरणस्य श्रीनागेशभट्टस्य समये आम्बेरधराधीश्वरेण सवाईजयसिंहमहाराजेन अश्वमेधयाग' कृतोऽभूत्। तस्मिन् हि दूरदूरदेशेभ्य प्रसिद्धप्रसिद्धपण्डिता समाहूयन्त ससमादरम्। अस्मिन् समये भारते सर्वत प्रख्याततमस्य नागेशभट्टस्याऽपि सविधे यज्ञेऽस्मिन् समागमनार्थमचाप्यत राज्ञो निमन्त्रणपत्रम्। किन्तु "मया क्षेत्रसन्यास' साम्प्रतमेवाऽङ्गीकृत। काशी परित्यज्य नाऽह कुत्रचिद् बहिर्गन्तु शक्नोमी"ति नागेशस्य प्रत्युत्तरमलभ्यत तेन।

साख्यप्रवचनभाष्यस्य भूमिकायामग्रेजलेखकः 'फ्रिट्ज् एडवर्ड हाल्' लिखति–यत् सेय किवदन्ती मया बहुभ्यः पण्डितेभ्यः श्रुता यत् अश्वमेधकर्ता महाराजो जयसिंह समभून्नागेशभट्टस्यैव समसामयिक'। रत्नाकरभट्टस्य 'जयसिंहकल्पद्रुमा'त्तदिद स्पष्टीभवति यत् जयसिंह' १७७० तमविक्रमवत्सरपर्यन्तं विद्यमान आसीत्। सेय किंवदन्ती जयपुरे प्रचलिताया. प्रसिद्धेरप्यनुगामिनी। तदनुसारमिदं प्रमाणित भवति यत् महाराजेन जयसिंहेन तदेतस्मिन्नश्वमेधे समुपस्थानार्थं नागोजीभट्टाय प्रहितमासीन्निमन्त्रणपत्रम्। किन्तु तस्मिन् समये नागोजीभट्टेन स्वीकृतोऽभूत् क्षेत्रसन्यास। अतएव काशी त्यक्तुमसमर्थ. स तस्मिन् यज्ञे न सममिलत्।

—:o:—

मोगलसाम्राज्यसूत्रधारो महाराजो मानसिंहः

[१]

सम्राडकबरेण परिचयः

वैरिनिरोधादिना साहाय्यमादधान वैरमखान सरक्षकपदेन सतोष्य त्रयोदशवर्षीयोऽकबरः स्वयमारुरोह दिल्लीसिंहासनम्। शिक्षादीक्षाशून्योऽप्यासीत्स हि स्वाभाविकप्रतिभाशाली। अतएव स हि सर्वमपि राज्यप्रबन्ध सरक्षकादात्महस्ते निनाय युक्त्या। किन्तु तस्याधिकारे किमासीद्विस्तृत साम्राज्य तदा? नैव, राज्यशक्तिरासीत्केवल दिल्ली आगरासमीपवर्तिनः कतिपये ग्रामा एव। प्रबलोत्साहसम्पन्नस्य तद्हृदयस्य समुखे समभूत्कठिना समस्या यत्कैरुपायैः स हि सपद्येत भारतस्य सम्राट्। स हि राजनैतिक-दृष्ट्या व्यचारयच्चेतसि,—व्यत्यगु कतिपयशताब्द्यो भारते यवनाना, किन्तु नाद्यापि तेषा सुदृढा सस्थितिः। अवश्यमत्र किञ्चित्कारण मूले, तदपि न नाम साधारणम्।

बहुतर समन्व्य स हि निश्चिकाय यन्मुसलमानशासका नाद्यावधि प्राभूवन् शासिताना भारतीयाना हृदय परिचेतुम्। ते हि तान् पशुबलेन केवल दमयामासुः, न तैः कदाचिदपि मानवचरित्रस्य सुन्दरं चित्रमास्थापित भारतभूवासिना समक्षे। सकुचितेन दृष्टिकोणेन ते सर्वदा मुसलमानानेव निजप्रजाः प्रजज्ञुः, तेषामेव च सरक्षायै समुन्नत्यै गौरवाय च ते परम प्रायतन्त। निरैक्षन्त सर्वदा घृणादृष्ट्या सत्यबन्धूनिमान् हिन्दून्। अतएव भारतीयास्तदिमे नेमान् यवनानात्मनो हृदयेन निजशासकान् स्वीचक्रुः। प्रत्युत यदा यदावसरः प्राप्तो हिन्दुभिर्विशेषतश्च राजपुत्रैस्तदा तदा स्थिरीकृतापि तेषा राजशक्तिः सर्वदार्थं निर्मूलिता तैर्नूनम्।

आन्तरिक कारणमन्यदपि। भारतीया सस्कृतिर्मोसलिमसस्कृतितो भूयस्तरामुन्नता। भारतीयान् शासितुमपेक्ष्यते तावच्छासकाना मानसो विकासः, आध्यात्मिकबल च नूनम्। किन्तु यवनैरात्मनो निर्दयताया बलेन, धर्मान्धताया आग्रहेणैव भारतीयास्तदिमेऽद्यावध्यधीनीकृता.। पर यत्रैव तेषा पशुबल न्यूनीभूत तत्रैव हिन्दूना समुखतस्तेषामयोग्यता प्रत्यक्षमीक्षिताऽभूत्। परिणामोऽस्य यो भवितु मुचितः सोऽनुभूत एव सर्वैरपि शासकै.। किञ्च यवनाः केवल विजयप्रणयिनो न शासनप्रणयिन। तेषा शासनव्यवस्था एकपक्षीया, अतएव न केवलमपूर्णा नाम, अपि तु दोषपूर्णा चापि। भारतवर्षमिद चन्द्रगुप्त-अशोकादीनामादर्शराज्यव्यवस्था पुरा परिचिनाय, कथमनया दोषपूर्णया शासनशैल्या भवेत्तस्य परितोषो नाम?

निजशासनव्यवस्था स हि सर्वत समीक्ष्य निर्भर निर्धारयामास—महाराजो भारमल्लस्तस्य पितु. (हुँमायोः) सुहृत्। यदि तस्य सुदृढा मैत्री समवाप्येत तर्हि भारतीयराजपुत्राणा प्रबलैका शक्तिस्तस्य सहायिका सपद्येत। राजपुत्रा काम परस्परं युध्यमाना., किन्तु यदि ते केनचित् प्रणेन प्रतिबद्धा' स्युस्तर्हि विदेशिनामपि निजमित्राणा साहाय्ये न कदाचिदपि पृष्ठ दर्शयेयु। यदि तु मित्राणा तेषा पश्चात्कश्चिदुपकारोऽपि कृतः स्यात्तर्हि तु राजन्या भवन्ति वशगमन्या एव, काममत्र निजसम्बन्धिना रक्तपात एव तेषा कुतो न समुखग स्यात्। अवश्यमियमेका अकबरस्य कूटनीति.।

स हि भारमल्लतनयमाह्वाययामास भगवन्तदासम्। महता समादरेण तन्मैत्री सम्प्रार्थ्यं सर्वदा निश्छलभावेन तत्समुन्नति मैत्री चानुरेद्धु चक्रे प्रतिज्ञाम्। राजनीतिकुशलो महाराजः सर्वामपि परिस्थितिं परिचिकाय पूर्वत एव। जानाति स्म स मर्मतस्तथ्यसंवाद भारतमुपगतानां यवनानामेषाम्। अत एवाऽकबरस्य हार्दं परिज्ञाय स हि समवोचत्—

'श्रीमतः पिता ममासीत्पितुर्मित्रम्। अतएव भवन्मैत्रीमवलम्बितु न मे कश्चित्सङ्कोच। श्रीमानहं च शासनसूत्रमादाय सुस्फुटमेकश्रेणिभुक्तौ। देशस्य संरक्षणम्, खण्डखण्डभावाद् भविष्यन्ती तस्य दुर्बलता दूरीकृत्य विशालसाम्राज्ये परिणमन च नून देशस्य सेवैव सेयम्। भारतीया. क्षत्रिया. परस्पर विगृह्य निजनाशेन सह देशस्याप्यहित साधयन्तीति सुस्पष्टमालोच्यताम्। यदि सर्वे ऐक्यमवलम्बेरंस्तर्हि भारतस्य श्रियं शक्तिं च सुदृढामापादयेयुरिति समयप्राप्त कर्तव्य तेषाम्। अतएव देशस्यैकसूत्रतासंपादने मम च भवतश्चैकमुद्देश्यमिति स्वतः प्राप्ता मैत्री सेयम्। किन्तु राजपुत्राणा या मानमर्यादा, यच्च तेषां धार्मिकं दृढव्रत विदेशागामिनः शासकास्तयोरपरिचयात्प्रायस्तत्रैव हस्तं क्षिप्त्वा भवन्ति भाजन विरागस्य भूपालानामिति भूयस्तरा भूतार्थः।'

अकबर. (प्रसन्नो भूत्वा)—अहह यदि भवादृशविचारैरन्येऽपि भूपाश्चेदभविष्यन्नुदारास्तर्हि कियद् भद्रमभविष्यत्? परस्परवैमनस्य निरस्य सर्वाभि. शासकशक्तिभिरेक विशाल साम्राज्य संपादयिष्यन्नहं हैन्दव-यवनानामेकचित्तता वाञ्छामि तत्रैव च भवत. साहाय्यमभ्यर्थयामि, मन्ये नेद भवेद् भवद्विचार-विपरीत नूनम्? अवशिष्यते हिन्दूना मानमर्यादासंरक्षणम्। तत्राह सुदृढ प्रण करवाणि यन्मत्साम्राज्ये हिन्दवो मुसलमानाश्च समीक्ष्येरन् समानया दृष्ट्या। समर्प्येत समानरूपेण राज्यप्रबन्धो द्वयोरेव हस्तयोः। साम्प्रतमह वाञ्छामि यद् द्वावप्यावां भवेव मित्रभावेन सम्बद्धौ।

महाराजो भगवन्तदासो मुसलिममनोवृत्तितो भूयस्तरामासीत्परिचितः। सोयमिद सम्यगजानाद् यदेवंविधा पुरुषा. स्वार्थवृत्तेः परिपोषणाय समाचरन्तीत्थंभूता लीलाम्। इदमपि च सोऽय सम्यगबुध्यत यत्साम्प्रतिकाः क्षत्रिया परिजानन्ति केवल युद्धमात्रमेव। न तेषां शासनपाटव परिचितम्। अतएव भारतमिदमेकस्मिन्दिने परेषां वश्यमवश्य भवेत्। किन्तु तस्मिन्समये आम्बेरराज्यपरिस्थितिरवश्य सङ्कटगा स्यात्। अत एवाऽकबरस्य विश्वाससमुत्पादन समयप्राप्तमेव साम्प्रतम्। अस्मिन् साहाय्यप्रदाने भूयस्तरां सुसम्भवो निजभ्रातृणामपि रक्तप्रवाह, इत्यपि पूर्वत परिबोद्धव्य स्यात्, किन्तु भारतेऽस्मिन् सुव्यवस्थित-शासनाय, देशवासिना निष्कण्टकनिवासाय च तदेतदनिवार्यं नूनम्। सत्यामावश्यकतायां स्वयमाम्बेर-राज्यमपि मुगलाना विरोधे शस्त्रमुच्छ्राययेत् परत, परन्त्वधुना साम्राज्यस्थिरीकरणाय अकबरस्य मैत्री सेयमालम्बनीयैव नीत्येति सर्वं विचिन्त्य प्रावोचत्प्रकाशम्—"श्रीमन्! राजन्यैः कृता मैत्री न कदाचिद् विश्रम्भविघातिनी सिध्येत्।"

अकबर (हार्दिक प्रसादमाविष्कृत्य)—अद्यप्रभृति न प्राप्येतावयोरन्तर किञ्चित्। सर्वे वय निकटसम्बन्धिन इव साम्राज्यनिर्माणकार्ये भवेम नून दत्तचित्ता.। या व्यक्तिरस्माकमभिन्नतामार्गे बाधामुप-स्थापयेत्सा यदि कदाचित्संसारे स्थानमासादयेत्तथापि देहान्तकाले शान्तिस्तत्कृते नितान्तमन्वेषणीया भवेत्।

महाराजभगवन्तदासो जनयामास विश्वासमकबरस्य। आसीत्तस्याभिसन्धिर्यदग्रे य. कोपि मोगल-साम्राज्यशासको भवेत्तदुपरि भवेद्धिन्दूना प्रकृष्ट. प्रभावः।

परावर्तिष्ट महाराजो राजसौधम्। तत्र सर्वमपि संवादमकबरेण मैत्र्या संनिशम्य नानाधा संदिदिहु. सर्वेपि। न कोपि प्राचीकशत्संतोषम्। किन्तु महाराजो यदा सर्वमपि रहस्यमवबोधयामास

यद्भारतसाम्राज्यमवश्यमग्रे परहस्तगतम्, मुसलमानभाग्याधीनं भवेदिति विधेर्विधानमिव । एवंविधस्थितौ शनैर्हिन्दूनां प्रकामप्रभावोद्भावनस्य द्वारमुचितमनुचितं वा ? निजवचनानुपालनव्यग्रश्चेदकबरो दर्शयेदस्मादृशेषु समादरं तर्हि तत्पुत्रोऽस्माकं प्रभावेण ततोऽप्यधिकं प्रभावितो भवेदिति निश्चितम् । एवं किञ्च राजनीत्या शनैः स्वायत्तीकृते शासने किं हिन्दूनामभ्युदयदिनं दूरे ? प्रकटदर्शने सेयं कृतिरवश्यं विरूपा विमानजननी च, यतो हि सेयं नीतिरद्यावधि क्षत्रियाणां कृते नवीना नूनम् । नासीदियमादृता कदाप्यस्माभिः । परमाम्बेरराज्यस्य या परिस्थितिः साम्प्रतं तत्कृते हार्दिकभावानामपूर्वमिदं बलिप्रदानमकर्तव्यत्वेऽपि कर्तव्यमापतितम् ।

तर्केणानेन समभूवन् सर्वेपि प्रभाविताः । सन्धेः समारोहः सोयं सानन्दं परिसमाप्यत । कुमारो मानसिंहः कालेनैतावता युद्धविद्यायां शस्त्रसंचालने अश्वारोहगजारोहणादिषु चासीत्कुशलः । महाराजः स्वयमासीदेतासु विद्यासु भारते तदाऽद्वितीयः । अतएव स्वनिरीक्षणे स्वशिक्षणे च तदिदं सानन्दमपूर्यत । महाराजः कुमारमशिक्षयत्सर्वामपि सामयिकीं नीतिम्, अवोचच्च प्रणयेन यत् 'मया समारोपितमिमं नीतिवृक्षं भवानेव पुष्पितं फलितं चावलोकयेदिति ।'

महाराजः समनयदेकदा कुमारमकबरसंनिधौ । अकबरस्तस्य वयःसन्धिमालोक्य सुतरां प्रासीदत् । स हि कुमारमिमं निजसरक्षकतायामारक्षितुं प्राकाशयत्परममाग्रहम् । अतएव कुमारस्तद्दिनादकबरेण सह सानन्दमध्यवात्सीदाग्रानगरम् । निजयोग्यतया वीरतया चासौ भूयस्तरां समाकर्षदकबरसम्राजम् ।

एकदा समपृच्छत्सम्राट् सपरिहासम्—'यदा परमेश्वरगृहाज्जनैः सौन्दर्यादयो गुणाः संगृहीतास्तदा भवान् क्व प्रायासीत् ?' कुमारेण प्रत्युक्तम्—"अहं तदा वीरता-वदान्यतादिगुणानां संग्रहव्यग्रोऽभवं तावता बाह्यचमत्कृतिचकितैर्जनैरालुण्ठितं लावण्यमात्रं नूनम् ।"

उत्तरेणानेन सुतरां समतुष्यत्सम्राट् । कुमारस्य गुणान् दिनं दिनं परिचित्य अनर्घ्यमिदं रत्नमित्युत्तरोत्तरमकार्षीत्समादरं तस्य ।

[२]

प्रारम्भिकी वीरता

तत्कालमेव साम्राज्याधिरूढोऽकबरो नाद्यावधि तद् यथावदधिकर्तुमप्यपारयत् । अठगीनाभूमिपतयः प्राक्तनमुसलमानशासकानामत्याचारैश्चूर्णीभूता निजहृदये धारणामिमामवहन् यद् येन केनाप्युपायेन भूस्वामिना दमनं वित्तहरणं च यवनशासकानां नूनं कर्तव्यम् । अकबरमपि तथैव संभाव्य सङ्घटितैः सर्वैरकबरस्य विद्रोहे कृता तावद्दुर्दमा समरघोषणा ।

सम्राडासीन्नवयुवको वीरहृदयश्चोत्साही च । अतएव महाराजं भगवन्तदासं कुमारं मानसिंहमेव च सहादाय स्वल्पयैव निजसेनया तमुपद्रवं दमयितुमकरोदभियानमुत्साहेन । आसन् ग्रीष्मस्य दिवसाः । भानुः कृशानुमिव समवर्षन्निजकरैः । उपरि संतापयन्नातपः, अधः प्रतापयन्ती बालुका । ततः सैनिकानां स्थूलो दुर्वहश्च वेषः । तदुपरि गतेः शीघ्रता । एतैः सर्वैरेव कारणैरक्रियन्त विह्वलाः सर्वेऽपि सैनिकाः । अग्रे समभिसर्तुमप्रभवन्तश्छायास्थानेष्वितस्ततः समभवन्नात्मानं गोपयितुं परवशाः । अतिष्ठदेकाकी सम्राट् । नासीच्च पानीयमपि समीपे । अतएव व्याकुलः सम्राट् पानीयं पानीयमित्यसकृदाह्वातुमभूत्परवशः ।

एतस्मिन्नेवान्तरे भूपतिविकृतेर्यदा विदितं सम्राजा साम्राज्यवादी तदा न ह्यलसीत् संभूता-सर्वे समकार्षुः समाक्रमणं सम्राडुपरि । कुरुतेऽस्मिन् संकटसमये सम्राजः सहायः कोऽभूत् ? वीरोऽकबरो निःसहायमेव समयुध्यत सर्वैरपि । किन्तु कियत्कालम् ? एकाकी सन्नपि स्वस्य किन्तु सम्बन्धेन त्मानं गोपयितुम् । एतस्मिन्नेव जीवनसंशये कुमारमानसिंहेन सह नियन्त्रणे सम्राजमनुगतश्च भगवन्तदासः समभून्नयनगोचरं सम्राजः । न हि सम्राजमभिनिर्भयमपेक्ष्य समागतान्स सेनानी सहस्रकाण्डमारभत तेषां पृष्ठतः । महाराजेन सह समभूवँस्तस्य शरीररक्षकाः राजपूतवीरा राजकुमारा अपि । तेषां प्रचण्डखड्गाघातेन रणाङ्गणमिदं भयनिस्तब्धमिवाऽलक्ष्यत । अभूद् भूमिगतमिव समस्तसमारोहः । कुमारो मानसिंहोऽस्मिन् महति समरसंकटे प्रादर्शयदद्भुतां वीरताम् । स हि प्राणप्रणानप्युत्सृज्य न समभ्यरक्षत्सम्राजम् । अकार्षीत्सदसद्धं नरवीराणाम् । युद्धसमाप्तौ किन्तु स्वस्वामिनः । अकबरो दैवीं सहायतामेतां, या हि मानसिंहसहायतारूपेण समागच्छत्, भूयस्तरां समभूत् प्रार्थयत् । गद्गदकण्ठः सोऽयं वक्षसा समालिङ्गन्मानसिंहम् । आसीत्परिश्रान्तः सम्राड् महता श्रमेण च भीष्मेण । स हि तरोश्छायायां व्यश्राम्यत् । कुमारो मानसिंहः स्वकरेणानीयानीय पानीयमपाययत्सम्राजम् । अहो तावत्कालस्य पिपासा साम्प्रतं निरयासीत्, एवं च निरगासीत् ।

आगराराजधानीं परावृत्त एवाऽकबरो महता राजसम्मानेन ('मनसब') समभावयत् कुमार-मानसिंहम् ।

× × × × × ×

साम्प्रतमकबरस्य विचारो द्वितीयपार्श्वं समभ्यसरत् । मेदपाटस्य शासकाः साम्राज्याद्दूरेऽपसरन्तस्तस्य शक्तिमपहन्तुं प्रतिपदमाचेष्टन्ते स्म । साम्राज्योत्साही अकबरो नेदमस्पर्शयच्चद् हृदयेन । स हि भारते सङ्घटितसाम्राज्यमास्थापयितुमुत्कण्ठत । मेदपाटस्याधिपतिरुदयसिंहो मानसिंहेन सह सन्धिसंस्थापनं नानुचितं मेने किन्तु तदधीना वीरा नेदं कथञ्चिदप्यन्वमन्यन्त । मेदपाटीयैर्यदाऽऽम्बेराधिपानां साम्राज्यसहायकत्वमवगतं तदा ते नितरामक्रुध्यन् । किन्तु युद्धमात्रवेदिनस्ते राजनीतेः प्रगतिं समयस्य परिस्थितिं च कथङ्कारं वा विद्युः ?

एतस्मिन्नेवावसरे मिर्जाइब्राहिमहुसैन दमयितुमकरोन्मालवान्प्रत्यभिनिष्क्रमणम् । स हि समुपगतेऽवसरे मानसिंहेन सह पर्यचालयत्साम्राज्यसंस्थापनस्य चर्चां मेदपाटीयानां विद्रोहकाण्डं च । सानुरोधं तत्सहायताममार्गयत् सम्राट् । एकसाम्राज्यस्थापने दत्तवचनो महाराजकुमारः सम्राजोऽनुरोधमामेने नीतेरनुरोधेन । अतएव बाल्यादेव राजनीतिमार्मिकतां समरपरिस्थितिं चाऽनुप्रविशन्कुमारः समसूचयद् 'यदि मेदपाटाभिस्कन्दस्य विचारस्तर्हि तत्कृते नास्मादपि सदवसरः । सर्वेऽपि मानवाऽभिसरणं सम्राजो जानन्ति, अतएवास्मिन्नवसरे सहसा समाक्रमणं भवेत्सद्यः फलदायि ।' सम्राट् सर्वात्मनाऽन्वमन्यत चित्तौराक्रमणम् । अकारि तदनुसारमाक्रमणं चित्रकूटदुर्गोपरि । दुर्दम-विषमस्य तस्य पराजये समापतन्नानाविधा असुविधाः, किन्तु कुमारमानसिंहस्य मन्त्रणया सर्वत्रापि विजयप्राप्तिरधिगताऽभूदिति न परोक्षमितिहासविदाम् । अधिकृतमभूच्चित्रकूटदुर्गम् । सहैव तेन मेदपाटाधिकृतं सुप्रसिद्धमैतिहासिकं दुर्गं रणस्तम्भवरमपि कुमारमानसिंहपराक्रमेण साम्राज्यसुक्तमभूत् । आसीदिदमपि दुर्गं चित्रकूटवत्परमदुर्जयम् । किन्तु मानसिंहस्य नीतिनिपुणतां रणशूरतां च सर्वात्मना सुपरीक्षितवानकबरस्तद्भरवश एव चकाराभिस्कन्दनं तद्दुर्गस्यापि, यत्र तस्मिन् काले मेदपाटराज्यस्याऽऽयत्तो रावसुरजनहाडा संरक्षकोऽभूत् । स हि मेदपाटाधिपतेरुदयसिंहस्य नवीनपराभवात्साम्प्रतमात्मनः साहाय्याभावं मानसिंहादीनामसामान्यं वीरभाव

च परिजानन्प्रथमाक्रमण एव दुर्गस्य पतनं सदिदिहे । अतएव सामयिकप्रगतिमनुवर्तमानः सान्त्वेनैव समर्पयामास दुर्गमिदं कुमारमानसिंहाय ।

अकबरस्य सौभाग्यसूर्यः साम्प्रतमप्रतिरुद्धगत्या भारतगगनमधिरुरोह । आसन्मानसिंहसदृशा अप्रतिमवीरा मोगलसाम्राज्यस्य प्रभुत्वमुत्तरभारते परितः प्रसारयितुमग्रसराः । चित्रकूट-रणस्तम्भवर-सदृशान्यजेयदुर्गाण्यासन् साम्राज्याधिकृतानि । साम्प्रतमेव च कालञ्जर-मेडताप्रभृतिदुर्गाण्यपि साम्राज्य-भुक्तान्यभूवन् । सुदृढ-सुस्थिराऽभूत्साम्राज्यस्य सस्थितिः ।

[३]

गुर्जरविजयः

सम्प्रति गुर्जरान्विजेतुमबद्धोत्कण्ठा सम्राजोऽकबरस्य । स हि साम्राज्यस्य परिपोषकं मानसिंहमेव सर्वात्मना भावयंस्तमेव सञ्चालकं तस्य समकल्पयत् । समरनीतिकर्मठः कुमारमानसिंहः सव्यभजत्सेना-मिमां द्वयोर्भागयोः । एकं भागं स्वयमुपादाय सम्राजाऽकबरेण सह गुर्जरानभ्यषेणयत् । द्वितीयं भागं च तत्रैव सन्यवेशयद्येन सहसैव समुत्पद्यमानमुपप्लवं कञ्चित्सरलतयैव पारयेत्प्रतिकर्तुमिति ।

सिरोहीं विजित्य यथैव सम्राजः सेना गुर्जरान्प्रत्यवर्द्धत तथैव गुप्तचरैः संवादः प्रापितो यत्—'शेरखाँ फौलादी ससैन्यः सपरिवारश्च ईडरराज्यं प्रत्यभिसरति ।' शेरखानस्तस्मिन्समये भारतप्रसिद्धाना युद्धवीराणामन्यतमोऽभूत् । तस्य शौर्यप्रभावो भारतस्य दूरदूरपर्यन्तमभिव्याप्यत । देशप्रसिद्धेषु युद्ध-वीरेषु निजभुजोष्मनिर्वापण-कौतुकशाली कुमारमानसिंहः समुचितोऽयमवसर इति विभाव्य समभाषत सम्राजम्—'श्रीमन् ! वाञ्छाम्यहं, यत्किञ्चित्सैन्यमादाय स्वयमहं शेरखानं योधयेयम् । आत्मन्यखर्वगर्व-शालिनस्तस्य मदनिर्वापणस्य हस्तगतोऽयमवसरः । अवशिष्टां वाहिनीमादाय श्रीमानग्रेऽभिसरतु यावदह-मिदं खण्डयुद्धं परिसमाप्य सेवायामुपतिष्ठे ।'

सत्येन शौर्योत्साहेन सुप्रसीदन् सम्राट् सप्रणयमदादनुमतिम् । मानसिंहः सोत्साहकौतुकं तत एव प्रययौ यतो हि शेरखानस्योपगमसंभावनासीत् । स्वल्प एव समये सैन्यमेकं, तस्याग्रतश्च विशालकायमेकं वीरयुवकमागच्छन्तमालुलोके । आजुहाव तं समराय कुमारमानसिंहः । आसीत्सोऽपि वीरः समरेषु लब्धविजयश्च । आह्वानमिदं श्रुत्वैव सावधानः सोऽप्यभूत्समरायोद्यतः । द्वयोरपि वीरयोः समघटत समीक्षणीयं समीकम् । शेरखानो नासीत्पराक्रमे मानसिंहादूनः, परं स्थूलशरीरोऽसौ मानसिंहस्य शीघ्रगतिं नाशकत्तुलयितुम् । अभूत्स्वल्पकाल एव परास्तः । तस्य पोत्रः सशूरोऽपि पराक्रमिणो मानसिंहस्या-सीद्धस्तगतः ।

देशप्रसिद्धमेकं वीरं पराजित्य प्रसन्नमुखो मानसिंहः शीघ्रगत्या प्राप सम्राजम्, निरभिमानभावे-नावर्णयच्च सर्वमपि युद्धवृत्तान्तम् । अतितरां समतुष्यत्सम्राट्, सदा स्मरणीयं चादात्तस्मै प्रणयोपहारम् ।

सम्राजः सेना सम्प्रति गुर्जराणामतिनिकटगाऽऽसीत् । गुर्जराः साम्प्रतं मुजफ्फरशाहस्य तृतीयस्या-धिकारेऽभूवन् । यदा हि समाकर्णयदसौ सैन्योपगमं तावता सम्राजः सेना तस्य द्वार एव समवास्थित । व्यगलत्तस्य धैर्यम् । निजरक्षाया उपायान्तरमलक्षयन्नसौ राज्यात्पलायाचक्रे, किन्तु दुर्दैवात्तस्यामेव दिशि पलायितो यत्र हि सम्राजोऽकबरस्य सेना कृतसंनिवेशाभूत् । स्कन्धावारमालोक्य कान्दिशीकोऽसौ केदाराभिमुखं प्रद्रवन् क्षेत्रगहने निलिल्ये । किन्तु लक्षितोऽभूदसौ सैनिकैः । अन्ते निगडितोऽसौ

सम्राजोऽधीनता स्वीचक्रे। अकबरस्तस्याऽऽजीवनाय प्रदेशमेकं कल्पयित्वा निजधात्र्याः सुत मिर्जा-अजीज कोकाम् (खाने आजम) तत्प्रान्तस्याधिपतिं चक्रे।

मिर्जापरिवारो यो हि प्रान्तेऽस्मिन्पुरतः प्रभावशाली समभूद्, वृत्तान्तमिमं समाकर्ण्य सुतरामकुप्यत्। मिर्जा इब्राहिमहुसेनमात्मनः प्रमुखं निर्वाच्य ते सर्वतो विद्रोहं प्रासारयन्। देशे समन्तात्समुदतिष्ठद् घोरः कलहः। परितोऽप्युच्छृङ्खलता चाऽव्यवस्था चालक्ष्यत। साम्प्रतमिब्राहिमहुसेनस्याधीनतायां पर्याप्ता सेनाऽपि समगृह्यत। इतो गुर्जरदेशीया मोगलसाम्राज्यस्याधीनतां न सहसा स्वीकर्तुमासन् समताः। अतएव गुर्जरेषु प्रारभ्यत घोरो विप्लवः। संवादमिममाकर्ण्य भृशं चुकोप सम्राट्। एषां दमनाय वाहिनीं प्रेषयितुमाज्ञापयत्। एतस्य मन्त्रिणो रात्रौ शत्रूनाक्रमितुं समनह्यन्त किन्तु वीरोऽकबरो नेदं सममन्यत। राजपुत्राणां सगत्या तस्य हृदयमुच्चं विचाराश्चोदारा समपद्यन्त। अतएव स प्रकाशरूपेण शत्रूनाक्रमत्। मानसिंहोऽपि सम्राजो निश्चयमाकर्ण्य भृशमतुष्यत्। सुप्रसन्नः सोऽपि सम्राजः साहाय्याय सेनैकदेशमादाय द्वितीयमार्गेण 'सारनाल' समभ्यसरत्। द्वाभ्यामपि पार्श्वाभ्यां सेना तथा रभसेन प्राप्यत यथा प्रतिपन्थिनश्चकितचित्रिता अभूवन्।

मिर्जा इब्राहिमहुसेनो नासीदत्र। स हि सैन्यसंग्रहाय समचेष्टिष्ट। एकतः स्वयं सम्राट्, अपरतः श्रीकुमारमानसिंह इत्युभयतः समाक्रान्ता शत्रवः क्लेशापन्ना अपि वीरभावेन समयुध्यन्त। अकबरस्य सैन्यमग्रे प्रासरत्, किन्त्वासीदग्रमार्गो नितरां संकीर्णः। उभयतोऽपि वंशोत्तुङ्गो घननिबिडश्च स्नुही-(थूहर)गुल्मो दूरपर्यन्तं विस्तीर्णोऽभूत्। अतएव नासीदेकपदमपि इतस्ततो-भवनस्यावकाशः। एवं संकीर्णावसरे एव त्रयः सशस्त्राः सैनिकाः सम्राजमकबरमेव लक्ष्यीकृत्य प्राहरन् घोरैः शस्त्रैः। हन्त घोरसंकीर्णेऽस्मिन् स्थले त्रय एव सैनिका महामहतीमप्येकां सेनामलमासन्नवरोद्धुम्। संकुले स्थले अस्मिन् सहसैव युगपत्समापतन्. सैनिकानयोधयद्धीरतयाऽकबरः. किन्त्वतर्कितमाक्रमद्भिस्तैः संकटगतोऽभूत्सम्राट्।

महाराजो भगवन्तदासो यथैवाकबरं संकटमुखे व्यैक्षत तथैवायमग्रे प्रसृत्य सादिनमेकं जघान। साम्प्रतं मानसिंहोऽपि तदभिमुखमाययौ, किन्तु सम्राट् स्वयमेव सैनिकाभ्याममूभ्यां सह योद्धुमैच्छत्। अतएव कुमारमग्रे प्रवर्तितुमवारयत्। शौर्यविशेषे निरोद्धुमैच्छदकबरस्ताविमौ। किन्तु वीरावेतौ द्रुततरमुत्प्लुत्य सम्राजः शस्त्रविक्षतं कर्तुमग्रे प्रासरताम्। साम्प्रतं नाशकद्धैर्यमवरोद्धुं महाराजो भगवन्तदासः। प्रावादीदसौ—'कुमार! किमिदानीं निरीक्षसे? सम्राजो जीवनं घोरसंकटे। किमिति नाग्रे प्रसरसि?'

कुमारः—सम्राजस्तादृश एवाऽऽदेशः, किमहं कुर्याम्?

भगवन्त०—नायं समयः सम्राजः प्रसन्नतामप्रसन्नतां वा प्रतीक्षितुम्।

किमिदानीमासीत्। लोकैकवीरो मानसिंहः खड्गमादाय सरभसमधावीदग्रे। सैनिको यावता भिनत्ति भल्लेन वक्षोऽकबरस्य तावता मानसिंहस्य खड्गः सैनिकस्य मस्तकमपाहरत्स्कन्धरातः। कुन्तफलकस्य परिवर्ते सैनिकस्य य मस्तकमेव सम्राजो वक्षसि न्यपतत्। अकबरो मानसिंहस्य शौर्ये नितरामतुष्यत् किन्तु नासीत्ततोऽप्रकटनस्यायमवसरः। समुत्त एव समायासीदलं मिर्जापरिकरस्य। समभूदवहितः सम्राट्। प्रावर्तत घोरं संयुगं। निर्भरं पराजिग्ये मिरजामण्डली। केचिदहन्यन्त, केचिज्जीवग्राहमगृह्यन्त।

अवसरेऽस्मिन् सुप्रसन्नः सम्राट् महाराजभगवन्तदास कुमारमानसिंह च परोलक्षमुद्राणामुपायनमन्तरा [1]विजयभेरिसमानेन वैजयन्तीप्रदानसमादरेण च सभाजयति स्म सुभृशम्। नाद्य समानोद्यावधि कस्मैचिदपि हिन्दूनरपालाय प्रादीयत सम्राजा। गुर्जरदेशः साम्प्रतमभूत्सर्वथा सम्राजोऽधीनः। अजीयत तदैव सूरतस्य महद् दुर्गम्। यावता साम्राज्यसैनिका गुर्जरान्निर्जयन्ति तावता मानसिंहः सैन्यैकदेशमादाय 'डूंगरपुर'प्रान्तं प्रति प्रतस्थे। नासीत्तस्य काठिन्यं तस्य विजये। एव किल मानसिंहः स्वकीयविजयकाण्डस्य चक्रे रोचकं प्रारम्भम्।

[४]

विनाशस्य सूत्रपातः

महाराजो भगवन्तदासः प्रासीदन्मनसि यन्मदुपक्रान्त साम्राज्यनिर्माणकार्यं कुमारमानसिंहः सुमहता नैपुण्येन निर्वहतीति। एकैक सर्वाण्यपि राज्याणि साम्राज्यसूत्रे सन्नध्य महतीमेकता शक्तिञ्चानुभवन्ति स्म। ह्यो ये भूपालाः स्वल्पं स्वल्पं भूखण्डमादाय मिथोरक्तप्रवाहणे व्यस्ता आसंस्तेऽपि साम्प्रतमन्योन्य प्रणयन्ति, आखेटक्रीडादिभिश्च विनोदमनुभवन्ति। क्वचिच्च पुरुषातिशायिनो बलप्रयोगान्मध्येसभ प्रदर्शयन्तः सम्राजो मनस्तोषेण साक निजशक्तिसचय जनतासु प्रभावतिशय चोपार्जयन्ति स्म। एकैक प्रति भयस्य चाविश्वासस्य च ये दुर्भावास्ते व्यलुप्यन्त शनैः।

आसीदुदयपुरराज्यमेकमसबद्धम्, यद्धि साम्राज्यप्रवाहे कण्टकमिवाऽऽस्खलति स्म मानसे सम्राज.। एतस्य मृदूकरणाय मानसिंहस्य बुद्धिवैभवमन्तरा नान्यदासीदवलम्बन सम्राजः। स हि कुमारमाहूय व्यवृणोन्निजाभीप्सितम्। प्रत्युक्त मानसिंहेन—'कार्यमिद न नाम साधारणम्। उदयपुरस्य महानय गर्वो यन्नाद्यावधि यवनैस्तेन संबन्धो रचितः। प्रतापसिंहो युद्धप्रियः, स हि निजजीवने सन्धिमूरीकुर्यादिति न मे प्रतिभाति।

अक०—यदि भवानिद कार्यं स्वीकुर्यात्तर्हि युद्धे विस्फुरन्नपि नीतावप्रभवन्मेदपाटभूपतिरवश्यं भवदनुरोधं रक्षेत्।

'यावच्छक्यमहमास्थास्यामि यत्नम्' इत्युक्त्वा प्रययौ मानसिंहो मेदपाटम्।

महाराणा महता संभ्रमेण समानयामास मानसिंहम्। मन्त्रणागृहे महाराणा कुमारो मानसिंहश्चातिष्ठताम्। कुमार एव प्रारेभे प्रसङ्गम्—'महाराणा! मन्ये विदितमेव भवतो यद्राजस्थानस्य भूमिपतयो विशृङ्खलभावेनावस्थिता न केवल देशशक्तिं दुर्बलीकुर्वन्त्येव, अपि तु मिथो विरोधेन भारतमिदमन्यान्यदेशानामभिभोग्यमापादयन्ति। अत एव सर्वेऽपि महीपतयः सभूय साम्राज्यमेकमभिप्रबलीकर्तुमभिलषन्ति। एतस्मिन् सभूय समुत्थाने समाननीयस्य भवादृशस्यावलम्बनमाकाङ्क्षन्ति सर्वेऽपि। अकबर. सम्राट् राजपुत्राणा मर्यादाऽभिवेदी। स हि समानेन साक भवत. सहयोग वाञ्छति।'

प्रत्युक्तमुदयपुराधीशेन 'मेदपाटो नाद्यावधि यवनाना सपर्कं सेहे न चाग्रेऽपि तथा वाञ्छति। मेदपाटः स्वतन्त्रोऽभूत्। अग्रेऽपि च तथैवावतिष्ठेत। अहमति खिद्येऽनेन यद्राजसततयः शनैः शनैर्यवनैः ससृज्यन्ते।

---

१ – अद्यापि जयपुरमहाराजस्य शोभायात्राया सेय विजयभेरी, सम्राड्दत्त. सोय विजयध्वजश्चाग्रे परिचलति।

मान०—जातीयगौरवमवश्यमनुवर्तनीयम्। किन्तु यत्र जातीयता राष्ट्रियताया बाधिका भवेत्तत्र राष्ट्रियतामेवाऽभिनन्दन्ति नीतिज्ञाः। राष्ट्रे रक्षिते एव जातिरक्षा सम्भविनी।

महारा०—भारते जातीयतैवाऽऽसीन्न राष्ट्रियता।

मान०—नैतदार्याणां प्राक्तनम्। जगत्यार्यैरेव सा राष्ट्रियता निदर्शिता यामन्ये श्रुत्वापि न प्रतीयेरन्। अहोः कालाद्विलुप्ता सैव राष्ट्रियता सम्प्रति संप्रतिष्ठिता भारते।

"भारतमेकराष्ट्रं न कदाचिद्भवेत्।"

"मम दृढो विश्वासो यदन्यान्यदेशवद् भारतमप्येकराष्ट्रमवश्य संभवेत्"।

"कथमिव ?"

"इतः पूर्वमहमेव भविनयं पृच्छामि—राष्ट्रियतां पराकृत्य जातीयतामवलम्बमानैः किं यवना भारतादपाकृताः ? मेदपाट एव वा किमस्मिन् सफलोऽभवत् ?"

"मेदपाटे न यवनानां पादौ स्थिरीभूतौ"।

"तत्रभवतो विचारे मेदपाट एव समस्तं भारतम् ?"

"नाहमन्यान् राजन्यान् भावयामि।"

"इदमेव कारणं यद् भारते एकराष्ट्रस्य स्थापना नाद्यावधि जाता। यथा मेदपाटो मेदपाटमेव भारतममन्यत, तथाऽन्यान्येऽपि नरपालाः स्वराज्यमेव भारतमभावयन्। मिथः सभूय समिलितराष्ट्रोत्थानस्य चिन्ता न केनचित्कृता। एतस्याः सङ्कुचितमनोवृत्तेः परिणामस्वरूपमिदमागमनं भारते यवनानाम्। इदमपि च सम्यग् विदितं श्रीमता यन्माहम्मदैः साम्प्रतमीदृशी परिस्थितिरुत्पादिता यत्ते न देशात्पराकर्तुं शक्याः।"

"आम, देशात्तेषां निराकरणमसंभवमेव साम्प्रतम्।"

"ते यत्रापि शासनं करिष्यन्ति, केषामुपरि ?"

"आर्यसन्तानानामुपरि।"

"किमेतदभिरोचयति भवान् ?"

"नैव।"

"किं भवानकब्बरमुन्मूल्य हिन्दु-राज्यमास्थापयितुं प्रभवेत् ? यदि भवान्मे विश्वासमास्थापयेद् यद् भारतीयभूपाला सर्वेऽप्येकमनसो भूत्वा अहम्मन्यतायाः कुलीनतायाश्च गर्वगन्धं गलहस्तयन्तोऽकब्बरस्य विरोधाय सर्वथा सन्नद्धा सन्ति, तर्हि निःसंशयः सोऽहमग्रसरो भवदनुगमनाय।"

"स्वयमहं मधयानो ह्यस्म्यामेकतायाम्। तत्रापि मेदपाटीया नामिलिष्येयुर्भवतः साहाय्यम्।"

"किमिति ?"

"एतदर्थं यत्..."

"स्पष्टमुच्यताम्।"

"भवता मोगलैः सह सन्धिर्विहितः।"

"महाराणा ! स्पष्टमिदमाकर्ण्यताम्, नायं समयो विचाराणामेवविधानाम्। अह वा मे पूज्यः पिता वा न स्वार्थवशः सम्नकब्रस्य साहाय्य कुर्व', अपि तु हिन्दुत्वस्य रक्षायै। यदा हि हिन्दुभिर्यवनाना कार्ये हस्तक्षेपो न व्यधीयत तदा स्पष्ट दृष्ट स्याद् यद्धिन्दूना देवमन्दिराणि धर्मशास्त्राणि, एतदेव किम्, तेषा जीवनपर्यन्तमप्यासीद् घोरसकटे। किन्त्वद्य मोगलसाम्राज्ये हिन्दवो मोदन्ते, प्रतिष्ठा लभन्ते, तेषा पूर्णं नाम धार्मिक स्वातन्त्र्यम्। भारते पुराऽप्येवमभूत्। अनेका दस्युजातयोऽत्र समापतन्। भारतमलुण्ठन्, व्यदलयन्, किन्त्वार्यास्तदेतस्मिन् भ्रूक्षेपमात्रमप्यविधाय विश्वव्यापिन्या निजगम्भीरताया जठरे सर्वास्ता जाती' शनैः शनैस्तथाऽजरयन् यथा तासामस्तित्वमेव व्यलुप्यत। भारते पुनर्हिन्दूनामेव दुन्दुभयोः नेदुः। कनिष्क' कोऽभूत्? हूणाः का वा न्यूनतामकार्पुर्भारतीयसस्कृतिविलोपाय? शाकद्वीपीयाः कदा न प्रविविशुर्भारतम्? किन्तु सर्वे ते व्यलीयन्ताऽत्रैव। तेषा नामचिह्नमात्रमत्राऽवशिष्ट भवेज्जातु। मोगला अपि न शक्यन्ते साम्प्रत पराकर्तुम्। राणासाँगा न चेद्बाबरमत्राह्वास्यत्तर्हि किं मोगलसाम्राज्यस्थापनस्यात्रावसरोऽभविष्यत्? तथ्यनिवेदन न नूनमपराधाय। देशे ज्वलन विकीर्य मेदपाट साम्प्रत निजस्वातन्त्र्यस्य स्वप्न वीक्षते।

अस्ति साम्प्रतमपि समय। मोगलैः सह राजनीतिपाटवप्रदर्शनस्यायमवसरो न घृणाप्रकटनस्य। तैः सह संधाय शनैः शनैस्तेषु निजप्रभावविस्तारस्यावश्यकता, न शुष्ककलहस्य। तान् मुष्टौ कृत्वा तेषा मस्तिष्कपरिवर्तनस्यायमवकाशो न तैः सह दु.सहसमरेण देशे रक्तपातस्य। यद्यस्मिन् सूक्ष्मसमये स्वल्पमप्यनवधान स्यात्तर्हि बहिः प्रदर्श्यमानाया घृणाया बीज तथा दृढ भवेद्यथा हिन्दूना बिन्दुरपि घृणाभाजन भवेद्देशे। भारते, राम-कृष्णयो' पदपङ्कजपरागपवित्रीकृतेऽस्मिन्नार्यावर्ते आरव्यभाष्योपनिबद्धाः कुरानोपासना एव सर्वत. प्रगल्भेरन्। विद्वेषवह्निस्तथा प्रज्वलेद् य. परमप्रयत्नैरपि न नाम नून निर्वायात्, प्रत्युत परम्परया प्रवर्द्धेतैव। अह दृढं विश्वसिमि यद् भारतीयभूपालाः साम्प्रतमपि न नाम राजनीतिं विस्मृतवन्तः। भारतीयेपु साम्प्रतमपि तथाविधमात्मबल वर्तते यस्य प्रभावे निपत्य रक्तपिपासवः स्वभावबर्बरा अपि यवना न तावदात्मान निःस्पृष्टमास्थापयितु प्रभवेयु। अस्माभिरकबरः कीदृशेन प्रभावेण वशीकृतस्तदिदमद्य न चेत् अग्रे विवेकिनो राजनीतिज्ञाः सूक्ष्मतम पर्यवेक्ष्य भोत्स्यन्ते, मोगलाश्चानुतप्स्यन्ते।"

एतस्मिन्नेवावसरे सेवकोऽसूचयद्भोजनस्यावसरम्। राणा कुमारमामन्त्रयद्भोजनाय। कुमार' सरम्भसमभाषिष्ट—'सम्यगिदम्, वय सर्वेऽपि भोजनतो निवृत्त्य गभीरेऽस्मिन्विषये मिथो विचारविनिमयेन कर्तव्यनिर्णय स्थिरीकुर्म.।'

राणाऽवादीत्—'न मे क्षुधा साम्प्रतम्, निर्वर्तयतु भवान् भोजनम्।'

कुमारस्तात्पर्यमेतस्य तत्कालमवाबुध्यत। नायमपमानः सह्योऽभूत्सयमिनोपि मनस्विनः। क्रोधात्स तत्कालमुत्तिष्ठन् प्रावदत्—'राणा! मानसिंह मानिमनुष्या अपि मानयन्ति। अवबुध्यते स सर्वम्। किन्तु स्मर्तव्य, सैषा सकुचितमनोवृत्तिर्मिथ्यादम्भश्च संकटमुपस्थापयेन्निकटे'। राणा पुनरवदत्—'उदयपुरभूपालो भ्रष्टैर्भोजन नाभिरोचयेत्।'

'अदूरदर्शिन् देशविद्रोहिन् राणा! अग्रे न ममोपालम्भो देयो यन्मानसिंहेन मेदपाटो विपाटितः। विवेचयिष्यन्ति राजनैतिका एव यत् एकव्यक्तेर्मिथ्यादम्भरक्षायै परोलक्षप्रजाना प्राणाः सकटापन्नाः, देशश्च सर्वदार्थं विनाशमुखे।

"मेदपाट. स्वनिश्चये निश्चलः!"

"तद्यम्विरभूपालोपि निजनिर्णये निष्कम्प. । एकमुदयपुर किम्, शतमुदयपुराण्यपि यदि भवेयुस्तदापि साम्राज्यनिर्माणकार्य निरुध्य हिन्दुजातेश्चूर्णीभावो न शक्यते सम्प्रति कर्तुम् । रक्तपातमात्रवेदिन् राणा ! एकस्य भवत कृते न केवलं वराको मेदपाट एव, अपि तु भारतमात्रमिदमवलोकेत रसातलम् !" इत्युक्त्वैव परावर्तिष्ट मानी मानसिंहः ।

[५]

गुर्जराणां विहार-वङ्गानां च समराङ्गणे

अकबर' साम्प्रतमध्यतिष्ठत् फतहपुरसीकरीस्थानम् । त्वरितमवापत्तत्र मानसिंहः । अकबरोभूत्तस्य प्रतीक्षायामेव । नैतदर्थं यद् राणासम्बन्धे भृशमुत्कण्ठासीत्, अपि तु समुपस्थितताया विषमसमस्यायाः समीकरणार्थम् । गुर्जरेषु पुनर्मिरजापरिकरेणोपद्रयः प्रारब्धोभूत् । अकबरेण स्पष्टमनुभूतमात्मह्रदये यत् मुसलमानसेनानायका न मे सत्यहितैषिण' । अत एव प्रत्येकसमरे क्षत्रियान्, विशेषतश्च कुमारमानसिंह विना न तस्य किञ्चिदपि कार्यं समपद्यत ।

लोहिताभे लोचने स्फुरन्तमधर चावलोकयन् कुमारस्य, गहनघटनामनुममौ सम्राट् । त्वरिततरं स प्रतिममादधे 'किं राणा साम्प्रतमपि नोपागात्सरलमार्गम् ? द्रुत मे सूचय, यदि नाद्याऽपि सोऽवाबुध्यत, नापि चान्वमन्यत भवतोऽप्यनुरोधं तर्हि तथा त दमयेय यथा स ह्यनुतप्येत चेतसा पश्चात् ।"

मान०—प्रयतितं मया बहुधा, किन्तु नासावनुमन्यते सन्धिम् । एकसाम्राज्यनिर्माणं च तस्य दमनमावश्यकं मनुते । तद्यदि भवतो नानुमत स्यात्तदापि तमेनमहमात्मबलेनाऽपि युद्धायाऽवश्यमामन्त्रयेयम् ।

अक०—प्रिय मान ! नेदं कदाचिदपि भावयेर्यदकबर. कृतघ्नः । अह भवतो गुणानुपकारांश्च प्रत्यह भावयाम्यान्तरे । भवतोऽयमपमान साक्षात्साम्राज्यस्यावमान' । किं वा स्वस्य तस्य सौभाग्यस्य, देशाभ्युत्थानस्य वा मोघ पादाघातः । अह सम्प्रति हृदयान्तस्तलेन राणापराभवमवधारयामि ।

एतस्मिन्नेव समये सैनिक एकः पत्रमेक सम्राजे समर्प्य तदिङ्गितेन तत्काल मन्त्रणाभवनाद्बहिरभूत् । आसीत्पत्रमिद गुर्जरेभ्यो राजसिंहेनालिखितम्—'यत् मिर्जामुहम्मदहुसेनो भयानकरूपेण सम्राजो विरोधे समुत्थित' । साम्राज्यसेना दूरगता विभाव्य अहमदनगरादिषु चक्रे स निजाधिकारम् । आजम अजीजकोका न प्रभवति तत्पराभवे । प्रजाना सम्राज सेवकानां च जीवन सकटगत विभाव्य त्वरिततमं प्रतिविधातव्यम्' इति ।

पत्र पठित्वा प्रावादीदकबर'—'मानसिंह किमिदानी कर्तव्यमिति व्यवतिष्ठस्व ! वारवारमुपप्लवमानैरमीभिर्भूरि खेदितम्, सम्प्रति तथा दमनीया यथाऽन्येपि प्रान्ता. प्रतिबुध्येरन् ।'

मान०—पूर्णतया तथ्यमिदम्, अन्यथा अन्येऽपि जनाः शिर. समुच्छ्रयेयुः । किन्तु युद्धनीतिरिदमेवोपदिशति यत्तत्र सैन्य तथा त्वरिततम प्राप्नुयाद्येन सर्वे ते चकितसम्भ्रान्ता न किञ्चित्प्रतिविधातुं शक्नुयुः । विलम्बे सत्यन्येषामपि समुत्थानस्याशङ्का ।

अक०—सर्वथा सम्यगिदम्, किन्तु राणाविषयेऽपि किञ्चिदधुनैव प्रतिविधेयम् ?

"नास्मिन्विषये किञ्चिच्चिन्तयितव्यम् । तत प्रतिनिवृत्त्यापि सर्वमिदमायोज्येत । तावत्काल कदाचित्तस्य मतिरपि परिवर्तेत । न सहसा समरेण किञ्चिद्राजस्थान सर्वथोन्मूलनीयमिति मे मतिः प्रागसीदिति ।'

अकबरो मानसिंहानुमत्यैव त्वरिततममकरोद्रणप्रस्थान गुर्जरान्। सेनायाः प्रधानपरिचालकावास्ता महाराजभगवन्तदास–मानसिंहौ। अतित्वरितगत्या प्राचलद्वाहिनी। एकैकस्मिन्दिने पञ्चविंशतित्रिंशत्क्रोशपर्यन्तमलङ्घयत्पन्थानम्। द्वादशदिनैस्त्रिशत क्रोशानुल्लङ्घ्य प्राविशद्वाहिनी गुर्जराणां प्रवेशद्वारम्।

सम्राड् गुर्जरेषु पदनिक्षेप कुर्वाण एवासीदेतावतैव महाधनोजातीयस्तस्य तुरगः सङ्सोपाविशत्। अकबरो भूयस्तरामभूच्चकितश्च सभ्रान्तश्च। अस्मिन्नेव समये महाराजो भगवन्तदास. सरभसमुपसृत्य सम्राजः सौभाग्यमभिनन्दन्नूचे—'श्रीमन्! तदिद शुभशकुन भवतो विजयसूचकम्। भारतीयविशेषज्ञा यात्रासमये त्रितयमिदमभिनन्दन्ति भूयसा–प्रवेशावसरे तुरगस्याऽऽसनम्, पृष्ठवर्ती पवनः, चिल्लाना वायसाना च युगपदुपगमन चेति।

शुभसवादेनानेन भृशमतुष्यत्सम्राट्। स हि मानसिंहसमत्या सेना त्रिषु भागेषु विभज्य तिसृषु दिक्षु समाक्रमत्परिपन्थिनः। मानसिंहस्य युद्धनीतिरत्रापि सपूर्णं सफलाभवत्। मुहम्मदहुसेनो यथैव सम्राट्पृतनाया घोरमारवमशृणोत्तथैव भयविह्वलः स निजसहचर सुब्रहानकुलिनमपृच्छत्—'अय कर्णबधिरीकारः कोलाहलः कुतः समागच्छति?'

"सम्राजोऽनीकिनी समागता तस्या एव तुमुलो ध्वनिः।"

"नेद सभवि, मया निश्चितमाकर्णित सम्राट् साम्प्रत फतहपुरे।"

"इद निश्चितमेव त्वा निश्चलमकरोत्, पश्य, समुखे कोयमभ्युपैति?"

यथैव मिर्जामुहम्मदहुसेनेन समुखमालोकित तथैव सञ्जा वाहिनी द्रुतगत्या समाकर्षन्नकबरो दृष्टिमुपागमत्। सम्राजः सेना परिपन्थिनामनीकादासीत्सख्यायां न्यूना। अतएवाकबरोऽभूच्चेतसि चिन्ताकुलः। किन्तु भगवन्तदासः सर्वमिदमवगत्य सुस्फुटमसान्त्वयत्सम्राजम्—'सख्याया न्यूना अपि राजपुत्रवीराः समरे कियन्तः सभवन्तीति समये समवगत स्यात्। न तत्र भवता किञ्चिदपि विमनायितव्यम्।'

उत्साहितः सम्राट् सैन्यमादाय समा-वर्धिष्ट समरे। इतो मिरजाचमूरपि समभ्यसरद्। द्वयोर्घोरसघर्षे प्रथमाक्रमण एव सम्राट्सैन्यमकरोत्पश्चात्पदम् मिरजावाहिनी। किन्तु यथैवाकबर विषमस्थमलोकयतामङ्गरक्षकौ भगवन्तदासमानसिंहौ त्वरितमग्रे प्रवृद्धय शत्रुसैन्यमामर्द यतामुग्रगत्या। अभवत्तुमुलम्। विजयश्रीरभवत्सम्राजो हस्तगता। अगृह्यत मिरजाहुसैन'। सहस्रद्वयमिताः शत्रवः प्राणेभ्यो व्ययुज्यन्त, सहस्रानुमिताश्च क्षताः पलायिताश्चाभूवन्। सम्राट्सेनाया च शतं सैनिका अम्रियन्त।

मानसिंहसमत्या तदेव द्वितीयवारे पुनरक्रियत गुर्जराणां विजयः। उपद्रवकारिणामक्रियत कठिन दमनम्। भगवन्तदास-मानसिंहयोर्मध्येविजयसभमकारि सम्राजा सतुष्टहृदयेनाभिनन्दनम्, अदीयत च तयोः स्वरूपानुरूपमतिबहुमूल्यमुपायनम्।

गुर्जरविजय कृत्वा सीकरीस्थाने परावृत्त' सम्राट् मार्गश्रममपि न यथावद्विगमयामास तावतैव सवादः समागात्—मगधेषु (बिहारप्रान्ते) सुल्तानतनयो दाऊद. सम्राड्विरोधे घोरमत्याचरतीति। मन्त्रणाभवने पुनः सममिलत्प्रमुखसेनापतीना सभा। सर्वप्रमुखो मानसिंहो निरदिशत्—'अस्मिन्वारे विहार-वङ्गयोर्विजयाय न पर्याप्ता भवेत्केवल स्थलसेना। नैतावद्दूरमियत्याः पृतनायाः प्रापण सुकरम्, किन्त्वेतावति काले शत्रुरपि भवेत्प्रबलः।'

पृष्टमन्त्रिभिः सदस्यैः —'तर्हि किं प्रतिविधीयतामत्र ?'

'रणपोतपटल'[1]स्यैकस्यावश्यकता, यं विलोक्य विहार-वङ्गावुभावेव भवेतां चकितौ। यात्रायां अनेन सुकरता शीघ्रता चाप्यनायास भविता[2]।' सेयं मन्त्रणा समममन्यत सर्वैः। स्वल्पैरेव दिनैः समर-पोता' समनह्यन्त। जलयात्रायाः पूर्वं सनाहमायोज्य वीरबल-शाहबाजखाँ, कासिमखाँ प्रभृतीनामून-विंशतिनायकाना मध्ये भगवन्तदास-मानसिंहौ प्रमुखौ कृत्वा सम्राडकबरो जलमार्गेण प्रतस्थे मगधान्।

आसीत्पूर्णा प्रावृट्। नद-नदीषु प्रावर्द्धन्त पयःपूराः परितः। अतएव न्यमज्जन्बह्वो रणनौकाः, किन्तु ततोपि पर्याप्ताऽवशिष्टा सेना सर्वत' पूर्वं हाजीपुरं विजित्य पाटलिपुत्रं पर्यवृणोत्। सेनाया आग-मनं श्रुत्वैव दाऊद. पलायिष्ट वङ्गान्। लुण्ठने परःकोटिमुद्राणा द्रव्याणि हस्तगतान्यासन्। विहार-राजधान्या. पाटलिपुत्रस्य विजयो नासीत्साधारण कार्यं किन्तु मानमतिवैभवेन तदपि साधारणमभूत्।

आसीत् दाऊदस्य निग्रहणमावश्यकम्। ।अतो वङ्गविजयाय टोडरमलस्याधीनतायां प्राहीयत राजसेना। पराजितो दाऊदः सन्धिं प्रार्थयामासे। टोडरमलो दाऊदस्य नीचता विजानन्नानुमेने सन्धिं किन्त्वकबरस्योदारतया अदूरदर्शितया वा स्वीचक्रेऽसौ सन्धिः, यस्य फलमचिरादेवोपलब्धमकबरेण। विहार-वङ्गयोर्विजयपरितुष्टोऽकबरो मानसिंहमभिनन्दन समाययौ राजधानीम्। विजयोत्सवसमारोहे रमोदत मोगलराजधानी।

[६]

संमुखसमरे

विजयोल्लासे मत्तोऽकबर सर्वं पूर्वनिश्चय व्यस्मरत्। मानसिंहः कथाप्रसङ्गे समसूचयत्— 'भारतीयभूपालाना त्यागप्रवृत्तिर्विलासकीटेषु मोहम्मदशासकेषु नावाप्येत नून गवेषितापि। स्वोद्देश्यं स्थिरीकृत्य तदनुसारं जीवनपरिचालन मन्ये आर्यसतानैरेवात्मसात्कृतम्।'

श्रुत्वैवेदमकबरहृदयमाहन्यत। आत्मन प्रमादमवधानेन भावयतस्तस्य स्मरणमभूद् यदस्मिन्नेव भवने, एतस्मिन्नेव भूप्रदेशे मया मानसिंहसमक्षे यत्प्रतिज्ञातमासीत्तस्यं हन्त व्यतीतास्त्रय. सवत्सराः! संकुचितः सम्राड् तत्कालमब्रूत—'सखे मानसिंह! स्वीकरोम्यहमात्मन. प्रमादम्। सेय राजसत्ता सत्य-मुन्मादिनी मानवस्य।'

अभिनिविष्टः श्रीमान्मानसिंहः पुनरवोचत् —"श्रीमन्! सर्वा' राजसत्ता कथं निःसभ्रमं तुलयसि। न विलोकयसि किमस्मान्, ये भवन-परिजनान्विहाय, जीवनस्य प्रमोददायिनीं सर्वामपि सामग्रीं परित्यज्य दूरे निपतिता स्म'। सर्वमेतत्किनिमित्तम्? नास्य निमित्तमिद यद्वयं मोगलनरपतीनां विभवेन जीवामः। नापि चैतन्य कारेण यच्चाटुकारितया जीवनस्यामूल्यानभिनन्दनीयाश्च क्षणान्व्यर्थं विगमयितुमिच्छाम.। एतस्यैदमेव प्रयोजन यद्देशव्याप्तामनेकतामपनीय भारते एकराष्ट्रस्थापनस्य मङ्गलमर्जयाम.। अस्माभि-रनुभवन. माहात्म्यमर्थितम्। अतएव श्रीमतापि स्वस्योत्तरदायित्व न जातुचिद्विस्मरणीयम्।"

ओजस्विनीमिमां वक्तृतामभिनिशम्य हतप्रभोभूदकबरः। किमासीदेतस्योत्तरम्? स ह्यात्मनः प्रमादमङ्गीचक्रे। आसीदितिहासप्रसिद्ध' सोयमेव गुणोस्मिन्नकबरसम्राजि। तत्कालमेव स प्रमुखसामन्ता-माहूय पञ्चसहस्रसादिसेनां तदायत्तीकृत्य मेदपाटविजयाय विससर्ज। प्रस्थानसमये स्वप्रतिनिधिं मानसिंह-माह स्म सम्राट् - प्रियसुहृन्मान! राजपुत्रगौरवे सम्राट्सम्माने च न काचिन्न्यूनतानुष्ठीयेतेति न मन्ये

१ जहाजी बेड़ा। २. भविष्यति।

मुखतो वक्तव्य स्यात् । मोगलसाम्राज्यस्य सर्वस्वभूताद्वीरराजकुमारान्मम का सुमहती प्रत्याशेति स्वय भवान्वेद । केवलमिदमेव सूचनीय यत्स्वोद्देश्यनिर्वाहे प्राणपणेनापि यतनीयम्, सत्यावश्यकत्वे च त्वरितमहमसूचनीयो येन तत्कालमेवाह प्रचुरसेनया भवतः समीपमुपगच्छेयम् ।'

मानसिंहो माण्डलगढ मध्ये विसृज्य हलदीघाटीसन्निधौ वर्णाशनद्यास्तटे स्कन्धावारमास्थापयामास । राणा अपि संवादेनानेन निश्चिक्ये तदिदमेव यत्पर्वताश्रयेणैव सप्रति योद्धव्यमिति । अतएव सेनां संवहन् 'गोगूँदा' स्थानमामुञ्चन्, स हि मानस्कन्धावारात्क्रोशत्रितयान्तराले निजनिवेशमातिष्ठिपत् ।

सर्वतः पूर्वं गुप्तचरान्समन्तत सप्रेष्य तदिद जज्ञे कुमारो यत्कियती सेना मेदपाटेगिवुरिति । यदा चास्य विदितमभूद् यत्सौकर्येण सेय विजेतव्या, तदा सोयमायोधनस्यायोजन चक्रे । सप्रति स्वाधीनसेनापतीनतिसतर्कतया मज्जयामास सोयम् । यतोय सर्वथा जानाति स्म यदधुना योद्धव्यो न नाम साधारणः । मेदपाटिनः पार्थिवाः काम कपटपटुमलाउद्दीनमात्मगृहमाहूवयेयुः किन्तु समराङ्गणे प्राणेषु सत्सु न कदापि ते परावर्त्तेरन् । एकदा मानसिंहस्याभूद्विदित यद् राणा स्वल्पानेव सैनिकानादाय मृगयायै निर्गत इति । आसीच्च बहूना परामर्शो यद्राणानिग्रहस्य सोय सदवसर इति । किन्तु मानी मानसिंहस्तदिद वीरनीतेः, विशेषतश्च स्वस्वरूपस्यानुरूप नानुमेने ।

प्रारेभे समुखसमरः । राणा निजसैन्य द्विधा चक्रे । एकमात्मनोऽधीनतायाम् । अपरमन्यस्य निजसामन्तस्याधीनतायाम् । एतदनुसार मानसिंहोपि द्वेधा विभक्तवान्सेनाम्—एका निजस्य सैनापत्ये, द्वितीया यवनसेनानायकस्याधीनतायाम् । प्रथमदलस्य [अर्थात् राणा-मानसिंहयोर्हिन्दुदलस्य] यदा प्रारेभे सवर्षस्तदा द्वयोरपि राजपुत्रदलयोः क्षत्रिया न मिथः परिचीयन्ते स्म यदय राणापक्षीयः, अय च सम्राड्दलभुक्त. । मोगलसैनिका मोगलसेनापतिं पप्रच्छुः कस्मिन्दले प्रहराम इति ।

हन्त सोय सेनापतिर्मुस्लिममनोवृत्तेरासीत् । मुस्लिममनोवृत्तिः केवल मुसल्मानानामेव पक्ष पोषयति, काम ते सत्यपक्षस्था भवेयुरथवा गर्ह्यपक्षस्थाः । तेषा संसार इस्लामस्य ससार. । मुसल्मान विहायान्यजातीयः कश्चित्पुरुषो यदि मुस्लिममनोवृत्तेः पुरुषस्य प्राणातिगामपि सहायता कुर्यात्तथापि सत्यवसरे स हि उपकारकेण सह कृतघ्नताव्यवहार न मानयत्यनुचितम् । प्रत्युत इस्लामेतरस्यापकरण ते स्वधर्मस्य महत्त्वपूर्णं पालनं मन्यन्ते । अत एव सेनापतिरसौ प्रादादुत्तरम्—'जे हर तरफ किशवद कुश्ता सूदे इस्लामस्त [कोपि कस्मिन्नपि दले म्रियताम्, इस्लामदलस्य लाभ एव] । मुस्लिमसैनिका उभयपक्षीयेष्वेव हिन्दुषु बाणादीन्निचिक्षिपुः । उभयत एव हिन्दवो विससृजुः प्राणान् । अत एवास्य युद्धस्य परिणाम' स्पष्ट परमेश्वरायत्त एव ।

संप्रति समरे प्रावर्द्धिष्ट राणासैन्यमग्रे । मानसिंहः प्रवृद्धय निरुरोध तदिदमाक्रमणम् द्वयोरपि दलयोर्न्यबध्यत दन्तिना मिथो युद्धम् । प्रतापश्च मानश्च द्वावेव निजनिजशौर्यस्य ददतु' पूर्णं परिचयमेतस्मिन्संग्रामे । पन्नगो यथा विकृतिं प्रापित एव भयङ्करतामवलम्बते तथा द्वयोर्दलयोः क्षत्रिया अपि निजमानमर्यादा सङ्कटगतामवेत्य प्राणपणेन तद्रक्षायै भयानकमयुद्ध्यन्त । राजन्येषु नैवविधः समरः शताब्दीष्वेतासु जातः स्यादित्यैतिहासिकानामुदीरितम् । कदाचिन्मेदपाटीया. समभूवन्विजयिनस्तर्हि कदापि कच्छपघाता' प्रादर्शयन्प्रकामवीरताम् । भयङ्करे ग्रीष्मे भयानकोय समरो वीरहृदयेष्वपि क्षोभम्, वीरप्रणयिनाममराणा मनसि च कौतुकमुत्पादयामास ।

सम्राट्सुतः सलीमोऽपि दन्तिनमेकमारूढो देशैकवीरयोरनयोर्द्वन्द्वयुद्धमपूर्वं पश्यन्नासीत्। सहसा प्रतापप्रेरितः पृषत्क[1] एकः सम्राण्मतङ्गजे प्रापत्। सलीमो दैवेन रक्षित किन्तु तदाधोरणस्तदैव प्रापत्पञ्चताम्। मानसिंहः स्वयमुपागमत्सद्मेऽस्मिन्नवसरे। स हि निजबाणैः प्रतापमाहत मूर्च्छितं च चक्रे। चेतकनामकस्तदीयोऽश्वः स्वामिनो विपत्तिमनुमाय तदैव सग्रामाद्दूरं निन्ये।

सम्प्रति सेनासु प्रावर्द्धत तुमुलम्। मेदपाटीयाः पराभवमवापन्। सहस्राधिका प्रापुः परलोकपथिकताम्। अभून्मानसिंहो विजयी। समरे समाप्त एव स हि सर्वतः पूर्वं द्वयोरपि पक्षयोराहतानामुचितपरिचर्यायाः मृतानां सत्करणस्य च चक्रे प्रबन्धम्। अद्यावधिजातेषु हिन्दु-मुसलमानसमरेषु सर्वतः प्रथम सोयमेव सग्रामोभूद्यत्र विजयशालिना मुसलिमपक्षेण क्षतविक्षताना विपक्षीयहिन्दूना प्राणरक्षायै प्रबद्धं स्यात्।

प्रतापसिंह पूर्णतया पराजित्य, चित्रकूटे निजवैजयन्ती निधाय च मानसिंहः सेनयावशिष्टया सह परावृते राजधानीम्। आसीदकबरो दिल्ल्यामेव तदानीम्। मार्गे अप्रार्थितापि स्नेहवशात् प्रहिता सम्राड्वाहिनी मिलिता तस्य, या तत एव परावर्त्यं नीता तेन सार्द्धं स्वेन। अकबरो यदेम विजयसवादमशृणोत्तदा धावन्नसौ मानसिंहेन सगन्तुमागादभिमुखम्, तथा चाश्लिक्षत यथैकः पिता विजयिन प्रियपुत्रमालिङ्गति। यदा स युद्धस्य सर्वं वृत्तान्तमशृणोत्तदा मानसिंहस्य वीरतामुन्मुक्तहृदयेन प्राशसीत्। वार्तापि सेयं सत्यैवासीत्। पर्वतप्रान्तेऽवस्थितस्य मेदपाटस्य विजयो मोगलसेनाया नासीत्कथचिदपि सुकरः। सेय मानसिंहस्यैव वीरतासीद्यया तदिद दुष्करमप्यकारि।

मानसिंहेन समये विदितमासीद् यद् द्वितीयो मोगलसेनापतिरस्मत्सैनिकानपि निहन्तुमाज्ञापयत्समरे। तदिदमवगत्य सुतरामकुप्यन्मनस्वी मानसिंहः। यदा ह्यकबरस्तस्मै पुरस्कार प्रादात्तदा निर्भयमवादीन्मानसिंहः—'श्रीमन्! पुरस्कारस्तु राजपुत्राणा कृते सोयमेव यद्दीयेत तेभ्यो मृत्युः। एतस्य स्वीकृतिरपि प्रादीयत पूर्वम्'।

अकबर सासूयमुदतरत्—'अहो किमिदममङ्गलमाभाष्से। मृत्युः स्याद् भवतः शत्रूणाम्। त्व जीव, सहस्रं शरदश्च जीव। भवद्भुजयोरेव मे साम्राज्यमवलम्बितम्। सत्यमह वच्मि—भवदुपकारान्नाहमाजीवनमपि विस्मरेयम्। अत एव किञ्चिदिम पुरस्कार मे कृतज्ञतास्मारकरूपेण स्वीकर्तुं प्रसीद।'

नि.साध्वसमुक्त मानसिंहेन—'एकस्य मुसलमानशासकस्य मुखाद् हिन्दुरेको, यो हि तस्य विजये प्रधानसहायकोभूद् यद्विधस्याऽऽदेशस्याऽऽशा कर्तुं पारयते सा ह्याज्ञा साम्प्रतमेव उदयपुरविजये प्राप्ता मया, किमधुनापि किञ्चिदन्यदवशिष्टम्?'

वराकोऽकबरो नाद्यावध्यपि किञ्चिदवाबुध्यत, चकितोऽवोचत स—'किमिदमाभाषसे, किं काचिदघटत दुर्घटना? यावत्काल नावबोधयसि मा सर्वं वृत्त, न तावन्मे हृदये निश्चिन्तता।'

सम्राजो निर्भयमन्तःकरण विदित्वा समग्रमपि वृत्तान्तमवाबोधयन्मानसिंहस्तम्। श्रुत्वैवाकबरः परमं प्राकुप्यत्। मध्येसभमेव मुसल्मानसेनापतिमिम निजपदत प्रच्याव्य क्रूरतर दण्डयामास। स्पष्टतर घोषयामास—'यो मे शासने दूषितानेवविधान् भावान्प्रसारयितु प्रयतेत देशद्रोहिणस्तस्य जीवन धन च मे निकटे भूरि सकटे पतेदिति सर्वै सर्वदा बोद्धव्यम्।' मानसिंह चावोचत् 'एतदर्थ सूचयित्वा भवता मे भविष्यदर्थे सावधानता विहिता। अह निश्चित विश्वसिमि यन्मे राज्ये नैवंविधा दुर्घटना पुन

१—बाण।

संप्रेटेत । यदापि हिन्दून् प्रति मुसलमानस्य कस्यचिद्दुर्व्यवहारं भवान् शृणुयात्तत्कालमेव नि संशयं मा सूचयेत् । प्रिय मान ! सम्प्रति स्वीकुरु मे तदिदं प्रणयोपायनम् ।'

मानसिंहः प्रसन्नमुद्रया परःकोटिमुद्राणामुपहारमिमं स्वीचक्रे ।

[७]

ताटस्थ्येन संमुखसमरे

राणा प्रतापः पराजयमिमं हृदयकण्टकमिव न शशाक विस्मर्तुम् । शक्तेः सञ्चयेऽपि मुहुर्मुहुरसफलता, स्त्रीपुत्रादीनां वनाद्वनमाहिण्डनम्, वन्यफलैर्जीवनं चेत्यादि कियद्वा तस्य सह्यं स्यात् ? अत एव विवशतयाऽकब्बरस्याधीनतां प्रत्यभिमुखीभवन्नपि मन्त्रिणो भामाशाहस्याभूतपूर्वेण त्यागेन प्रोत्साहितः पुनरसौ सैन्यसंग्रहमकरोत् । देशभक्तो भामाशाहः सर्वामप्याजन्मसञ्चितां संपत्तिं समार्पिपत् स्वामिने । सम्प्रति पर्वतनिलया भिल्लादयोऽपि प्रतापस्य सेवां स्वीचक्रुर्येषामद्भुताऽऽसीत् क्षमता शरसंधाने । एवं नवीनशक्तिसञ्चयेन शनैः शनैरसौ अपहारितानि निजस्थानानि पुनरधिचक्रे । पुनरस्य प्रभावस्तत्प्रान्ते परितः प्रासरत् ।

यथासमयमेव संवादः प्राप्नोन्मोगलराजधानीम् । विषीदन्नकब्बरः पुनराह्वयन्मानसिंहम् । मानसिंहः सर्वमिदमवगत्याऽवोचत्—'नि संशयं प्रताप एको वीराग्रणीः । तस्य शौर्यं देशाभिमानं च प्रत्येकं मेदपाटीयः पूजयति । स यत्कर्तुमिच्छति नाऽसंभवं तत् ।'

मानसिंहो मुसलमानसेनापतेर्हिन्दून् प्रति दुर्व्यवहारं नाद्यापि व्यस्मरत् । तस्यासीदभिलाषो यद् अस्मिन्वारे कंचिद् यवनमेव प्रेषयेदकब्बरो येन मे साहाय्यस्य शौर्यस्य च तारतम्यं परिचिनुयादसौ । साम्प्रतं त्विदमपि परिज्ञानं नासीत्कस्यचिद् यत्प्रतापः कस्मिन् स्थाने तिष्ठतीति । अकब्बरस्येच्छानुसारं मानसिंह एव गवेषणाभारमिममगृह्णात् । भिल्लानां भयङ्करमाक्रमणम्, गिरिगह्वराणां मार्गाणां च विषमताम्, अहर्निशं शत्रुभिर्निजपरिवारणस्य भयमित्यादीन्यविलान्यपि सङ्कटानि विषह्य कठिनतया मानसिंहः प्रतापस्य निवासानुसंधानमकरोत् किन्तु नासीत्साध्यं तस्य निग्रहणम् । यतः स न्यलीयत कस्मिंश्चिद् गिरिगह्वरे ।

मानसिंहोऽस्मिन्वारे सैनापत्यायासीत्तटस्थः । अत एवाऽनिच्छन्नप्यकब्बरः शहबाजखानं प्रधानसेनापतिं नियम्य महतीं सेनां प्रैरयत्प्रतापस्य निग्रहाय । तत्सहायतायै च प्राहिणोन्मानसिंहम् ।

शहबाजखानस्य दुष्प्रकृतिं पूर्वत एव पर्यजानान्मानसिंहः । इतः शहबाजोपि भगवन्तदासमानसिंहयोः प्रत्येकयुद्धविजयैः सम्राट्समादरैश्चान्तरीर्ष्याकलुषः प्रासीदन्मानसे यन्मानसिंहः साम्प्रतं सहायकः केवलं, न नाम नायकः सेनायाः । किन्तु मानसिंहः सत्यमासीन्मित्रं सहायकश्च सम्राजः । अतएव क्षत्रियाणां मनोवृत्तेरनभिज्ञस्य शाहबाजखानस्य समये समये जायमानं प्रमादं स मुहुर्मुहुरसूचयत्सत्यपि तस्य कोपे । किन्त्वन्ते सेनापतेः कुटिलमनोवृत्तिः प्रतिपदमरुन्तुदाभून्मानसिंहस्य । अतएव तत्र निवासमयशस्करं भावयन्नवोचदेकान्ते सेनापतिम्—'सेनापतिमहोदय ! प्रतिक्षणं नास्य विस्मरणं स्याद् यदस्मिन्वारे यैः सह संयोद्धुं श्रीमानुपगतस्ते किल लोकातिशायिनः प्राणिनः । तेषां जीवनचर्या प्राणातिशायि साहसं चालोक्य प्रपलायिष्ट वीरमानिनामपि साहसम् । एतदुपरि साम्प्रतं ते निजमातृभूमेर्भक्तिभावेनानुप्राणिताः, प्राणानपि तृणीकृत्याऽन्तिमयुद्धाय सन्नद्धाः । एवमवस्थायां स्वल्पेऽप्यनवधाने विजयाऽऽशायाः स्थाने प्राणाशापि भवेद्दुर्लभा । नैव भवेद् यत्किञ्चिन्मात्रप्रमादादेव अद्यावधिसमधिगता पूर्वापि सफलता

विफला भवेत्। अहं नैकवारम्, अपि तु वारं वारं भवतः प्रमादमन्वचयम्, किन्तु शोधनस्य परिवर्ते क्रोधनभावमुपगतो भवान्। अतएव नीतिमिमामनभिरोचयन्नहं नात्र मनाक् तिष्ठामि। हितसूचनामिमां न विस्मरेद्भवान्' इत्युक्त्वैव मानसिंहो निजपित्रा सह परावर्तिष्ट समीपे सम्राजः।

शहन्शाजः प्रासदन्मानसे यत्कण्टको व्यपगतः, प्रतापविजयस्य यशोभागहमेव साम्प्रतं भवेयम्। सूचयेय सम्राजे यत्सोऽयं विजयो हल्दीघाटीविजयादपि महत्त्वशाली। प्रारभ्यत समरः। प्रताप. पुरातन-निजनीते प्रत्यकरोत्पुनरावृत्तिम्। अर्थात् पर्वतगहने प्रतिपन्थिनं परिवेष्टय स्वयमसस्पृष्टः पर्यगच्छत्। पर्वतमार्गाणामनभिज्ञः शहन्शाजस्तत्रैव परिभ्रमन्महता कष्टेन सहायकस्यैकस्य द्वारा प्रेषयामास सहायता-प्रार्थनां सम्राजः समीपे। मानसिंहात्सर्वं वृत्तमवगत्याऽकबरः पूर्वमेवासीदसन्तुष्टः, साम्प्रतं संवादेनानेन समकुप्यत्सुतराम्।

किन्तु निजस्यानिच्छायामपि साम्राज्यस्य लज्जारक्षायै प्राहिणोद्विवशः सैन्यमकबरः। परं व्यर्थ-मखिलम। असंभवमासीत्साम्प्रतं शहन्शाजस्य कृते प्रतापस्य निग्रहणम्। क्षत्रियमल्लानां भिल्लानां भल्लानां चोभयेषामेव मर्मणि मर्मणि परिचितोऽसौ संप्रहारे न प्राप पलायनस्यापि पन्थानम्। अभूत्पराजयो मोग-लानाम्। हारितानि निजदुर्गाणि पुनः प्रत्यधिकर्तुं आरेभे राणा। कुटिलाधिराजः शहन्शाजः साम्प्रतम-जानान्मानसिंहस्य शौर्यं च शिक्षां च। मोगलसाम्राज्यमात्रे मानसिंह एवासीद् राजपुत्रवीराणां गतेर्मतेश्च विज्ञाता। मेदपाटक्षत्रियाणां नीतेस्त्वेकमात्रमासीदसावेव परीक्षानिकषः। प्रान्येऽपि मोगलसाम्राज्ये न कश्चिदासीदेवंविधो यः समुखसमरे पराजयेत प्रतापम्।

[८]

भारतस्य पश्चिमोत्तरप्रान्ते

जनितातुलहर्षाः समागमन्वर्षाः। वियति विशङ्कटा नीरदघटा अपूर्वामेव च्छटां विच्छुरयामासुः। कादम्बिनीमधिरुह्य नयनोन्मादिनीमवलम्बते स्म शोभां सौदामिनी। प्रवहन्तीनां सरः-स्रवन्तीनां तटे हरितहरितोद्यानानां निकटे सम्प्रमोदमनुभवन्ति स्म शोभामिमां भ्रमणविलासिनः। सम्राडकबरोऽपि मित्रैः सह समवस्थितो विलोकयति स्म परितो विसारिणीं शोभामिमाम्। भारतस्य प्राकृतशोभया विवशीकृत-हृदयो नियोजयामास वाचमिमामसौ—सत्यमीश्वरो भारते यामनुकम्पां विदधे न सा विविधेष्वप्यन्यदेशेषु। हरितहरिता भूमयः, प्रवहन्त्यो नदी-नालिकाः, सुन्दरसुन्दरा गिरिकन्दराः कान्यस्मिन्देशे विलोक्येरन् भारतमन्तरा।

मान०—भवेयुरन्येऽपि देशाः सुन्दराः, किन्तु कस्मिंश्चिद्देशे काचिन्न्यूनता तर्हि काचिदधिक-तापि। कुत्रचिज्जलस्यैकान्तमभावस्तर्हि कस्मिंश्चिद्देशे जलस्यैव सर्वतः प्राचुर्यम्। परं भारते प्राकृत-सौन्दर्यस्योल्लासकाः सर्व एवावयवाः समानरूपेण प्राप्येरन्। अत एव भारतमिदं भूखण्डेऽप्यखण्डे परिगण्यते तावदप्रतिमम्।

समभूत्सम्राजः प्रस्तावः—'अस्मिन्मानसोन्मादके रम्यसमये गानमावश्यकम्'। तत्कालमाकार्यन्त देशदुर्लभा वेशवनिताः। अभूद्रम्यैर्वाद्यैः सुमधुरसंगीतम्। पूर्वं तु निसर्गमधुराः स्त्रियस्ततोऽपि वारा-ङ्गनास्तत्रापि प्रणयगीतिः, तदुपरि प्रस्फुरन् ऋतोः प्रभावः। सर्वैरपि संभूय प्रमदमुपनीतं मानवमनः। सहैव प्रमोदबन्धुरा सुरापि स्फटिकभाजनेष्वितस्ततः समखेलत्। सर्वैरमीभिरुपकरणै रम्योत्साहसमुत्तेजि-तस्तानसेनोऽपि विरहवेदनागीतिमेकामकस्मादगायत्। गानं किमासीत्, अलौकिकः समोहनमन्त्रः। मेघा अवर्षन्, प्रचुरं चावर्षन् गगनतलान्नयनयुगलाच्च।

विनोदस्यास्याऽनन्तरं प्रारभ्यत भोजनम् । भोजने नानाविधव्यञ्जनान्यन्तरा समभूवन् पुष्कलानि फलानि । विलम्बपर्यन्त समभूवन् विश्रब्धसलापाः सहैव भोजन चापि । न्यवर्तयंश्चिरात्पानभोजनम् । ततो निवृत्ता एव जना. स्वस्वावासोन्मुखा अभूवन् । समग्रदिवसस्य परिश्रमः सर्वानभ्यकरोद्विवशान्विश्र-माय । परावर्तन्त गृहान् सर्वेऽपि । मानसिंहः अन्ये च केचित्परिगणिताः समतिष्ठन्त सविधे सम्राजः । जनान्तिकमालोक्य मानसिंहः समवोचत्—'आसीन्ममेच्छा यदस्मिन्प्रमोदसमये न समागच्छेत्कश्चिद्विघ्नो विनोदे भवतः, किन्तु सहसा समुपस्थितया विकटपरिस्थित्या भवता सह मन्त्रणार्थमहमापादितोऽस्मि विवशः । चेदप्रिय न प्रतीयेत तर्हि निवेदयेयम् ।'

"मानसिंह यदि कार्यमावश्यक तर्हि ब्रूया निःसशयम् । ससारः शक्नुयात्काम वक्तुमकबर' कामुको विलासी चेति, वक्तु नाम सः । किन्तु कामुकता विलासिता वा मे साम्राज्यहितसाधने नोपनेतु शक्नुयाद्विघ्नम् । साम्राज्यनिर्माणे तस्य हितसपादने च पारयाम्यहमश्रान्त परिश्रमितुम् । ब्रूहि तूर्णं ब्रूहि किं वृत्तमिति ।"

मान०—(आत्मगतम्) सम्राजः स एवाय गुणो विवशीकृतवान्मा मित्रतामवलम्बितुम् । गीत-विलासादिक प्रियमेतस्येति सत्यम् । किन्तु नानेन सोय साम्राज्यमपवर्जयति । यदापि विपदमुपगता भावयति, निवारयति तामेता सर्वप्रयत्नै. । (प्रकटम्) सवादो मह्यमावेदितो यद् भवतः सापत्नेयो भ्राता मिर्जा मोहम्मदहकीमः पञ्चनदसीमाप्रान्ते भयङ्करमाक्रान्तवान् । प्रसृत्य चाग्रे सोय साम्राज्यमपि द्रोग्धु कामयते ।' साम्प्रतमेवाऽप्रतिकृतः प्रवृद्धो वह्निरिव निरुपायो भवेदिति जाने ।

अक०—(आश्चर्यमुपगच्छन्) हन्त नासीदियमाशङ्का मे भिरजात' । तत्साहाय्येन पश्चिम-प्रदेशानधिकर्तुमहमैषिषम् । अस्तु, निर्दिश कञ्चिदुपायम् ।

मान०—अभियोक्तृणा समीपे सेनासप्रेषणमन्तरा कोन्य उपायः ? अवश्य काचित्सुशिक्षिता योग्येनाधिकृता सेना तत्र नियोज्या । नान्यथा सीमाप्रान्तस्य निर्भयता ।

अक०—मन्त्रोऽयमवश्य हितकृत्, किन्तु एतावद्दूर को वा सोत्साहः प्रेष्यतामित्येव विचारणीयम् ।

हिन्दुविद्वेषिणो यवनान्न विस्मरति स्म कदाचित् मानसिंहः । तेषा सर्वदार्थ मुखमद्दृ न वाञ्छन्-वोचत्—'अस्मिन्वारे त एव प्रेषणीया ये मुहुः कथयन्ति यद्विजयकर्तव्यानि सर्वाणि मानसिंहायैव दीयन्ते, वय प्रतीक्ष्यैव निराशास्तिष्ठामः' इति ।

अक०—(सस्मितम्) वीराग्रणीर्मान ! मानयाम्यह यद्भवन्तमन्तरा नान्य' कार्येऽस्मिन् सफलः स्यात् । किन्तु भवदिच्छानुसार श्व एव साम्राज्यसभाया प्रस्तावमिममुपस्थापयिष्ये । न मे कस्माच्चिदाशा । त्व सर्वेदि जातुचिद् यदह भवद्गुणान्न परिचिनोमि, अत एव न प्रकाशयामि मुहुः । किन्तु भवद्गुणैः प्रकाम वशीकृतस्तेषा कीर्तनमपि प्रभावमन्दीकरण जाने । अस्तु, श्वस्तदिद निर्णीयेत । सप्रति विश्राम्यतु भवान् ।

अभूत्परदिने साम्राज्यसभा । उत्सवनिसर्गा यवनास्तद्दिनेऽपि प्रमोदमहोत्सव भावयन्तः समुदग्र-शृङ्गारा. समाजग्मुः सभायाम् । किन्तु समये स्वय सम्राडेव सीमाप्रान्तस्य परिस्थितिं प्रकाश्य—तत्र प्रेषणीयायाः सेनाया' कृते समुपस्थितेषु सदस्येषु सेनापते' कस्यचिद्वरण सूचयामास । किन्तु प्रस्तावं श्रुत्वैव व्यलोक्यत सर्वतो निस्तब्धता । वीरताप्रकाशनाय चिरायोत्कण्ठिताना न कश्चिन्निश्वासमपि जग्राह ।

श्रीमता मानसिंहेन यदा दृष्टं न कश्चिद्वीरः प्रगल्भते साम्राज्यकार्याय, तदा निर्वीरमुर्वीतलमिति श्रवणात्पूर्वमेव सविनयमुत्तस्थौ स्वस्थाने।

अकबरः सर्वां स्थितिं प्रत्यक्षीकृत्य प्रकाशमब्रवीत्—'अद्य मन्ये सर्वैरवगतं स्याद्यन्मानसिंहं किमिति सर्वतोधिकं सम्मानमासादयति। अहमाशासे ये स्पर्द्धाशीलास्ते समाद्रियेरंस्तस्योदारतासहचरीं वीरताम्। ये तु साम्प्रतमपि विप्रतिपद्येरंस्ते युद्धयात्रायामस्या समुत्थमागत्य निवर्तयेरन्।' अदृश्यत तदनन्तरमपि नीरवता।

तस्मिन्नेव समये मानसिंहं पञ्चाम्बुराजधान्याः (लाहोरस्य) प्रधानशासकं चकार, राजकुमारस्य मुरादस्याधीनताया नियमयामास चैका वाहिनी तस्याधिकारे। प्रसन्नतया स्वीकृतेऽस्मिन् सम्माने मानेन, व्यसर्ज्यत सा राजसभा।

एकस्य वर्षस्य पूर्तेरभ्यन्तरमेव मानसिंहेन सेना सा स्वामीप्सितानि सर्वाण्येव कार्याण्यशिक्ष्यत। प्रान्तीयमार्गाणां भयानकता पूर्वमेव बोधिता तेन सैनिकेभ्यो येन समये ते तदर्थं सनद्धाः स्युः। शुभे मुहूर्ते प्रातिष्ठत मानसिंहः। स्वयमकबरस्तस्मै विजय-माल्यमर्पयामास। कठिनमार्गानुल्लङ्घयन्ती प्राप लवपुरं मानसेना। तस्याः पुरस्तादेव मिर्जाकर्णयोः प्रययौ मानसिंहस्य वीरता च यशश्च। मिर्जा राज्यादिप्रदानद्वारा मानप्रलोभनाय स्वयमुपययौ तस्य स्कन्धावारे। किन्तु मानसिंहो नैकामपि तत्कथां कर्णे चक्रे। स्पष्टमनेनोक्तं यदि कुशलं वाञ्छसि तर्हि सह मया प्रतिष्ठस्व सम्राजः समीपे।

एवमेव दिनेषु सिन्धुप्रान्तीयाच्छासकादप्यसन्तुष्टः सम्राट् सिन्धुप्रदेशस्यापि नायकं मानमेव निर्ममौ। स्वयं चाकबरो महतीं चमूं कर्षन्नुपाययौ सिन्धुम्। द्विगुणितोत्साहो मानः सम्प्रति 'काबुल'प्रदेशोपरि चक्रेऽभियानम्। सैनिकाः 'काबुल'नदीलङ्घने इतस्ततश्चक्रुः, किन्तु तुरगारूढः श्रीमानः स्वयं पुप्लुवे नद्यां सर्वतः पूर्वम्। सर्वापि सेना निःशब्दं तमन्वगात्। परपारे गत्वा निबबन्ध महासमरम्। समग्रोपि काबुलप्रदेशो मानसिंहस्याधीनतां स्वीचक्रे। शत्रवः साहसमिदं दृष्ट्वा कान्दिशीकाः पलायिषत।

सुप्रसन्नः सम्राट् पुरुषपुर (पेशावर) प्रान्तस्य सीमाप्रान्तस्य चापि शासकं मानसिंहं नियम्य परावर्तिष्ट निजराजधानीम्। न नाम केवलं विजयमात्रेण कस्यचिद्देशस्य शासनं सम्भवति। अनेऽस्याः पर्वतवासिनो यवनाः (अफगान) नित्यनवीनैरुपद्रवैः शासकानपीडयामासुः पूर्वम्। किन्तु 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इति नीतिं प्रयुञ्जानो मानो देशमात्रे तादृशीं क्रूरशस्त्राहतिं प्राचारयद्यां दृष्ट्वा 'त्रायस्व त्रायस्वे'त्याक्रोशन्तः शरणमुपययुस्तेऽपि। ततः समयोचितं बुद्ध्वा कांश्चित्क्षमे, कांश्चिच्च प्राणदण्डेनादण्डयद् येन सर्वेऽपि क्रूराः समभूवन्नतमस्तकाः।

तदेव तेषां दुष्टां वृत्तिं दमयित्वा शनैः सुशासनेन सर्वांस्तान् वशे चक्रे। यत् सुखं या च शान्तिर्यद्विधा च सम्पत्तिस्तैरस्मिन् समयेऽनुभूता न सा तैर्यवनशासकानां शासने दृष्टा पूर्वम्। अतएव सुखशासने वसन्तः सर्वे मानगुणगीतिमगायन्मानसेन।

[६]

सिद्धान्ते निर्भयता

अकबरो न मेने केवलं राजवृद्ध्यैव स्थिरतां। स हि निश्चितशासनपद्धतिं कर-व्यवस्थां-मुद्राप्रचलनं नानाविधपरिमाणादिनियमनं चापि प्राचारयद्भारते राजटोडरमल्लस्याभिमतेन। किन्तु विना एकमादर्शं विना चैकं धर्मं यत्नशतैरपि न साध्यं सुदृढमेकं राष्ट्रमिति चिराद्विचारेणासौ निरधारयत्। अत

एव आर्य-जैन-बौद्ध-ईसाई-इसलामप्रभृतिसर्वधर्माणा विदुषामाह्वयदसौ समये समये सभाम्। सममानयच्च सर्वान्। अन्ते फैजी-अब्बुलफ़ज़लयोर्मन्त्रणया सर्वधर्माणा मूलसिद्धान्तान् सगृह्य नवीनमेक धर्म निर्ममौ यस्यासीन्नाम 'दीने इलाही'। इदानी जनेष्वेतस्य प्रचारमचिन्तयत्। अब्बुलफज़ल फ़ैज़ी चेति द्वावपि सर्वतः प्रथममस्य दीक्षामग्रहीषाताम्।

सर्वं भारतमभिव्याप्य स्थिते हिन्दुधर्मेऽस्य सप्रदायस्य प्रवेश वाञ्छन्नसौ मनसि निश्चिकाय यदि भगवन्तदास-मानसिंहौ मतमिद स्वीकुर्याता तर्हि सर्वस्यामपि हिन्दुजनतायामेतत्प्रवेशस्य द्वारमनायास-मुन्मुक्तं भवेत्। अतएव समागते मानसिंहे मर्मस्पर्शिभिर्वाक्यैर्भारतीयानामसघटितावस्थयाऽनैक्यजनिता दुर्व्यवस्थामवर्णयत्सम्राट्। मानसिंहेन सरलतया प्रत्युक्तम्—"एतस्योपायः केवलमेकमात्रः सोयमेव यत्सुराज्ये (सुशासने) न भवेत्कदाचिदप्यन्तरम्। शासिताना मनसि कल्पनापि नोदयेद्यत् शासनव्यवहारो द्वैविध्यदूषितोस्तीति"।

अक०—कथमिद तावत्काल सुशक यावत्काल भारतीया एकधर्माणो न भवेयुः।

"अपि श्रीमानखिलान् माहम्मदान् सपादयितु वाञ्छति ?"

"इद तु मादृशैः सहस्रसम्राड्भिरपि न साध्यम्। यथैव 'सर्वे मुसल्माना' स्यु'रिति चिन्तन तथैव पतनमिति निश्चितम्"।

"तदा पुनः ?"

"अहं वाञ्छामि सर्वेपि सर्वेषामेव धर्माणा तादृशान्मूलसिद्धान्तान् मानयेयुर्यैर्धर्माणा मताना च मिथो भेद एव न प्रतीयेत। 'दीने इलाही' सप्रदाये सर्वलोकाना रुचेरनुसार पर्याप्तो नूनमवकाशः। अहमिच्छामि भवानपि तन्मतदीक्षितो भवेत्।"

"इद निश्चित वित्त यद्भारते 'दीने इलाही' न कदाचिदपि प्रचलेत्। स्वार्थसाधनाय भवतश्चा-टुकारितया कतिपये जनाः स्वल्पसमयाय चेत्स्वीकुर्युस्तदापि किमनेनाऽस्य प्रचार सभवी ?"

"अह त्वसम्भव न मन्ये"

"सत्या वार्ता चेदाकर्णयितुमिच्छन्ति भवन्तस्तर्हि असभवम्"

"किमिति ?"

"अस्य मूल स्वार्थोपर्यवलम्बितम्। स्वार्थसाधन च सावधिकम्"।

"कथमेतत् ? अह तु भारतस्याऽसंघटितामवस्था भावयन् निःस्वार्थं स्थापयितुमिच्छाम्यमुम्।"

"ईश्वरभावनापूर्वकं सूक्ष्मविचारेण श्रीमन्त एव गवेषयन्तु यद् निभृतनिलीने हृदयस्यान्तःकोणे भावनाया अस्या अस्फुटरूपेण जन्म जात न वा यदह सुशासनेन सह एकधर्मप्रचारणस्यापि श्रेयश्चिर-कालायोपार्जयेयम्।"

प्रायः सत्यशीलोऽकबरो नैतस्य समुचितमुत्तर लेभे।

[१०]

काबुलमारभ्य विहारपर्यन्तं प्रभुत्वम्

अन्योऽदूरदर्शी सम्राट् चेदभविष्यत् काममकोपिष्यत्, किन्त्वप्रियेणाऽप्यनेनोत्तरेणाकबरः प्रासीद-दन्तःकरणे मानसिंहस्य नैतिकबलमवगच्छन्। अस्तु, आसीत्कुमारो विहार-वङ्गयो शासकः, अत एवो-

त्तरपश्चिमे सुदृढं प्रबध्य, स्वयमकबर तन्निरीक्षकं परित्यज्य समागमदसो वङ्गान् । इतोऽकबरस्य पुरातनशत्रव उजबेगवशीया सीमाप्रदेशे उत्तरोत्तरमभजन्प्राबल्यम् । तेषां नायकस्याब्दुल्लाखानस्यातङ्कः प्रासरत्समन्तात् । काबुलस्य प्रबन्धकर्ता यो हि मोगलसाम्राज्येनासीत्स्थापितः स तु न प्राभवत्तस्य निरोधे। किन्तु स्वस्यैव समुखे सीमाप्रान्तस्य तादृशी प्रभुत्वहानिर्नाऽभ्यरोचताऽकबराय । प्रत्येककठिनकर्मणि मानसिंहस्यैवाऽऽकारणं तु सकोचादिव नैच्छदकबर । किञ्च मानसिंहस्य परोक्षे वङ्गेष्वपि नित्यनवीनानामुपद्रवाणामासीदाशङ्का । अत एव मानसिंह तत्रैव निधायान्यस्य कस्यचन शासकस्य प्रबन्धं यावद्विचारयति तावदेव काबुलप्रबन्धकर्तुर्वृद्धस्य मिर्जामुहम्मदहकीमस्य निधनवृत्तमुपागात्कर्णयोरकबरस्य ।

इदानी काबुलस्य सीमाप्रदेशस्य चोभयोरेव सुदृढ शासको नाभूत्तस्य दृष्टौ मानसिंह विहायाऽन्यः कश्चित्सेनापतिषु तस्य । अतएव विवशोऽसौ मानसिंहमाहूय शासकमकरोत् काबुलप्रदेशस्य । किन्त्वत्रागत्य शासनव्यवस्था दृष्ट्वा च मानसिंहस्य दुःखमभूत् घृणा च । दुःखमिदमासीद् यद् गमनसमये मानसिंहोऽस्य देशस्य तादृशी व्यवस्थां स्थिरामकरोद् यत्तदनुसार यदि मिर्जामुहम्मदोऽत्र शासनमकरिष्यत्तर्हि न कश्चिदसन्तोषः प्राभविष्यत् । किन्तु मिर्जा शासनप्रबन्धं किं जानीयात् ? कुत्रचिद् बलात्कार कुत्रचिच्च नम्रता क्वचिच्च लोभ प्रयुञ्जानो येन केनचित्प्रकारेणासौ दिनान्यत्यवाहयत् । शासनस्य या प्रतिभा सा क्वासीत्तस्मिन् ?

अतएव सर्वत पूर्वं मानसिंहः शासनप्रबन्धमवात्सुव्यवस्थितम् । नास्मिन्कर्मणि तस्याभूत्काठिन्यम् । विभिन्नविभिन्नप्रदेशेषु शासनव्यवस्था नानाधा प्रयुञ्जानस्य बाल्यादेव शासकात्मजस्य तस्य, एतद्विषयकोऽनुभवो भूयान्प्रवृद्ध आसीत् । किन्तु मानसिंहस्याऽऽगमने येषां स्वार्थसिद्धौ क्षतिरुपातिष्ठत ते मानसिंहस्य विरोधे षड्यन्त्राण्यरचयन् । प्रजासु बहुनमत्याचरन्, अकबरपरिपन्थिभिरुजबेगवशजैः सह सभूय राजविद्रोहमुदतिष्ठिपन् । उजबेगसामन्ताश्चाततायिनामेषां साहाय्येन काबुलविजयस्य लालसामधारयन् । किन्तु न ते मानसिंहस्य नीतिमशतोऽप्यविदन् वराका । मानसिंहेन सर्वापि परिस्थितिः प्रान्तस्यास्य सूचिताभूदकबराय । अतएव सम्राण् महती सेनामादाय रावलपिण्डीपर्यन्तमुपागमत्तत्प्रान्ते । इतो मानसिंहेन गुप्तचरैः सर्वत्र ख्यापितं यत्स्वयं सम्राट् विशालवाहिनीमादाय काबुलदमनाय समायातीति । सवादमिमं श्रुत्वैव ये गुप्तशत्रवोऽभूवस्ते भयाकुला अभूवन् । आत्मरक्षणस्याऽन्यमुपायमवीक्षमाणा मानसिंहात्क्षमायाचनामकुर्वन् । मानस्यैकेनैव कूटप्रयोगेणोपजापपराः सर्वे मानसिंहसेवायामुपातिष्ठन्त ।

गुप्तगवेषणया विदित मानसिंहेन यत्'फरीदूँ' नाम्न उजबेगवशीयस्य दुर्मन्त्रणाया सर्वोयं काण्ड समुदतिष्ठत् । अतएवाऽकबरविरोधिनो मिर्जाहकीमस्य तनयैः सार्द्धं फरीदूमपि रावलपिण्डी प्रैषयत्सम्राजः समीपे, यत्र विरोधिना दण्डेन सह सम्राट् फरीदवेपि प्रादादघोरामाज्ञा यदितः परमसौ न दध्यात्पद भारते । देशनिर्वासितोऽसौ शेषं जीवन धर्माचरणेन सफलयितु प्रातिष्ठत 'मक्का' प्रति । एव चतुःपञ्चवर्षैः काबुलप्रान्ते पुनः सुखशान्तेर्निवासोभूत् ।

समापतन् सीमाप्रान्तमाक्रमितु भूयस्यो जातयो युद्धाय सनद्धाः, किन्तु हिमाचलनिरुद्धा वात्या इव निराशास्ताः प्रत्यावर्तन्त तस्मिन्काले । तासु प्रबल सनह्यमानाना पठानानामाक्रमणमभूद्दुःसहम् । आसीन्मानसिंहसंवर्द्धितस्य मोगलसाम्राज्यस्य ईरानराज्येन राजनैतिकः सबन्ध । चक्रुर्गतागत द्वयोरपि राजदूताः परस्परराज्यसीमायाम् । प्रायासीदीरानराजदूताना गमनमार्गः सीमाप्रान्तस्योपद्रवाकुले प्रान्तले भूत्वा । अत एवासीत्तेषा रक्षाभार काबुलशासकोपर्यैव तस्मिन्समये । प्रत्येकवारे मानसिंहात्पराजय लभमाना पठाना ईरानराज्येन सह मोगलाना विरोधमुद्भावयितुमैच्छन् तन्मार्गेण गच्छन्तमीरानराजदूत

बलाद् रुरुधुः । आसीत्तेषां नायकः करालाकृतिर्जलालाभिधानः । किन्तु संवादमिममधिगत्यैव पठानशठान् दण्डयितुं समनह्यन्मानसिंहः पूर्णतया । स हि सैनिकान् सहादाय स्वयमुपययौ सयुगस्थले । ततः पठानान् पराजित्य प्रेषयामास यथास्थानं बन्धनमुक्तं राजदूतमिमम् ।

सम्राडपि पठानपराभवाय प्राहिणोत्पृतनया सह वीरबलं काबुलम् । किन्त्वपरिचिते विकटमार्गे विवशीकृतमिमं न्यवधिषन्त हन्त पठानशठाः । घटनयाऽनया नितान्तमुद्वेलितो मानसिंहः किञ्चिदेव सैन्यं सह नीत्वा प्रययौ पठानशठानुन्मूलयितुम् । तत्र बभूव कियन्ति दिनानि घोरं जन्यं पठानानां भिन्नभिन्नैर्दलैः । अन्ते जीवग्राहमगृह्यत नितरामरालाऽऽचरणोऽसौ जलालाह्वयः । विजयस्यास्य तावान्प्रभावः प्रासरत्परितो यदेतदुत्तरं चिरं यावन्नोत्थापयामासुर्मौलिममी न केवलं पठानपिशुना एव, अपि तु प्रकामं प्राकम्पन्त दारुणा दस्युव्रातयोऽप्यखिलाः । प्रामोदत प्रकाममनेन विजयेन सम्राडकबरः । व्यपादिशच्चामुं विजयम् 'फतह अजीम' [सुमहान् विजयः] इति नाम्ना । प्रासिध्यत्प्रशंसाऽस्य परितः, प्रकाण्डविजयस्य । अन्तरीर्ष्याकलुषिता अपि ये तावदशृण्वस्तेऽप्यन्तर्मेयम्, बहिश्च श्रद्धामधारयन् मानसिंहाय ।

महाराजो भगवन्तदासः समभूत्साम्प्रतं जाबुलिस्थानस्य शासकः । शीतप्रधानमिदं स्थानमुष्णदेशवासिनेऽस्मै नासीदनुकूलम् । अत एव महाराजस्यास्वास्थ्यमालोकयता सम्राजा जीवनशेषं शान्तिपूर्वकमनुभवितुं व्यसर्ज्यत सादरं महाराजो निजराज्याय । अशान्तिबहुलेभ्यो राजनीतिकार्येभ्यः साम्प्रतमुपरामा देव पितुः सौख्यमुपतर्कयतः कुमारस्याप्यासीत्सोयमेवाभिलाषः । अत एव महाराजं निजराजधानीं प्रापय्य न्ययुज्यत नियमानुसारं तत्स्थाने कुमारो मानसिंहः । किन्तु नासीदस्यापि प्रकृतयेऽनुकूलं स्थानमिदम् । अत एव सम्राजं प्रबोध्य पुनर्मानसिंहो विहार—वङ्गयोरभूत्प्रधानशासकः । आसीदकबरः शीघ्रातिशीघ्रमधिकारपरिवृत्ते विप्रतीपः, किन्तु साम्प्रतमपि पूर्णतयानधिकृतेषु वङ्गेषु पठानादीनामुपप्लवेभ्यो मानसिंहमेवं रक्षणसमर्थं संप्रधार्य समनुमेने तथा सम्राट् ।

अस्तु, हाजीपुरे पाटलिपुत्रे च कञ्चित्कालं न्युष्य मानसिंहः समग्रामपि देशस्य परिस्थितिं पुनरेकवारं पर्यभासीत् । राजनीतिमर्मसु तस्मिन्काले नितरामद्वितीयोऽसौ अद्यावधिज्ञातेनानुभवेन सुदृढं निश्चिकाय यद्यावत्कालमिह सर्वदाप्येका सुदृढा सेना न निवसेत्तावन्नात्र भवेच्छासनं सुदृढम् । सेना चेयं न भवेदत्रत्यानामधीना । अनेन हि नित्यनवीनानामुपद्रवाणामुद्भवः । अत एव सर्वं संप्रधार्य चिरात्सपरीक्षितान् निजसैनिकानस्मिन्प्रान्ते सेनाविकृतान्नियमयामास । आसन्ते प्रायेण कच्छवाहराजपुत्राः । सेनायामुच्चाधिकारिणोऽप्यमी यदि शीघ्रशीघ्रं निजदेशगमनानुमतिं याचेरंस्तदापि शासनव्यवस्था न भवेदीप्सितं सुस्थिरा । अत एव सुबहु सविचार्य तेभ्यस्तस्मिन्प्रान्त एव भूस्वामित्वम् (जागीरें) संप्रददौ, येन तत्प्रबन्धाय ते तत्रैव सुस्थिरं निवसन्त सेनापरिचालनं शासनव्यवस्थां च चक्रुर्यथावस्थितम् । सोयमनुभवो मानसिंहस्य सफलः पर्यणमत् । सर्वदा वीरसैनिकैर्दमितमूला विरोधिनो न प्रतिकूला भवितुमासादयन्नवसरम् ।

सुदृढसेनायाः सार्वदिकनिवासाय साम्प्रतमभूत्सुरक्षितसस्थानस्याप्यावश्यकता । अकबरं सम्प्रबोध्य उपनिवेशस्यैवंविधस्य नियमनाय समसूचयत्सर्वानपि साम्राज्यव्यवस्थापकान् । सर्वमपीदं संमन्त्र्य रोहिताश्वदुर्गं यत्किं तस्मिन्प्रान्ते चिरप्रसिद्धमैतिहासिकं सुदृढं चासीदरेचयदेतस्यैव कृते सम्राट् । सैनिकानां तदधिपतीनां च निवासाय निरमापयन्नवीनानि भवनानि, समशोधयच्च जीर्णानि निवेशनानि । स्कन्धावारस्यास्यातङ्कान्नाश्रूयन्त विहार-वङ्गेषु साम्प्रतमुपद्रवाः । स्थिरसैन्यस्य योजनामिमामभ्यनन्दन्मानसिंहस्य सर्वेऽपि राजनैतिकाः ।

[११]

प्रबलो हृदयाऽऽघातः

निजराजधानीमवाप्य समभूत्स्वस्थो महाराजो भगवन्तदासः। कुमारस्य काबुलविजयोत्तर वङ्ग-विहारयोरपि विजयसंवाद श्रुत्वा न ममौ निजाङ्गेषु हर्षान्महाराज । सम्राडकबरोऽपि यदा यदा महाराजेन समगच्छत समवर्णयत्तदा तदा वीरगाथा, ससनोप कुमारस्य। यदा च सम्राडयमकथयद् यन्मानसिंहो यदि न मे सहायकोऽभविष्यत्तर्हि नाहमियन्ति प्रसिद्धयुद्धान्यजेष्य न चाप्येतावद्विशालसाम्राज्य समपादयिष्यम् तदा महाराजोऽय कियत्प्रामोदिष्टेति स्वयमनुमातव्यं मनोमार्मिकैः।

अभूता टोडरमल-वीरबलौ महाराजस्य घनिष्ठसुहृद्वौ। समविचारतया सर्वदा सहनिवासतया च सर्वेऽप्यमी मिथो विरहे विषादमवहन्। गतयुद्धे राज्ञो वीरबलस्य मृत्युसंवादमवाप्य परममखिद्यत महा-राजः। तस्य प्रत्युत्पन्नमतिना सर्वदा प्रसन्नवदनता च बलाद् विस्मारितापि नापयाति हृदयान्महाराजस्य। स हि सर्वदा सम्राज यथा चिन्तामतापान्नैराश्याच्च दूरमवास्थापयत्तथा महाराजमपि प्रामोदयत्समये समये। महाराजो मित्रस्यैवंविधस्य विरहविषाद यावन्न विस्मरति तावदेव द्वितीयोऽप्याघातो बलादपीड-यन्महाराजम्। अलभ्यत संवादो यद्राजा टोडरमलोऽपि नाधुनाऽस्मिन् संसारे। टोडरमल्लः सम्राट्सभा-यामासीदत्यर्थ-दूरदर्शी। मोगलसाम्राज्यस्य विजयलक्ष्म्याः परिवृद्धो यथा मानसिंहस्तथा तस्य श्रीवृद्धेः कारणं राजा टोडरमल्लः। महाराजभगवन्तदासेन विचारितस्य साम्राज्यस्थापनस्य टोडरमल्ल एवासीत् प्रधानसहायक। विजितेषु प्रदेशेषु यद्यसौ शासनसुव्यवस्था नाकरिष्यत्तर्हि किं मोगलसाम्राज्यमिदमियन् प्रावर्द्धिष्यत ?

सह सुहृद्भ्यामाभ्या स्वास्थ्यमप्यहारयन्महाराजः। प्रत्यैयत तस्य हृदये यन्नाहमधिकदिनानि जीवेयमिति। अतएव मानसिंहमयमाकारयन्निजनिकटे। नानाव यक्कार्यव्यग्रोपि मानसिंहो यथैवाश्रौ-षीत्पितुरस्वास्थ्यवृत्त तथैव प्रापत्पितुरन्तिकम्। निपुणवैद्याना परामर्शेनाकारयत्पितुश्चिकित्साम्। क्षणमवि पितु सनिधानमपरित्यजन्नात्मनैवोपाचरत्कुमारो जनकम्। किञ्चिच्छान्तिमवाप्यैव महाराजः कुमारमवादीद् गद्गदकण्ठेन—'समयेऽस्मिन्नन्तिमे भवन्तमवलोकयन्नह शान्तिमनुभवामि। देशव्यापिनी भवतो वीरगाथा श्रुत्वा हृदय मे भृशमानन्दितम्। आम्बेरराज्यस्य श्रीवृद्धयै यादृशस्य नायकस्यापेक्षा, प्रेषितस्तादृशः परमेश्वरेणेति भृशमभिनन्दामि।'

कुमारः—सोय सर्वोपि भवदभ्यूहितशिक्षाया प्रेरणायाश्च परिणामो नूनम्। मीमासितमह कार्यं स्वैरमाचरेयमित्यनुगृह्यतामाशी।

महा०—कुमार! आस्ता मे कर्तव्यस्य लक्ष्ये द्वे नूनम्। आम्बेरराज्यस्य सर्वविधसपत्पूर्णता विधाय राजसंस्थानेषु महितमहत्त्वापादनम्। भारतस्य विकीर्णां शक्ति संघटय्य एकराष्ट्रनिर्माण च। तत एव तादृशीमेव शिक्षा व समपादयम्। साम्प्रतं भवतोऽध्यवसायेन राज्यमिदं चतुर्गुणं विस्तीर्ण सभा-जितराज्येषु समर्हणीय च। अग्रेऽप्यहमनुरुन्धे, न कदाचिदुद्देश्येषु प्रमाद्ये रिति।

कुमार—गृहीत आदेश। इत प्रभृति जीवनस्य लक्ष्यमेवेद मे भवेत्। विलाससामग्र्यो यथा ऽद्यावधिन्नास्मै विमोहनाय, भवेत्पुरग्रे ऽपि तथा।

महा०—अवश्यमिदमेकमववानव्यम्, अकबरोयमद्ययावद् धार्मिकसंयमेन हिन्दुमुसलमानैः समं व्यवहृतवानुदारतया। किन्त्वग्रे यदि प्रमादमापादयेत्तर्हि न मनागपि मर्षणीयमिदम्। हिन्दुत्वगौरवं भुव-

तारा नो जीवनयात्रायामिति न विस्मार्यं जातु । अस्तु, दिग्दर्शनमलं ते नीतिमते । साम्प्रतं चिराय प्रवसाम्यहम् । कुशली भूयाः ।'

इति वदत एव महाराजस्य कण्ठो गद्गदतामापेदे । न्यलीयत चेतना स भगवद्भावनायाम् । किन्तु क्रमशः श्वासो वृद्धिमापत् । उच्छ्वयते स्मोदरमपि । अभूद्विषण्णः कुमारः । किन्तु कोऽभ्युपायः । सर्वानेव विलपतः परित्यज्य प्रायासीत्परलोकं भगवन्तदासः ।

शोकावेगं निरुध्य विवेकेन समपादयत्सर्वमौर्ध्वदैहिककृत्यं कुमारः । हन्त व्यपगतेष्वप्याशौचदिवसेषु शून्यमिवालक्षयल्लोकालयं कुमारः । अकबरोऽपि दुःसंवादमिममधिगत्य क्षणमस्थात्स्तब्ध इव । आस्तामस्य साम्राज्यस्य स्तम्भौ द्वौ, भगवन्तदासस्टोडरमल्लश्च । द्वयोरप्यनयोर्वियोगेन विकलमिवाऽभावयदात्मानं सम्राट् । कर्तव्यबुद्ध्या प्रणोदितो मानसिंहायाम्बेरराज्यसिंहासनसमानं महता समारोहेण प्राहैषीत् । य' समादरः स्वर्गतमहाराजाय समार्प्यत ततोऽप्यधिकं संमानं तस्य विधाय किञ्चिदुच्छ्वसितमिवात्मानमभावयत्सम्राट् । अकबरो मानसिंहं समधिगत्य दुःखमिदं विस्मर्तुमपारयत्, मानसिंहश्च पितुरन्तिमैः शब्दैर्व्यापृत्य यथापूर्वं साम्राज्यकार्येषु प्राभवद्विषादमिममपगमयितुम् ।

[१२]

पुनः समराङ्गणे

पितुः परलोकप्रस्थानाद्विहारे शासनसुव्यवस्थानमपूर्णमेव परिहाय प्रययौ कुमारमानसिंहो निजदेशम् । सप्रति प्रतिनिवृत्तेन महाराजमानसिंहेन दृष्टं यदितः पृष्ठपरिवर्तन एव विहारे पुनरारब्धमफगानै राज्यावलुण्ठनकार्यम् । प्रान्तेऽस्मिन्वर्तमाना सम्राट्सेना तु पराक्रान्तस्य नायकस्याभावान्न प्राभवदफगानीयानिमान्पराभवितुम् । अतएवाऽत्रागत्य सेनायास्तस्याः भिन्नभिन्नभागेषु सस्थापनं समुचितशिक्षणं च निश्चिकाय, या हि कच्छवाहाना सेना समुचितं विचार्य प्रदेशेऽस्मिन्पूर्वमेवास्थाप्यत । किन्तु सप्रति सर्वतः पूर्वममीषां विद्रोहिणां दमनमावश्यकं मेने । युद्धतत्त्वज्ञोऽसौ प्रान्तेऽस्मिन्नितस्ततो विकीर्णास्ते यावन्नैकीभवेयुस्ततः पूर्वमेवैकैकशो वशे चक्रे । कार्येऽस्मिंस्तादृशी समीक्ष्यकारिता क्षिप्रकारिता च प्रायोजि यया द्राक्सैव समवापे साफल्यम् । अपरा चेयं युक्तिरवालम्बि यन्महाराजः सैनिकान्सर्वान्प्रकटमाज्ञापयत्—'यः कोपि विद्रोही प्राप्येत विना नियोगं निःशङ्कं निगृह्यतामसौ, गृह्यतां च तत्समीपलब्धं सर्वमपीति ।' अभवत्तथैव । विद्रोहिविलुण्ठने समासाद्यत विपुलं धनम् । किन्तु सर्वमपीदं निजस्य निजसैनिकाना चोपयोगे न गृहीत्वा प्रैष्यत राजधानीमेव ।

तदेव विहारस्योपद्रवान् प्रशमय्य गजनीपुरं वाराणसीं च स्वाधिकारे चकार । निर्ममौ वाराणस्यामेकं बृहन्मन्दिरं दशाश्वमेधघट्टोपरि यस्य नामाभूत् 'मानमन्दिरम्' । विहारविजयस्मृतिं सुस्थिरयितुं वासयामास पाटलिपुत्रसविधे 'वैकुण्ठपुरम्' । गुणवशीकृता विहारजनता विजयोत्सवे स्वयमकरोदनेकानुत्सवान् येषां परम्परा प्राचलन्मासपर्यन्तम् । विजयिनो मानसिंहमहाराजस्याक्रियत स्थाने स्थाने संमानः, प्रादीयन्त नानोपायनानि । प्राचरत्सर्वत्र विहारे मोगलशासनम् । तत्रापि मानसिंहः सुव्यवस्थया तादृशमेव शासनं प्राचारयद्यादृशमन्यान्येषु विजितप्रदेशेषु प्रायोजि । नवीनेन विधानेन प्रमुदिताः प्रजाः प्राकीर्तयन्परितो मानसिंहयशःप्रशस्तिम् ।

पुनः साम्राज्यविस्तारोपरि दृशमदिपन्महाराजः । नासन्मुगलशासनभक्ताः कलिङ्गाः, किन्तु तत्रोपनिविष्टा अफगानाः प्रायः समाचरन्समये समये विद्रोहम् । कतलूखाँ लोहानी व्यजृम्भत तदानी-

मफगानेष्वेपु। तत एव तस्यैव प्रतिक्रिया प्रागैत्रीन्महागजः। स हि किञ्चित्सेना समानाययद्वङ्गेभ्यः, किञ्चिच्च सैन्य निजसुरक्षितवाहिनीतः सघट्य्य समभिससार तदभिमुखम्। वर्द्धमानस्य मार्ग एव जहानावादसन्निधौ समघटत तेन सघर्षः। किमासीत्पुनस्तदा? नानाकूटघटना समघटयत्कतलू: किन्तु समभूवन्सकलास्ता विफला:। अकृत्यत कल्मषी कतलू। मध्येसयुग समाप्यत शक्तिरखिलाप्यफगानानाम्।

समयदर्शी कतलूखानस्य मन्त्री कतलूतनय नजीरखानं पितृपद प्रदाप्य समवध्नान्मोगलसाम्राज्येन सन्धिम्। किन्तु निर्भयमघोषयन्मानसिंहः—यावत्कलिङ्गानामधिपतिरकवरो न स्वीक्रियते, यावच्च नाणक[1] शासनमुद्रा चाकवरस्य सर्वस्मिन्नपि प्रान्ते न प्रचरति तावन्नजीरखानो नासनाधिकारी भवेत्। ईसाखानः (मन्त्री) स्वीचकार सर्वानपि समयान्[2]। स ह्येतावत्पर्यन्तमप्यूरीचक्रे यद् ये किल साम्राज्यप्रदत्तभूम्यधिकारिण सन्ति न तेषा सघटेत काचिद्धानि', न गृह्येत तेभ्यः करोपि। तत सम्राजे महाराजमानसिंहाय च प्रजिघायोपायनानि येषा मूल्यं द्विलक्षमुद्रातोऽप्यधिकम्। एवं पराक्रमाभिप्रज्ञात्कलिङ्गान्विजित्य परावर्तिष्ट विहारगत स्कन्धावारमयम्।

ईसाखानो नोदलघयत्सन्धिं निजजीवनकाले। यथासमय कलिङ्गदेशस्य करः प्रापद्राजधानीम्। किन्तु ईसाखानस्य मृत्योरनन्तरमेव पर्यवर्तत परिस्थिति'। कतलूतनयौ ख्वाजासुलेमान-उसमानौ अन्यान्यैर्विरोधिभि सगत्य महान्त विप्लवमारब्धीताम्। मानसिंह सवादमिममाकर्ण्य घोरतरमक्रुध्यत्। स हि कलिङ्गेषु साम्राज्यशासनं विहाय मध्यवर्तिन कस्यापि-शासनस्य समूलमुच्छेदं क्रोधात्प्रत्यजानीत। असूचयदखिलपरिस्थितिमकवराय। तत प्रातमुत्तरम्—'भवान् साम्राज्यस्य सर्वात्मना प्रभु। परिस्थितिं बुद्ध्वा यद्भवानुचितं भावयेत्करोतु, यदीत सेनासम्प्रेषणमावश्यकं तर्हि सूच्यम्।'

मानसिंहो वङ्गेभ्यो मगधेभ्याश्चाखिला सेना समाहरत्। निजविश्रब्धान् सेनापतीन् सबोध्य समादिशच्चासौ—'रणवीरा! मुहु' खड्गोत्तोलनस्यापेक्षया एकवारमेवैषामफगानजातानां निर्विषीकरणमहं मन्ये-भवन्तोप्यावश्यक भावयिष्यन्ति? अप्यनुमतमिदम्?' सर्वेपि सोत्साह समन्यन्त। पुन' किमासीत्, विपुला वाहनी वहन् समभ्यसरत्प्रतिपन्थिन। इतः कतलूतनया सर्वेऽपि समगसत। नसीरखान—जलालखानावपि त्रिसहस्रसेनामादाय समामिलताम्। एवमासीदपारा पृतना परिपन्थिनाम्। मानसिंहोपि वीरवाहिन्या वाहिनीमुत्तीर्य सहसा समाक्रामच्छात्रवान्। समभूवन्सपत्नाः सभ्रान्ताः, आसीत्तेषामाशा यत्स्थलमार्गेण प्राप्स्यति सैन्यमिति। अत एव सहसा पर्याक्रान्तास्तदिमे हतबुद्धय इवाभूवन्। परिणामः स एवाभूद्यो ह्यन्यान्येपु समरेष्वश्रावध्यामीन्। कतलूपुत्राः पलायिषत। तेषां सहायका अपि केचिन्मृताः केचिच्च जीवग्राहमगृह्यन्त।

तत पुर्यां जगन्नाथमन्दिरमयासीत्। अफगानैर्मन्दिरमक्रियताऽपवित्रम्। मानसिंहः पुनरस्य शोधन प्रतिमाया पावनीकरण चाकारयत्। तत प्रत्यर्थिलुण्टनलब्धामपारां संपद वहन्परावर्तिष्ट निजावास मानसिंह'। साम्प्रत कलिङ्गाः साम्राज्यस्यैव समृद्धिमानेक' प्रान्त'।

साम्प्रत कूचविहारेणाकृष्टा दृष्टि'। राज्ञो लक्ष्मीनारायणस्यायनमिद राज्य सैन्यवले सुतरा समृद्धम्। ७००हस्तिन', ४०००सादिनः, लक्षद्वयाधिकाः पदातयः सहस्रसहस्रं समरनौकाश्च प्रत्यहमतिष्ठन् सज्जा। एतावत्सैन्यबलिष्टोप्यसौ सर्वदा कम्पते स्म भयात्। कारणमस्य—प्रतापादित्योऽस्य पितृव्यपुत्रो यशोहरराज्यमशिषत्, तेनासीदस्य शत्रुता। प्रबलादस्माद्रात्रिंदिवा राज्यापगमस्यासीद्भयं लक्ष्मीनारायणस्य। अवाञ्छदय मानसिंहेन संगन्तुम्। दृढ व्यश्वसीदसौ—यदि मानसिंह सकृदपि मे साहाय्य-

१. मुद्राचिह्नित निष्क-रूप्यकादि, 'सिक्का'। २. पणवन्धान्, 'शर्त'।

वचनं दद्यात्तर्हि प्रतापादित्यो न किञ्चित्पारयेदनिष्टं मे कर्तुम्। मानसिंहो यदा प्रान्तेऽस्मिन्प्राविशत्तदा दूरादेवास्य स्वागतं व्यधित। सर्वस्यापि सैन्यस्य तथातिथ्यं व्यदधाद्यथा प्रत्येकपुरुषोऽस्मार्षीच्छ्वशुरालयस्य। भोजनाद्युत्तरं निजराज्यस्य प्रादर्शयच्छोभना रचनाः। मानसिंहो नगरस्य सुन्दरताम्, प्राकृतिकं वैभवम्, कलाकौशलम्, प्रजाना समृद्धिं चालोकयन्प्रासीदत्परमम्।

रात्रौ भोजनस्य समये लक्ष्मीनारायणस्यालौकिकसुन्दरी कुमारी पर्यवेषयद्भोज्यानि। महाराजो मानसिंहो यस्य हि वीरताकार्येष्वेव जीवनं व्यत्यगच्छत्, न चान्तःपुरे विश्रमस्य यस्यावसरोऽभूत्स हि त्रिलोकजैत्रात् सौन्दर्यस्य प्रभावान्नात्मानं शशाक गोपयितुम्। असामान्यबलशालिनं तेजस्विनं महाराजमालोकयन्ती कुमार्यपि हृदयात्तं चकमे। द्वयोरस्य भावो नासीदपह्नुतो लक्ष्मीनारायणात्। अत एव वा सेयं समायोगघटना तेन कृता स्यात्। अस्तु, चतुरराजनैतिकोऽसौ समुचितमवसरं नेमं व्यस्मरत्। लक्ष्मीनारायणः स्वीयं भयकारणमवर्णयन्महाराजाय, प्रतापादित्यस्य यशो बलं प्रभुत्वं चापि। महाराजः सहजमेव प्रत्यभाषत—'राजन्नाधुना किञ्चिच्चिन्तनीयम्। अहं सर्वतः पूर्वं भवदापत्तिमेव निवारयेयम्'।

परदिन एव प्रैष्यत प्रतापादित्याय युद्धनिमन्त्रणम्। प्रातिष्ठत कश्चिदंशः सम्राट्सेनायाः तेन सह समराय। सहसा समुपगतमिदमाक्रमणं नापारयत्प्रतापः प्रसोढुम्। पराभूयत प्रत्यक्षम्। किन्तु स्वभाववीरस्तदायत्त ईसानामको भूस्वामी स्वामिनः पराजयेनानेन परममखिद्यत। स हि जन्मभूमेः स्वातन्त्र्याय, निजप्रभोः कार्याय च स्वल्पामपि निजसेनामादाय रणाङ्गणे समवातरत्। स्वल्पतमं सैन्यमिदं न किञ्चिदगणयत् मुगलवाहिनी। किन्तु देशप्रेम्णा स्वामिभक्त्या च प्रणोदित ईसा स्वल्पतमेनापि सैन्येन विपुलामिमां वाहिनीं स्तम्भयामास। स हि दुर्धरेण स्वरेण सर्वान्वीरान्प्रोत्साहयन्नूचे—'रणधीराः किं निरीक्षध्वे। समराङ्गणोऽयं वीराणां निकषभूमिः। जयसमारोहे स्वर्गारोहे चोभयथापि वीरपुरुषाणामक्षया कीर्तिः। उत्साहे शौर्यावेशे च भयङ्कररूपेणापतन्मुगलवाहिन्या ते वीराः। सहसा व्यचलत्साम्राज्यसैन्यमपि। किन्त्वपारसागरस्य सम्मुखे सरित् कियती? अन्ते पराजीयत प्रतापादित्यः। किन्तु वीरपरीक्षको मानसिंहो हृदयेन प्राशंसत्स्वामिभक्तिं च युद्धकलां चास्य भूस्वामिनः।

ईसाऽपि भारतैकवीरस्य मानसिंहस्य सन्निकर्षं समुपगत्य तस्य महिमानमसाधारणं शौर्यं चावगच्छन् बभूव नितरां प्रभावितः। नासाविदानीं युद्धाय पदमग्रे धातुं निजस्वामिनमप्यामन्त्रयन्। समुचितं विभाव्य प्रतापादित्योऽप्यानुगत्यं भेजे। महामूल्याननेकशः कुञ्जरानुपायनीचकार मानसिंहाय। लक्ष्मीनारायणस्याऽभ्यधिकृतं तं प्रदेशं परावर्तयामास। महाराजमानसिंहस्यानुरोधेन स हि लक्ष्मीनारायणेन सह शत्रुतायाः स्थाने मित्रतामेव किम्, सुस्थिरामात्मीयतामालम्बे।

सङ्कटसङ्कटो लक्ष्मीनारायणः साम्प्रतं मानसिंहस्य चरणयोर्निपत्य निजां कृतज्ञतां प्राकाशयत्। प्रावदच्च—'किमहं श्रीमतः प्रत्युपकर्तुं पारयेयम्। किन्त्वेका मेऽभ्यर्थना यद्यनुमन्यध्वे तर्हि भवेयमहं सफलजीवनः।'

मानसिंहः—निःशङ्कमावेद्यताम्, किमिदानीमपेक्षितं तत्रभवतः?

लक्ष्मी०—कन्या मे श्रीमतो दासी भवेदित्युत्कटो मेऽभिलाषः।

महाराजो मनोरथानुकूलयाऽभ्यर्थनया मनस्येव माद्यन्प्रकटमूचे—'श्रीमतोऽनुरोधो मे मान्यः। आश्वसितु भवान्, समानस्तस्या न राजमहिषीभ्यो न्यूनो भवेत्।'

निरवर्तत सानन्दमयं विवाहोत्सवः। अत्र हि वङ्ग-कलिङ्ग-विहार-कुचविहारादिप्रदेशानां सामन्ता प्रतिष्ठिताश्च सममिलन्। एतद्देशीयाः सर्वेऽपि, विशेषतश्च लक्ष्मीनारायणः सम्बन्धेनानेन परमं प्रासीदत्।

एवं किल विहारे उत्कले कूचविहारे चात्मनः शासनमुद्रां दृढीकृत्य नवीनां महाराज्ञीं सह नयन्महाराजमानसिंहः परावर्त्तते निजनिवासम्। युद्धेष्वेषु शोकघटना सेयमवश्यमघटत यन्महाराजस्यैकस्तनयो दुर्जनसिंहः स्वर्गमगच्छत्।

[१३]

वङ्गेष्वन्तिमः समरः

विहारमुत्कलं च साम्राज्यभुक्तं कृत्वा मानसिंहः स्वां शक्तिमतुलां वर्द्धयामास, साम्राज्यस्याभिवृद्धिस्तु ततः स्वाभाविक्येव। प्राज्येऽपि साम्राज्ये मानसिंहसमानः कश्चिदपि नासीत्प्रतापशाली। महापराक्रान्ता अपि साम्राज्याधिकारिणो मानसिंहसविधे समभूवन् विच्छायाः। मुसलमानेतिहासलेखका अपि तत्सामयिके इतिवृत्ते महाराजमानसिंहस्य प्रभावमनुपमं मेनिरे। स्वयमकबरोऽपि मानसिंहप्रभावेणासीत्सर्वतः प्रभावितः। राजपुत्रप्रान्ते मानसिंहस्य राजसत्ता तादृशी प्रभावशालिनी समभूद् यत्तत्रत्या लोकास्तं स्वतन्त्रनरपालं विविदुः। विस्तृते साम्राज्यमात्रेपि नैवंविधः कश्चित्प्रभावशाली समभूद्यो मानसिंहस्य शासनं तिरस्कुर्वीत। एतावद्बलोपलब्धावपि न हृदये मानसिंहस्य सेयमिच्छा जजागार यत्स्वतन्त्रमहमेकं राज्यं स्थापयेयम्, अकबरं च वञ्चयेयमिति। न च मुसलमाननीतेरनुसारमियं वञ्चना। यतो हि तस्मिन् समये ये वै अफगाना निजराज्यं पर्यचालयंस्तेऽप्येकस्मिन्दिने समभूवन्पठानसाम्राज्यस्यैव प्रान्तीयाः शासकाः। यदि मानसिंहोऽवाञ्छिष्यत्तर्हि विजितेषु प्रदेशेषु सुखेन स स्वराज्यमस्थापयिष्यत्। नासीदकबरस्य शक्तिर्यत्तस्य दमनं कर्तुं पारयेत्। मानसिंहमन्तरा वा स स्वयं साम्राज्यस्य राज्यवृद्धिं कुर्यात्। किन्तु मानसिंहो यथा प्राचीनक्षत्रियादर्शेन एकमात्रो वीरो बभूव तथैव निजवचनानुपालनेऽपि प्राच्यमर्यादाया आदर्शोयतोऽभूत्। भारते एकसाम्राज्यस्थापनस्य प्रतिज्ञां कृत्वा न कदाचिदकबरस्य परोक्षेपि स स्वातन्त्र्यमास्थापयितुमैषीत्। प्रत्युत निजप्रभावसूर्यस्य प्रबलमध्याह्ने पि—'आकमहाल'स्य भूमौ अकबरस्य स्मृतिं सुस्थिरां कर्तुं 'अकबरनगरम्' एव वासयामास, यद्धि साम्प्रतं 'राजमहल'नाम्ना परिचितम्। यदि मानसिंहोऽभ्यलषिष्यत्तर्हि स्वविजयोपलक्ष्ये स्वनाम्ना नगरमिदमवासयिष्यत्। किं बहुना, विजिताः प्रजा एव राजभक्तिं प्रदर्शयितुं माननाम्ना नगराण्यनेकान्यवासयिष्यन्, किन्तु सत्यवीरो मानो नेदं कदाचिदप्यवाञ्छत्।

'राजमहल'मिदमासीत्स्वसमये निरुपमं सुन्दरम्। विशालभवनैः सुरम्योद्यानैः सजलसरोवरैः सुप्रशस्तराजरथ्याभिश्च पूर्णमिदमासीद् बहु समयं यावत्तत्प्रान्तस्य राजधानी। इत एव वङ्गानां विहाराणामुत्कलानाम्, किमन्यत् 'आसाम'पर्यन्तस्यापि शासनमभवत्। सर्वथा विभिन्नानप्यमून् प्रान्तानेकशासनसूत्रे सन्नध्य मानसिंहेनाद्भुतकौशलस्यासीत्परिचयः प्रत्तः। सत्यप्रतिज्ञो मानो नगरेऽस्मिन् यत्किञ्चिदकरोत्तत्सर्वमकबरनाम्नैव।

एवमसाधारणीं सफलतां समधिगम्य मानसिंहोऽजयमेरुनगरमुपागमत्। इतोऽग्रे समभूत्तस्य नियम एवायं यद्वङ्गेषु मगधेषु च यदि काचिदावश्यकताऽभविष्यत्तर्हि स तत्रोपास्थित, अन्यथा अजयमेरुमेवाध्यतिष्ठदसौ। इतः सेयमपि सुविधासीद्यन्महाराजोऽत्रावस्थित एवाम्बरराजधान्या अपि समुचितं प्रबन्धमकरोत्। वङ्गादिषु तादृशं सुशासनं तादृक् च दस्युदमनमभूद्येन चिरं यावदफगाना न शिरः समुत्थापयेयुः।

अकबरो दाक्षिणात्ये समरांस्तं महाराजमानसिंहेन। अस्मिन्वारे महाराजस्य तादृशं संमानमकरोद्येन स्वयं महाराजस्यापि विस्मयोऽभूत्। अद्यावधि मित्रस्य पुत्ररूपे सममानयत्साम्प्रतं तु संभावित-

मित्ररूपे समलपन्निर्मायिभावेन । प्रथममभून्मानसिंहस्य शङ्का काचित्किन्त्वकबरस्य कृतज्ञतापूर्णेन हार्दिकभावेन त्वरितमपागमत्सा । महाराजः प्रसन्नतया प्रावादीत्—'सम्राट् ! साम्प्रतं श्रीमतो विजयध्वजः काश्मीरानारभ्य ब्रह्मपुत्रपर्यन्तं स्वैरं प्रस्फुरति । वङ्गाना सर्वेऽपि विद्रोहिणश्चिराय निर्मूलिताः । सर्वेऽपि साम्प्रतं भवतो गुणान् गायन्ति । अद्यावधि न तैर्यवनानामेवं सुसङ्घटितशासनव्यवस्थाऽवलोकिता । वाञ्छन्ति चिरादेवमेव भवेद्राज्यं सुस्थायीति ।'

अकबर०—'प्रिय मित्र ! सर्वमिदं भवतो वैभवम् । मम तु केवलं यशः, यस्य सर्वस्य मूलं भवतस्त्यागवृत्तिरेव । भवतु, किमहमस्य कुर्यां प्रतिशोधम् ? किन्तु शीघ्रमेव राजसभायां प्रकटयेयमिच्छामात्मनः ।'

मान०—'श्रीमन् ममापि नात्र काचित्कृतिः, सोऽयं पितृचरणानां दृढसङ्कल्पस्य महिमा ।'

तस्मिन्नेव जल्पत्येव परिचारकः पत्रमेकं प्रादान्मानसिंहस्य हस्ते । पत्रं पठत एवास्य मुखाकृतिरभूत्कराला । अकबरः प्राबुध्यत यत्पुनः काचिदभूद् घटनेति । प्रकाशमवोचत्—'अनुमिनोमि यद्वङ्गेषु पुनर्विद्रोहः प्रारभ्यत । अपीदं सत्यम् ?' मानसिंहो मुखभावं परिवर्त्यावोचत्—'सुतरां सत्यमिदम् । यावदयमीसा भूस्वामी जिजीव तावदभूत्सन्धेः परिपालनम् । मृत एव तस्मिन्नारब्धः पुनरुपद्रवो दस्युभिरफगानैः । तैर्विदितं यदहं भवतः समीपमगाम्, ईसापि नाधुना सहायकः । अत एव बहून्प्रदेशानकुर्वन्हस्तगतान् । जाने कञ्चित्कालं तत्र परिस्थाय घटनाचक्रस्य मूलमेव निर्मूलनीयं भवेत् ।'

अकबर०—भवान्मुहुस्तान्दमयति ततोऽपि कथं ते मुहुर्विप्लवमारचयन्तीति नाहं निश्चिनोमि ।

मान०—इदं तावद्भौगोलिकं कारणम्—तत्रत्या जलवायव एव तादृशा ये तन्निवासिनां मस्तिष्कमेवोर्ज्जस्वलं सृजन्ति, यद्धि परेषामभिभवसहने निसर्गतो विरुद्धम् । समग्रेऽपि मोगलसाम्राज्ये द्रक्ष्यति भवान् यद्वङ्गा एव तादृशा यत्र क्रान्तिकारिणां षड्यन्त्रनिपुणानां च नास्ति न्यूनता । पुरापि तत्रैवमेवाभूदिति दद्यादितिहासः साक्ष्यम् । तत्प्रान्तस्य दक्षिणस्थः काननभागो महान्तो नदी-नदाश्च क्रान्तिकारिणाममीषां सहायकाः । तेषां शक्तितोऽप्यधिकं दमनकारको यावत्कालं तान्न प्रशास्ति न तावत्कालमधीनतां ते स्वीकर्तुं विवशा भवन्ति किन्तु यथैव ते स्वानुकूलमवसरं विभावयन्ति, त्वरितं विरुध्यन्ते । किञ्च भारतस्यान्यप्रान्तेभ्यः पराजिता अफगाना अप्यस्मिन्प्रदेशे समुपगत्य लोकान्विरोधयन्ति ।

अकबर०—अवश्यमस्य समुचितः प्रतीकारः कार्यः, अन्यथा साम्राज्यरक्षा सङ्कटे । न च मुहुर्भवानेव तत्र परिश्राम्येत् । अन्येष्वपि प्रदेशेषु निरीक्षणं भवदायत्तम् ।

मान०—एकवारं मे तत्र गमनमनिवार्यमेव । अस्मिन्वारे दुर्घटनानां सर्वदार्थं मूलोच्छेदाय प्रयतिष्ये ।

अकबरेणानुमतो मानसिंहः प्रातिष्ठत वङ्गान् । सम्राट् स्वतनयं सलीममपि प्राहैषीन्मानसिंहेन साकम् । किन्तु विलासप्रियतया मानसिंहात्प्रतिकूलतया च युवराजो प्रयाग एव तस्थौ । महाराजः प्रययौ रोहिताश्वदुर्गम् । तत्र सेनायाः परिष्करणं समुचितशिक्षणं च पूरयामास परिश्रमतः । ततः शेरपुरसमीपे निबबन्ध घोरं समरम् । विद्रोहिणः पराजित्य पलायाचक्रिरे । ततो मानसिंहो ढाकानगरं प्राप्य 'जलाल' नामकस्य लुण्टाकस्य परिभवाय कुमारं महासिंहं प्रजिघाय । झरनदीमुल्लङ्घ्य कुमारो जलालमिममाक्रमीत् । कुमारस्याक्रमणमसहमानः पलायिष्ट जलालः । सम्प्रति महासिंहः प्रधानविद्रोहिणं काजीमोमिनं समभ्यसरत् । महाराजेन पूर्वमेवोपदिष्टं यत् यावत्कालं शत्रुर्नदीं नोल्लङ्घयेन्न तावत्कालमाक्रमणीयम् ।

किं च सैन्यं बहुषु खण्डखण्डेषु विभज्य सह नेय, येन शत्रुः सैन्यमकिञ्चित्करं बुद्ध्वा पलायनस्य स्थाने सनह्येत आक्रमणाय । तदेतत्तथैव सम्पन्नम् । प्रबलं पराजीयत काजी, न्यहन्यत च संग्रामे ।

कतलूसूनुरुसमानोपि विरुध्यमानोऽभूत् । तेन यदा- दृष्ट यत्परितोऽन्येऽपि विरोधमाबध्नन्ति तदा मेवालगुल्मो चकाराक्रमणमसौ । किन्तु सूचनामिमा समवाप्यैव ससैन्य' संप्राप मानसिंहस्तत्र । निबबन्ध घोर सगरम्, पराजिग्ये उसमान. । भूयान्धनराशिर्बहुतराः शतघ्न्यश्च समभूवन्मानसिंहस्य हस्तगताः । सुदृढीकृत्य गुल्ममिद परावबृते मान. । तत ईसाभूस्वामिनस्तनय दाऊद दमयामास । अनन्तर च वङ्गसीमाप्रान्ताधिपतिं केदारभूपतिमाचक्राम । क्षत-विक्षतोसौ समानीयत मानसिंहनिकटे, किन्तु व्रणैर्विकलोयमम्रियत हन्त मार्ग एव ।

केदार पराजित्य तद्देशमयमधिचक्रे । प्राप्यत तत्रैका सिद्धशिला मानसिंहम् । कश्चिद्योगी पुरश्चरणान्यनेकानि गायत्र्याः सविधाय शिलामिमा साधयामास। समाचष्ट भगवती स्वप्ने मानसिंहम्—'शिलायामस्या निर्माहि मे प्रतिमाम् , यावच्च बलिप्रदानादिना मे सपर्यां पर्यावहसि न तावत्ते राज्ये काचिद्बाधा ।' देव्या नियोगानुसार शिलायामस्या मूर्तिमुत्कीर्य प्रजिघाय वङ्गदेशीयैरर्चकैः सह तामिमामाम्बेरराजधानीम् । सावधानमकरोत्प्रत्यह च बल्यादेस्तत्र प्रबन्धम् । एतदनन्तर वङ्गेषु ये केचन विरोधिनः समुपलब्धाः सर्वा स्तान्वशीकृत्य मानसिंहः शान्तिमास्थापयामास । सर्वांश्च सैनिकानसौ समाज्ञापिपद् य. कोपि विरुद्धो विलोक्येत समानयत निर्विकारमिम मत्समीपे । विजयस्यास्य समभूत्सेयं परिणामो यत्सम्राजोऽकबरस्य शासने नाश्रूयत कदापि विद्रोहस्य नामाऽपि वङ्गेषु । सोय विद्रोहः समभूद्वङ्गेष्वन्तिमो नूनम् ।

असमानैर्विजयबहुमानैरामण्डितः सोय मानसिंहमहाराजः समवाप पुनः समीपमकबरस्य । महामहत्या राजसभायामवस्थितोऽप्यकबरः ससभ्रममुत्थाय प्रददौ महाराजाय समानम् । इतःप्रभृति 'सप्तसहस्र[1]समीकाधिपतिः' समभून्मानभूपति । षट्सहस्रसादिसेना चाभूत्तस्याज्ञानुगा । विजित्य समानीतान् गज-रथ-तुरगादीन्प्रभूतांश्च धनराशीनुपायनीचकार सम्राजे । य. समादरः समार्प्यत मानसिंहाय नायमद्यावधि कस्मैचिदपि प्रादीयत सम्राजा निजराजसभायाम् ।

सप्रमोदमवाप महाराजो निजराजधानीम् (आम्बेरम्) । सर्वतः प्रथम प्रतिष्ठापयामास भगवती शिलामयीम् । एतस्मिन्विजयसमाने सर्वस्यापि राज्यस्य प्रजाः प्रचक्रुः प्रमोदवर्धापन महाराजस्य । राज्यस्य स्थाने स्थाने समायोज्यन्त नृत्यगीतवादित्रादीनि मङ्गलानन्दसवर्द्धनानि । आम्बेरराज्यायैव किम्, भारतीयराज्यसस्थानमात्राय साम्राज्यादेतावत्समादरोपलम्भ· सभावितोऽभून्नूनं सर्वत· प्रथमम् ।

[१४]

अकबरस्यान्तिमानि दिनानि

आसीदकबरोऽद्य किञ्चिदूनस्य समग्रस्यापि भारतस्याधिपतिः । महाराजमानसिंहसदृशास्तस्य सैन्यसरक्षकाः, अबुलफजल—फैजीसदृशा अद्वितीयविद्वासस्तस्य सभारत्नानि, प्रजा न केवल शस्त्रबलेन, अपि तु हृदयेन तमेनमस्पृहयत्, किन्तु किमासीदकबरः सुखी ? दक्षिणभारतस्य महान्तमेक प्रदेशं विजित्य

1—'हफ्तहजारी मनसबदार' ।

साम्प्रतमेव परावर्तिष्ट। तस्य स्वास्थ्यमुत्तरोत्तरमासीत्पतनोन्मुखम्। भिषग्भिर्यवनानीवैद्यैश्च भूयसा विचारेण प्रायुज्यन्तौषधानि किन्तु न तेषां किञ्चित्फलम्। एकदा परमं विषण्णः सम्राडाजुहाव मानसिंहम्।

समाययौ मानसिंहः। अकबरस्य विचारणीयावस्थया व्यषीदत्स परमम्। मानसिंहं विलोक्यैव समाययुरकबरस्य नेत्रयोरश्रूणि। अवादीदसौ—'प्रिय मानसिंह क्वासीरेतावत्कालम्?'

'श्रीमन्! अबन्वार्थमाम्बेरे व्यलम्बिषि कञ्चित्कालम्। किन्तु यथैव दक्षिणतः परावर्तनस्य सवादमश्रौष, स्वयमहमुपस्थितये समभूवमुत्कण्ठितः। नासीन्मे एतदवस्थायाः परिज्ञानं श्रीमतः। अद्य तत्रभवत कथमियमवस्थाभूत्?'

'प्रिय मान! जगज्जानाति यदहं सुखी किन्तु क इदं जानीते यन्ममान्तरिकी व्यथा कथमिव मां जर्जरीकरोतीति। जाने, नाधिकमहं शक्नुयां जीवितुम्।'

'कथमिदम्, अपि-काचिद्विशिष्टा घटना समवर्तिष्ट?'

'घटना? न सा घटना। तद्धि मे मृत्योश्चिह्नम्। नास्ति सम्प्रति हृदये बलम्, न च तावत्साहसम्, येन हि दारुणा वेदना शक्येत सोढुम्।'

'श्रीमन्! सूच्यतां किञ्चिद्येनाहमवगतः स्याम्।'

'किं कुर्याः श्रुत्वा। एको भवानस्ति यं विलोक्य मे बाल्यसहचरो महाराजभगवन्तदासः सुखेन निजजीवनं विससर्ज। एकोहमस्मि यो म्रियमाणोऽपि भविष्यामि भाजनं दौर्भाग्यस्य।

'किं कुमारसलीमात्पुनरसतोषः समुदभवत्?'

'कुमारः? नासौ कुमारः। स हि मे जीवनस्य कण्टकः। हन्त यस्य जननाय पद्भ्यां यात्रां विधाय चिश्ती-चरणसेवा-कृता, यस्य जन्ममहोत्सवे फतहपुरसीकरीत्यस्य सुविख्यातस्य सुन्दरनगरस्य निर्माणमकारि, स एव पुत्रः, आम् 'पुत्रः', मत्समक्षमेवाद्य कालरूपे परिभ्रमति।'

'पूज्यवर! दिनेष्वेषु कुमारो मत्तोऽप्यसंतुष्ट इवाभाति। स हि तद्दिनादेव न मे हृदयं प्रकाशयति यद्दिने मया सह वङ्गविजयायासौ विसृष्टः।'

'आम्, स भवता किमिति संतुष्येत्? विजानात्यसौ यद्भवान् मे मित्रम्, मम मानस्य प्रतिष्ठाया गौरवस्य चैकमात्रं कारणम्। आः विलासमयस्य पितृद्रुहोऽस्य सलीमस्य हन्त किमग्रे भावि?'

'पूज्यवर! नोत्ताम्यतु भवान्। यथाशक्ति मार्गे समानेतुमिमं प्रयतेय।'

'मा मैवम्। अहं हि कठोरात्कठोरमिमं दण्डयितुं वाञ्छामि। एष हि अब्बुलफजलं निहत्य, मुरादं दानियालं च निर्मूल्य, भवता सह विद्रुह्य, इस्लामधार्मिकान्[१] विरोधे समुत्थाप्य, मोगलसाम्राज्यमपहर्तुमाबद्धवान् षड्यन्त्रम्। तमेनमहं सूचयिष्यामि यदेवंविधानामनुकूलीकरणेऽपि न दुष्टस्य हस्ते निपतेन्मोगलराज्यम्। मोगलसाम्राज्यस्य रचना नैतदर्थं कृता यत्तद्द्वारा स्वार्थविजयः साध्येत, राज्ञां राजकुमाराणां च विलाससाधनं तद्भवेत्। प्रत्युत महान्ति बलिदानानि, भवादृशां महावीराणां च शुभाः प्रयत्नाः केवलमेतदर्थमेवासन् यद्भारतमिदं सपद्येतैकराष्ट्रम्। एकेन शासनसूत्रेण संग्रथिता हिन्दवो मुसलमानाश्च मिथो भेदभावं विस्मृत्य निवसेयुः शान्तिपूर्वकम्।'

१. मुल्ला-मौलवी।

'महामान्य ! शान्तिमवलम्बेथा', आवेशेन तीव्रा भवेद्हृदयगतिः । न बालानामपराधे क्षुभ्यन्ति महापुरुषाः ?

'सखे मानसिंह ! यद्यय स्पृहयति राज्यमेव, तर्हि काऽऽवश्यकताऽऽनीदियतो विप्लवस्य । स्वयमहं जीवन् प्रादास्य तस्मै राज्यम् । किन्तु ये उपायास्तेनावलम्बितास्ते किलोल्लङ्घयन्ति सीमान मानवतायाः ।'

'राजाधिराज ! प्रार्थयेह कियन्तचिदवसरम् ।'

'अस्तु, गच्छतु भवान् स्वैरम्, किन्तु परावर्तेथा. शीघ्रमेव । भवदुपगमेन ह्रसते मे तु स्वावेग. ।'

प्रायासीन्मानसिंह' सलीमसमीपम् । व्यचारयन्महाराजो मनसि—काम सलीमो मत्त' शत्रुतामाचरति परमस्ति साम्राज्याधिकारी सोयमेव । उपजापपरैरिस्लामधार्मिकैः सोय विक्षोभित', विलासपरश्च, किन्त्वस्त्यय बुद्धिमान् । मार्गे समारोपितः सोयमकत्रगनन्तरं समधितिष्ठेत्साम्राज्यशासनम् ।

सलीमो मानसिंहायेर्ष्यति स्म यत्तस्यैव समुखे सम्राट् सलीमापेक्षयापि मानसिंहमाद्रियते स्माधिकम् । अभावयदिदमात्मनो घोर लाघवं सलीमः । किन्त्वद्य स्वयं मानसिंहस्तस्य समीपमुपगत इत्युपलेभे भूयसी शान्तिमसौ । मानसिंहोद्य मे द्वारे समागत इत्यभूत्प्रसन्नोसौ मानसे । समलपत्परमसमादरेण—'स्वागतं महाभागस्य । कथमद्य कष्टमिदमङ्गीकृतम् ?'

'निजापराधाना क्षमाभिक्षायै' अवदन्मानसिंह ।

'कीदृशोऽपराधः ?'

'यानपि भवान् भावयेन्मनसि ।

सलीम. समभूदवाक् । अवादीन्मानसिंह.—'प्रियभ्रातः ! किमिदमारब्ध श्रीमता, वृद्ध' पूज्यश्च पिता किमिति विषादमारोपित' ? प्रत्यहं स रोगाभिमुखमभिवर्द्धते । तद्रोगस्योपचारो भवदायत्तः । अद्यावधि यत्कृत भवेत्तत् सम्यगेव । किन्त्वन्तसमये तस्योपतापनं न शोभते मन्ये भवादृशस्य विवेकिन' । क्षणं विचारयतु भवानेव संसार किं कथयिष्यति—भारतविजयिन' सम्राजो मृत्युकारणमासीत्तत्सुत एव । साम्प्रतं पितुर्विचारणीया दशामवधीया. । य इमे मौलविनो भवन्तमक्षोभयन् आसीत्तस्य कारणमिदमेव यद्भवत्पितुरग्रे न तेषामधिकार प्रभवति ।'

सलीमो भवेत्कामं कीदृशोऽपि, पर नासौ शशाक विस्मर्तुं पितु' प्रणयम् । प्रावहत्तस्य नेत्राभ्या नीरम् । प्रत्यवादीदसौ—'मम पितुर्हितकारिन्मानसिंह ! हन्त प्राबोधयदद्य भवान्मामिममज्ञानम् । सत्यमहमस्मि मन्दभाग्य. । जानेहमनुतापानलो मे प्रारब्धवान् हृदयदाहम् ।'

प्रोक्त मानसिंहेन—'अनलस्यास्योपशमायैकमात्रमुपायोस्ति पूज्यपितुः पादयोरनुकम्पापीयूषम् । उपेहि साम्प्रतमेव, अर्थयस्व च निजापराधानाम् सत्यहृदयेन क्षमाम् । प्रापयेश्च पितु' स्वस्य हृदयाय च शान्तिम्' ।

उदस्थान्महाराज । सलीमोऽप्युत्तरं विना तमनुससार । अदान्महाराज' स्वागमनस्य सूचनां सम्राजे । उपसरमतुद्रावपि सम्राजम । मानसिंहेन सह सलीम विलोक्य प्राज्वलत्सम्राट्, अभूतां क्रोधेन दृशौ रक्तवर्णे । 'अपेहि मत्समीपात्, न दर्शय मे मुखम्' इत्यवादीत्क्रोधगद्गदं सम्राट् ।

अरोदीत्सलीम । मानसिंहोऽवादीत्—'कुमार सलीमोऽनुतप्यते निजकर्तव्योपरि । क्षाम्यतु भवान् साम्प्रतम् । सर्वोऽप्यपराध्यति जीवने । तथाप्यधुना कुमारस्योत्तिष्ठमान वयः, साम्राज्यगन्धी निसर्गः ।'

न्यपतच्चरणयोः सलीमः । अशाम्यदकबरः । पितृहृदयमलब्ध विजय शासकहृदयोपरि । प्रत्यवादी त्सम्राट् प्यथेच्छति भवान् ।'

अवादीन्मानसिंहः—'लभेत भवतो हृदय शान्तिमिति स्वहस्ताभ्यामेव क्रियता राज्याभिषेक. कुमारस्य ।'

कृतज्ञतापूर्णया दृशा व्यलोकयदकबरो मानम् । शत्रवे क्षमाप्रदानस्य नवीनेय पद्धतिर्नाद्यावध्या-लोकितासीत्तेन ' स हि राजमुकुटमधात्सलीमस्य मस्तके । प्रावर्द्धताऽऽवेगेन हृदयस्य गतिः । न किञ्चिद्-भाषितु प्राभवत्सम्राट् । स हि कृतज्ञतया समालिङ्गन्मानसिंहम्, न्यषिञ्चच्च नेत्रजलेन वस्त्राणि मानसिंहस्य ।

पश्यतामेव सर्वेषाम्, प्रावर्द्धत 'आम'[1] रोगस्य रुजा । स्वल्प एव समये संसारस्य महामूल्यमेक रत्नम यारोहत्स्वर्गधाम । व्याप्नुते स्म साम्राज्यमखिल महान् शोकः ।

[१५]

परिवर्तनम्

महाराजः साम्प्रत नवीनयुगमन्वभूत् । अकबरो या स्थिति समान च तस्मै प्रादाद् बाह्य स्वरूप तस्य तथैवासीत्किन्तु मनोवृत्तेरवर्तिष्ट परिवर्तनम् । सम्राट् सलीम , यो हि 'जहाँगीर' नामधेय नयन् साम्राज्य प्रारब्ध, प्रारम्भादेवासीन्मानसिंहादसतुष्टः । न किञ्चिदगणयत्तमिममद्यावधि मानसिंह , किन्तु साम्प्रत स एव सेवनीयः समभूत् । परिवर्तनमिदमभावयन्मानसिंह. । आसीत्तस्य निश्चयो यत्सलीमो न मे किञ्चिदप्यपकर्तुं समर्थः, तथाप्यसावासीत्समयोचितकर्तव्ये निरतः ।

सलीमोऽप्यन्तरन्तः प्रायतिष्ट मानसिंह प्रत्यपकर्तुम्, पर स सम्यगजानाद्यन्मानसिंहमन्तरा नैक क्षणमपि निरुह्येत साम्राज्यम् । अत एव मानसिंहक्लेशनाय स युक्तिमेकामवालम्बिष्ट—साम्राज्ये यावन्ति कठिनकठिनानि कार्याणि समापतेयुस्तानि समर्प्येरन्मानसिंहायैवेति । नासौ व्यस्मार्षीद् यन्मानसिंह-कृत्यैव लब्ध तेन साम्राज्यम् । अत एव प्रकटे कृतघ्नता प्रकाश्य नायमभ्यलपत्सकटे विनिपातयितु-मात्मानम् । स हि मानसिंहमकरोद्वङ्गानामेव शासकम् । यदा यदा च मानसिंहेन समगस्त, प्रादर्शयत्ता-वन्तमेव समादरम् । न कश्चिद्बोद्धुमपारयद्यन् मानसिंहजहाँगीरयोरन्तर्मावान्तरमस्तीति ।

स्वल्प एव समये समुदतिष्ठदुपद्रवो रोहिताश्वदुर्गनिकटे । एनमुपशमयितु स व्यलेखीन्मानसिंह-मेव, अकरोच्च द्वितीय शासक वङ्गानाम् । इतः सर्वासा परिस्थितीनामन्तरभिज्ञो मानसिंहः स्वल्पेनैव कालेन पर्यशमयत्तमेनमुपद्रवम् । न्यवात्सीच्च स तत्रैव । अश्रौषीज्जहाँगीरो यन्मानसिंहो रोहिताश्वदुर्गोप-द्रवमशमयत्सर्वतः । किन्तु स मानसिंह पूर्ववद् वङ्गेष्वप्रहित्य निजनिकटमेवाजुहाव ।

आसीदकबरकृतो दक्षिणविजयः साम्प्रतमप्यपूर्ण एव । अवाञ्छज्जहागीरस्त पूरयितुम् । विलास-प्रियोऽपि जहाँगीर पितृसपादित राज्य प्रवर्द्धयितुमेवैषीन्न ह्रापयितुम । एतस्मै कठिनकार्याय स मानसिंह मेव निरचैषीत् । महाराजः साम्प्रतमुपारोहद्वार्धक्यम् । अवाञ्छीदसौ यत्सम्प्रति साम्राज्यकार्येभ्यो विश्रम्य निजराजधान्यामेव शेषदिनानि व्यतिगमयेयम् । एतदेव विभाव्य व्याजहार जहाँगीरम्—'दृष्टमेव श्रीमता

१ 'पेचिश'

यन्मे जीवनमशेषं युद्धकार्येष्वेव व्यत्यगात् । इदानीं वाञ्छामि यावन्तं स्वल्पकालमहं जीवेयं निजराज्य एव भजेय भगवन्तम् ।

अशङ्किष्ट प्रस्तावेनानेन जहाँगीरः । प्रत्यवादीदसौ—'पूज्यवर ! किमिदं सम्भवति यद्भवान् दक्षिणयुद्धेषु न गृह्णीयाद्भारम् ? समस्तजीवनस्य सञ्चितोऽनुभवो यदि नोपयुज्येत दक्षिणयुद्धे तर्हि का स्यादस्माकं गतिः ? आम् यदि भवान् कामयेत तर्हि कञ्चित्कालमास्ताम् भवानाम्बेरम् । समुपस्थिते च कार्ये ततः समायातु भवान्दक्षिणापथम् ।'

कञ्चित्कालमवकाशं गृहीत्वा समायासीन्महाराजो निजराजधानीम् । अत्युत्कण्ठिताऽभूज्जनता दर्शनाय श्रीमताम् । प्रसन्नो महाराजो महता समारोहेण शोभायात्रामकरोत् । वयोवृद्धं महाराजमवलोक्य समभूवन्सफलमनोरथाः प्रजाः । अभ्यवर्षन्परितः पुष्पाणि । प्रजासु प्रतिवर्गमेव सममान्यन्त मङ्गलानि । स्थाने स्थाने कविवाग्भिरवर्ण्यन्त महाराजस्य विजयसमारोहाः । कुत्रचिच्छत्रूणां भयानकता अवर्ण्यन्त, तर्हि क्वचित्समरयात्रामार्गाणां दुर्गमता अचिन्त्यन्त । ततः सर्वाण्यप्यमूनि सङ्कटानि समुत्तीर्य विजयं प्राप्तवतो महाराजस्य वीरता सर्वान् श्रोतॄन्वक्तॄंश्च हर्षगद्गदानकार्षीत् । अवसरेष्वेवंविधेषु नृत्य-गीत-वादित्राणि यानि यानि सम्भवन्ति, समभूवन् तानि सर्वाणि ।

महाराजो महामहतीं राजसभामकरोत् । सर्वानपि निजसामन्तान्सम्बोध्य वक्तृतामदान्महाराजः—"प्रियप्रजायाः प्रमुखपुरुषाः ! समाविताः सामन्तगणाश्च ! भवतां सहयोगमवाप्य आम्बेरराज्यस्य सर्वतः समुन्नतये मयाद्यावधि पूर्णतया प्रयतितम् । साम्राज्यकार्येषु समधिकसंलग्नतया नाहमिह स्थिरः सन्नशकं भवतां रक्षणावेक्षणं कर्तुम् । आशासे विवशतां मेऽनुमाय क्षाम्येयुर्भवन्तस्तदिदम् । एषु दिनेषु तु भवतां दर्शनाय भूयस्तरामेवाऽभूवं व्याकुलः । अद्य तदिदं समवाप्य परमं प्रसीदामि । साम्प्रतमपि न मह्यमवकाशः प्रत्तः सम्राजा । दक्षिणदिग्विजयाय अनुपदमेव गन्तव्यम्, किन्तु यदि भवतामेवमेव सहानुभूतिः स्यात्तर्हि सेयं विजययात्रापि भवेत् नूनं सफला । शरीरमिदं मे वृद्धम्, पूर्वमिव न बलमुत्साहो वा । को वा जानीते, तदिदं वो दर्शनमन्तिममेव भवेत् । ज्ञाताज्ञाता ये मेऽपराधाः समभवन् क्षम्यास्तु तान्भवन्तः ।

महाराजस्यान्तिमशब्दाः श्रोतॄणामकम्पयन् हृदयानि । सर्वेषां प्रावहन्नविरलमश्रूणि नेत्राभ्याम् । तेषामेकः सामन्तः समुत्थाय सविनयमभाषत—'सूर्यवंशभूषण वीरशिरोमणे महाराजाधिराज ! यादृशी कृपा तत्रभवतामस्माभिरुपलब्धा न सा कस्यचित्पितुर्निजसुतोपर्यपि स्यात् । अस्माकं मानरक्षायै गौरवाभिवृद्धयै च यदनुष्ठितं श्रीमता न तत्तिरोहितमस्मत्तः । तदिदं भवत एवानुग्रहस्य फलं यदाम्बेरराज्यमिदं भारतीयेषु प्रमुखराज्येष्वद्य गणनीयम् । भारतसाम्राज्यस्य शासनसूत्रं भवत एव हस्तगतमासीत् । अथवा तत्त्वतो वक्तव्यं स्याद्यत् साम्राज्यस्य निर्माणमासीद् भवदायत्तमेव । अनेन हि मस्तकमस्माकं गौरवोन्नतम् । अन्ययावत्स्वेष्वपि समरेषु यथा समवाप्ता श्रीमता विजयलक्ष्मीस्तथा दक्षिणदिग्विजयोऽपि निश्चितं भवेदिति दृढो नो विश्वासः । अस्माकं महाराजः सर्वदा समरविजयी दीर्घायुश्च भूयादिति सर्वदा समाशास्महे ।' सर्वेऽपि सामन्ताः समुत्थाय समकार्षुर्विजयध्वनिं महाराजस्य । समाप्यत ततो राजसभा ।

प्रातिष्ठत महाराजो दक्षिणविजयाय । सर्वतः पूर्वं खानखानातः साहाय्यावाप्तये प्राप तत्समीपं महाराजः । मुगलसेनाया महाराजः खानखाना चेति द्वावेवास्तां तात्कालिकराजनीतेस्तत्त्वाभिज्ञौ । किन्तु सलीमो तावस्थानेवानन्तुष्टोऽवर्तिष्ट । अतएव नैतयोरनुभवेनासौ लाभमग्रहीत् । यद्यसौ द्वयोर्विश्वासमकरिष्यत्तर्हि नागमिष्यत् समस्तोऽपि दक्षिणविजयः ।

अभवद्बुरहानपुरसमीपे शत्रुणा सह मोगलसेनायाः सङ्घर्षः । [1] द्वाभ्यामेव मिथः समन्व्य सेनासङ्घटनं तथा विहितं यथा सपूर्णोऽपि विदर्भ (बरार)प्रान्तः समभवत्साम्राज्यभुक्तः । ततस्ते इलिचपुराभिमुखं प्रावर्द्धिषत । आसीदत्र शत्रुः प्रबलतमः । खानखानामन्त्रणया सर्वतः प्रथमं शत्रोरान्तरिकरहस्यान्यसौ समबुध्यत । शक्तिशालिनो गुप्तचराः सहजमिदं निरवर्तयन् । पुनः किमासीत् ? सर्वां परिस्थितिं बुद्ध्वा तत्कालमेवाऽक्रियत इलिचपुरोपर्याक्रमणम् । अभून्महाराजो विजयी । इलिचपुरप्रान्तो विदर्भेण सह संयुक्तोऽभूत् ।

[१६]

महाप्रस्थानम्

मानसिंहमहाराजस्यैतावतीनां सफलतानां मूलकारणमासीत्तस्मिन् विश्वासः स्वामिदत्तः समुत्साहश्च । अकबरो मानसिंहं पुत्रादप्यधिकं प्रणयते स्म । स हि तं विपत्तेः सखायं गौरवस्य च रक्षकं भावयति स्म । बहुषु वार्तासु मतभेदेऽपि न कदाचिद्व्यवहारे प्रतीयते स्म वैषम्यम् । 'दीनेइलाही' सम्बन्धे स्पष्टमभाषिष्ट विरुद्धवाक्यानि मानसिंहः किन्तु न किञ्चिदपि वैमुख्यमवाललम्बे । मानसिंहोऽप्यत एव समयेऽप्यसमयेऽपि च सम्राजोऽनुमतिमन्तरैव स्वयं चक्रे बहूनि कार्याणि । नासीदस्मिन्गन्धोऽपि प्रभावप्रदर्शनस्य, किन्तु प्रत्येककार्यस्य सम्राजमापृच्छ्यैव करणे कार्यक्षतेः सम्भावना, विशेषतश्च तस्मिन्समये यदा हि यातायातस्य सुविधा नासीदद्यैव ।

किन्तु सर्वमिदं सम्प्रति रूपान्तरितमभूत् । अकबरस्य विश्वासस्तेन सहैवागच्छत् । साम्प्रतं त एव शासनाधिकारिणो मानसिंहस्य विरोधं कर्तुं, तं तिरस्कर्तुं च मन्त्रणामबध्नन् ये पुरा मानसिंहस्य सम्मुखे मस्तकमुत्तोलयितुमपि न प्राभवन् । विजने स्थितस्य महाराजस्य मनसि स्वर्गतसम्राजः साधुस्वभावः, महदुद्देश्यम्, निजं प्रति सत्यं सौहार्दं च वारंवारमावर्तन्ते स्म । युद्धविजयात्परावर्तमाने मयि कथमिव कण्ठालिङ्गनमकरोत्, कीदृशैरुत्साहसंवर्द्धकैश्च वाक्यैर्मे वीरतां प्राशंसदिति सर्वं स्वप्नायितमभावयत् । कीदृशेन बुद्धिप्रयोगेण परमपरिश्रमेण च दक्षिणदिग्विजयो महाराजेन कृतः, किन्तु कृतघ्नो जहाँगीरो न प्राकट्यल्लेशतोऽपि कार्तज्ञ्यम् ।

पुरा स यत्र निजेच्छानुसारं शासनमकरोत्तत्र प्रत्येकवार्तामापृच्छ्यैव सम्राजमनुतिष्ठति सर्वम् । यत्रापि युद्धयात्रायां मानसिंहो न्ययुज्यत नियमेन तदुपर्येको मुसलमाननायकोऽपि प्राहीयत । विषगण्डूषमिव सर्वमिदममर्षयन्महाराजः । स्वां परिस्थितिं विचारयन्नासीदवस्थितो महाराज एकदा, एतावत्येव सहसा समागच्छदेकमात्रसहायकः खानखानामहोदयस्तेन सह सङ्गन्तुम् । द्वावप्यास्तामवमानयन्त्रणया दुःखितौ । एकवारं येन सह स्वामिभावः स्वीकृतस्तस्य विरोधाचरणं नासीद् द्वाभ्यामप्यनुशीलितं नूनम् । अश्रुकण्ठो महाराजो बाहूपश्लेषममिलत्खानखानामहाभागेन । अभूवन् द्वयोरपि साम्राज्यसकथाः । महाराजोऽकथयत्—'वृद्धमिदं शरीरमाधीन्ययन्त्रणानां नाधुना सोढुं शक्तम् । मोगलसाम्राज्यस्य श्रीवृद्धये मया दशपुत्राणां बलयो दत्ताः सर्वदा प्रियप्रजाभ्यो वियोगममर्हिषि, नित्यनवीना विपदः सोढाः', हन्त तस्यायं परिणामः । एतावती कृतघ्नता ! अहो मे घूर्णते शिरः । अवलम्बस्व माम्' इति जल्पन्नेव महाराजः खानखानोत्सङ्गे मूर्छितो न्यपतत् ।

१—महाराजः खानखाना चेति ।

हतबुद्धिरभूत्खानखाना। अनेकैरुपचारैर्यथाकथञ्चित्प्रापयाचकार चेतनाम्। किन्तु प्राप्तचेतनः पुनस्ता एव दुःखगाथा प्रारेभे महाराजः। खानखाना प्रत्यवदत्—'सेयं समयस्य गतिर्महाराज! अस्माभिस्तु निजप्रतिज्ञा तावन्निन्दा, किन्तु सलीमस्य दुर्व्यवहारो भवेत्तस्यैव श्रानको नूनम्।' प्रत्युक्तं महाराजेन—'सर्वमिदं सत्यम्। किन्तु राजपुत्रहृदयं न सहते विश्वासहीनताम्। नाहमधिकं जीवेयमिति मे निश्चयः। अतएव केनाप्युपायेन कुमारभावसिंहो मत्समीपमतित्वरितमाह्वातव्यः।'

शीघ्रमेव प्रैष्यन्ताऽऽमेरनगरं दूताः। आम्बेराद्दक्षिणपर्यन्तोपगमे समयव्ययस्त्वनिवार्य एव। एतावत्येव समये महाराजस्य चित्तवृत्तिरुत्तरोत्तरं न्यपतत्। खानखाना अकाण्डदुर्घटनायामस्यां सलीममेव दोषिणमभावयन्निजमानसे। एकैकं क्षणं सोत्कण्ठमसावगणयद् यन्महाराजस्तावत्कालमवश्यं जीवेद् यावत्कालं कुमारभावसिंहोऽत्र समुपेयात्।

महाराजस्य घूर्णते स्म प्रायः शिरः। अभवच्चासौ विसंज्ञः। बहुकालं यावदस्थात्सेयमवस्था।

यावच्च नोपायात्कुमारस्तावदेवप्रायैव समभूदवस्था। मध्ये मध्ये यदा चाभून्महाराजस्य चेतना तदा तदा सहसाऽसौ समपृच्छत्—'कुमार!'। अकस्मादेकः सेवकः समसूचयत्खानखानासमक्षं—'कुमारो भावसिंहः समुपागमत्। म्रियमाणो मीनः समुपालभत पानीयम्। एकमासादासीत्कुमारदर्शनाभिलाषो महाराजस्य, अद्यासावभूत्पूर्णः।

महाराजस्य यथैवाभूच्चेतना तथैवापश्यदसौ संमुखे कुमारम्। प्रासारयदसौ द्वावपि भुजौ। कुमारस्तस्याशयमवबुध्य वक्षसाऽश्लिक्षन्महाराजम्। प्रावहदुभयतोऽपि प्रणयाश्रुप्रवाहः। अहह समयेऽस्मिन् तत्स्थानस्य प्रत्येकपरमाणुतः समुदस्थात्समवेदनाध्वनिः।

'कुमार! नाहमात्मनः प्रजानामशकं निरीक्षणं कर्तुम्, अवसानसमये पत्नीभिरपि नाहं समगंसि। सावधानमिमान् पालयेद् भवान्।'

'तातचरणाः! किमिदमुदीर्यते? अहो कथमेवं विवर्णमभून्मुखम्? अरे किमिदम्? श्रीमन्तः! दीनाय प्रतिपद्यतामुत्तरम्।'

परमुत्तरं किमासीत्? शान्तिः, महाशान्तिः। महाराजस्य प्रशान्तोऽन्तरात्मा प्रावसद्दिव्यलोकनिवासाय।

इलिचपुरे एव समभून्महाराजस्यान्तिमः संस्कारः। परावर्तत ततो निजराजधानीं कुमारः। महाराजस्य देहावसानसंवादमाकर्ण्य राजभक्तानां प्रजानां का भवेदवस्थेति स्वयमनुमेयं पाठकैः।

सलीमः साम्प्रतमात्मनः प्रमादमवेदीत्। महाराजस्याभावे साम्राज्यस्य याऽभूदपारा क्षतिस्तां विलोकयतः समभूदनुतापः सलीमस्य। किन्तु किमिदानीं संभवेत्? मोगलसाम्राज्यस्य प्रधानस्तम्भे व्यपगते तत्कार्यपूरणाय क्रियमाणोऽन्यः प्रबन्धः कृत्रिम एवाभूत्। अभूच्छिथिलं समग्रं शासनम्। किन्तु महाराजस्य देहावसाने सञ्जातोऽनुतापो जहाँगीरस्य जीवने प्राकरोत्परिवर्तनम्। तस्य पितुरादर्शः साम्प्रतं तस्य नेत्रयोः संमुखे समनृत्यत्। हिन्दु-मुसलमानयोर्भेदभावं व्यपनीय हिन्दुषु निजपितेव सोऽपि व्यश्वसीत्साम्प्रतम्। महाराजस्यात्मा निजविलये मन्ये प्रचुरं प्रसीदेत्स्वर्गधामनि साम्प्रतम्। महाराजभगवन्तदासस्येयमिच्छा—'हिन्दुसंस्कारैः प्रभावितः सलीमो न विरोधी भवेद् हिन्दूनाम्' अद्य पूर्त्युन्मुखा समवालोक्यत।

× × × ×

महाराजमानसिंहस्य जीवनं द्वादशवर्षवयः समारभ्य मरणपर्यन्तं साम्राज्यकार्येष्वेव व्यत्यैत्, अत एवासीत्तद्राजनैतिकम्। किन्तु गृहस्थाश्रमोपि महाराजस्य निरौह्यत सम्यक्तया। आसीत्तत्समये क्षत्रियेषु बहुविवाहप्रथा। तदनुसारमभूवन्महाराजस्य २६ विवाहाः। तेषु एकादशपुत्राः पञ्च पुत्र्यश्चाजनिषत। एकादशतनयेषु दशपुत्रा महाराजस्य सम्मुख एव समरेषु वैरिणो निघ्नन्तः स्वर्गमारोहन्। एकादशस्तनयः श्रीभावसिंहो राज्यमशिषत्।

मानमहाराजोऽतीव वदान्यस्वभावोऽभूत्। तस्य दानवीरताया बह्व्यः कथाः प्रसिद्धाः। तथा सोयमासीत् कलाना प्रणयी। एतस्य स्मृतयः आम्बेरराज्ये, येषु प्रदेशेष्वय शासको भूत्वा न्यवसत्तेषु, युद्धाय वा प्रातिष्ठत तेषु साम्प्रतमप्युपलभ्यन्ते। मानसिंहो न केवलमाम्बेरस्य, अपि तु भारतमात्रस्य वीराणां मौलिमाणिक्यमासीदिति निष्पक्षपाता ब्रूयुः। अनेन निजजीवने समरा महान्तोऽनुष्ठिताः। सर्वेष्वेव तेषु विजयोनेन लब्धः। न जातु पराजयो दृष्टः।



'ईश्वरविलास' निर्मातुः कविकलानिधि—

देवर्षिश्रीकृष्णभट्टमहाभागस्य जीवनचरित्रम्

विशालस्याऽऽम्बेरराज्यस्य सर्वतः श्रीवृद्धिकारकः, अनुपम-मनोहराया जयपुरराजधान्या निर्माता, मोगलसाम्राज्यस्य रक्षाकवच, महाराजाधिराजः सवाईश्रीजयसिंहदेवो यथा किल महान् वीरः, अद्वितीयो राजनीतिज्ञश्चाऽऽसीत्तथैव स्वयं विद्वान्, विदुषां समानकर्ता चाऽभवत्। महाराजस्य समये ज्यौतिषस्य, रेखागणितस्य, धर्मशास्त्रस्य च तादृशा ग्रन्था निरमीयन्त, येषां न किल केवलं भारते एव, अपि तु समग्रेऽपि भूमण्डले परमा ख्यातिः। श्रीमतैव जयपुरे, काश्याम्, उज्जयिन्याम्, मथुरायां च ज्योतिषशास्त्रानुसारं ता वेध-यन्त्रशाला निर्मापिताः, या वर्तमानकालपर्यन्तमपि अनुपमाः परिगण्यन्ते। विश्वविश्रुतेन प्रामाणिकपुरातत्त्ववेत्त्रा म० म० श्रीयुतगौरीशङ्करहीराचन्द्रओझामहोदयेन महाराजाधिराजश्रीजयसिंहदेवस्य (द्वितीयस्य) यत् संक्षिप्तं जीवनचरितं [बिडलाकालेजपत्रिकायाम्] प्राकाश्यत, तस्मिन् हि सोयं महाराजः परमराजनीतिज्ञः, अद्वितीयो विद्याऽनुरागी च निर्दिष्टोऽस्ति। धरणीशोऽयं दूरदूरदेशेभ्यः प्रकाण्डपण्डितान्, अनुपमान् गुणिनश्च सनमादरं समाहूय तान् निजराजधान्यां वासयामास, तेभ्यः प्रभूतां ग्रामादिसम्पत्तिं च विततार। पौण्डरीकरत्नाकरः, सम्राड् जगन्नाथः, एवंविधा अद्वितीया विद्वांसो जयसिंहस्यैवाश्रये समभूवन् येषां 'जयसिंहकल्पद्रुमः', 'सिद्धान्तकौस्तुभः', सम्राट्सिद्धान्तः, एतत्प्रभृतयो धर्मशास्त्रस्य ज्यौतिषस्य च ग्रन्था अद्यावधि सर्वमाननीयाः सख्यायन्ते।

महाराजो जयसिंहः सर्वेष्वेव विषयेषु ये पण्डिता आसन्, तेषां सर्वेषामेव समानकर्ताऽऽसीत्। तस्मिन् समये ये ये पण्डिता देशविख्याताः, तत्तद्विषयेषु च येऽद्वितीया आसन्, तान् सर्वानेव तत्तत्स्थानेभ्यः संगृह्य निजराजधान्यां निवासयामास। महाकाव्यस्यास्य निर्माता, यस्य हि निबन्धेऽस्मिन्परिचयं कारयितुमिच्छामि, आसीत्तस्मिन् समये सम्पूर्णे भारते, विशेषतश्च राजस्थाने सुप्रसिद्धः। एष हि मीमांसादर्शनादिषु महाविद्वान्, तन्त्रविषये महान् सिद्धः, सर्वसमर्थश्च महान् कविरासीत्। एतस्य पूर्वजा दक्षिण(मद्रास)प्रदेशात् काश्यां, प्रयागे, च किञ्चित् किञ्चिन्निवसन्तो बूँदीराज्ये सर्वतः पूर्वमाजग्मुः। एते ह्यासन् वेल्लनाटीयतैलङ्गब्राह्मणाः। बान्धवदेशनरेशाद् देवर्षि-प्रमुख शतग्रामाणां भूसम्पत्तिकारणात् एतत्पूर्वजानाम् 'देवर्षि' इत्यवटङ्कः प्रासिध्यत्। एतत्काव्यनिर्माता महान् कविः श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिर्न केवलं संस्कृतस्यैव, अपि तु 'प्राकृत'भाषाया अपि महाकविरासीत्। एतदतिरिक्तं व्रजभाषाया अपि प्रभावशाली महाकविरासीत्। तस्मिन् समये राजपुत्रप्रान्ते व्रजभाषाया महान् समादरोऽभूत्। तत्कवीनां च राजस्थानेषु परमः सम्मानोऽभूत्। कविकलानिधिमहाभागो मूलतो दाक्षिणात्योपि सन् व्रजभाषाया अद्वितीयः कविरासीत्। अस्मिंश्चरिते कविकलानिधिमहाभागस्य साहित्यसेवा विषयकं किञ्चित्परिचयमग्रे दास्यामि।

श्रीकृष्णभट्टमहाभागो यस्मिन् समये बूँदीराज्यमुपागात्तस्मिन् समये राव-अनिरुद्धस्य पुत्रः, रावबुधसिंहो राज्यशासनं करोति स्म। कविमहाभागस्य शास्त्रपाण्डित्यं त्वासीदेव, किन्तु श्रीमतः सुललितां कवितां रावबुधसिंहः सर्वथा वशीचकार। कविकलानिधिमहाभागस्य वंशपरिचये 'कुलप्रबन्ध' नामके संस्कृतकाव्ये तन्निर्माता श्रीहरिकृष्णकविरेव व्यावर्णयति—

"श्रीकृष्णभट्टस्तनयस्तदानी श्रीलक्ष्मणादाहितलक्षणोऽभूत् ।
वशीकृतो येन गुणैरुदारैर्बुन्दीपतिः श्रीबुधसिंहभूपः ॥"

श्रूयते, महाराजस्य बुधसिंहस्येच्छानुसार कविकलानिधिमहाभागः 'शृङ्गाररसमाधुरी', 'विदग्ध-रसमाधुरी' नामकौ द्वौ ग्रन्थौ प्रणिनाय। अन्येष्वपि 'अलकारकलानिधि' प्रभृतिषु निजग्रन्थेषु, बहुषु स्थानेषु रावबुधसिंहस्य प्रशसापराणि पद्यानि सोयमुदाजहार। कविकलानिधिमहोदयस्य व्रजभाषाकविताया‌म् उपनाम'लाल' इत्यासीत्। बुधसिंहप्रशसापरमेक 'कवित्त्व' 'अलकारकलानिधि' ग्रन्थादुद्धरामि—

'राव अनिरुद्धसिंहजू के राव बुद्धसिंह
रावरे सबल दल चलत तमक सो
लालकवि तितके भुवाल पयमाल होत
खूदे हयमाल खुरताल की झमक सो।
भारे होत वारिधि अँध्यारे धूरधार उजि-
यारे दामिनी के असि कारेकी दमक सौं
गारे परैं नदिन, पगारे परैं वारिधिन,
गारे परैं अरिन नगारे की धमक सौं ॥'

आम्बेरनरेन्द्रो महाराजः सवाईश्रीजयसिंहदेवो यथायथा कविकलानिधिमहाभागस्य कीर्तिकथा. शुश्राव, तथा तथा तदानयने तस्य परमाग्रहोपि वृद्धिं भेजे। तस्मिन् समये जयसिंहस्य, बूदीनरेशस्य च मध्ये राजनैतिको महान् संघर्षः प्राचलत् [यस्य परिचय. अस्य काव्यस्य ७-१२ सर्गे प्राप्येत नूनम्], किन्तु कविकलानिधिमहोदयस्य गुणैर्नितरामाकृष्टोऽसौ याचनालाघवमप्यकिञ्चित्कर मत्वा, बुधसिंह-सकाशात्कविमहाभाग याचित्वा निजराज्ये समानिनाय। देवर्षिश्रीवासुदेवभट्टमहाभागो यो हि कविकला-निधे. प्रपौत्रोऽभूत्स हि निजग्रन्थे 'राधारूपचन्द्रिकायाम्' लिखति—

'बूदीपति बुधसिंह सो लाये मुख सों जाचि।
रहे आइ आम्बेर में प्रीति रीति बहु भाँति ॥'

विद्वद्गुणग्राहिणा महाराजश्रीजयसिंहेन कविकलानिधिमहाभागस्य सर्वशास्त्रेषु अद्भुत पाण्डि-त्यम्, अनुपमा कविताशक्तिं चाऽऽलोक्य, महोदयस्याऽस्य असाधारणः समान. कृतोऽभूत्। महता समानेन, परमेण प्रेम्णा च महाभागमिम सप्रेर्य व्रजभाषासाहित्यस्य रत्नस्वरूपाः 'अलकारकलानिधि' सदृशा ग्रन्था निर्मापिता'। अलकारकलानिधेः प्रत्येक'कलायाम्' समाप्ति'पुष्पिका' एव प्राप्यते—

"इति श्रीमहाराजाधिराज-महाराजश्रीसवाईजयसिंहवचनाऽऽज्ञप्तकविकोविदचूडामणि-श्रीकृष्ण-कविकलानिधिविरचिते अलकारकलानिधौ रसध्वनिनिरूपणम्० इत्यादि ॥"

सोऽयमलकारकलानिधिस्तत्सामयिकैः समस्तैरेव साहित्यज्ञैः कविभिश्च सुतरा समादृतोऽभवत्। सर्वेष्वेव राजसस्थानेषु ग्रन्थस्याऽस्य समालोचना प्रशस्तिश्च परितः प्राख्यायत। वर्तमानसमयपर्यन्तमपि पुरातन-पुरातनेषु राजसस्थानेषु अलकारकलानिधेर्गुणाऽभिज्ञाना नास्ति नून न्यूनता। ग्रन्थस्याऽस्य परिचयमग्रे दास्यामि।

मोगलसाम्राज्यस्य रत्नाकरत्वम्, जयपुरराजधान्याः प्रतिष्ठापको, महाराजाधिराज सवाईश्री-जयसिंहभूपालस्तस्मिन् समये भारते साधारणो धराधिपतिर्नासीत्। मोगलसाम्राज्यस्य सर्वेऽपि सस्कृत-

हिन्दीविषयका विद्वांसो जयसिंहस्य सभायां समानिता भवन्ति स्म । जयसिंहः स्वयमसाधारणो विद्वान्, परमराजनीतिज्ञो, गुणिना परमपरीक्षकश्चासीत् । पूर्वमावेदितवानस्मि यत् जयसिंहस्य राजसभायां तस्मिन्समये सर्वासामपि विद्यानां तत्त्वज्ञाः प्रकाण्ड-प्रकाण्डपण्डिता विद्यमाना आसन् । तेष्वपि ज्यौतिषस्य साहित्ये च तादृशा धुरन्धरा आसन्, येषां समतां दूरदूरदेशीयाः पण्डिता अपि कर्तुं न प्राभवन् । कविकुलमूर्द्धन्यः श्रीकृष्णभट्टमहाभागो महाराजसवाईजयसिंहस्य परमसमानितानां विद्वत्पुङ्गवानामन्यतमोऽभवत् । अयं हि सर्वशास्त्राणां मार्मिको भारते सर्वतः प्रख्यातकीर्तिरासीत् । हरिहरभट्टमहाभागेन 'कुलप्रबन्ध'नामके निजकाव्ये श्रीकृष्णभट्टविषये एवं प्रोक्तम्—

'मीमांसापरिशीलने पटुमतिः साङ्ख्याब्धिपारंगमो
न्यायाऽनर्गलवाक्प्रपञ्चचतुरो वेदान्तसिद्धान्तधीः ।
काव्यं व्याकृति-वृत्तकोषकुशलोऽलंकारसर्वस्ववित्
श्रीकृष्णः कविपण्डितो विजयते वाणी विलासाऽऽलयः ॥'

'कुलप्रबन्ध'[1]निर्मातुः श्रीहरिहरभट्टमहाभागस्य समये सोऽयं श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिः सर्वतो लब्धकीर्तिः, कुले प्रमुखतां दधदासीदिति बुध्यते । अत एव तस्मिन्नेव वंशे लब्धजन्मा सोऽयं हरिहरभट्टः, स्वयं वयोज्येष्ठत्वात्तस्मै आशिषः प्रयुङ्क्ते । यथा—

'हरिहर इव कविराजो धनयशसा मण्डलेश इव कोषः ।
श्रीकृष्णभट्ट एष हि चिरमुर्वीमण्डले जीव्यात् ॥'

कविकलानिधिमहाभागस्य गुणैर्भूरिभूरिसंतुष्टेन महाराजेन श्रीकृष्णभट्टमहाभागाय 'कविकलानिधि'रिति पदवी, महती ग्रामादिसंपत्तिश्च समर्पितासीद्, यस्या दानपत्रं (पट्टा, परवाना) जयसिंहतनयस्य श्रीमाधवसिंहमहीपालस्य समये राज्यशासनविभागादक्रियत । सेयं ग्रामादिसंपत्तिर्वर्तमानसमयपर्यन्तमपि एतद्वंशजानामधिकारभुक्ताऽस्ति । कविप्रवरेण श्रीमण्डनमहाभागेन 'रावलचरित्र'नामके निजकाव्ये एवं लिखितम्—

"द्विजकुलकवि श्रीकृष्ण भये पञ्चद्रविड तैलङ्ग ।
रामायन जिनने कियो रामरासपरसङ्ग ॥
विद्वत्कुलके मुकुटमणि 'काव्यकलानिधि' दच्छ ।
दिय खिताब जयसाह ने सब भुवि में परतच्छ ॥"

कविकलानिधिमहाभागेन संस्कृते व्रजभाषायां च महाराजस्याऽऽज्ञया अनेके उत्तमोत्तमा ग्रन्था निर्मिताः । किन्तु खेदस्य विषयो यत्तेषां वंशजानामधिकारे सर्वे ते ग्रन्था न प्राप्यन्ते । तेषां वंशे मध्यकाले एकद्वौ ईदृशौ पुरुषावुत्पन्नौ, ययोः सकाशाद् भूयसी संपत्तिरन्यैरपहृता । किन्तु जयपुरमहाराजस्य हर्म्यमालान्तर्गते राज्यपुस्तकालये [पोथीखाना'] ते ग्रन्था निश्चितं प्राप्येरन्नित्याशा । परं संप्रति 'राजस्थान'निर्माणस्य व्यतिकरात् राजस्थानानां सर्वापि दुर्लभा प्राचीनसंपत्तिः सर्वथा अप्राप्या संवृत्ता । अस्तु, अद्यावधि विदिता श्रीकृष्णभट्टमहाभागस्य संस्कृतग्रन्था इमे सन्ति—

१. तदिदं सर्वं 'साहित्यवैभवस्य' वंशवीथ्यां विलोकयितुं शक्यम् । साहित्यवैभवं च भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री 'मञ्जु निकुञ्ज, पृथ्वीराजमार्गः, जयपुरम् (राजस्थान)' इत्यत्र प्राप्यम् ।

२. मण्डलेशः, तत्पुत्रो हरिहरश्च, उभावपि वंशेऽस्मिन् पूर्वजौ । स्वगुणैः प्रख्यातौ च ।

"ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, वृत्तमुक्तावलिः, पद्यमुक्तावलिः, सुन्दरीस्तवराजः, वेदान्तपञ्चविंशतिः, एतत्प्रभृतयः ।

तत्र "ईश्वरविलासमहाकाव्यम्" पाटकाना समुखेऽस्त्येव ।

वृत्तमुक्तावलिः—अस्या वैदिकच्छन्दांसि, तथा (लौकिक संस्कृतभाषायां प्रचलितानि सर्वाणि छन्दांसि च परिगृहीतानि । यानि वैदिकवृत्तानि संस्कृतभाषाज्ञाना कृते अन्धकारच्छन्नानि तान्यपि, सलक्षणानि सोदाहरणान्यत्र प्रदर्शितानि । विशेषश्चाय यत् तत्तच्छन्दोविषये यद् यद् विशिष्य बोधनीय तत्तस्य कृते सर्वसाररूपेण पृथक्सग्रह' कोष्ठकादि दत्वा विशदीकृतः । यथा आर्षी गायत्री चतुर्विंशत्यक्षराणाम्, आर्षी उष्णिक् अष्टाविंशत्यक्षराणाम्, आर्षी अनुष्टुप् द्वात्रिंशदक्षराणाम्, आर्षी बृहती षट्त्रिंशदक्षराणाम्, पंक्तिश्चत्वारिंशदक्षराणाम्, त्रिष्टुप् चतुश्चत्वारिंशदक्षराणाम्, जगती अष्टचत्वारिंशदक्षराणाम् । एवमेव दैवी-आसुरी-प्राजापत्यादिभेदानि गायत्री उष्णिक् आदिच्छन्दांसि कियदक्षरकाणि, इति एकत्र सग्रह कृत्वा कोष्ठकरूपेण पृथक् प्रदर्शितम् । एतदग्रे सर्वेषा गायत्र्यादिच्छन्दसामुदाहरणानि प्रदत्तानि, यैः सर्वाणि च्छन्दांसि स्पष्टतया हृदयगमानि भवन्ति । वैदिकच्छन्दोविषये एवविधो ग्रन्थो नाद्यावधि प्रकटीभूत इति ग्रन्थदर्शनेन विदित भवेत् [सोय प्रथमो गुच्छक (गुम्फः)]

द्वितीये गुच्छके संस्कृतभाषाच्छन्दांसि साकल्येन प्रदर्शितानि । विशेषश्चायं यत् हिन्दी (व्रज)-भाषाया यानि दोहा सोरठा-चौपाई-कवित्त (घनाक्षरी) सवैयाप्रभृतीनि च्छन्दांसि प्रचलितानि तान्यपि सोदाहरणानि अत्र प्रदर्शितानि । अनेन स्पष्ट प्रतीयेत यत् पूर्वं तान्येतानि च्छन्दांसि संस्कृतभाषायामवतीर्णानि, ततो हिन्दीभाषायामनुवृत्तानीति । यथा 'द्विपथा'च्छन्दः—

'त्र्यधिका दश विरचय कला मुहुरेकादश धाम ।
इति दलयुगलयुत कलय वृत्तं 'द्विपथा' नाम ॥'

जगन्नाथप्रसाद'भानु'ना कृते 'छन्दःप्रभाकरे' 'दोहा' लक्षण लिखितम्—"जा न विषम तेरा कला, सम शिव दोहा मूल" अर्थात् विषमचरणे (प्रथम तृतीययोः) त्रयोदशमात्राः, तथा समे (द्वितीय-चतुर्थयोः) एकादशमात्रा भवन्ति । एव विषमे चरणे (प्रथम-तृतीययोः) आदौ जगणो न स्थापयितव्यः, इति । द्विपथा(दोहा)या उदाहरण यथा—

'सनकादिकमुनिदुरधिगम परमानन्दविधान ।
पाहि पाहि सीतापते कृतभीताऽभयदान ॥'

लक्षणानि न भवेयुर्मनोविनोदाय । अत एव व्रजभाषाप्रसिद्धाना कतिपयच्छन्दसामुदाहरणानि 'वर्णिका'रूपेण दीयन्ते—

कुण्डलिका ['कुण्डलिया']

'वृन्दाविपिने वन्दिता वृन्दारकनिकरेण ।
राजति कापि कलिन्दजा तरलतरङ्गभरेण ॥
तरलतरङ्गभरेण भरितभूमीतलशोभा ।
निरवधिनिजलावण्यकलितलोचनयुगलोभा ।
उन्मीलितकमलौघमिलितमदलुलितमिलिन्दा ।
मञ्जुलतरजलकेलिवशितगोपीजनवृन्दा ।

षट्पद (छप्पय) वृत्तम् [का-यवृत्त तथा 'उल्लाल'वृत्तमिति वृत्तद्वयात्मकम्]

"जय विबुधेशमहेशशेषनागेशकृतस्तव ।
जय निजजनसुखकरण तरणकरणिकासमुद्भव ।
जय वचनाऽमृतदलितकलुषकलिकालमहादव ।
मायमतध्वान्तखण्डनखण्डनसुमहार्णव ।
जय देव वल्लभाधीश जय जय सज्जनसेवितचरण ।
जय चारुचरितविरचनचतुर साकारश्रुतिमत शरण ॥"

सवैयाच्छन्दः

'हासविकासविलासवती रुचिरुपलसन्मकरन्दरसाला
मोहितचित्तमधुव्रतराजिसभाजितसततसौरभशाला ।
यौवनरक्तिमचारुपरागधरा परिगुम्फितसद्गुणजाला
भामिनि ! भाति पर भवती भुवि हेमसरोजमयी नवमाला ॥'

घनाक्षरी (कवित्त, मनहर)

"शारदनभःस्थलीव निर्मलनिरभ्रगणा राजमानरत्नरचितागवृन्दधारिणी
चारुपुरुहूतमणिबद्धसरणीव बहुरत्नरमणीयरूपकौतूहलकारिणी ।
दीपमालिकाया निशि भाति भूरि दीपभृता कालिन्दी करालकलिकल्मषविदारिणी
वसुमती केशवविलासवतीतनुभृता नीलशाटिकेव हेमबिन्दुजालधारिणी ॥"

अन्या प्लवङ्गम–हरिगीतिका–पद्धरि रोला–दुपई–मरहठा–झूलना–त्रिभङ्गी प्रभृतीनि व्रजभाषा-प्रसिद्धानि सर्वाण्येव छन्दासि सलक्षणमुदाहृतानि । वृत्तरत्नाकरादिषु प्रचलितेषु छन्दोग्रन्थेषु नेमान्युपात्तानि । अतएव हि संस्कृतकविभि समर्थैरपि तान्येतामि वृत्तानि नोपात्तानि । संस्कृतग्रन्थेभ्य एव भाषासाहित्ये तदिद छन्द शास्त्रमपि प्रचलितमभूदिति सस्कृततदुलनामभ्यो निर्धारणीय भवति । यथा हिन्द्यां 'सोरठा' छन्द. सुप्रसिद्धम् । एतस्य हि सस्कृतग्रन्थेऽस्मिन् 'सौराष्ट्र' इति नाम । लक्षणमपि तथैव । भाषायामुच्यते—"दोहा उलटे सोरठा ।" अत्रापि लक्षण प्रोक्तम्—

'द्विपथावृत्तमशेषमुच्चर कृतविपरीतगति ।
मानय वृत्तविशेषमिह सौराष्ट्रमुदारयति ॥"

एतस्योदाहरण दत्तम्—

'मोहितगोकुलदार निगमसार सुन्दरचरित ।
जय जय नन्दकुमार नित्यमलौकिकगुणभरित ॥"

सेय वृत्तमुक्तावली महाराजाधिराजसवाईजयसिंहस्य (द्वितीयस्य) इच्छानुसारमेव कविकलानिधि-महाभागेन निर्मितेति ग्रन्थे एव प्रोक्तम् । यथा—

'भूभृन्मौलिकिरीटलालितपदाम्भोजद्वयस्य प्रभो—
स्तस्याऽतिप्रसृतप्रसादपरमप्रेमप्रमोदस्पृशा
अत्यर्थं कवितोन्मुखेन मनसा नित्य प्रयुक्त. कविः
श्रीकृष्ण· कुरुते रसज्ञसुखदा सद्वृत्तमुक्तावलीम् ॥"

अस्यापि ग्रन्थस्य प्रतिलिपि: 'भाण्डारकरओरिएण्टलरिसर्चइन्स्टिट्यूट' पूना सकाशात् अधिगता। एतदर्थं 'क्यूरेटर'महाभागाय प्रचुरा धन्यवादाः।

पद्यमुक्तावलिः—अस्यां कलानिधिमहाभागेन समये समये निर्मितानि मुक्तकपद्यानि संगृहीतानि। अस्यां खड्ग-गज-नर-पद्म द्विगुणपद्म-कामधेनु-कपाटबन्धप्रभृतानि अनेकानि चित्रकाव्यानि सन्ति। किन्तु, तेषां चित्रणं विना न प्रबोधो, न वा प्रमोदः, अतएव नैतान्युदाह्रियन्ते। पुरा प्राकृत-संस्कृतयोर्भाषासमकानि सरस्वतीकण्ठाभरणादौ दृष्टानि। किन्तु हिन्दी-संस्कृतयोर्भाषासमकानि नाद्यावधि विलोक्येरन्। अवश्यमेतत्पङ्क्तीनां लेखकेन द्वित्राणि पद्यानि 'जयपुरवैभवाख्ये' + मञ्जुकवितानिकुञ्जस्य प्रथमखण्डे दत्तानि। किन्तु दीर्घेषु वृत्तेषु सुरुचिराणि भाषासमकानि कलानिधिमहाभागस्यैव प्राप्येरन्। पाठकानां मनोविनोदार्थमेकं पद्यमुद्ध्रियते, किन्तु अर्थोद्धारः प्राक्तनपुस्तके नोपलभ्यते। किञ्चिन् मया, किञ्चिच्च पाठकैरेव स्वबुद्ध्या निर्धारणीयो भवेत्। विशिष्टश्चमत्कारस्त्वस्मिन् पद्ये सोऽयं विलोकनीयो यद् यथा संस्कृत-हिन्दीभाषयोः श्लेषः, एवमर्थेऽपि श्लेषः। हिन्दीभाषायां वर्णनीयः श्रीकृष्णः। संस्कृते तु वर्ण्यो भगवान् शङ्करः। व्रजभाषायां अर्थाऽनुकूल्येन पदच्छेदं कृत्वा विलिख्यमानं पद्यम्—

'सात दिना कर लीन महागिरि जा पर मोह कुतूहल धारी
कण्ठ हरा हर कीलकुटी, तनु नीलम-सी रुचि रञ्जनकारी।
कामद, यारहितो वर गोपतियान उदार कलानिधि भारी
भावनि जाचित सर्वसु राधिक ए तुम नोनित राम हि हारी॥'

[सप्तदिनावधि, करे येन महागिरिः (गोवर्धनः) गृहीतः। यदुपरि मम कुतूहलं दधाति। कण्ठे हारः (वनमाला), कीलकुट्या: दावानलजालस्य यो हारक (वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलौ)। यस्य तनुः नीलमणिवत् स्वकान्त्या रञ्जनकारिणी। कामदः, मित्रेषु हितः, (वर) श्रेष्ठासु (गोपतियान) गोपस्त्रीषु उदारः, श्रेष्ठश्च कामकलानां निधिः। भावैः यस्य चित्ते सर्वस्व राधिकाऽस्ति। अयि त्वं नवनीतस्य (महि) दध्नश्च हारी असि। एवं प्रायो व्रजभाषायामर्थः।]

संस्कृते तु [सातदिनानां सुखदिनानां समूहे लीनं महस्तेजो यस्य, सातदिनाकरलीनमहाः, यस्य तेजः (प्रभावः) सुखदिनकारी, कालं शुभं निर्मातीति यावत् (शर्मसातसुखानि च)। यः शिवः गिरिजायाः परमोरु-महत् कुतूहलं धरति। कण्ठे या हलाहलस्य कीलकुटी ज्वालरेखा, तया तनुः सूक्ष्मा या नीलमसी(स्याही)वत् रुचिः, तया रञ्जनकारी। कामोपरि दयारहितः, वरः श्रेष्ठो यो गोपतिर्नन्दीश्वरः स यानं यस्य। उदारं निष्कलङ्कं कलानिधिं चन्द्रं बिभर्ति सः। भावेन निजं स्वयं आचिताः एकत्रस्थापिताः ये सर्वे सुराः तेषु अधिकः, ईदृशः अहिहारी (सर्पभूषणः) नितरां सदा मनः एतु अधि ते तु अयमर्थः स्यात्।]

अन्योऽपि शब्दचमत्कारो दृश्यताम्—

"पायान्नः शशिखण्डमण्डितशिराः कैलासकेलीवरः
कैवल्याहितवैभवः कुशलकृत् कामाहितैकप्रदः।
साराधायकहृद् विरूपनयनानन्दी सदामोदरो
रुद्राणीकृतदानवेशसुभगः श्रेयाननाद्याऽद्वरः॥"

+ 'मञ्जुकवितानिकुञ्जस्य' जयपुरवैभव-साहित्यवैभवाख्ये खण्डे—भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री—"मञ्जुनिकुञ्ज, पृथ्वीराजरोड, जयपुर (राज०)" इति स्थानात् प्राप्ये।

अनाद्यः (यस्याऽपेक्षया अन्यः आदिमो नास्ति) अक्षरश्च स शिवः पायादिति शिवपरोऽर्थः स्पष्टः। किन्तु सर्वेषु पदेषु आद्याक्षररहितः सदामोदरः (आद्याक्षरराहित्येन दामोदरः) पायात्। तथा च शिखण्डमण्डितशिराः, लासकेलीधरः बल्याहितवैभवः (बलेः सकाशात् आहितं गृहीतं वैभवं येन), शलं तन्नामकं मल्लं कृणत्ति सः, मायाः लक्ष्म्याः हितस्य एकमात्रः प्रदाता, राधायकहृद् (राधाम् अयति हृद् यस्य), रूपेण नयनयोरानन्दजनकः, द्राणीकृताः विद्राविताः दानवेशाः दानवश्रेष्ठा येन अत एव सुभगः इति दामोदरपक्षेऽर्थः।

न केवलं शब्दचमत्कारे एव पाटवं कविकलानिधिमहाभागस्य। सरलाः सार्थचमत्काराश्च बहवः श्लोकाः सन्ति पद्यमुक्तावल्याम्। यथा माधवेन्द्रवर्णने—

'माधवेन्द्र द्विपद्धामा. क्षामा. कामार्तितो दधुः।
बाष्पौघान्तरितौ माय चक्रवाकाविव स्तनौ॥
तेजस्विनौ विदलितास्तव प्रतापेन, माधव विमुक्तौ द्वौ।
बाडवतया किलौर्वो मित्रतया चित्रभानुरपि॥'

[बाडवो ब्राह्मणो बडवाग्निश्च। मित्रपदेन सुहृत्सूर्यौ प्रसिद्धावेव।]

कविकलानिधिमहाभागेन संस्कृतभाषाया ब्रजभाषायामेव वा न कवितापाटवं प्रकटीकृतम्, अपि तु प्राकृतभाषानिगुम्फनपाण्डित्यमपि तदीयमासीदसाधारणम्। दृश्यन्तां वर्णिकारूपेण माधवेन्द्रगाथाः—

'सरसगुणकव्वमज्झे जेत्ताओ सुकइकण्ठअम्मि सठविआ।
तेत्ताणं उवमाणं तुमं सि माहवणरिन्द दप्पणओ॥
सूरो चन्दो इन्दो तुलासु माहवणिवेण सतुलिदो।
अहि भुइ गुरुओचि तुम लहुवा अण्णे दिव जादा॥
आणीद विजआए माहव तुव क्त्तिमुत्तिअमणग्घम्।
घरिऊण इक्ककण्णे पशठिआ पव्वई हरद्धङ्गे॥'+

सुन्दरीस्तवराजः—त्रिपुरसुन्दर्याः स्तोत्ररूपमिदं काव्यम्। अस्मिन् भक्तिप्रवणता, प्रसादमाधुर्यम्, तन्त्रशास्त्रमार्मिकत्वं च सर्वतः प्रतिभासते। नवोत्तरशतमेतस्मिन् पद्यानि। किन्तु यत्पुस्तकमुपलब्धं तत् अतिजीर्णपत्रम्। स्थाने स्थाने अक्षराणि पत्रेण सह विशीर्णानि। अनुमानतस्तानि कल्पयितुं शक्यानि। अस्तु, सुप्रसन्नमधुरस्यास्य कतिपयपद्यानि निम्ने समुद्ध्रियन्ते—

'कलाकेलीलोलक्वणितमणिकाञ्चीगुणगणा
विलुप्ताङ्गी मध्ये कुचभरनताङ्गी शशिमुखीम्।
कराम्भोजभ्राजत्सधनुरिषुपाशाङ्कुशवरा
समन्तात्त्वां वन्दे स्मरहरतपःसिद्धिपटलीम्॥'

+ सरसगुणकाव्यमध्ये यावत्यः सुकविकण्ठे स्थिता.।
तावतीनामुपमाना त्वमसि माधवनरेन्द्र दर्पणः॥
सूर्यश्चन्द्र इन्द्रस्तुलासु माधवनृपेण सतुलितः।
अयिभुवि (असि भुवि) गुरुक इति त्वम्, लघवोऽन्ये दिवं याताः॥
आनीत विजयया माधव तव कीर्तिमौक्तिकमनर्घम्।
धृत्वा एककर्णे प्रविष्टा पार्वती हरार्द्धाङ्गे॥

सृष्टिक्रममारभ्य भगवत्याः स्तुतिपरेण कविकलानिधिमहाभागेन कीदृशमुदीरितमित्यालोक्यताम्—

'त्वमेका विश्वस्मिन् रमणमनसा द्वैतमकरो-
स्ततस्त्वत् त्वं जज्ञे महदिदमहङ्कारसहितम् ।
मनस्तेनाऽऽरब्ध सकलमपि दृग्दृश्यमसृज-
त्तदेव लोकेऽस्मिन किमपि न विलोके त्वदितरत् ॥'

भक्तिप्रवणस्याऽनुभूयता काव्यगुम्फनपाटवम्—

'दरिद्रं दुःशील दुरधिगमन दुःखदलित
दुराचार दूरे पतितममरैर्दुर्भरतरम् ।
जनैर्मुक्तं मुक्तिप्रमुखसुखसम्पत्समुदयाः
पुमांश्च सेवेरन् भगवति भवद्दृष्टिभरितम् ॥

पिबन्त षड्वक्त्र सरभसमवष्टभ्य पिबति
द्विपास्ये सस्नेहस्रवणसरसो दक्षिणकु च. ।
परो मातः ! स्कन्दोपरि सकरुणस्यन्दमधुर.
स्तनस्ते त भात्र प्रकटयतु मल्लक्षणशिशौ ॥'

तन्त्ररहस्यमार्मिकता निरीक्ष्यताम्—

त्रिरेखाऽन्तर्वृत्तत्रयगत(हृद)ब्जाऽष्टदलयोः
परस्ताद्वृत्तैकस्फुटभुवनकोणान्तरगते ।
दशारद्वन्द्वेऽन्तः स्फुरितवसुकोणान्तरलस-
त्त्रिकोणे त्व नित्य विलससि महाबिन्दुवपुषा ॥

स्वरूपवर्णनशैली प्रत्यक्षीक्रियता किञ्चित्—

''प्रवालश्रीसर्वापहरणविलोलाङ्गुलिगणाः
स्फुरद्रक्ताम्भोजद्युतिविजयिमाञ्जुल्यनिलयाः ।
चतुर्वर्गश्रेणीफलयुगपदुद्भावनकराः
करास्ते चत्वार. कलयितुमेल शर्म विमलम् ॥

शिवे शय्यावेश्मोपगमसमये भूरिसुखदै-
र्बृहत्सामस्तोमप्रवचनचमत्काररुचिरैः ।
कलक्वाणै. प्राणप्रदमिव गिरीशश्रवणयो-
रिदं ते हसाना हरति हृदय हसकयुगम् ॥''

कियद्वोदाह्रियता, स्तोत्ररत्नस्याऽस्य सर्वेऽपि श्लोका अहमहमिकया उपतिष्ठन्ते ।

वेदान्तपञ्चविंशतिः—ग्रन्थस्य नाम्नैव विदित भवति यद् वेदान्तविषयकाणि पञ्चविंशति-पद्यानि भवेयुः । किन्तु सोय ग्रन्थो नाऽद्यावधि अधिगत , अतएव सोयमदृष्टः ।

व्रजभाषायाम्-अलङ्कारकलानिधिः—अय महाराजजयसिंहस्याऽऽज्ञया निर्मितोऽलंकारशास्त्र-स्याऽऽकरग्रन्थः । प्रधानतः सोय काव्यप्रकाशस्याऽऽधारेण निर्मित. । काव्यप्रकाशस्य येषु कठिनस्थलेषु

उत्तमोत्तमाटीकाकारा अपि चक्रव्यूहे पतन्ति, तेष्वपि कलानिधिमहाभागैस्तादर्शी स्पष्टा व्याख्या कृता यां विलोकयतां साहित्यमार्मिकाणां हृदये ग्रन्थकर्तुरगाध पाण्डित्यमङ्कित भवति। कलानिधिनामाऽनुसारमस्मिन् षोडशकलाः सन्ति। प्रथमायां–हाव-भावादीनां लक्षणोदाहरणानि सन्ति (गोग काव्यप्रकाशाद्विशेष.)। द्वितीयायां–काव्यलक्षणम्। तृतीयायां–त्रिप्रकारकाणां शब्दानामर्थानां च निरूपणम्। चतुर्थ्यां–अर्थस्य व्यञ्जकता। पञ्चम्यां रसलक्षण तस्य भेदाश्च। षष्ठ्यां–ध्वनिभेदाः। सप्तम्यां–गुणीभूतव्यङ्ग्यानां भेद-लक्षणो-दाहरणानि। अष्टम्याम्–अधमकाव्यस्य शब्दचित्रता अर्थचित्रता च सोदाहरणं निरूपिता। नवम्यां–गुणनिरूपणम्। दशम्यां–प्राचीनानां नवीनानां च मतानुसार गुणानां स्वरूपाणि भेदाश्च। एकादश्यां-शब्दालकाराः। द्वादश्यां–अर्थालकाराः। त्रयोदश्यां–अलकाराणां दोषा.। एवं किल त्रयोदशपर्यन्त काव्यप्रकाशस्य क्रमः सर्वोऽपि समाप्यते। चतुर्दश्यां–नायकनायिकानां लक्षणानि भेदाश्च। सोय ग्रन्थो मत्सविधे एतावानेवास्ति। संभवतः सोय ग्रन्थो जयपुरराजहर्म्यपुस्तकालये सम्पूर्णः स्यात्। किन्तु 'कृष्णगढ-राज्यपुस्तकालये' सोयं ग्रन्थः पूर्णास्तीत्यहं जाने। यतो हि भरतपुरनगरे यत्किल 'हिन्दीसाहित्यसमेलन'मभवत्, तस्य 'प्रदर्शिन्या' सोय ग्रन्थ. पूर्वोक्तराज्यद्वारा प्राहीयत। ग्रन्थस्याऽस्य प्रकाशने साहित्यमार्मिका रसमेतस्य ग्रहीतुं शक्नुयुरिति किमत्र विस्तरेण।

एतदतिरिक्त साँभरजुद्ध, जाजऊजुद्ध, बहादुरविजय (ग्रन्थ), शृङ्गाररसमाधुरी, विदग्धमाधवमाधुरी, तैत्तिरीयाद्युपनिषदां प्राचीनहिन्दी(व्रज)भाषायामनुवादः, जयसिंहगुणसरिता, रामचन्द्रोदयः, रामरासा, वृत्तचन्द्रिका नखसिखवर्णनम्, दुर्गाभक्तितरङ्गिणीप्रभृतयोऽन्ये ग्रन्थाः सन्ति।

उपरि निर्दिष्टेषु व्रजभाषाग्रन्थेषु 'शृङ्गाररसमाधुरी' विदग्धमाधव (रस)माधुरीनामकौ ग्रन्थौ यथाक्रम शृङ्गाररसस्याङ्गोपाङ्गवर्णने, साहित्यस्य सर्वविषयनिरूपणे च निर्मितौ। द्वावपि ग्रन्थौ बूंदीनरपतेराज्ञया लिखिताविति प्रसिद्धिः, न मया एतौ प्रत्यक्षमालोकितौ। किन्तु हर्षस्य विषयोऽस्ति यद् द्वयोरप्यनयोर्ग्रन्थयोः सम्बन्धे "काँकरोली (मेवाड)" संस्थानस्य 'संग्रहालयात्' भूयस्तरामनुसधानमधिगतम्। 'काँकरोलीविद्याविभाग'स्य सचालकेन पो॰ कण्ठमणिशास्त्रि'विशारदेन' 'दिव्यादर्श' नामकस्य तैलङ्गजातीयस्य द्वैमासिकपत्रस्य प्रथमवार्षिकपञ्चमसख्यायां [श्रावण-भाद्रपद स॰ ६७ वि॰] 'इतिहास के पृष्ठ' इति शीर्षकं प्रदाय श्रीमतः कविकलानिधिमहाभागस्य सम्बन्धे. बहुतरा' सूचना दत्ता.। तेन महाभागेनेदमपि लिखितं यत् 'काँकरोली संस्थानस्य' षष्ठतिलकायितश्रीव्रजभूषणजी (द्वितीय)महाभागानां श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिमहोदयेन सह भूयसी घनिष्ठताऽऽसीत्। गोस्वामिमहाभागेन जयपुरनरेन्द्रश्रीमाधवसिंहाय दीक्षां दत्त्वा पूर्वोक्तकविकलानिधिमहाभागस्य कतिपये ग्रन्था. सगृहीताः। शृङ्गाररसमाधुर्यादिग्रन्थद्वयस्याऽपि विषये विद्याविभागाध्यक्षस्य (पो॰ कण्ठमणिशास्त्रिणः) लेखमविकल संस्कृतेऽनूद्य, उद्धरामि। महाभागोय लिखति—

"शृङ्गाररसमाधुरी" नामको ग्रन्थोऽस्माभिः काकरोलीसंस्थानीय 'विद्याविभागे' दृष्ट., यो हि १७६५तमे विक्रमवत्सरे लिखितस्य पुस्तकस्याऽऽधारेण सशोधितः, १८८०तमे वैक्रमे च वत्सरे लिखित.। एतद्ग्रन्थस्याऽन्तिमा पुष्पिका एवमस्ति—"इति श्री महाराउराजाबुधसिंहदेवाज्ञाप्रवृत्तकविकोविदचूडामणिसकलकलानिधिश्रीकृष्णभट्टदेवर्षिविरचितायां शृङ्गाररसमाधुर्यां षोडशः स्वादः · · · ।"

अनेन स्पष्टं निश्चीयते यद् ग्रन्थोऽयं बूंदीनरेशस्य श्रीबुधसिंहमहाराजस्याश्रये निरमीयत। एवमेव विदग्धरसमाधुरीग्रन्थस्यापि रचना तस्यैवाश्रये समभवत्। शृङ्गाररसमाधुरीग्रन्थः साहित्यस्य रीतिग्रन्थ'। विषयोऽस्य परममनोहर, कविता चापि प्रसादगुणयुक्ता।

नानादेशेषु संमानः

श्रीमान् कविकलानिधिमहाभागो नानादेशेषु भ्रमणमकरोदिति तस्य ग्रन्थैः प्रतीयते। अलौकिकगुणानां कारणात्स्थाने स्थाने तस्य समादरः समभवत्। 'पद्यमुक्तावल्यां' मालवदेशीयानां बहूनां नरनारीणां, स्थानानां, पदार्थानां च विस्तृतं वर्णनं प्राप्यते। अतएव तद्देशे विशिष्य निवासोऽभवदित्यनुमीयते। मालवस्त्रीणां गतिवर्णनम्—

'शिक्षाम्भःप्रेङ्खितेभ्यः परमकरुणया राजहंसोत्तमेभ्यः
स्वान्तेवासिभ्य एभ्यः स्मरनिगमगणाऽध्यापनं निर्दिशन्ति।
पादाऽङ्गुष्ठाऽङ्गुलीषाऽभरणचटकिकाचारुचाटूक्तिदानै-
र्मन्दान्येवोद्धतानि प्रविदधति मुदं मालवीनां गतानि॥'

[पादाङ्गुलीषु धार्यमाणस्याऽऽभरणस्य व्रजभाषायां 'चुकटी' इति नाम। तत्र चटकात्वं रूपयन् तस्याः शिञ्जारवं चाटूक्तिरूपेण उत्प्रेक्षाचक्रे कलानिधिमहाभागः।]

मन्दहासः

'तारुण्योद्भेदभाजां कटिचरणरणत्किङ्किणीनूपुराणां
प्रोद्यन्मन्दानिलान्दोलितपरमपटस्पष्टनर्मस्थलानाम्।
गम्भीरावर्तनाभीलसदुदरवलीरोमवल्लीयुतानां-
मेतासां मालवीनां कलयति मदनोन्मादनं मन्दहासः॥'

महाकालस्तुतिः[१]

गीतिः— मम मतिरति विरमति चन्द्रभाले महाकाले। (ध्रुवम्)
लीलालोलव्यालमाले। कलितभूमीधरबाले। जटाजूटजटाले।
केलीविदलितदुःखजाले। निखिलसुरावलिभूपाले। सुरधुनीचूडाले।
गरलनिगलनाकण्ठेकाले। धत्तूराऽरुणदृग्जाले। सुकविकलानिधिकृपाले।

बहूनां कथनमस्ति यद् बुन्दीराजसभायां गमनात्प्राक् कविकलानिधिमहाभागः कियत्कालपर्यन्तं भरतपुरराज्येऽपि न्यवसत्। तत्रैव महाभागेनाऽनेन 'दुर्गाभक्तितरङ्गिणी' नामको ग्रन्थो निर्मितः। यदि तदिदं कथनं सत्यमस्ति तर्हि 'पद्यमुक्तावल्याः' निम्नोद्धृते पद्यद्वये सूर्यमल्लपदेन जाटराजस्य सूर्यमल्लस्यैव निर्देशोऽस्ति। यथा—

'इतो हैन्दवीं सृष्टिमानन्दयन् स्वै-
र्गुणौघैस्ततो यावनीं सृष्टिमुच्चैः।
महेन्द्रास्पदे श्रीयुतः सूर्यमल्ल-
स्तटद्वन्द्वसयत्तरङ्गः समुद्रः॥'

उद्यन् दोषाकरस्याऽप्यथ निजचरणैकाश्रयस्य प्रभावं
तन्वानः किंकराणां किमुत गुणवतां रज्यतामम्बुजानाम्।
भाति ख्यातप्रभातोदयगिरिगदितोद्दामविद्योतरश्मि-
प्रोदञ्चन्मण्डलाग्रप्रचुरतररुचिः श्रीयुतः सूर्यमल्लः॥'

१—अन्यान्यदपि वर्णनं भूमिकाविस्तारभयान्नात्र समुद्ध्रियते। जिज्ञासवः पाठकमहाभागा साहित्यवैभवस्य वशवीथ्यां विलोकयितुं प्रभवेयुः।

[दोषाकरः चन्द्रः, दोषाणामाकरः स्थानं च । चरणः पादः सूर्यकिरणश्च । मण्डलाग्रं बिम्बाग्रं खड्गश्च ।]

रामरासाचार्यः

कविकलानिधिमहाभागस्य अलौकिकं पाण्डित्यम्, अनुपमां कविताशक्तिं च प्रत्यक्षीकृत्य जयसिंहमहाराजेन निजसमीपे सादरं स्थानमदीयतैव । ससमादरमाज्ञां प्रदाय अलङ्कारकलानिधि-वृत्तमुक्तावलिप्रभृतयोऽनेके ग्रन्था निर्मापिता एव । किन्तु नवीननिर्मितस्य रामायणस्य प्रसङ्गेनैव कलानिधिमहाभागस्य विशिष्टः परिचयः समबध्यत, यो हि शनैः शनैरतिसुदृढतां भेजे । एतद्विषये सेयं किंवदन्ती श्रूयते--यत्कस्मिंश्चन प्रमोदसमये कविमण्डलमध्यगतो महाराजाधिराजो जयसिंहो विनोदमयीर्वार्ताः कुर्वन्नासीत् यत् "श्रीकृष्णस्य, श्रीरामचन्द्रस्य च चरित्रे तदिदमपि विशिष्टमन्तरमस्ति यत् श्रीकृष्णेन राससदृश्यः शृङ्गारमयलीला अपि व्रजे कृता अभूवन्, किन्तु भगवता रामचन्द्रेण नैव कृतम् ।" कौतुकाविष्टस्य कविकलानिधिमहाभागस्य मुखादकस्मात् निर्गतम्--"श्रीरामस्याऽपि रासलीला श्रूयते ।" महाराजेन पृष्टम्--"ईदृशं वर्णनं कस्मिन् ग्रन्थेऽस्ति ?" कलानिधिमहाभागैरुक्तम्--"एवंविधं पुस्तकं कदाचित् काश्यामेव श्रुतं स्मर्यते ।"

पुनः किमासीत् । षण्मासानामवधिं दत्त्वा तत्पुस्तकमानेतुं महाराजेन प्रकाशितोऽभूदाग्रहः । किन्तु गृहागतेन कलानिधिमहाभागेन सकष्टमनुभूतम् । एवंविधं पुस्तकमासीदेव कुत्र ? रामस्य रामलीला निबद्धैव केनाऽऽसीत् ? अस्तु, तद्दिनादारभ्यैव नवीनमेकं रामायणं (रामरासा) निर्मातुमारभ्यत, यस्मिन् श्रीरामस्य रासलीलाप्रसङ्गः सौष्ठवेन अलंकारपूर्णतया च समबध्यत । अवधौ समाप्ते तत्पुस्तकं महाराजस्य सम्मुखमनीयत । कविताकलामार्मिको महाराजः कविकलानिधिमहाभागस्य सुपरिचितां लेखनीं पर्यचिनोत् । अतिप्रसन्नः कौतुकाविष्टश्च महाराजः कलानिधिमहाभागाय अपरिमितं पारितोषिकम्, 'रामरासाचार्य' इति पदवीं च प्रायच्छत् । कविवरश्रीमण्डनमहाभागेन निजनिर्मिते 'रावलचरित्रे' तदिदमसूच्यत । यथा—

'द्विजकुलकवि श्रीकृष्ण भये प्रश्नद्राविड तैलङ्ग ।
रामायन जिनने कियो रामरासपरसङ्ग ॥'

स्वयं कलानिधिमहाभागेनाऽपि 'पद्यमुक्तावल्याम्' सूचितमिदम् । यथा—

श्रीमद्राजाधिराजे सति समुपकृतं भूरि रामायणेन
प्रारब्धादीश्वरेऽभूत्कवि-विबुधगुणग्राहितैवोपकर्त्री ।
भाति प्रोच्चैरराितप्रकरहरकरः कोविदानां कवीनां
भार्ये श्रीमाधवाख्यो नरपतिरधुनाऽकारि केनोपकारः ? ॥

महाराजमाधवसिंहस्य कविकलानिधिमहोदये भूयान् विश्वासः परमः संमानश्चासीत् । तस्मिन् समये कविकलानिधिमहोदयो वयसाऽपि वृद्धः समभूव । अतएव ज्ञानवृद्धे वयोवृद्धे च कविमहोदये अत्यन्तं स्नेहो भूयान् बहुमानश्चाभवत् । कविकलानिधिमहाभागेन पद्यमुक्तावल्यामेकत्र लिखितमस्ति—"एकदा माधवदमाधवेन स्वहस्तेनाऽक्षराणि लिखित्वा यदा मम प्रदर्शितानि तदा सद्यः पद्यमिदमुत्पादितम्"—

श्रीमाधवाम्भोनिधिसम्प्रभूत-रत्नानि नित्यं ललिताक्षराणि ।
श्रीसूर्यवंशोदितदीप्तिमन्ति जगत्समग्रं परिभूषयन्ति ॥"

माधवसिंहमहाराजस्य कविमहोदये तावान् स्नेहः समभवद् यत्कविकलानिधिमहोदय भूयाम कालं यावन्न परित्यक्तुमैच्छत्। किन्तु नानाराजसभासु पूर्णमायु:काल गमितवतः कलानिधिमहोदयस्य हृदि निर्वेदः समभवत्। वार्द्धक्ये स हि शान्तिमय धार्मिक जीवन यापयितुमैच्छत्। विशेषतश्च कविमहोदयस्य ईदृशाना राज्ञा सौभाग्यवर्णन कर्तव्यमभूद् ये परस्पर हृदि विरोधमवहन्। अतएव ईदृश्या चर्यया कवेर्भूयान् विरागः समभवत्। महाभागोऽयमन्ते वृन्दावनवास कर्तुमैच्छत्, किन्तु महाराजस्याऽऽग्रहेण न समभवत्तदपि। अतएव पद्यमुक्तावल्या प्रोक्त कविमहोदयेन—

'मिथ्याकथन-दुरत्ययनृपवरकृतरक्षणव्यथादुष्टः।
हा वृन्दावन! भवता सप्रति दूराद्विमुक्तोऽस्मि॥'

किन्तु—एतदनन्तरं श्रीमतः सर्वा अपि कविताः प्रायो भगवत्सम्बन्धिन्योऽभूवन्। पद्यमुक्तावल्यामन्ते विनय-विराग विशदान्तः करणेन प्रोक्त श्रीमता—

'किञ्चिन्न्यायेऽप्यधीत, किमपि च पठित पाणिनिव्याकृतौ मे
किञ्चित्साहित्यसिन्धुप्रसृमरलहरीसङ्ग—ससिक्ततास्ति।
सर्वावस्थासहायस्मरणविषयता श्रीयशोदाकुमारे
जाने नैतच्चतुष्कादितरमहमतो नैव जाने न जाने॥
अमुना यमुनाकूलवटमूलविहारिणा।
हारिणा हरिणा हन्त हेलित हृदय मम॥

कविकलानिधिमहाभागोऽनेकेषा नृपतीना समानभाजनमासीद्, बहुभिर्नरपालैः सादर ग्रामादिसम्पत्तयः प्रत्ताः, भूयोभिर्धनकुबेरैः सोय सादरमामन्त्रितः। अनेनाऽपि जन्मावधि असाधारणेन कवितापाटवेन परममार्मिकाः कवितारसज्ञाः प्रमोदिताः, किन्तु महाभागस्याऽस्य हृदि आत्मगौरवस्य परा काष्ठा प्राऽलोक्यत। एतस्य हृदयं दीनतायाः स्पर्शमपि नाऽनुबभूव कदाचित्। अतएव पद्यमुक्तावल्या मनोहरैरक्षरैरुदीरित श्रीमता—

ज्वलतु जलधिक्रोडक्रीडत्कृपीटभवप्रभा-
प्रतिभटपटुज्वालामालाकुलो जठराऽनलः।
तृणमपि वय सायसफुल्लमल्लिमतल्लिका-
परिमलमुचा वाचा याचामहे न महेश्वरान्॥

अयोग्यतायामपि ये मुधैव स्पर्द्धामकुर्वंस्तानय समये तथा सभाजयामास, यथा तेऽपि सर्वदाऽर्थं स्मरणमवहन। कस्यचिदौदुम्बरभट्टमहोदयस्य विषये प्रोक्त महाभागेन—

'गुणवद्गणितो गुणिना शृणुयादेवैष सुमधुरा वाचः।
यद्यस्य कर्णलग्नो न स्यादौदुम्बरो मशकः॥'

[औदुम्बरः गुर्जरान्तर्गतैतज्जातीयो ब्राह्मणः, उदुम्बर (गूलर)फलान्तर्गतो मशकश्च]

कविकलानिधिमहाभागो यस्मिन् काले कवितया ख्यातिं लेभे, तस्मिन् समये तैलङ्गभट्टानां समाजे श्रीमद्वल्लभाचार्यप्रचारितवैष्णवसम्प्रदायस्य भूयान्प्रभावः प्रासरत्। कलानिधिमहाभागेनापि समये समये तादृशस्तुतयो निर्मिताः। यथा वृत्तमुक्तावल्या श्रीमद्वल्लभाचार्यस्तुतिः (छप्पय)च्छन्दस उदाहरणे—

"जय विबुधेशमहेशशेषवागीशकृतस्तव।
जय निजजनसुखकरण तरुणकरुणैकसमुद्भव।

जय वचनाऽमृतदलितकलुषकलिकालमहादव ।
मायामतपाखण्डखण्डखण्डनसुमहाजव ।
जय देव वल्लभाधीश जय जय सज्जनसेवितचरण ।
जय चारुचरितविरचनचतुर साकारश्रुतिमतधरण ॥

कुण्डलिकाच्छन्दस उदाहरणे श्रीयमुनास्तुति.—

'वृन्दाविपिने वन्दिता वृन्दारकनिकरेण ।
राजति कापि कलिन्दजा तरलतरङ्गभरेण ॥
तरलतरङ्गभरेण भरितभूमीतलशोभा ।
निरवधिनिजलावण्यकलितलोचनयुगलोभा ।
उन्मीलितकमलौघमिलितमदलुलितमिलिन्दा ।
मञ्जुलतरजलकेलिवशितगोपीजनवृन्दा ॥'

श्रीमद्गोवर्द्धनधरस्तुतिर्मन्दाक्रान्तावृत्ते—

श्रीमद्गोवर्द्धनधरवराधीश धैर्यैकधारिन्
धीरोदात्तध्वनितमुरलीनादमाधुर्यधामन् ।
धीमन् धाराधरसमधराधार धृतोद्धुराघे
राधाऽसाधारणरतिनिधे सन्निधेह्यान्तरे न. ॥

देवर्षि-श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिमहाभागस्य कविताकालो बहूना नरपतीना समये व्यत्यगमत् । किन्तु सर्वत. पूर्वं बुन्दीनरेन्द्रश्रीबुधसिंहस्य समीपे, ततो महाराजाधिराजश्रीजयसिंह,ईश्वरीसिंह,माधवसिंहानां-सनिधौ कवितानिवेदनमभूत् । बुधसिंहो जयसिंहमहाराजस्य भगिनीपतिरासीत् । कविकलानिधिमहाभागो यदि त्रिंशद्वर्षदेशीय एव कविताख्यातिं लेभे, तर्हि १७३५ किंवा ४० तमे विक्रमवत्सरेऽस्य जन्म भवेत् [यतो हि 'वशीकृतो येन गुणैरुदारैर्बुन्दीपति श्रीबुधसिंहभूप ' इति कुलप्रबन्धोक्तिस्तदैव संगच्छते] । अन्तिमसमयस्तु श्रीमाधवसिंहस्य शासनकाले आसीत् । तदा हि कलानिधिमहाभागस्य प्रवृत्तिरन्तमुर्खी समभवत् । अस्य पुत्र. श्रीद्वारकानाथमहाभाग· [सरस्वती–भारतीवाणीत्युपनामक] अपि राजकविर-भवत् । ततश्च कविकलानिधिमहाभागस्य परलोकप्रयाणसमये वय अशीतिवर्षानुमित स्यात् । [अर्थात् १८२० तमविक्रमसवत्सरस्य इतस्तत] । कविकलानिधिमहोदय ईश्वरीसिंहस्य समये कर्मपुरग्राम [जयपुर राज्ये] प्राप । एतस्य शासनपत्रम् ['पट्टा'], तथा 'हथरोही'ग्रामस्य भूमिं च श्रीमाधवसिंहदेवस्य समये लेभे ।

देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिमहाभागनिर्मितेषु व्रजभाषाग्रन्थेषु [येषा नामनिर्देश. पूर्वं कृत] 'वृत्तचन्द्रिका'ग्रन्थस्यापि नाम पठित भवेत्पाठकै. । एतद्ग्रन्थस्य संबन्धे 'भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट 'पूना' ' इत्येतस्याऽध्यक्षेण श्री पी० के० गोडेमहोदयेन 'विवरण' प्रकाशित यत्— "वृत्तचन्द्रिका"ऽपि एतेनैव कविना हिन्दीछन्दोभिर्निर्मिता । अय हिन्दीछन्दसा लक्षणग्रन्थ । इलाहा-बादवासिना एम्० दासे । हस्तलिखितहिन्दीपुस्तकाना विवरणे सोयं ग्रन्थ उल्लिखित. । विवरणमिद १९०२ तमे क्रिष्टाब्दे प्राकाश्यत ।

वृत्तचन्द्रिकाया हस्तलिखित पुस्तक मथुरानिवासिन· एस्० चतुर्वेदिनः समीपादुपलब्धम् । बुन्दीनरेन्द्रस्य रावअनिरुद्धसिंहसुतस्य बुधसिंहस्येच्छया सोय ग्रन्थो निर्मितः । पुस्तकलेखनस्य समय सवत् १८१० इति । ततश्च स्पष्टं प्रतीयते यद् ग्रन्थनिर्माणं श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधेर्जीवनकाले एव तदिद पुस्तक लिपीकृतम् ।"

एवमेव कविकलानिधिमहाभागस्य अनेकेषां ग्रन्थानां सूचना तेभ्यो नानाप्रदेशेभ्यः समधिगता, येषु गुणग्राहिणो जना बहुकालात्पूर्वमेतस्य कवेर्ग्रन्थान्निन्युः। कलानिधिमहाभागस्य बह्व्यो रचना अस्मत्सविधे विद्यमानाः सन्ति। कतिपयाः पूनादिनानाप्रदेशेभ्यो लिपीकृताः। बहूनां रचनानां सूचना तु अन्यस्थानेभ्यः प्रकाशितानां विवरणानामाधारेण समुपस्थापिता साम्प्रतम्। किन्तु अयमपि सम्भवोऽस्ति यद् बह्व्यो रचना ईदृश्योऽपि कदाचिद् भवेयुर्यासामनुसंधानं नास्माभिः केनापि रूपेणाऽधिगतम्। अस्तु, एतद्ग्रन्थकारस्य कविकलानिधिमहाभागस्य चरितसम्बन्धे यत्किञ्चिदुपलब्धं तत्पाठकमहाभागानां सम्मुखे समुपस्थापितं नूनम्।

उपसंहारः

महाकाव्यस्याऽस्य मूलपुस्तकं मत्पूर्वजानां साहित्यसंग्रहे त्वासीदेव, किन्तु काव्यस्यास्य एका प्रतिलिपिः 'भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना'तः प्रापिताऽऽसीत्, यस्याः कारणात्पाठादिसंशोधने भूयस्तरां साहाय्यमभूत्। जयपुरराजकीयहर्म्यमालायाः पुस्तकालये तदिदं काव्यं सम्पूर्णमस्तीति वंशपरम्परातः शृणुमः। एतदर्थं जयपुरनरेन्द्रस्य समीपे यत्नोऽपि कृतः। किन्तु तत्तद्राज्यानां प्रबन्धमपनीय 'राजस्थान' प्रबन्धपरिचालनात्पुस्तकप्राप्तौ नाऽभवत्सफलता। अतएव सम्पूर्णपुस्तकस्य प्रतीक्षामकृत्वा, यावदुपलब्धं काव्यमिदं संपाद्य, टीका-टिप्पण्यादिभिः परिष्कृत्य प्रकटीक्रियते पाठकानां पुरः।

टीका

साधारणतया काव्यमिदं सरलं प्रतीयते, किन्तु तदिदं काव्यमैतिहासिकम्। अस्य बह्व्यो घटना जयपुरराज्यस्य प्राचीनेतिवृत्तेन सम्बद्धा। किञ्च साधारणानामैतिहासिककाव्यानामपेक्षया काव्येऽस्मिन् मोयं विशेषो यत् स्थाने स्थानेऽस्मिन् प्रत्येकपदं तथ्यपूर्णं गम्भीरार्थसूचकम्, ऐतिहासिकरहस्यपूर्णं चास्ति। उदाहरणार्थं सूचयामि यत् प्रथमजयसिंहस्य [मिर्जा राजा इति विरुदस्य] पुत्रः श्रीरामसिंहदेवो योऽस्मिन्काव्ये वर्णितस्तस्य चरिते—

"काव्याऽऽलाप-कलाकलापकलनाकौतूहलोत्कर्षकं।
प्रोद्यन्नाटक-साटकप्रहसनाऽऽख्यान-प्रबन्धोत्सुकः॥"

[प्रथमसर्गे ४२ श्लोकः] इति विशेषणं साधारणदृष्ट्या राज्ञः काव्यप्रियताद्योतकमिव प्रतीयते। किन्तु कथनेऽस्मिन् महती तथ्यपूर्णा ऐतिहासिकसामग्री सम्भृताऽस्ति, यस्या अनुसंधानमस्मिन् समये समधिगतम्। महाराजरामसिंहदेवस्य समये रानाडेपरिवारः आम्बेरराजधान्यामवसत्। तेन महाराजस्याऽऽज्ञया कतिपयप्रहसननाटकादीनां रचनाऽकारि। कविना सैव वार्ता विशेषणेनाऽनेन सूचितास्ति। पूनास्थेन श्री० पी० के० गोडेमहाभागेनैव सेयं गवेषणा कृताऽभूत् यत् 'शृङ्गारवापिका' रानाडेविदुषैव निर्मिता यस्याः कृते महाराजरामसिंहस्याऽऽज्ञा समुपलब्धा। एवं किल काव्येऽस्मिन् नानाविधा ऐतिहासिक घटनाः सूचनीयाः सन्ति, यासां कृते सेयं 'विलासिनी' समवतरति रङ्गक्षेत्रे। एषा हि यथोपलब्धमैतिहासिकटिप्पणीभिस्तामावश्यकतां पूरयितुं प्रयतते। यमकादिदुरूहस्थलेष्वपि टीकामवमीक्षन्ते विचक्षणाः। किन्तु टीकाविरहिते, प्राचीनेतिहाससमये काव्येऽस्मिन् कः स्यात्सहायकः? यत्किञ्चिन्मम मत्या समधिगतं तत्प्रकटीकृतं पाठकानां पुरतः। सफलता जाता न वेति परीक्षया वीक्ष्यतां नूनम्।

उपकारस्मरणम्

सर्वतः पूर्वं श्री पी के गोडे [क्यूरेटर, भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना] महाभागस्य कृतज्ञतामावहामि, यस्याऽनुग्रहेण काव्यस्यास्य प्रतिलिपिरुपलब्धा। नानाविधगवेषणाभिश्च

ऐतिहासिक तथ्यमवगतम । अश्वमेधयागमंत्रन्धिनिबन्धेन काव्यघटनायास्तथ्यं प्रमाणितमभूत् । ततो "जयपुरराज्येतिहास" लेखकस्य चौमूनगरनिवासिनः सुप्रसिद्धहिन्दीनिबन्धलेखकस्य प०श्रीहनूमानशर्मणः उपकारभार बिभर्मि यस्येतिहासपुस्तकेन स्थाने स्थाने ऐतिहासिकटिप्पणीदाने सुविधाऽभवत् । डा० श्रीनरेन्द्रसिंहमहोदयस्य [मन्सबदार जोबनेर, एज्युकेशन मैम्बर, कौंसिल ऑफ् जयपुरस्टेट] उपकारमपि भूयोभूय. स्मरामि यल्लिखितात् 'महाराजसवाईईश्वरीसिंहस्येतिहासः' इति पुस्तकात् स्थाने स्थाने प्राचीनेतिवृत्तं समुद्धृतम् । स्वर्गवासि–विद्याभूषण श्रीहरिनारायणशर्मपुरोहित बी. ए. महाभागेनाऽप्यहमुपकृतोस्मि, येन काव्यस्य प्रतिलिपिसंग्रहणे, जयपुरीयेतिहाससकलने च भूयस्तरा साहाय्यमापादितम् । तत. सुप्रसिद्धैतिहासिक स्वर्गवासि महामहोपाध्याय प०श्रीगौरीशङ्करहीराचन्द्रओझामहाभागस्योपकार बहुतरं बिभर्मि, यत्कृतेनेतिहासेन, विशेषतश्च 'सवाईजयसिंहमहाराजस्येतिवृत्तेन (बिडलाकालेजपत्रिकात. समुद्धृतेन) ग्रन्थे भूयसी सुविधा समधिगता ।

मम भ्रातृव्यस्य स्वर्गस्थस्य प० व्रजनाथशास्त्रिणोऽपि कर्तव्य संप्रति सस्नेहखेद स्मरामि, येन पी० के० गोडेमहाभागस्य आङ्गलभाषालिखितनिबन्धस्य संस्कृतेऽनुवादे मामकी सहायता विहिता। महाराजमानसिंहस्य चरितलेखकः- पं० सुधाकरशर्ममहाभागोऽपि धन्यवादैरभिनन्द्यते यस्य निबन्धान्मया सारः समुद्धृतः । चि०देवर्षिभट्टश्रीकलानाथशास्त्रिसाहित्याचार्य. बी. ए अपि हार्दिकैराशीर्वादैरभिनन्द्यते येन आङ्गलभाषानुवादे, बहुत्र पुस्तकस्याऽस्य संपादनकार्ये चापि मे भूयसी सहायता विहिता ।

"राजस्थानीयपुरातत्त्वमन्दिरस्य" अध्यक्ष श्रीजिनविजयसूरिमहाभाग, एव तस्यैव सहकारी 'बोहरा'पं०श्रीगोपालनारायणशर्मा एम. ए.,महाभागश्चापि नितरा धन्यवादार्हौ, याभ्या महाकाव्यस्याऽस्य प्रकाशने, पूनातो द्वितीयपुस्तकप्रतिलिपिसंग्रहादौ, जयपुरराजहर्म्यमालातश्छायाचित्रग्रहणादौ च समधपेक्षितं साहाय्य मे व्यधायि । संस्कृत-प्राकृत-पालीत्यादिविविधभाषामार्मिक. श्रीजिनविजयसूरिमहाभाग. पुरातत्त्वान्वेषणे समग्रेऽपि भारते सुप्रथितः । एतद्द्वारा बहुषु स्थानेषु भूरिभूरिपुरातत्त्वान्याविष्कृतानीति जानन्ति पुरातत्त्वविद । राजस्थानेऽपि समागत्य महाभागेनानेन पुरातत्त्वविषयक बहुतर कार्य सपादितमित्यभिनन्दनीय सौभाग्य राजस्थानस्य । जयपुरराजकीयसंस्कृतकालेजाध्यक्षो मीमांसाकेसरी प०श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिमहाभागोऽपि मे महान्तमुपकारमकार्षीद् येन यज्ञप्रसङ्गे वैदिकविषयोपरि समुचिता मे सम्मतिर्दत्ता यया हि टिप्पणीपरिष्करणे सुविधा मे समजनि ।

टीकानिर्माणे निम्नलिखितनिबन्धेभ्य. साहाय्य गृहीतम्—

१. वंशावली	२. वीरविनोद (कविराजश्यामलदासकृत)
३ बिहारीसतसई	४. वंशभास्करस्य बुधसिंहचरित्रम्
५ राजपूताने का इतिहास	६. टॉड राजस्थान
७. जयपुर हिस्ट्री	८ कविराजा बाँकीदास की 'ऐतिहासिकबातें'

९. इलियट् हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया
१०. मलसीसर ठाकुर श्री भूरसिंह विरचित 'विविधसंग्रह'
११. नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि, आदि ।

मंजुनिकुञ्ज
जयपुरम्
कार्ति० शु० ५।२०१२

इति सूरिसमाजाग्रे विनयाद्विनिवेद्यते ।
देवर्ष्युपाह्वभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्रिणा ॥

परिशिष्टम् १

जयपुरराजधानीप्रतिष्ठापकः सवाईजयसिंहमहाराजः

श्रीव्रजनाथकविरचित-पद्यतरंगिणीगतं

जयसिंहवर्णनम्

यस्तीक्ष्णांशुकुले बभूव विमले श्रीमान् धराधीश्वरः
पृथ्वीराज इति प्रभावमहितः प्रत्यर्थिजेता रणे।
श्रीकूर्मान्वयभूषणं नरहरिप्रेमैकपात्रं श्रियो
लीलासद्म गुणैकधाम सकलक्षोणीशचूडामणिः ॥१॥

तद्वंशे सततावदातचरितः प्रौढप्रतापानल-
ज्वालाजालविदीपितारिनिवहः सच्छास्त्रनिष्णातधीः।
देवब्राह्मणपूजकोऽतियशसा कुर्वन् सितं भूतलं
जात. श्रीजयसिंह इत्यभिधया ख्यातो धराधीश्वरः ॥२॥

के नाभवन्नृपतयो बत विक्रमाद्याः केनाऽथ कारि न हि तेषु तुरङ्गमेधः।
अस्मिन् युगे निखिलभूपतिसार्वभौमस्तद्यज्ञकृद्विजयते जयसिंह एकः ॥३॥

परीक्षितोऽपि विदधे हयमेधमुच्चै-
स्तत्राऽऽप शापमयमुत्तमपूरुषोऽपि।
राजाधिराजजयसिंहनृपश्चकार
निर्विघ्नसेनमधुना भगवत्प्रसादात् ॥४॥

योऽदाद्वनीपककुलेषु सुवर्णपूगा-
नम्भःकणानिव नभःस्थितवारिवाहः।
वेदोदितेन विधिना हयमेधमुच्चै-
श्चक्रे तथा क्रतुशतानि महाधनानि ॥५॥

आसन् पूर्वं मानसिंहादयो ये
भास्वद्वश्याः क्षोणिपालाः कियन्तः।
चक्रुर्भूमिं भूमिपालान्वशे ते
श्रौते मार्गे नैव निष्ठामवापु. ॥६॥

राजाधिराजो जयसिंह एक-
स्तद्वंशजः प्राक्तनपुण्यपुञ्जान् ।
सभावितो दक्षिणदिग्द्विजेन्द्रैः
श्रद्धालुरासीच्छ्रुतिधर्म्म एव ॥७॥

पपाठ वेदं विदधेऽग्निहोत्रं
चकार यज्ञान् विविधान् सदैव ।
धनं ददौ ब्राह्मणपुंगवेभ्यो
ग्रामान् गजांश्चापि तुरंगमांश्च ॥८॥

वभौ स तस्य क्रतुराट् तदानीं
महेन्द्रसंस्पर्द्धिसमृद्धिभाजः ।
अत्रागतश्चेन्नकुलः स दैवा-
त्स्वर्णार्द्धपार्श्वोऽप्यभविष्यदेव ॥९॥

वेदव्यासतनुः पुराणमनने तर्कागमे गौतमो
वेदान्तार्थविवेचने विधिसुतः काव्येषु काव्योऽपरः ।
शेषो व्याकरणे कलासु कुशलो गर्गस्तथा ज्यौतिषे
नानाशास्त्रविचक्षणो जयहरिः क्षोणीशमुख्योऽभवत् ॥१०॥

[महाराजाधिराजः श्रीमाधवसिंहदेवः]

तस्मादजायत गुणैकनिधिर्वरेण्यो
विद्यानिधिर्नयपयोनिधिरुद्धृतारिः ।
श्रीमाधवो लसदुमाधवमाधवाब्ज-
योनिप्रभेदमतिरद्भुतदानशक्तिः ॥११॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
कामं कामगवी पशुः सुरपतिर्वृद्धश्रवा गोत्रभित् ।
चन्द्रो हन्त कलङ्ककीलिततनुः क्षारान्वितः सागर-
स्तेनायं जगतीतले निरुपमः श्रीमाधवः क्ष्माधवः ॥१२॥

यश्चोर्वीतलसार्वभौममुकुटालङ्कारहीरायितः
स्फूर्जद्दिव्ययशःसुधांशुविसरप्रोच्चैश्छटाभासुरः ।
मध्याह्नार्ककरप्रकर्षविजयिप्रोद्यत्प्रतापोदयो
दानोद्रेकतिरस्कृतामरतरु-स्वर्धेनु-चिन्तामणिः ॥१३॥

मूर्तो धर्म उदेयिवान्, किमथवा निष्पारिजातोऽभवत्
स्वर्गः, किं सकल कलानिधिरगान्, कर्णोऽवतीर्णः किमु ।
पार्थोऽयं किमुपागतः, पृथुरथो पृथ्वीवियोगातुरो,
यं वीक्ष्येति निरन्तरं कविमुखादञ्चन्ति वाग्वीचयः ॥१४॥

युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैव यशसार्जुनः ।
नकुलातिक्रमी भाति सहदेवोऽच्युतो रणे ॥१५॥

यं प्रोद्दण्डविलेशयेशविलसद्दोर्दण्डचण्डीभवत्-
कोदण्डं रणमूर्द्धनि खण्डपरशोराक्रम्य भासं स्थितम् ।
आलोक्याऽलसलोचनाः सरभस नृत्यन्ति देवाङ्गना
कम्पन्ते हरयश्चलन्ति गिरयस्त्रस्यन्ति सर्वे रथा ॥१६॥

प्रोद्यत्कीर्तिवितानमण्डितनवब्रह्माण्डभाण्डोदरे
यस्मिन् भूमिपतौ प्रशासति भुवं सौभाग्यभव्यायुषि ।
चाञ्चल्यं चपलासु चन्द्रवदनानेत्राञ्चले तीक्ष्णता
चन्द्रे लक्ष्म करग्रहः परिणये लोकेषु नैवाभवत् ॥१७॥

आवासो निधिसम्पदां रणभुवि त्रासः प्रतिक्ष्माभृता-
मुल्लास प्रतिभाजुषामतिमहान् व्यासः सभासम्पदाम् ।
विन्यास सुजनाशिषां प्रतिलवं रासः कुरङ्गीदृशां
विश्वासः प्रणयात्मनां विजयते श्रीमाधवः क्ष्माधवः ॥१८॥

कवीश्वराणामथ पण्डितानां प्रकाशयन्ती विमलान्तराणि ।
देशेष्वगम्येष्वपि सञ्चरन्ती विभाति सिद्धेव यदीयकीर्तिः ॥१९॥

भूमण्डले यद्यशसा विलिप्ते काका अभूवन् वकतुल्यभास ।
किं चापणेऽज्ञायत गन्धभेदात् कर्पूरकस्तूरिकयोर्विभेद ॥२०॥

उष्णत्वमुच्चैर्वदता कवीनां यस्य प्रतापे मतिमोह एव ।
यतो दधत् कम्बलमद्रिदर्यां वसन् प्रकम्प न जहाति शत्रु ॥२१॥

येनार्थिसार्थार्थितपूरणार्थमर्थं जलं चोभयसाददाने ।
सुवर्णशैलाम्बुनिधी स्वरूपनाशप्रसगाद्ययतुः प्रकम्पम् ॥२२॥

शौर्ये पार्थ इवापरो वितरणे देवद्रुमो वाङ्मय-
व्यापारे सुरराड् गुरुर्वसुमतीरक्षासु विश्वम्भरः ।

धर्मे धर्मसुत कवित्वकलने काव्यः प्रसादे शिवः
सोयं कूर्मकुलैकभूषणमणिर्जीयाच्चिरं माधवः ॥२३॥

यस्याच्छाच्छप्रविततयशोगीतवद्धप्रवन्ध-
प्रदिप्तान्तःकरणविवशीभूतभास्वत्तनूनाम् ।
क्रीडन्तीनां वनभुवि गले गोपसीमन्तिनीनां
गुञ्जाहारः समजनि जवात् कोपि मुक्ताच्छहारः ॥२४॥

शिरःकुसुमभूषणीकृतकलानिधिस्तारकाच्छलात्कलितमौक्तिकाभरणभासुरा सर्वतः ।
विभाति वसुधापतेर्गगनसन्दिरे चन्द्रिकावपुश्चपललोचना विमलकीर्तिसीमन्तिनी॥२५॥

कुन्ताभिप्रोतदन्ताधिकवलनिहितद्वेषिदन्तावलौघ-
श्चिन्तासन्तानसन्तापितरिपु-वनिताभाग्यसौभाग्यहन्ता ।
श्रीरन्ता यस्य नित्यं निवसति विपदन्ताय हृत्कर्णिकायां
सोऽनन्ताधीश्वरोऽयं प्रतपतु सुचिरं माधवः क्षमाधवेशः २६॥

अस्मिन् भूवलये चिरस्य कति नो जाता धराधीश्वराः
येषां कीर्तिभरैरभूद्धवलितं भूमीतलं सर्वतः ।
यत्काचाभरणानि पण्डितवधूहस्तेपु मुक्ताफल-
न्त्येतद्दानविधानकीर्त्तिरतुला यत्रैव दृष्टाऽद्भुता ॥२७॥

यत्प्रतापोष्णकिरणप्रतप्तो विद्विषां गणः ।
शिशिरीकर्तुमात्मानमाश्रितः शिशिराचलम् ॥२८॥

कुन्दाभः स्वच्छचन्दादपि समधिकभा वैरिवृन्दावमन्ता-
ऽमन्दानन्दानुभावो निजजनहृदयाम्भोजवृन्दावनश्रीः ।
नित्यं यश्चारविन्दासनभुवनगतो वाद्यवन्दारुगीतः
स्वच्छन्दं यस्य लोके विलसति नितरामद्भुत कीर्तिपूरः ॥२६॥

देवेन्द्रद्विरदन्ति निर्जरसरित्पूरन्ति कुन्दन्त्यथो
मातङ्गेन्द्ररदन्ति चारुचमरीवालन्ति फेनन्ति च ।
देवाधीश इयन्ति केतकलसत् सर्पाधिपं ऽ -
त्यूत्तरयद्रिकुलेश्वरन्ति ऽ च सुधासारन्ति दुग्धन्ति च ॥३०॥

कर्पूरन्ति हरन्ति मौक्तिकलसद्धारन्ति हीरन्त्यथो
कैलासन्ति विसन्ति मुग्धदशनज्योत्स्नन्ति हंसन्ति च ।

क्षीरोदन्ति हिसन्ति चन्द्रकिरणग्रामन्ति रामन्त्यपि
श्रीमन्माधवभूमहेन्द्रमुकटालङ्कारकीर्त्तिच्छटाः ॥३१॥

कालिन्दीसलिलन्ति दुर्द्धरतमःपुञ्जन्ति मेघन्त्यथो
नीलाम्भोजकुलन्ति गारुडमहारत्नन्ति भृङ्गन्ति च ।
काकोलन्ति पिकन्ति कज्जलमहाशैलन्ति दन्तावल-
न्त्येवं यस्य च विद्विपामपयशस्तोमाः कलङ्कन्ति च ॥३२॥

दानं दातुमिहोद्यतेऽत्र सततं यस्मिन् धराधीश्वरे
स्वर्णाद्रिर्निजदेहदारणभयात्त्रस्तः परं कम्पते ।
देवाः स्वस्वनिवासनाशचकिताः शक्रादयो बिभ्यति
प्राज्यानन्दसमुद्रसान्द्रहृदया हृष्यन्ति चक्राह्वयाः ॥३३॥

अनुरक्तः सुहृद्(व)र्गो द्विषतो मलिनीकृताः ।
सितीकृतं जगत् सर्वं यदीययशसा भृशम् ॥३४॥

पूरयन्नर्थिनामर्थान्विदुषः परिपालयन् ।
विद्विषः संहरन् सर्वांश्चिरञ्जीयात् स भूपतिः ॥३५॥

तत्तुष्ट्यै व्रजनाथेन रम्या पद्यतरङ्गिणी ।
भि(नि)बद्धा शोधनीयेयं सद्भिः सारानुरागिभिः ॥३६॥

जयन्ति के वा न मनोज्ञरूपा
वा (गा) गरुत्मदाद्याः खलु पक्षिभूपाः ।
क्षीराम्बुनोः सारविवेचने तु
पुरस्क्रियन्ते किल राजहंसाः ॥३७॥

॥१॥ नन्दाभ्रवसुशीतांशु १८०९ मितेब्दे मासि पौषके ॥
एकादश्यां रविदिने ग्रन्थस्सम्पूर्णतामगात् ॥
इति पद्यतरगिण्या नृपतिवंशवर्णनम् ॥
॥ शुभं भवतु ॥

परिशिष्ट २

'ईश्वरविलास' के नायक एवं रचयिताविषयक—कतिपय अन्य सूचनाएँ

—ले० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए.

जयपुर एवं आमेर के राजवंश का ऐतिहासिक वर्णन यों तो अनेक कवियों द्वारा कितने ही काव्यों तथा गद्यात्मक रचनाओं में निगुम्फित है तथापि मुख्यतः एतद्विषयक 'काव्यत्रयी' सुप्रसिद्ध है। इन "काव्यत्रयी" में कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टनिर्मित "ईश्वरविलास", सीताराम पर्वणीकरकृत "जयवंशमहाकाव्य", तथा श्रीकृष्णरामप्रणीत 'कच्छवंश महाकाव्य' का परिगणन किया जाता है। इस काव्यत्रयी में प्राचीनतम काव्य "ईश्वरविलास" है, जिसकी रचना स्वयं सवाई ईश्वरीसिंहजी (सं० १८०० से १८०७) की आज्ञा से हुई, तथा "जयवंशमहाकाव्य" और कच्छवंशमहाकाव्य का प्रणयन क्रमशः सवाई जयसिंह (द्वितीय) (सं० १८७५-९१) और माधवसिंह (द्वितीय) के समय में (वि० १९३७ से १९७६) हुआ।

"जयवंशमहाकाव्य" का सम्पादन विद्वद्वर्य पं० श्री पट्टाभिरामजी शास्त्री, भूतपूर्व अध्यक्ष, महाराजासंस्कृतकालेज जयपुर ने किया है तथा प्रकाशन राजपूतानाविश्वविद्यालय से सन् १९५२ में हो चुका है। "ईश्वरविलासमहाकाव्य" का सम्पादन इसके रचयिता के वंशज पूज्यपाद कविशिरोमणिभट्टश्रीमथुरानाथजी शास्त्री द्वारा हुआ है और प्रकाशन अत्र "राजस्थानपुरातत्वान्वेषण मन्दिर" से हो रहा है। यह संस्कृत के विद्वानों तथा साहित्यानुरागियों के लिए हर्ष का विषय है।

कच्छवंशमहाकाव्य की एकमात्र प्रति इस समय कवि के वंशज भिषक्चूडामणि श्री नरहरिजी भट्ट एवं उनके सुपुत्र श्रीदेवेन्द्रकुमार भट्ट के पास सुरक्षित है। उनसे इसके बारे में बातचीत चल रही है। आशा है शीघ्र ही चिर-प्रतीक्षित यह महाकाव्य भी संस्कृत-जगत् के समक्ष प्रस्तुत होगा।

महाराजा ईश्वरीसिंह के आदेश से रचित होने के कारण "ईश्वरविलासकाव्य" में जयपुर राज्य के राजवंश महाराजा सवाई जयसिंह के पराक्रम तथा ईश्वरीसिंह के विशिष्ट सत्कार्यों का वर्णन प्राञ्जल भाषा में किया गया है।

यद्यपि प्रस्तुत काव्य की भूमिका में श्री भट्टजी महाराज ने काव्य-विवेचन एवं तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक सूत्रों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है तथापि महाराजा ईश्वरीसिंहविषयक एवं काव्यप्रणेता कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टसम्बन्धी कुछ अतिरिक्त निगूढ तथ्यों पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है।

महाराजा सवाई जयसिंह के तीन पुत्र हुए। शिवपुर के गौड राजा उदोतसिंह की पुत्री से शिवसिंह, कोटडा के वीरमसिंह खीची की पुत्री से ईश्वरीसिंह, तथा महाराणा अमरसिंह (उदयपुर) की पुत्री से माधवसिंह। इनमें से शिवसिंह की मृत्यु कुमारावस्था में ही हो गई थी। श्री रामनाथ रत्नू ने अपने इतिहास में लिखा है कि महाराजा सवाई जयसिंह अपने पुत्र शिवसिंह से अप्रसन्न रहा करते थे। अतः उन्होंने इनको विष देकर मरवा दिया और शिवसिंह के दोनों पुत्रों को भी कारागार

में डाल दिया। पता नही उनका क्या हुआ ? इनसे अप्रसन्न रहने का कारण उनकी माता तथा मातामह-पक्षीय लोगो से अनबन रहना तथा ईश्वरीसिंह के गुणो एव व्यक्तित्व के प्रति महाराजा का विशेष आकर्षण हो सकता है। इस घटना का उल्लेख कवि कृष्णरामजी भट्ट ने "कच्छवश महाकाव्य"* (अप्रकाशित) में इस प्रकार किया है—

सुतस्तु शिवसिंहोऽभून्महाबलपराक्रम ।
दापयित्वा विष हन्त पित्रा जयपुरे हत ॥ क० व० का० ११।४६:

इससे पता लगता है कि इनकी मृत्यु कुमारावस्था (कवरपदे) में ही हो गई थी।

सवाई जयसिह के द्वितीय पुत्र, प्रस्तुत काव्य के चरित्रनायक महाराजा ईश्वरीसिंह का जन्म फाल्गुन शुक्ला ७ सवत् १७७८ विक्रमीय में जयसिंहपुरा, दिल्ली में हुआ था। इनकी माता का नाम सुखकवर था। महाराजा जयसिंहजी का इन पर प्रेमाधिक्य होने के कारण ईश्वरीसिंह को भी वे अधिक चाहते थे।

सुखादिकुवरा सेय राज्ञी खीचीद्रधीरजा ।
कुमारमीश्वरीसिह सुषुवे श्रीरिव स्मरम् ॥
वत्सरे वसुशैलाद्रिचन्द्रे चन्द्राननश्रिय. ।
जनी राजकुमारस्य कुमारोपमसम्मद ॥ सर्ग ११।४७।४८

ईश्वरीसिंहजी का बचपन में प्यार का नाम छोटा चीमाजी† था। इनको दो वर्ष की अवस्था में ही चवेणी (आहारार्थ) में करीब पाँच हजार रुपया वार्षिक आय के गाँव परगना बहोत्तर में प्रदान किये गये थे। इसके दो वर्ष बाद स० १७८२ मे उनके लिए जेवर, शस्त्र और लवाजमा आदि दिल्ली के जयसिहपुरा से बसवा भेजे गए थे। ज्ञात होता है कि इनको बाल्यकाल में राजधानी से दूर बसवा आदि स्थानो में ही रखा गया था और सवत् १७८४ में वे बसवा से आकर महाराजा सवाई जयसिह से पावटा में मिले थे। उसी समय इनकी सगाई का टीका महाराणा सग्रामसिंहजी ने भेजा था। इनके ६ विवाह हुए। आषाढ शुक्ला १० स० १७८६ को दुर्जनसिंह हाडा कोटावालो की पुत्री से एव स० १७९२ कार्तिक शुक्ला १४ को महाराणा जगतसिह की पुत्री से सगाई होने का उल्लेख पाया जाता है। उदयपुर की सगाई में पुरोहित सतोषराम व देवीसिंह राणावत का दस्तूर लेकर आने का वर्णन भी मिलता है। इनकी अन्य रानियो में पहली सलूबर के राव की पुत्री राणावती, दूसरी करौली की जादमी (यादवी) तीसरी वीरपुरी, चौथी बनेडा की, पाँचवी बीकावती, छठी शक्तावती एव सातवी गौडजी का उल्लेख मिलता है। इनमे बीकावती रानी से एक पुत्री दीपकुवरी तथा जादमजी के गर्भ से एक पुत्र कल्किप्रसाद का जन्म हुआ था। यह कुमार बाल्यावस्था में सवाई जयसिंह के जीवनकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था। कहा जाता है कि उक्त

---

*परिशिष्ट २ के अन्त में उद्धृत किया गया है।

†सुप्रसिद्ध शोधविद्वान् प० झाबरमलजी शर्मा जसरापुरा वालो ने बतलाया है कि शेखावाटी में "चीमा" छोटे बच्चे को कहते हैं। रगा साधु प्राय आसन्न-प्रसवा स्त्रियो को 'चीमा' अथवा "चीमी" के जन्म की पूर्व सूचना दिया करते हैं।

मुनिश्री जिनविजयजी ने बताया कि मराठी में भी 'चिमना' शब्द इसी अर्थ का सूचक है।

कल्किप्रसाद पौत्र की स्मृति को सुरक्षित रखने हेतु ही महाराज सवाई जयसिंहजी ने सिरह ड्योढ़ी (राजमहलों के मुख्य द्वार) के सामने स्थित "कल्कि मंदिर" का निर्माण कराया था। कच्छवंशकाव्य में ईश्वरीसिंह की रानियों और संतानों का वर्णन इस प्रकार है।

देव्य श्रीकच्छदेवस्य नवासन्नवयोवना।
ज्येष्ठा राणावती तत्र सलूम्बरसुता श्रुता ॥ १९४ ॥

द्वितीया यादवी नाम सा करोलीपते सुता।
तृतीया वीरपुरिका तुर्या कापि बनेडजा ॥ १९५ ॥

अन्या बीकावती धन्या किंच शक्तावती परा।
काचित् सुजाणसीगोत्रा तथान्या गौडजाप्यभूत् ॥ १९६ ॥

पुत्रौ कल्किप्रसादौ द्वौ बालकावेव द्वौ[तौ]मृतौ।
दुहिता दीपकुंवरा दीप्त्या दीपशिखोपमा ॥ १९७ ॥

सा दत्ता समलंकृत्य श्रीश्वरेणेश्वरर्द्धिना।
राष्ट्रोडरामसिंहाय योधपत्तनभूभुजे ॥ १९८ ॥ सर्ग १२ क० व० का०

उपर्युक्त उद्धरण में दो पुत्रों, कल्कि और प्रसाद का इस काव्य में उल्लेख किया गया है किन्तु अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से एक ही पुत्र का वर्णन मिलता है।

सं० १७९० में ज्येष्ठ शु० १३ को सवाई जयसिंह ने ईश्वरीसिंह को युवराज पद पर नियुक्त किया और तभी से ये राजकार्य करने लगे। इनके युवराज पद की स्वीकृति नियमानुसार तत्कालीन मुहम्मदशाह बादशाह द्वारा प्राप्त हुई थी और मुअज्जमबेग इस दस्तूर को लेकर आये थे तथा इस गुजरबरदार को बिदागीरी में रु० ६०००० राज्य की ओर से दिये जाने का उल्लेख उपलब्ध होता है।

युवराज-पद-प्राप्त्यनंतर कितने ही महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन करने के पश्चात् सं० १७९८ में इन्होंने एक अश्वमेध-यज्ञ किया यह जयपुर राजकीय अभिलेखों में "फर्द करार मिती बैशाख शुक्ल ४ सं० १७९८ में" दर्ज है। इस अवसर पर निम्नलिखित राजाओं को निमन्त्रण के रूप में ५० मोहरें भेजी गई थीं -

११)) महाराणा उदयपुर, ७)) महाराव दुर्जनसालजी, ७)) राव राजाजी, ५)) राजागोपालसिंह जी ५)) राजा इन्द्रसिंह जी, ५)) राजा जैतसिंह जी, ५)) राजा छत्रसिंह जी, ५)) राजाविक्रमादित्य जी ५))।

कहा जाता है कि इस अश्वमेध में जो अश्व घुमाया गया था उसी की पाषाण-निर्मित-मूर्ति "कल्कि मंदिर" के सामने प्रतिष्ठित है। मूर्ति काफी ऊँची, सुन्दर एवं श्वेत संगमर्मर के पत्थर की है और उस पर तत्कालीन कलायुक्त भव्य कार्य भी हो रहा है।

जब युवराज ईश्वरीसिंह दस वर्ष तक योग्यतापूर्वक राज्यकार्य चला चुके तो महाराजा सवाई जयसिंह इन्हें राज्य भार सौंपकर 'सुपात्र-निक्षेप-निराकुलात्मना' आश्विन कृष्णा १४ बुधवार सं० १८०० को दिवंगत हुए। सवाई ईश्वरीसिंहजी आश्विन शुक्ला १५ बुधवार सं० १८०० वि० में जयपुर की गद्दी पर आसीन हुए।

इनके सिंहासनारूढ होते ही पडौसी राज्य जयपुर के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। उम्मेदसिंह हाड़ा ने बूँदी प्राप्त करने की सोची, तो कोटापति दुर्जनसाल हाडा ने अपने राज्यविस्तार की। महाराणा जगतसिंह ने स्वर्गीय सवाई जयसिंह के हस्तलेख के बल पर अपने भानजे माधोसिंह को जयपुर का राज्य दिलाने का प्रयत्न आरम्भ किया तथा जोधपुर और नागौर के अधिपतियों ने अपने अपमानो का बदला लेने के लिए अवसर देखा। इन सबने धनलोलुप मरहठो को अपने साथ मिलाकर जयपुर राज्य के अनिष्ट का उपक्रम आरम्भ कर दिया। इस प्रकार प्रारम्भ से ही इन सघर्षों की ज्वाला में जयपुर को ग्रस्त-प्राय देखकर महाराजा ईश्वरीसिंह ने अत्यन्त दूरदर्शिता एव बुद्धिमत्ता से कार्य किया। सर्व प्रथम, उन्होंने राज्य में सैन्य-वृद्धि की, राज्य के समस्त सामन्तगणो को धन, पद एव सम्मान से सन्तुष्ट किया। भरतपुर के जाट राजा सूरजमल को, बूँदी के राव दलेलसिंह को तथा सीकर के रावशिवसिंह को उन्होंने दृढ-मित्र बना लिया। १८ लाख रुपये के जोधपुर से जो आभूषण सवाई जयसिंह जी लाये थे उन्हें वापस कर दिया। किन्तु थोडे ही समय बाद महाराणा उदयपुर ने दुर्जनसाल और उम्मेदसिंह को साथ लेकर माधवसिंह को गद्दी दिलाने की इच्छा से जयपुर पर चढाई कर दी और जामडोली गाव में डेरा लगाया। महाराजा ईश्वरीसिंह ने भी अपनी सेना सजाकर पंडेर गाव में मोर्चा लगा दिया और युद्ध की पूर्णत: संभावना होने पर भी अपने प्रधान-मत्री राजामल खत्री की सहायता से पाच लाख वार्षिक का पट्टा माधवसिंह के नाम लिखकर युद्ध को अत्यन्त शान्ति-प्रिय ढग से टाल दिया। यदि युद्ध होता तो दोनो राज्यों के जर्जर होने की पूर्ण सम्भावना थी किन्तु नीतिकौशल से उन्होंने इस सभावना को ही निर्मूल कर दिया।

सवत् १८०१ में ईश्वरीसिंहजी के दिल्ली जाने का समाचार सुन कर दुर्जनसाल ने उम्मेदसिंह के साथ मिलकर बूदी पर अधिकार कर लिया। साथ ही महाराणा ने भी उचित अवसर देखकर दुर्जनसाल, उम्मेदसिंह और माधवसिंह के साथ पुन. जयपुर पर चढाई कर दी तथा काका बखतसिंह के साथ मरहठों की प्रतीक्षा करने लगे। इस अवसर पर जयपुर के दीवान राजामल खत्री ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए एक पत्र तो ईश्वरीसिंहजी के पास दिल्ली भेजा और ठाकुर जगतसिंह झिलायवालों तथा उणियारे के राव सरदारसिंह जी की अध्यक्षता में एक सेना मुकाबले के लिए रवाना की। ईश्वरीसिंहजी पत्र पाते ही तुरन्त बादशाह से अनुमति माग कर लौटे और राजामल को उन्होंने मरहठों के पास भेजा तथा महाराणा जी को कहला भेजा कि आप अपनी प्रतिज्ञा पर कायम नही रहते हो इसका परिणाम अच्छा नही होगा। इधर जयपुर की सेना ने शत्रुसेना से लोहा लिया उधर चतुरमंत्री राजामल ने पहले कोटे को लूट लिया और पीछे से अर्धरात्रि में महाराणा पर धावा बोल दिया। परिणामत महाराणाको २२ लाख रुपया हर्जाना देकर जाना पडा। फिर, ईश्वरीसह ने बूदी पर आक्रमण कर उसे हस्तगत कर लिया। इस युद्ध में धूला के राव दलेलसिंह ने अच्छी वीरता प्रदर्शित की।

थोडे दिनो के पश्चात् राजामल खत्री का देहान्त हो गया और उनके स्थान पर उनके पुत्र केशवदास खत्री को नियुक्त किया गया। यह सुनकर सब लोगों ने पुनः राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र किया और स० १८०४ में जयपुर पर चढाई कर दी। शत्रुसेना का पुन· आक्रमण देख कर महाराजा ने केशवदास को तो पेशवा के पास सहायतार्थ भेजा और हरगोविन्द नाटाणी को सेनापति के स्थान पर नियुक्त किया। हरगोविंद नाटाणी ने इस युद्ध में अच्छा शौर्य प्रदर्शित किया। पीछे से महाराजा

ने भी सेना पर आक्रमण किया। इस प्रकार दोनों ओर के प्रहार से त्रस्त हो शत्रुसेना के पाव उखड़ गये और विवश हो उसे मैदान छोड कर भाग जाना पडा।

कुछ दिनों के बाद मल्हारराव होल्कर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा और बूंदी के नरेशों तथा माधोसिंह जी आदि ने मिलकर पुनः जयपुर पर चढाई की। भाद्रपद कृष्णा ४ सं० १८०५ को बगरू के मैदानमें तुमुल-युद्ध हुआ। इस युद्धमें लगातार ६ दिन तक सग्राम होने पर मरहठे विचलित होने लगे और मल्हार राव ने सधि की प्रार्थना करते हुए कहा कि आप और हम पगडी बदल भाई हैं, आप माधवसिंह को ५ परगने तथा उम्मेदसिंह को बूदी दे दीजिये। इस पर ईश्वरीसिंह जी ने कहा कि माधोसिंह को ५ परगने पहले ही दे चुका हूँ, बूंदी के वश में भी कोई न होने से यह उम्मेदसिह को देदी जायगी। इस प्रस्ताव पर दोनो दलो में सधि हो गई और इस विजयोपलक्ष् में ईश्वरीसिंहजी ने सात राजाओं के सम्मिलित युद्ध में विजय प्राप्ति सूचक ७ खंडो युक्त विजय-स्तम्भ[1] का जयपुर शहर में निर्माण कराया।[1]

थोडे समय पश्चात् हरगोविन्द नाटाणी ने मंत्रीपद के लोभ से केशवदास खत्री की ओर से महाराजा का मनोमालिन्य करा दिया और कहते हैं कि महाराजा द्वारा उसे विषपान कराया गया। केशवदास की मृत्यु के विषय में यह दोहा प्रचलित है—

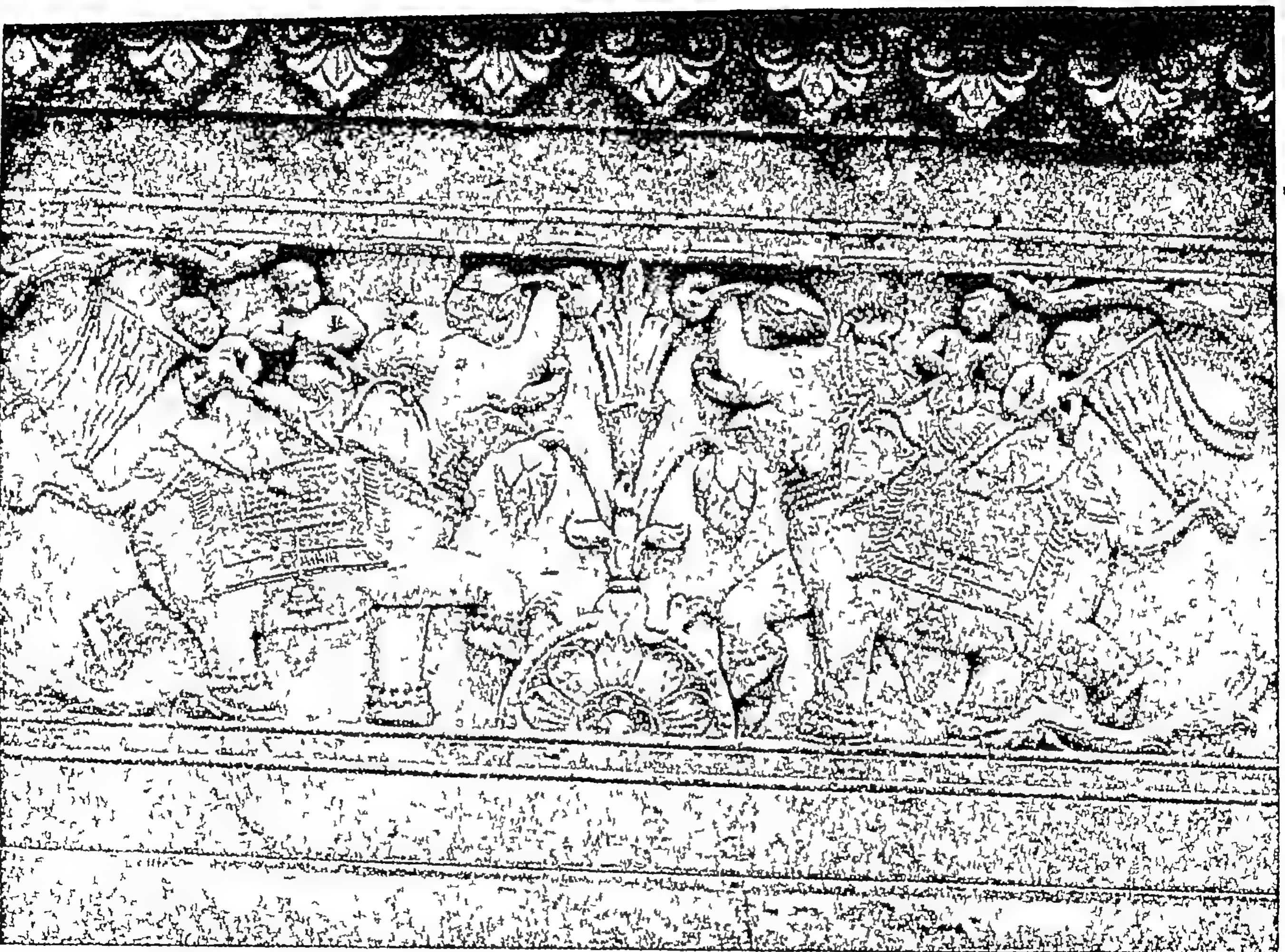
मत्री मोटो मारियो, खत्री केशवदास।
अब थे छोडो ईसरा, राजकरण री आस॥

अन्तत केशवदास की भविष्यवाणी सच निकली। हरगोविन्द नाटाणी ने गुप्त रूप से शत्रुओं के साथ षड्यत्र कर उन्हें बुलाया और माधोसिंह को राजा बनाने में सहायता कर ईश्वरीसिंह जी के

१कुछ लोगों का कहना है कि महाराज का हरगोविन्द नाटाणी की पुत्री से अनुचित सम्बन्ध था। उसे देखने के लिए ही इतनी ऊँची इमारत बनवाई गई थी किन्तु ऐसे वीर, नीतिकुशल और बुद्धिमान् महाराजा द्वारा केवल इसी कारण ऐसी इमारत का निर्माण कराना सर्वथा असगत एवं अप्रयुक्त सा प्रतीत होता है। अत यह विजयस्तम्भ ही है।

इस किंवदन्ती को "कच्छवशकाव्य" के रचयिता श्री कृष्णराम जी ने अपने महाकाव्य में इस प्रकार निगुम्फित किया है।

"चकमे हरगोविन्ददुहितार प्रसह्य हा ॥२००॥
तदर्थमेव निरमायि स्व सूचीसौध उच्चकै.।
द्यु व्यधच्चममूर्द्धा यो यौगिकी ख्यातिमृच्छति ॥२०१॥
तमारूढ कदाप्येना पश्यन्ती स्वकुचौ रह।
दृष्ट्वा सम्बोधयन्नुच्चैरार्यामेता पपाठ स ॥२०२॥
अद्रिभुव नततया तुङ्गतया निस्तलौ स्तनौ सुतनो।
चिकुरा विचकिलरुचिभिर्व्यतिराते दीप्तिमपरिमिताम् ॥२०३॥
बाले द्विफाललम्बितचिकुरदशाचारुचूचुकौ स्वकुचौ।
उत्फणफणीन्द्रपुच्छच्छन्नमुखाविव निबोध निधिकुम्भौ ॥२०४॥
क्रुद्धोऽजनि तदारम्य श्रीश्वरे राजि तत्पिता।
माधवेन्द्रेण निभृत चक्रे सन्धिमिति श्रुतम् ॥२०५॥ (क वं. सर्ग १३ वाँ)



महाराजा सवाई जयसिंहजी की छत्री के इजारे पर उत्कीर्ण कलात्मक चित्र

साथ विश्वासघात किया। स० १८०७ में जब होल्कर आदि के आक्रमण का समाचार महाराज ईश्वरीसिंह को मिला तो उन्होंने हरगोविन्द नाटाणी से सैन्य-सग्रह हेतु कहा किन्तु नाटाणी ने उत्तर दिया कि आप निश्चिन्त रहें एक लाख कछवाहे मेरे खीसे में (जेब में) हैं। जब शत्रुसेना निकट आ पहुँची तो महाराज ने पूछा तुम्हारी कछवाहों की सेना कहा है ? इस पर नाटाणी ने उत्तर दिया "हुजूर, खीसा फट गया ?" इस मर्मघाती उत्तर से व्यथित हो महाराजा ने कीर्ति-स्तम्भ पर चढकर देखा तो सेना को कोलाहल करते पाया। निदान, उन्होने अन्य कोई उपाय न देख तान्त्रिक क्रिया से एक घट अभिमन्त्रित कर अपने सेवक से कहा कि इसे शत्रु सेना के मध्य में रख आ, किन्तु उसने डर कर घडे को परकोटे के अन्दर ही रख दिया। इधर महाराजा ने शत्रु-सेना को क्षण क्षण बढ़ते आते देख और घट का कुछ भी प्रभाव न होते देख परिताप से खिन्न हो अ गूठी में जडे हुए हीरे को चूस कर शरीर-त्याग दिया। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होने दो काल-सर्पों मे अपने शरीर का दशन कराया। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि अत्युग्र विष-पान किया। किन्तु यह निश्चित है कि उन्होने परिताप-दग्धान्त करण हो असमय ही स्वेच्छा से मृत्युवरण किया। महाराजा ईश्वरीसिंह के स्वर्गमन के पश्चात् सेना ने जब परकोटे में प्रवेश किया तो अभिमन्त्रित घट किसी के पद-प्रहार से फूट गया और तभी उससे, मारो मारो की सर्वत्र ऐसी विकराल ध्वनि उत्पन्न हुई कि भय के कारण शत्रुसेना का शहर में घुसना असम्भव प्रतीत हुआ और उसे लौट जाना पडा। ईश्वरीसिंह जी के स्वर्गमन के पश्चात् हरगोविन्द नाटाणी और विद्याधर आदि ने होल्कर को समस्त कुजिया सौंप दी और उधर से माधोसिंह जी ने प्रवेश किया जिन्हें होल्कर ने जयपुर के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। ★

★ पेशवा दफ्तर २, (पृष्ठ ५३) पर पत्र सख्या ३१ दिनाक २१ फरवरी सन् १७५१ में ईश्वरीसिंह जी की दुर्भाग्य पूर्ण मृत्यु का विवरण इस प्रकार लिखा है—

यह पत्र जयपुर के पास मल्हारराव हुलकर और जयप सिन्धे की छावनी में से हिसाब लेखक बाबूराव विष्णु ने गोविन्द पन्त बुदेले के नाम लिखा है। पत्र ५ पृष्ठो में लिखा हुआ है।

इसमें लिखा है कि रियासत के पुराने कामदारों ने अर्थात् हरगोविन्द और विद्याधर ने ईश्वरीसिंह को सूचना दी कि होल्कर की सेना जयपुर के द्वार पर आ पहुँची है। ईश्वरीसिंह ने उन्हें होल्कर से सधि करने के लिये कहा परन्तु वे इन्कार हो गये। विवश और निराश होकर ईश्वरीसिंह ने जीवित कालासर्प और थोडासा सोमल खार (सखिया) अपने सेवक से मगवाया। फिर उस विषको खाकर सर्पदशन भी करा दिया। प्रात काल उनकी मृत्यु हुई। उनकी तीन रानियो और एक उपपत्नी (पडदायत) ने भी जहर खाकर महलों में प्राण त्याग दिये। हरगोविन्द और विद्याधर ने इस दुर्घटना का वर्णन होल्कर से किया। उसने महलो के पहरा लगवा दिया और बाद में ईश्वरीसिंह तथा उनकी रानियों व पडदायत के शवों का पूर्णसम्मान के साथ दाहसस्कार करवाया। हरगोविन्द और विद्याधर से इच्छानुसार संधि हो जाने पर हुल्कर ने जयपुर शहर से अपनी फौजे हटाली।

ईश्वरीसिंह की एक रानी और २७ दासिया भी जलकर सती हो गई। १५ दिन बाद माधोसिंह जयपुर लौटे और हुल्कर के साथ हाथी पर बैठकर शहर मे निकले। जयप सिन्धे माधोसिंह के आने के ८ दिन बाद जयपुर आया।

(सिंघी जैन ग्रन्थमाला में आचार्य श्री जिनविजयजी मुनि के प्रधान-सम्पादकत्व में प्रकाशित श्री पी० के० गोडे की पुस्तक (Studies in Indian Literary History II के पृष्ठ २६७ में उद्धृत अ ग्रेजी पत्र का हिन्दी अनुवाद)

इस प्रकार पौष कृष्णा १२ स० १८०७ को ७ वर्ष २ मास ११ दिन तक राज्य कर महाराजा ईश्वरीसिंह के स्वर्गमन के पश्चात् उनके अनुज माधवसिंहजी जयपुर के राजा हुए। ईश्वरीसिंहजी ने यद्यपि थोडे ही दिन राज्य किया और उनका समय अधिकतर सघर्ष में बीता फिर भी इस अल्पकाल में उन्होंने जो कीर्ति अर्जित की वह अजरामर रहेगी।

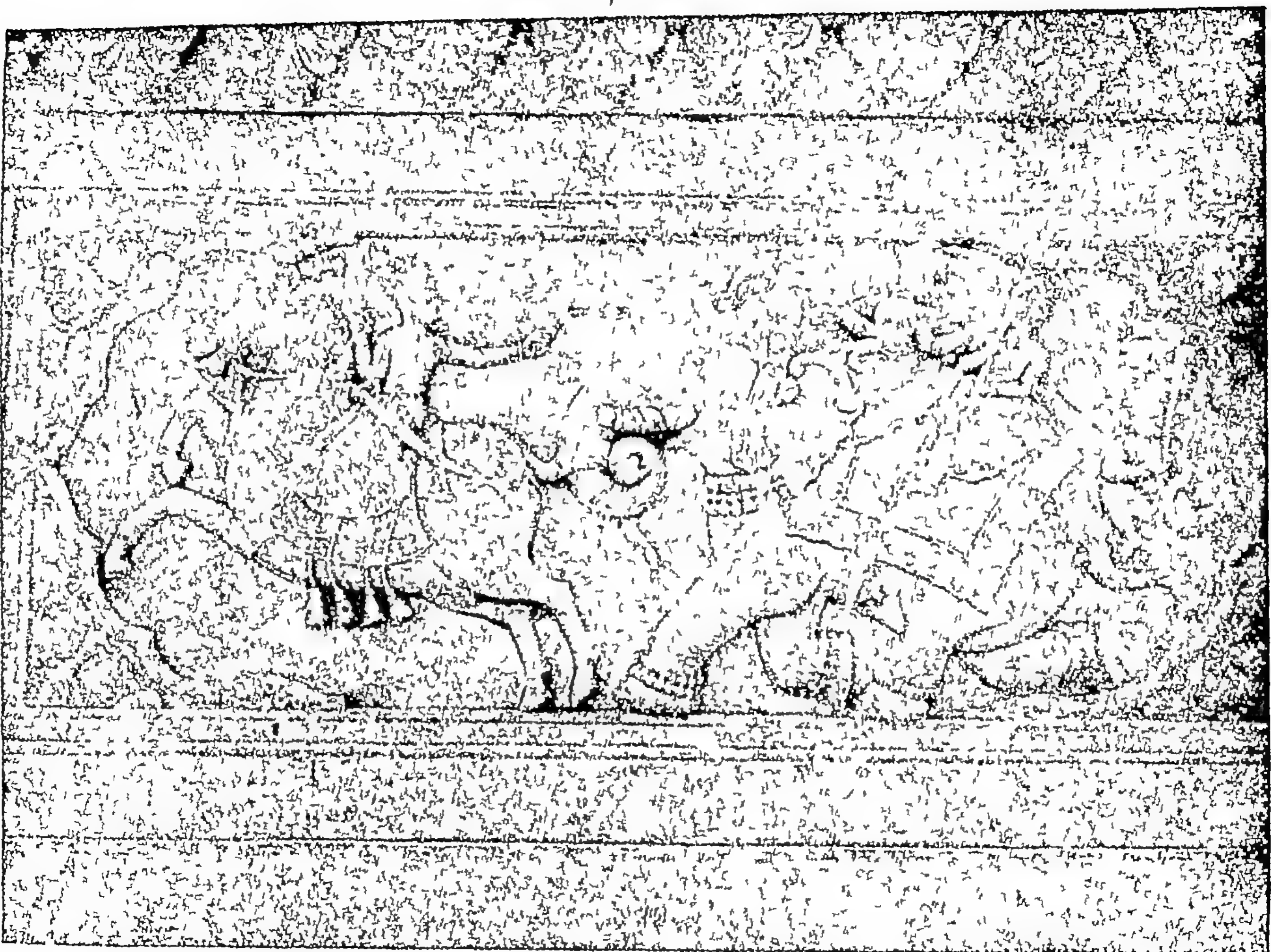
महाराजा ईश्वरीसिंह को यद्यपि अन्य कलाओ आदि के प्रसारार्थ पर्याप्त समय नहीं मिला था फिर भी स्थापत्यकला में "ईसरलाट", सवाई जयसिंह की छत्री, चौगान में मोतीबुर्ज आदि उनकी रुचि के परिचायक अब भी वर्तमान हैं। इन महाराजा के काव्यप्रेम का तो "ईश्वरविलास" प्रत्यक्ष निदर्शन है ही। उन्हें खेलो में हाथियों का युद्ध विशेष प्रिय था और वे हस्त्यायुर्वेद के विशेषज्ञ थे। इन पंक्तियो के लेखक ने पोथीखाने में इन महाराजा द्वारा सग्राहित एक "हस्त्यायुर्वेद" का ग्रन्थ भी देखा है। महाराजा सवाई जयसिंह की छतरी के एक इजारे में युवराज ईश्वरीसिंह का एक चित्र कुराई किया हुआ है जिसका अब भी नित्य पूजन होता है। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें बचपन से ही वीरतापूर्ण खेलों में विशेष रुचि थी और इसी कारण उन्होने अपना ऐसा चित्र उत्कीर्ण कराया होगा। इन महाराजा को कागज की कटाई के काम का भी बहुत शोक था। इनकी कागज की कटाई के कुछ चित्र अब भी पोथीखाने में सुरक्षित हैं और दर्शकों को दिखाये जाते हैं। उद्योग और कला के विकास की ओर भी इनकी विशेष रुचि थी। सुप्रसिद्ध सागानेरी कागज के उद्योग में इनके कारण पर्याप्त सुधार एव वृद्धि हुई। आज भी जयपुर में सागानेरी कागज की विशेष प्रकार से घुटी हुई गड्डियाँ "ईश्वरशाही पाठों" के नाम से प्रसिद्ध हैं। यदि इन्हें इतना सघर्ष न करना पड़ता और शत्रुओं से त्रस्त न होकर कुछ स्वस्थ वातावरण में जीवित रहते तो संभवत जयपुर ही नहीं भारत के इतिहास का कोई अन्य ही स्वरूप होता।

इन्ही महाराजा के आदेश से कविकलानिधि देवर्षि भट्ट श्रीकृष्ण जी ने प्रस्तुत महाकाव्य की रचना कर उनके यश को चिरस्थायी बना दिया है। महाकवि के विषय में समुचितरूप से कवि के वंशज सम्पादक महोदय ने अपनी भूमिका में साधिकार पर्याप्त प्रकाश डाला है। भूमिका में श्रीकृष्णभट्ट कविकृत जिन ग्रन्थों का विवरण एव परिचय दिया गया है उसमें "रामरासा" का भी उल्लेख है। उक्त भूमिका तैयार हो चुकी थी उसके पश्चात् ही विद्वद्वर्य मुनि श्री कातिसागरजी जयपुर आये और उन्होंने हमें "रामगीत" नामक एक ग्रन्थ दिखाया जो भट्ट श्रीकृष्ण कविकलानिधि प्रणीत है। इस ग्रन्थ में चित्रकूटस्थित वनवासी भगवान् राम की रासक्रीडा का सुन्दर वर्णन है। बहुत सम्भव है जिस "रामरासा" का वर्णन भूमिका में सम्पादक महोदय ने किया है और जिसके कारण महाकवि श्रीकृष्णभट्टजी को "रामरासाचार्य" की उपाधि प्राप्त हुई, यह वही काव्य हो यद्यपि स्वय कवि ने इस ग्रन्थ में रचना के कारण पर कोई विशेष प्रकाश नही डाला[1] है और न इसकी पुष्पिका में ही किसी तिथि आदि का उल्लेख हुआ है। श्री मुनि कान्तिसागरजी ने यह प्रति भरतपुर में कही से प्राप्त की है। कविकलानिधिजी का भरतपुर के राजाओं से भी अच्छा सौहार्द-सम्बन्ध था। सम्भवत यह ग्रन्थ इसी कारण उधर पहुँच गया हो। श्री मुनिजी ने उक्त ग्रन्थ की

---

१ कविकलानिधिजी ने अपने ग्रन्थ 'पद्यमुक्तावलि' में सूचित किया है कि—"श्रीमद्राजाधिराजे सति समुपकृतं भूरि रामायणेन" इत्यादि। इसकी सूचना 'भूमिका, पृ० ५१ में 'कवि महोदय के जीवनचरित्र में दी है।

—ग्रन्थसम्पादक



महाराजकुमार ईश्वरीसिंहजी साटमारी करते हुए (महाराजा सवाई जयसिंहजी की छत्री के इजारे पर उत्कीर्ण चित्र)

प्रतिलिपि करने के लिए राजस्थान पुरातत्वान्वेषणमंदिर को सहर्ष स्वीकृति दे दी है, तदनुसार ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि मदिर के सग्रहालय में सुरक्षित रख ली गई है और यथावसर यह ग्रन्थ भी सुरसरस्वतीसेवकों के समक्ष प्रस्तुत किया जासकेगा। पाठको की प्रीत्यर्थ "रामगीत" का कुछ परिचय नीचे देना समुचित प्रतीत होता है।

"रामगीत" जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है एक गीतिकाव्य है। सस्कृतसाहित्य में गीतिकाव्य अ गुलिगणनीय मात्र हैं। कविवर जयदेव का "गीतगोविन्द" इनमें अन्यतम विशिष्ट काव्य है, जो अपनी मधुरिमा और कोमलकान्तपदावली के कारण अन्यान्य काव्यों में मौलिमुकुट गिना जाता है। "रामगीत" भी उसी की अनुकृति का सुन्दर उदाहरण है। कवि ने इसका प्रणयन कर "गीतगोविन्द" का ही दूसरा रूप उपस्थित कर दिया है। प्रारम्भ मे जिस प्रकार जयदेव ने—

"यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
कलितकोमलकातपदावली शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

गाकर सहृदय भक्तों को आमन्त्रित किया है तो उसी प्रकार कवि कलानिधि जी ने भी—

इदमलौकिकमाधुरसात्मक कलित-कोमल-काव्य-कलाकुलम्।
रघुपतेर्विरुद विशद वच शृणु कवि-प्रवरस्य कलानिधेः॥"

कहकर अपने काव्य का महत्व सस्थापित करते हुए इस ओर भक्त रसिकों को आकृष्ट किया है। इसके अतिरिक्त आगे भी जिस प्रकार जयदेय ने "जय जगदीश हरे" आदि गीतो में "दशाकृति-कृते कृष्णाय तुभ्यं नम" आदि दशावतारात्मक भगवान् कृष्ण का वर्णन किया है उसी प्रकार कवि-कलानिधिने भी—

"तादृश-सिंधु-जले-तरणैक-निदान, धृतवानसि शृ गे जलयानम्।
राघव भृशमद्भुत मीन! तारय दीनजनम्॥१॥
मन्दर-धरण-विधौ धृत-विपुल-शरीर, पृष्ठकलित-कडू-सुख-धीरम्।
त्वामद्भुत-कमठमुपैमि, पालय दीनजनम्॥२॥
चित्रकूटशिखरे रममाणमजस्र मोदित-मुनिजन-मुख्य-सहस्रम्।
त्वामिहमनिशमुपैमि शरण राम हरे॥
कोमल-काम-कला-परिशीलनदक्ष जनकसुता-नयनैकसमक्षम्।
त्वामिह नौमि रमेश!, राघव! राम!! हरे!!!

तथा—

वेदोद्धारकरं धृतक्षितिधर बिभ्राणमुर्वीभर
दैत्येंद्रासुहर बलिच्छलकृते त्रैविक्रमाडम्बरम्।
क्षीण-क्षत्र-परम्पर रघुवर सीराग्रजाग्रत्कर
वन्दे जीवदयाधर यवनहृत्कालान्तर त परम्॥

आदि पद्यो में रामराघव के अवतारों और उनके जीवन के मधुरतम पक्ष का चित्रण किया है।

इसी प्रकार आगे भी जैसे जयदेव के "श्रितकमलाकुच-मण्डल-! धृतकुण्डल ए! कलितललितवनमाल! जय जय देव हरे!!" आदि पद्यों द्वारा वर्णन आरम्भ होता है इसी प्रकार इसमें भी —

भवभय-दुःखनिवारण सुखकारण ए!
भवति करुणभरभाजि! रघुवर राम रमे!!
जनकसुतापरिरम्भणधृतसम्भ्रम ए!
निज-जन-सुरतरुरूप! रघुवर राम रमे!!

आदि ललित वाक्यावली देखने में आती है। इसी प्रकार आगे जैसे जयदेव कवि ने "धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली! गोपी-पीन-पयोधर-मर्द्दन-चचल-कर-युगशाली" आदि पद्य लिखे हैं उसी प्रकार कवि कलानिधि ने भी —

"जानकि तव विरहेण दूयते, रघुपतिरतिरतिशाली।
गतिमतितितिसप्रेमभना अपि भवदागमननिभाली॥

आदि शब्दों में वैसा ही सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रकार देखने से पता लगता है कि "रामगीत" भावों की दृष्टि से एव कही कही भाषा और शब्दो में भी "गीतगोविन्द" के ही समानान्तर है।

"रामगीत" में १३ सर्ग हैं। इनमे क्रमशः भगवान् राम की महत्ता, मधुवर्णन, प्रिया-प्रिय-सगम, प्रणयाभिवर्धन, मधुकेलीवर्णन, कामानुरागवर्णन, रासवर्णन, रासमहत्व, खडितनायिकावर्णन, वर्षाऋतुवर्णन, शरद्वर्णन, विपरीत-रति-वर्णन, रति-वर्णनादि विषय विभक्त किये गये हैं। कविता अत्यन्त प्रसाद-गुण सम्पन्न है।

मगलश्लोक ही देखिये.—

"नीता येनाविनीता प्रसभमसुहृदस्त्रासभीतामराली
गीता यस्याविगीतामलचरितत्र(भृ)ता चन्द्रशीता प्रशस्ति।
स्फीतामथाप्यधीतामतिसुकृतिजनैर्यः प्रतीतार्थवाणी
चक्रे भीतापहृत्यै कलयतु कुशल सोऽद्य सीतापतिर्न॥१॥

शरद्वर्णनम्—उदचच्चन्द्रास्या रुचिररुचिहास्याब्जकरयुग्
मृणाली-दोर्वल्ली-विकचनवमल्लीगुणयुता॥
चकोराक्षी ताराकुमुदवर-हारावलिधरा
वितीर्णान्तस्तोषा लसति वरयोषा शरदियम्॥

उत्प्रेक्षा—

क्षुभ्यत्क्षीरधिमुग्धवीचिपटलैरापूर्य सर्वा मही-
माशाकाशविकाशकारिमहसा सव्याप्य नाकालयम्॥
अद्याशेषजगद्विशेषधवलीकारे धुरीणोद्गुरा
साम्य काममहो महीपयशसा धत्ते शरत्कामिनी॥



महाराजा सवाई ईश्वरीसिंहजी द्वारा कागज की कटाई करके बनाया हुआ चित्र
(महाराजा साहब, जयपुर के पोथीखाना से प्राप्त)

इसी प्रकार—

आमुक्ता भवदाननस्य परितो विस्तीर्णकेशावली
श्वासोच्छ्वासपरम्परा भजति न स्थैर्यं सकम्पाधरा ।
खेदस्वेदजसीकरावलिरभूत्प्रत्यगमाविस्तरा—
मित्येव विपरीतरीतिसुरताम्भोधि कथ तीर्यताम् ॥

आलस्यादिव मौनमास्त चरणाभोजस्य मजीरक-
द्वद्व सा मणिमेखला समनदत्कदर्पसन्दर्पत ।
इत्थ तत्पुरुषायितेन कलित केलीकलाकौतुक
योषात्व स्थगयाम्बभूव मदनस्यैतत्प्रतापोर्जितम् ॥

आदि पद्यो में शृ गार रस का, तथा अन्यान्य ऋतुओ का बडा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है जो सब यहा स्थान-प्रतिबन्ध से उद्धृत करना अशक्य है । कविकलानिधि काव्यरस को ही सर्वोत्तम मानते थे । उनका मत था कि.—

त्व पीयूष ! दिवोपि भूषणमसि, द्राक्षे परीक्षेत को
माधुर्यं तव, विश्वतोपि विदिता माध्वीकसाध्वी कथा ॥
एतत्किंतु, तथाप्यरुन्तुदमिव ब्रूमो वय साम्प्रत
यः काव्यामृतपानजो मधुरिमा नान्यत्र कुत्रापि स ॥

ग्रन्थ में कवि ने स्थान स्थान पर "कविकलानिधिगदितम्" आदि उल्लेख किया है अतः "रामरासा" वाली किम्वदन्ती "रामगीत" के विषय में पूर्णत संघटित प्रतीत नही होती । ग्रन्थ के "रामगीतम्" और "गीतराघव" दो नाम उपलब्ध होते हैं । ग्रन्थ ललित एवं प्रसादगुण सम्पन्न है । इसमें भगवान राम के लीलाविग्रह की दिव्य माधुरी का अपूर्व वर्णन है, अत यह ग्रन्थ प्रकाश में आने पर गीतगोविन्द की भाति सहृदयजनों का कठाभूषण होगा यह कह देना अतिशयोक्ति नही है ।

ऐसा भी सभव है कि 'रामगीत' की रचना कविकलानिधि श्री श्रीकृष्ण भट्टजी द्वारा श्री हनुमत्संहितान्तर्गत महारासोत्सव नामक प्रकरण की कथावस्तु के आधार पर की गई हो । महारासोत्सव तथा रामगीत की कथावस्तु में परस्पर पर्याप्त सामञ्जस्य है । महारासोत्सव प्रकरण में जानकीपति श्रीराम के निगूढ स्नेहलीलाचरित के विषय में श्री अगस्त्य मुनिद्वारा की गई जिज्ञासा के समाधानार्थ श्रीहनुमान् ने परमरहस्यमयी रासक्रीडा का २३७ श्लोकों में सरस वर्णन किया है । उक्तप्रकरण के पाच अध्याय हैं, जो कि क्रमश ३६, ४४, ६३, ५३, ६६ श्लोकों में आबद्ध हैं । इन अध्यायों में निम्नलिखित पाच विषयों का क्रमबद्ध निदर्शन इस प्रकार किया गया है—

प्रथमाध्याय—श्रीराम का सखीजनपरिवृता सीता के साथ सरयूतटवर्त्तिवनप्रवेशवर्णन ।

द्वितीयाध्याय—विविध वनो में विहारवर्णन ।

तृतीयाध्याय—ऋतुवर्णन के साथ वन की शोभा का वर्णन ।

चतुर्थाध्याय—विविध नायिकाओं के अनुरूप नाट्य करती हुई सखियो के साथ सीता तथा श्रीराम की रासक्रीड़ा का वर्णन ।

पंचमाध्याय—रतिखेदश्रान्त होकर स्नानार्थ सरयूनदी में सलिलावगाहन एवं जलविहार का वर्णन ।

महारासोत्सव की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान पुरातत्वमन्दिर के संग्रह में संख्या ६२३६ पर हमारे दृष्टिपथ में आई है । उसके उपक्रम तथा अन्त के कतिपय श्लोक निम्न प्रकार हैं—

अगस्त्य उवाच—श्रुतं रामस्य माहात्म्यं तव वक्त्रान्महामते ।
ऐश्वर्यमतुल तेज. प्रभाव परमात्मन ॥ ३ ॥ प्रथमाध्याये ॥

इति श्रुत मया सर्व तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ।
यद्यस्ति ते कृपा मह्य गुह्यं तद्वद साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

रसिकाना हृदाल्हादकारिणीं पावनीं कथाम् ।
कथयन्ति महात्मानः प्राप्नुवन्ति हरेः पदम् ॥ १० ॥

श्रीहनुमानुवाच—साधु पृष्टोऽसि ब्रह्मर्षे मनसैवेति निश्चितम् ।
गुह्याद्गुह्यतरं दिव्य तव प्रीत्या वदाम्यहम् ॥ ११ ॥
गोलोकनिर्णय सर्वमैश्वर्य्यं च निवेदितम् ।
अद्य ते कथयिष्यामि प्रेमामृतमहोत्सवम् ॥ १२ ॥
अयोध्याधिपति. श्रीमान् रामो राजीवलोचन ॥ १४ ॥
जानक्या सह सुप्रीत. क्रीडारसविलम्पट ।
माधुर्यसुखसम्पन्नामुवाच जनकात्मजाम् ॥ १५ ॥
गम्यता सरयूतीरं मनो मे त्वरयत्यलम् ।
इत्युक्त्वा ता करे धृत्वा जगाम रघुनन्दन ॥ १६ ॥
महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम् ।
ज्ञात्वा तयोर्मनोभाव सख्य सर्वा महोत्सुका ॥ १७ ॥

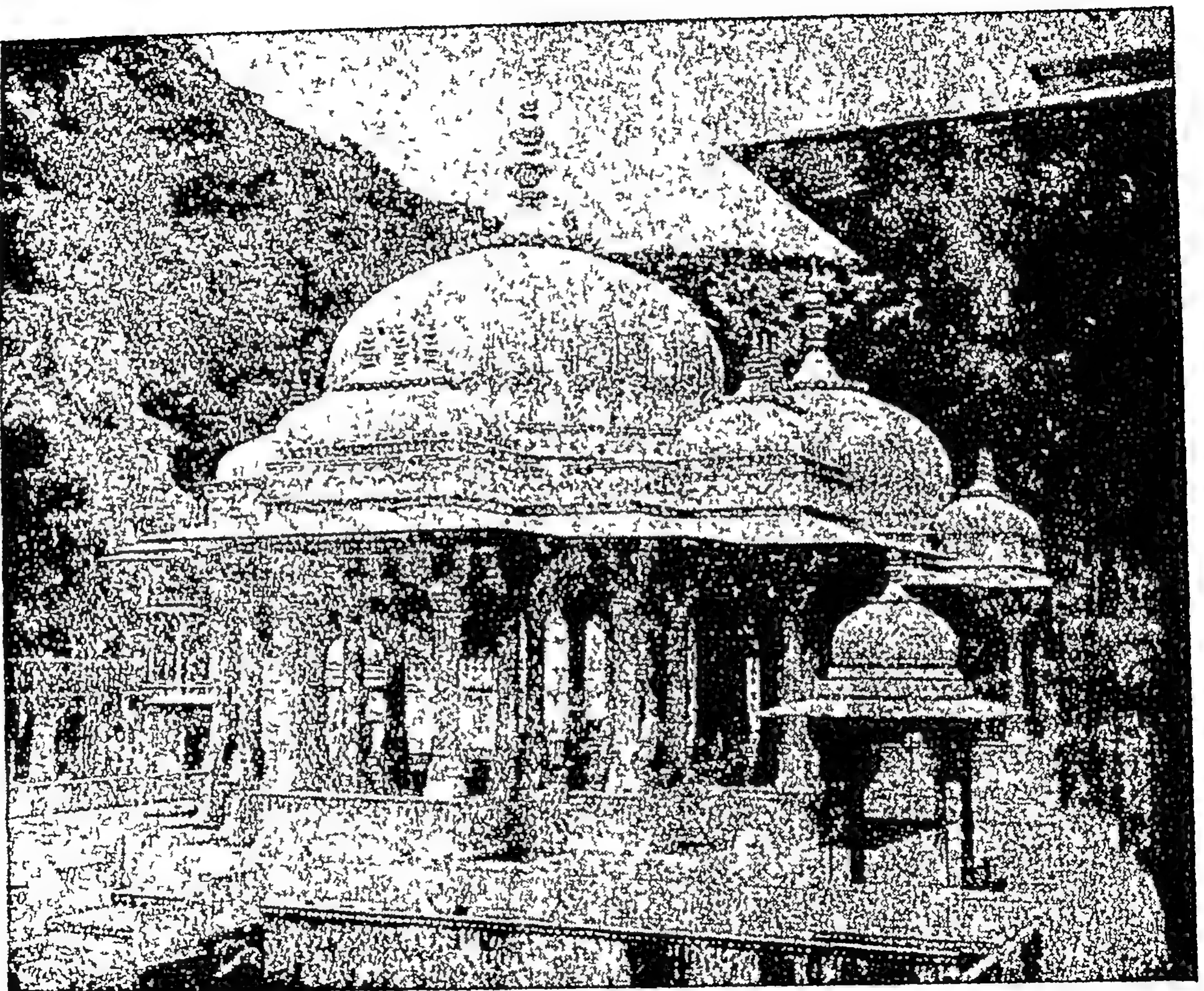
इसके अनन्तर रासक्रीडा का वर्णन है ।

अन्त में—हनूमत ऋषे काव्यं भाव्यं श्राव्य सदैव हि ।
तस्मिन् स सीतोरामोपि तुष्टो भवति नान्यथा ॥ ६१ ॥ पंचमाध्याये ॥

इति श्री हनूमत्संहिताया परमरहस्ये महारासोत्सवे पञ्चमोऽध्याय ॥ श्रीरस्तु ॥श्रीसीतायैस्वाहा ॥

इसी प्रकार सुदर्शनसंहिता के पञ्चदश पटल में भी श्रीसुदर्शन मुनि के प्रश्नो के उत्तर में श्रीब्रह्माजी ने रामरासक्रीडन का सुन्दर वर्णन किया है ।

श्रद्धेय श्रीभट्टजी महाराज ने "ईश्वरविलास" को 'सहृदयहृदयविलासिनी' व्याख्या से समलङ्कृत करके पूर्णता एव उपयोगिता प्रदान की है । इससे ग्रन्थ-प्रणेता महाकवि श्रीकृष्णभट्टजीकी कीर्ति में अनुपम श्रीवृद्धि हुई है । अपने गौरवगुम्फित ग्रन्थ में अस्मादृश शिष्यजन की कतिपय पङ्क्तियाँ जोड लेने हेतु सहजस्नेहालु श्रीगुरुवर्य ने इस विषय में कुछ लिखने के लिए "कीर्तिरन्नरसम्बद्धा



महाराजा सवाई जयसिंहजी की छत्री

आकल्पान्त गमिष्यति" वाक्य पुरस्सर आदेश दिया। तदुपरि हमारे विभाग के सम्मान्य सचालक पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्रीजिनविजयजी महाराज ने भी अपनी सहज अनुकम्पा से मार्गदर्शन किया। अतएव इन दोनों गुरुजनो की कृपा से विलासिनी हेतु औपायनीभूत यह पदहॅसिका टिप्पणी सादर समर्पित है।

टिप्पण्यन्तर्गत सूचनाएं प्राप्त करने में जयपुर के दीवानी दफ्तर हुजूरी के सुपरिन्टैन्डैन्ट श्री दामोदर प्रसाद जी सक्सेना, बी. ए डी ए. के ने राजकीय चित्रों के आधार पर "ईश्वरीसिंह जी का वृतान्त" भेज कर तथा भिषग्वर श्रीदेवेन्द्रकुमारजी भट्ट ने अपने प्रपितामहकृत कच्छवश महाकाव्यान्तर्गत ईश्वरीसिंहजी विषयक अंश की प्रतिलिपि देकर मुझे उपकृत किया है। एतदर्थ मैं इन दोनों महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूँ। विद्वद्वर्य श्री कान्तिसागरजी ने "रामगीत" की प्रति खोज निकाली है। उससे सस्कृतजगत का बडा उपकार हुआ है। प्रतिलिपि की आज्ञा देने में उन्होंने जो उदारता दिखाई है तदर्थ उनको धन्यवाद अर्पित करता हूँ। राजस्थान सरकार के सार्वजनिक सम्पर्क विभाग के संचालक श्रीराजेन्द्रशंकरजी भट्ट के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने विभाग के कुशल कलाकार श्रीकेसरीमलजी को आदेश देकर टिप्पणी सम्बन्धी विषयों के फोटो आदि प्राप्त करने की मुझे सुविधा प्रदान की। मेरे सहयोगी आचार्य श्रीरमानन्दजी सारस्वत शास्त्री ने मुझे जो वाछित सहायता दी है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

'दीवानी दफ्तर हजूरी' जयपुर से प्राप्त पत्र

मिसल नं ६४

महाराजा श्री सवाई ईश्वरीसिंहजी के विषय में जो वृत्तान्त दफ्तर वकाया मे प्राप्त हुआ है वह निम्नलिखित है—

मिति फाल्गुन शुक्ला ७ सम्वन् १७७८ को जयसिंहपुरा दिल्ली में महारानीजी श्री खीचणीजी (श्री धीरजसिंहजी खीची कोटडा वालो की पुत्री) के गर्भ से महाराजा श्री सवाई ईश्वरीसिंहजी (महाराजा श्री सवाई जयसिहजी के पुत्र) का जन्म हुआ।

मिति माघ शुक्ला ७ सम्वत १७८० मुआफिक फर्द छोटा चीमाजी (यह नाम महाराजा श्री सवाई ईश्वरीसिंहजी की बाल्यावस्था का प्रतीत होता है) को गाँव परगना बहोतर के साख उन्हालू सम्वत् १७८० से सालीना (वार्षिक) ४६६६॥=)॥ अठ माहा रु० १०००) जिसके वसूली ६६६॥=)॥ चबीणी में दिये ।

मिती पौष शुक्ला ७ सम्वत् १७८२ को जयसिंहपुरा दिल्ली के किरकिरीखाने से महाराजकवारजी (छोटा) के लिये बसवे भेजे हस्तेराघोदास खवास—

(१) कडा तिला मीना जडाऊ, कीमती रु० ६४७।=॥) थान १	माला मोतियों कीकीमती, रु० २६६८) थान १	कठी मोतियो की लडी, की कीमतीरु० ८७८॥) थान १	कानों के मोती कीमती रु० ३३८।) थान जोडी १

मिती फाल्गुन शुक्ला १५ सवत् १७८२ को जयसिंहपुरा दिल्ली के सिलहखाना से श्री महाराज कवारजी छोटा चिमनाजी के लिये नगारखाने का लवाजमा अलग प्रदान हुआ सो बन्वे भेजा। यह निम्न प्रकार है—

जोडी	थान	सेर
१६	१३	१॥≶

(२) नगारा दर सिकलाती जोडी ७	
(३) आहनी जोडी २	तांबा की जोडी ५
(४) फीली आहनी जोडी १	अहानी सिकलाती
(५) शुतरी तांबा की जोडी १	पीतल जोडी ५
झाझ कासी की दर	आहनी तांबा की
सिकलाती जोडी २	१ ४
खोली	

लेखक की प्रार्थना पर भूतपूर्व जयपुर राज्य के रेकार्ड आफिस से प्राचीन सामग्री के आधार पर लिखा गया पत्र।

जोडी थान
६ ५

नगारा की सिकलाती

थान जोडी
८

फीलीं नगारा की
कीमती रु० ५१)||=
जोडी १

सूत्री नगारा की
दर सिकलाती
जोडी १

(६) असफी नगारा की जोडी ४

दर १६-०-० १२-०-० १३-०-०
१ २ ३

खोली

सहनाय की
सिकलाती दर ३।)
थान २

करनाल की
सिकलाती
रु० ६)
१

फुटकर

थान जोडी सेर
७ १ १-११

(७) सीदली सिकलाती
नगारखाना की
६६॥)
१

तणावसत की थान ३
दर १) ०-० दर १) ०-०
२ १

डोरी रेशमी दर २-१० सेर
१-११

(८) तुरही पीतल की दर
सिकलाती १

(९) चोबदान की
सिकलाती
दर १।)
२

(१०) भारकस सिकलाती
थान २
२॥≥ १)
१ १

(११) गीरदा सिकलाती नगारा की
कीमती रु० ३।=
जोडी १

करनाल पीतल की दर
सिकलाती थान
१

मिती द्वितीय वैसाख शुक्ला २ सवत् १७८४ श्री महाराज कवारजी बसवे से हुजूर आए (मुकाम पावटा)। सगाई का टीका महाराणाजी श्री सग्रामसिंह जी का आया सो अजरूये महरबानी सिरोपाव १ की. सा. ५६= थान ६ बख्शे।

मिती अषाढ शुक्ला १० सम्वत् १७८६ को आमेर में महाराज कवारजी की सगाई महाराव दुर्जनसिंहजी हाडा कोटा की पुत्री से हुई। मिती अषाढ कृष्णा १० सम्वत् १७६१ को सवाई जयपुर में शरबते में श्री महाराज कवारजी की सगाई महाराणा जगतसिंहजी उदयपुर की पुत्री से हुई। महाराज कवारजी की सगाई मिती कार्तिक सुदी १४ स० १७६२ को उदयपुर की हुई। पुरोहित सतोखराम व देवीसिंह राणावत नारेल आदि सजाकर लाये।

मिती जेष्ठ शुक्ला १३ स० १७६० को सवाई जयपुर में श्री महाराजाधिराज व श्री महाराज कवारजी श्री ईश्वरीसिंह जी ने सर्वतोभद्र महल में दरबार किया। महाराज कवारजी बाई ओर बिराजे, महाराज कवारजी को जुगराज (युवराज) की पदवी दी। उठते समय श्री महाराजाधिराज ने महाराज कवारजी की नजर करने के लिये समस्त मुत्सद्दियो को आज्ञा प्रदान की कि वे दरबार में जाकर महाराज कवारजी की नजरे करे। आज्ञा अनुसार नजर की गई। महाराज कवारजी को किरकिरीखाना से निम्नलिखित बख्शा गया—

थान	जौहार
१०	५०५४-
	थान २

सरपेच जडाऊ की	मोतियों की माला
१३००)	की ३७८५)
१	१

सिरोपाव की सा.
२५१–६–३
थान ८

मिती जेष्ठ शुक्ला १४ सम्वत् १७६० को श्री महाराजाधिराज व श्री महाराज कवारजी सखता महल में जाकर बिराजे, दरबार किया, ठाकर लोग आये। परवाना सप्ती पर "राम सही" करी। इस प्रकार राज्य-कार्य करने लगे। पात शाहजी ने खिताब जुगराज पद का बख्शा सो मोजमबेग गुजरबरदार लाया और हाथी घोडा सिरोपाव जवाहर भी लाया। गुजरबरदार को रु० ६००) दिये।

मिती द्वितीय जेष्ठ शुक्ला १० सम्बत् १७६२ को श्री महाराज कवारजी का विवाह हुआ।

मिती वैसाख शुक्ला ४ स० १७६२ को श्री महाराज कवारजी नवाव निजामुन मुल्कजी के पास पधारे उस समय भोपाल ताल की सैर की और थान १३५ खर्च हुआ।

मुआफिक फर्द करार मिती अषाढ कृष्णा ऽऽ सम्वत् १७६८ महाराज कवारजी श्री ईश्वरसिंह जी ने असुमेदजिग (अश्वमेध) यज्ञ किया सो महाराणा जी वगैरह के न्योता भेजा सो म्होरें ५०)) न्योता के वास्ते दी गई।

महाराणाजी	महाराव दुर्जनसालजी	रावराजाजी	राजा गोपालसिंह जी
११।)	७))	७))	५))
राजा इन्दरसिंहजी	राजाजैतसिंहजी	राजाछत्रसिंहजी	बहादुर राजा विक्रमाजीतजी
५))	५))	५))	५))

मिती आश्विन शुक्ला १५ बुद्धवार सम्वत् १८०० को श्री महाराजाधिराज श्री ईश्वरीसिंहजी सिंहासनारूढ हुए।

मिती माघ शुक्ला १५ सम्वत् १८०० को श्री महाराजाधिराज श्री ईश्वरीसिंहजी दरबार में आकर विराजे। पातशाहजी श्री महमदशाहजी की हुजूर दिल्ली से खिताब बडा महाराजाजी का व मनसब बख्शने का हुक्म की फर्द आई सो नौबत बजाय खुशी मनाई। मुत्तसदी वगैरह की नजर लेकर अन्दर पधारे। रुपया १३०००) दरबार खर्च बाबत बहाल खिताब व मनसब बदस्तूर बडा महाराज मुआफिक फर्द करार मिती जेष्ठ बुदि ५ साल सं १८०० किये गये।

मिती श्रावण कृष्णा २ सम्बत १८०० को दिल्ली मुकाम तालकटोरा पर श्री पातशाहजी श्री महम्मदशाहजी की हुजूर महाराजा श्री सवाई ईश्वरीसिंह जी पधारे, वहा से इनाम लाये।

मिती बैसाख कृष्णा १० सम्वत १८०१ को दर्ज है कि महाराजाधिराज श्री ईश्वरीसिंह जी कोटा से सवाई जयपुर मिती चैत्र कृष्णा १० शनिवार सम्वत १८०१ को पधारे तब रुपया ५००-०-० उछाले।

मिती पोष कृष्णा ५ सम्वत १८०४ को दिल्ली में महाराजाधिराज श्री ईश्वरीसिंह पातशाहजी श्री महम्मदशाहजी की हुजूर पधारे तब निम्नलिखित बख्शीस हुआ

थान ६
जवाहर कीमती ३४३८-०-०

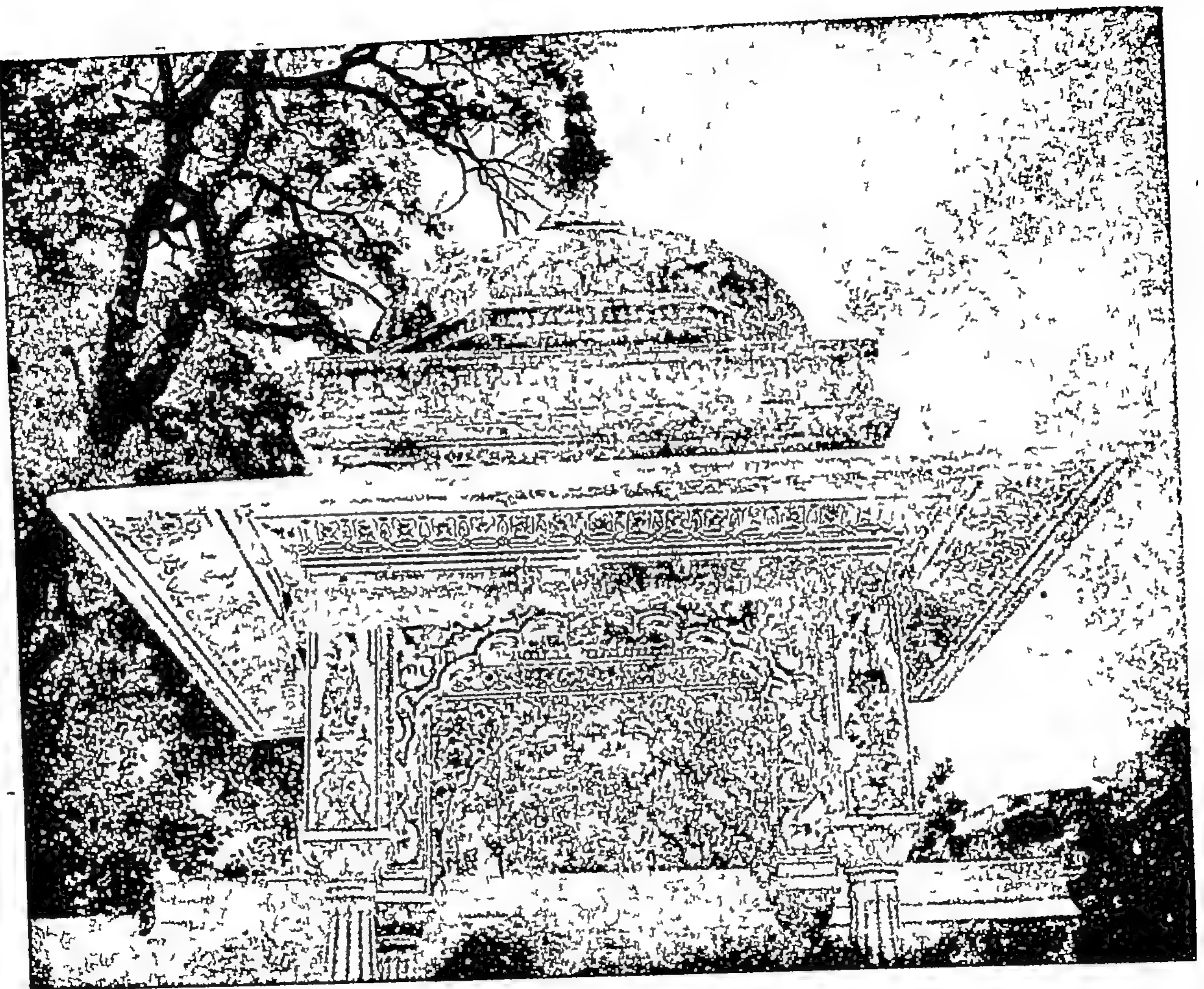
मोतियों की माला
कीमती २५६४-०-०
१

तलवार कीमती
१६१-०-०
नग १
सिरोपाव जरीका कीमती रु० ४०६-०-०
थान ७
जामा कुडता जरी—
पल्ला का कीमती १६०-०
१

कटार १
थान कटार
२ १

सरपेच जडाऊ
की ६८३-०-०
थान १

(१२) कुडता फरकशाही
कीमती १०५-०-०
१



महाराजा सवाई ईश्वरीसिंहजी की छत्री

(१३) फेंटा बाणारसी

कीमत ७५-०-०

(१४) गोशपेच सरपेच जरी रु० १०-०-०

१

(१५) बालाबदी बाणारसी

कीमत २५-०-०

१

(१६) आलम रु० ३४-०-०

जरीका	रगीन
कीमत २७-०-०	कीमत ७-०-०
१	१

सम्वत् १८०२ में बूंदी के हाड़ां से विजय हुई जिसकी खुशी में हर गोविन्द नाटाणी वगैरह को सिरोपाव दिये गये।

महाराजा श्री ईश्वरी सिंह जी के ६ रानियाँ थी।

मिती पोष शुक्ला १२ सम्वत् १८०७ को महाराजाधिराज श्री सवाई ईश्वरीसिंहजी का स्वर्गवास हुआ।

मुकाबला किया गया

पढ़ा सुना

ह० ईसरलाल ह० राधालाल

मोहर. दीवानी हुजूरी दफ्तर, जयपुर।

दफ्तर हजूरी से प्राप्त पत्र में वर्णित शब्दों के अर्थ

(१) कड़ा तिला = कडा सोने का

(२) सिकलाती = सिकल किया हुआ; चमकदार, सिकलाती बर्तन उसे कहते हैं जिसमें एक धातु निर्मित वस्तु पर अन्य धातु के तार कलाकारी के साथ चिपकाकर ऊपर से चमक कर दी जाती है।

(३) आहनी = लोहे के। आहनी शब्द संस्कृत के अयस का ही विकृत रूप प्रतीत होता है।

(४) फीली = हाथी पर रखी जाने वाली। फील का अर्थ हाथी सुप्रसिद्ध है।

(५) शुतरी = शुतर=ऊँट पर रखी जाने वाली।

(६) अश्की = घोडे पर रखी जाने वाली। यह अश्व का अपभ्रंश प्रतीत होता है।

(७) सिन्दलो = एक परदा जिस पर गणेशजी अथवा अन्य देवता की मूर्ति जरी के काम से चित्रित रहती है तथा जो न कारखाने पर लटकाई जाती है।

(८) तुरही = लम्बी शहनाई।

(९) चोब = डंका।

(१०) मारस्म = रस्से।

(११) गीरबा = गद्दा। जिसे गिदड़ा भी कहा जाता है। यह नक्कारे के नीचे बिछाया जाता है।

(१२) कुड़ता फरक शाही = जरी व सलमा सितारे से मढ़ा एक विशेष प्रकार का कारीगरी का कपडा होता है। उसके कुरते को 'फरक शाही कुड़ता' कहा जाता है। प्रसिद्ध है कि उस विशेष प्रकार की कारीगरी के कार्य को बादशाह फर्रुखसियर से प्रोत्साहन मिलने के कारण उसका यह नाम पड़ा।

(१३) पेचा = साफा, शिरोवेष्टन।

(१४) गोशपेच = पगड़ी पर बाँधने का एक कपडा जो सरपेच के नीचे बाँधा जाता है।

(१५) बालाबन्दी = अंगलबन्दी जैसा ही विशेष प्रकार का पहनने का वस्त्र जो जामे के नीचे पहना जाता है। प्राचीनकाल में बनीयान की भाँति ही इसे व्यवहार में लाया जाता था।

(१६) आलम = कमरबन्दा।

कच्छवंशमहाकाव्यान्तर्गत ईश्वरीसिंहवृत्तान्तः

*सुतस्तु शिवसिंहोऽभून्महानलपराक्रमः ।
दापयित्वा विषं हन्त पित्रा जयपुरे हतः ॥४६॥

सुखादिकंवरा सेयं राज्ञी खीचीन्द्रधीरजा ।
कुमारमीश्वरीसिंहं सुषुवे श्रीरिव स्मरम् ॥४७॥

वत्सरे वसुशैलाद्रिचन्द्रे चन्द्राननश्रियः ।
जनी राजकुमारस्य कुमारोपमसंपदः ॥४८॥

भूः सस्यसंपदमपद्यत काञ्चनाङ्गे
जाते नृपस्य तनये ननु काञ्चनाङ्गे ।
आबालवृद्धमजनि प्रमदः प्रजाना-
माबालवृद्धमलमम्बु पपुर्विहङ्गाः ॥४९॥

तत्तच्चतुःषष्टिकलाकलापवित्—
तथा समुच्छृङ्खलभूमित्पविः ।
सौधे चतुष्के करिणां महारय-
श्छत्रच्छविं चीनिकया चकार यः ॥५०॥

जजाप मन्त्रान्निगमान्पपाठ
तास्ताः कला यः सकलाश्चिकाय ।
दधार शस्त्राणि विवेद नीतिं
जिगाय षड्वर्गमपि प्रसह्य ॥५१॥

राणावती सूनुमसूत नाम
श्रीमाधवं क्ष्माधववंशभूत्यै ।
यमीश्वरीसिंहभिया कथंचि-
न्निनाय मातामहसद्म माता ॥५२॥

अगाधबोधो घनमुग्धमञ्जिमा
करस्फुरच्चक्रगदाब्जपेशलः ॥
यो वैनतेऽयं परिपोषयंश्चिरा-
दुवास मातामहसद्मनि स्वयम् ॥५३॥

---

*६२ पेज की टिप्पणी का परिशिष्ट ।

ददौ विवेकी पदमृद्धमीश्वरी-
सिंहाय हंहो युवराजशब्दितम् ।
क्षमाधवो माधवसिंहवर्मणे
स्वशर्मणे रामपुराभिधं पुरम् ॥५४॥

अथेश्वरीसिंहमुदग्रदोजसं
सहायमासाद्य जयेन्द्रभूमिप. ॥
प्रतापमाविष्कुरुते स्म तु सहं
धनञ्जयायो महसामिवेश्वरम् ॥५५॥

गयां यियासुर्निजसार्थगुप्तये
स पौण्डरीकः क्षितिपं व्यजिज्ञपत् ॥
न्ययुङ्क्त कंचित् क्षितिपोपि ठाकुरं
कियद्भिरश्वैरनुद्रुतं द्रुतम् ॥५६॥

सार्थः स रत्नाकरशर्मणोऽध्वसु
विश्रम्य विश्रम्य गयां रयादयात् ।
यो यात्रिणां रत्नविभूषणैस्तदा
दधार रत्नाकरतां पदे पदे ॥५७॥

सार्थेन गच्छन्पथि पौण्डरीकः
समाससादद्वादशदुर्गसीमाम् ॥
तत्रत्यपाटच्चरराडुपेत्य
प्रसह्य सार्थं सहसा रुरोध ॥ ५८॥

सन्धाय चापेऽथ शरं स ठाकुर-
स्तं तस्करेन्द्रं विदधे शरव्यम् ॥
शरप्रहारव्यथितस्तुरङ्गमात्
पपात पापी विलुठन्समार ॥५९॥

शेषा विशेषाद्भयशुष्यदानना:
सार्थेन यष्ट्यादिभिरीषदर्दिता ॥
विलिल्यिरे दुर्गतटीषु सत्वरम्
तिष्ठन्ति सार्थेऽवहिते न दस्यव ॥६०॥

तृणेऽपि धूते स्मृतचोरचंक्रमः
प्रतिक्षणं ठाकुरदत्तसान्त्वन. ॥
सार्थः सस्यार्थश्लथनी विगिष्य ।
तद्रम्य गृहव्यग्रमुपासदद् गयाम् ऽ ॥६१॥

हते प्रधानेऽथ विमृश्य दस्यवो
विलुण्ठितु सार्थमनु प्रतस्थिरे ॥
तथा तदुत्थानमवेत्य ठाकुरो
लेखं लिखित्वा विससर्ज भूभुजे ॥६२॥

स्वस्तिश्रीकमठविडौजसि प्रणामा
मार्तण्डत्विषि विलसन्तु ठाकुरस्य ॥
आस्ते शं समधिकमत्र, तत्र चास्ताम्
तिष्ठामः सुखमधुना वयं गयायाम् ॥६३॥

यस्याहो पथि पथिकौघलुण्ठनाय
धावन्ति क्षितिवलये सहस्रशोऽश्वा' ॥
साहाय्यं वितर न चेत्स दस्युवर्गो
गत्वाग्रे द्रुतमिव नः पुरा निहन्ति ॥६४॥

श्रुत्वा श्रीकमठसमाजचक्रवर्ती
वृत्तान्तं दलगतमित्थमिद्धकोपः ॥
सामन्तैरुपलकलाख्यबन्धुरांसै-
रन्वीतः क्षपयितुमुच्चचाल चौरान् ॥६५॥

पन्थानं तरलतुरङ्गमैर्निकृन्तन्
लुण्टाकान् प्रतिभटकीर्तिलुण्ठकोऽलम् ॥
संपेदे सपदि गृहीतसार्थमार्गान्
मार्गान्तमृगपतिविक्रमः क्रमेण ॥६६॥

संवृत्तः क्षतगलितासृगुक्षिताध्वा
संग्रामः कमठपतेः पटचरौघैः ॥
यत्राऽस्त्रप्रहृतिनिकृत्तचौरमुण्डै-
र्योगिन्यक्षिपुरजिते स्रजो जुगुम्फुः ॥६७॥

सोत्साहं वलितचलोऽवलम्बितासि-
स्तान् हत्वाऽऽहवभुवि षट्सहस्रसंख्यान् ॥
कृत्वा द्रागवनिसमांस्तदीयदुर्गान्
सीदन्तं सपदि स सार्थमुद्दधार ॥६८॥

कृत्वैवं सरणिमतस्करां गयायाः
सार्थेनाकलितनतिः सठाकुरेण ॥
संशृण्वन् पथि चरितानि तस्कराणा-
मापेदे जयनगरं जयी जयेन्द्रः ॥६९॥

वीकानेरं जेतुमभीयुष्यभयेन्द्रे
पत्रं राज्ञे तत्पतिना प्रैषि विलिख्य ॥
आहाद् विष्णुर्यद्वदिभं विष्णुजवीर !
मां द्रागस्मान्मोचय भक्तोऽस्मि तवेति ॥७०॥

मन्त्रिभ्यस्तत्पत्रमुपाकर्ण्य शरण्यो,
जामात्राऽद्धा योद्धुमभीप्सन्नभयेन ॥
लक्षोन्मानां कूर्मचमूमध्वनि कर्षन्
दुर्गोदग्रं योधपुरं प्राप जयेन्द्रः ॥७१॥

शुण्डादण्डस्फारविस्तारवन्तो
दन्तद्वन्द्वोत्खातविद्वेषिदुर्गाः ॥
दानासारैर्मारवाटं सृजन्तः
कच्छप्रायं कच्छनागा जगर्जुः ॥७२॥

अश्वक्षुण्णक्षोणिधूलीपिनद्धे
दूरोदस्ता व्योम्नि भल्ला भटेन्द्रैः ॥
मार्गे मार्गे मारवीद्दृशु दत्त-
शम्पाडम्पातङ्कसन्वड्निपेतुः ॥७३॥

विप्रोषितप्रभु स योधपुरं प्रपद्य
श्रीमाननेकविधयुद्धविधाविदग्धः ॥
आवेष्टयत्परिसरोपवनीघनद्रु-
भङ्गोद्यतद्विपघटाभिरनीकिनीभिः ॥७४॥

संयोज्य तोपनिवहानधिदुर्गमुच्चैः
प्रक्रान्तसाहसमरं समरं दधाना ॥
राष्ट्रोढराजमहिषी ननु सा तदानीम्
साक्षादमुष्य दुहिताऽप्यहितायते स्म ॥७५॥

एवं सति द्रुतबलः स परीक्षिताऽसि
सत्यं ममासि तनुजेति सुतां प्रशस्य ॥
गव्यूतिमात्रमपसृत्य कृतावतारो
हन्त ! श्लथोद्यममयुद्धयत शुद्धभावः ॥७६॥

जयचरितमशेषं चारतः प्राप योध-
पुरविघटनशंकालुप्तसंकल्पजातः ।
मरुवलयधरित्रीवासवो हन्त होलाऽ
हनि जितमपि बीकानेरमुज्झां चकार ॥७७॥

विपुलगतिभिरुष्ट्रैः सैनिकाकृष्टनासा-
गुणविवलितवक्त्रप्रस्खलत्फेनपुञ्जैः ॥
कथमपि पथि तांस्ताञ्जङ्गलान् गाहमानो
दृढपिहितकपाटामासदद्राजधानीम् ॥७८॥

स योधपुरगोपुरं क्रमविमुक्तगाढार्गलम्
प्रविश्य मरुभूधवो ध्वनिततोपयन्त्रोत्करम् ॥
न्ययुंक्त युधि सप्तभिर्बखतसिंहमुद्रंहसा-
मभिश्वशुरमर्वतामनुगतं सहस्रैस्तदा ॥७९॥

सपदि बखतसिंहोऽप्युच्चकैः सज्जसेना-
मुखगतगिरिधारिप्रौढवेतण्डचण्डम् ।
दृढतरपदघातोत्कूर्दद्दश्वेन्द्रपृष्ठो-
त्पतनजनितरागप्रोथबिम्बं प्रतस्थे ॥८०॥

गङ्गवाणपुरमेत्य स स्मयी
क्वाऽस्ति भोः कमठराडिति ब्रुवन् ॥
अध्यनीकमसिभिस्तुदन् भटान्
सप्तवारमतनोद्गतागतम् ॥८१॥

वखतमिह निहन्तुं कोशतः कर्षितासी-
नहह समवलोक्य स्वीयसामन्तवीरान् ।
अपि विरुजति वीरा मा प्रहर्त्तव्यमस्मि-
न्नसकृदिति जयेन्द्रो वन्धुभावान्न्यपेधीत् ॥८२॥

अथ कमठनिपिद्धास्तं मृषा योधयित्वा
तुरगकटकमुच्चैरस्य दूरात्ततत्नुः ॥
क्षतशिथिलशरीरो नूनमुन्नुन्नपक्षो
रणभुवमपहाय प्राद्रवत्सोऽपि भीतः ॥८३॥

रणाद्द्राग्विद्राणे सति वखतसिंहे सरभसम्
प्रसह्य स्वायत्तं व्यधित गिरिधारिद्विपमहो ॥
दिनेषु क्रामत्सु त्रिषु स गिरिधारिप्रभुसृते
प्रताम्यन्तं बुद्ध्वा व्यतरदमुमस्मै स्मयहरः ॥८४॥

रणव्याजादित्थं भयमभयसिंहेऽपि विदधद्
व्यधाद्वीकानेरं नरपतिरलीकायितभयम् ॥
अनुक्रामन्नश्वैर्मरुसपतरुच्छायसरणिम्
शरण्यः स्वःस्वच्छच्छवि जयपुरं प्राप विजयी ॥८५॥

अथ श्रीमद्दिल्लीपरिवृढदृढादेशवशतः
पराजेतुं मैत्रावरुणिदिशमुच्छृङ्खलनृपाम् ॥
अमात्यैः सम्मन्त्र्य प्रधनविधिहेवाकिनमसौ
न्ययुङ्क्त प्रेक्षावान्झटिति युवराजं जयनृपः ॥८६॥

ततोऽसौ कुमारः कुमारप्रभावः
समादाय सेनामनेनाविशेषात् ॥
निदेशाद् गुरोर्दाक्षिणात्यान् विनेतुम्
ध्वनद्दुन्दुभि क्षिप्रमेव प्रतस्थे ॥८७॥

खमर्वद्भिरापूरि टापक्षतक्ष्मा-
समुड्डीनधूलीघटाभिर्हठेन ॥
पुनः कुञ्जरैरुच्चकैस्तद्व्यशोधि
समुत्क्षिप्तशुण्डोच्छलच्छीकरौघैः ॥८८॥

अकारि द्विपेन्द्रैरनन्तातलं यन्-
मदप्रस्रवैः सान्द्रजम्बालजालम् ॥
तुरङ्गैः कुरङ्गैरिव प्रोच्छलद्भिः
खुरैस्तन्मुहुः क्षोदितं शोषितं च ॥८६॥

समन्तात्ततं वप्रसाग्नेययन्त्रैः
समातन्वता तेन मार्गेषु नित्यम् ॥
चमूसंनिवेशः शात्रवैर्दुष्प्रवेशः ऽ
समानीयत प्रोच्चकैर्दुर्गभावम् ॥६८॥

प्रयाणोद्भटानां भटानां निनादै-
र्वियच्चत्वरं सत्वरं संस्पृशद्भिः ॥
ललत्पुष्पपुञ्जेषु कुञ्जेषु सुप्ता
व्यबुध्यन्त हंहो गुहाकेशरीन्द्राः ॥६१॥

वल्लेरीश्वरीसिंहवर्मा सुवर्मा
दिशं दक्षिणां हन्त सद्यः प्रपद्य ॥
विधातुं पुरो युद्धरूपां मृगव्या-[1]
मवातिष्ठ तत्राभितो दाक्षिणात्यान् ॥६२॥

समित्सीम्नि तूर्येषु तारं नदत्सु
विमुक्ताश्ववल्गेषु वीरव्रजेषु ॥
गजेन्द्रेषु गर्जत्सु कच्छेन्द्रसूनू
रणोत्साहमुत्तालमालम्बताऽलम् ॥६३॥

तदग्रेसराग्नेययन्त्रास्यनिर्य-
दयोगोलदम्भोलिघातैः पुरस्तात् ॥
मदोत्तुङ्गनासीरनागा नगाभा
प्रसह्य द्विषां पातयां चक्रिरे द्राक् ॥६४॥

बृहद्भानुरंहश्चलच्चण्डबाणा-
वलीविक्षता शोणशोणायिताङ्गाः ।
परं रेजिरे संपरायाजिरे द्विण्-
महाकुञ्जरा व्योम्नि सान्ध्या इवाभ्राः ॥६५॥

१—ईश्वरविलासस्याविकल छाया । ६ सर्गे ७ आदिपद्यानि ।

तदानीमहो घोटकोद्धूतधूली-
तमोधोरणीदुःप्रवेशे प्रदेशे ॥
समुज्जृम्भिता बाहुजेन्द्रैः कृपाणी-
तडित्सन्ततिः सन्ततं नृत्यति स्म ॥९६॥

कमठपतिपदातिभिः प्रसार्य
विशकलिताः परपत्तयः कृपाणैः ॥
क्षतगलदसृगुक्षितप्रदेशा
युधि रदननिपीडिताधरं निपेतुः ॥९७॥

सपरपरिसरे परस्परासि-
व्यतिकरकृत्तपरस्परोत्तमाङ्गाः ।
त्रिदिवगतिमनुत्तमां प्रपद्य
सपदि भटा ययुरामरोऽतिथित्वम् ॥९८॥

इति समजनि संगरो गरीयान्
रुधिरधुनीतटबद्धपंक्तिगृध्रः ॥
कलयितुमिव कौतुकं भटानां
रविरपि वासरमध्यमेत्य तस्थौ ॥९९॥

अथ खलु युवराज एष वीर
करटिनमुन्नतमास्थित पुरस्तात् ॥
स्वकटककदनं निरीक्ष्य रोषा-
रुणनयनो ज्वलदग्निदुर्निरीक्षः ॥१००

स्वयमहह रदक्षताधरोष्ठो
रिपुसुदृशामधरं क्षताद्रक्ष ॥
अधिसमरमिभं कुरुष्व भिद्य
द्रुतमिति हस्तिपकं ब्रुवाणः ॥१०१॥

हृदि रुधिरझरान्द्विपां वितन्व-
स्तनरवचापघनाशुगोग्रवर्षैः ॥
सरभसरणितानको रणान्त-
र्झटिति विवेश पराक्रमं चिकीर्षुः ॥१०२॥

अथ वीक्ष्य विशन्तमाहवे
युवराजं सचिवोत्तमः पितुः ।
इति हन्त स राजमल्लको
हितगर्भां गिरमभ्यभाषत ॥१०३॥

ननु¹ भो नृपनन्दन क्रुधा
कुरुषे किं सहसाद्य साहसम् ॥
मयि जीवति वैरिवस्मरे
तव योग्यो न भृशं परिश्रमः ॥१०४॥

निपतन्ति पुनः पुनः पुरो
ज्वलिताः सम्प्रति लोहगोलकाः ।
अधिपावकवर्षमाग्रहाद्
विशतस्ते किमिव प्रयोजनम् ॥१०५॥

निभृतं क्वचिदत्र विश्रम
क्षणमस्मद्भुजवैभवं सिप ।
भवदीयभटैर्द्विपद्बलं
विजितप्रायमवेहि सम्प्रति ॥१०६॥

इति वादिनि राजमल्लके
युवराजः समुपात्तकार्मुकः ।
रणमुग्रकबन्धताण्डवं
प्रविवेशैव विशिष्य साहसी ॥१०७॥ (कुलकम्)

अनुवलति बलेऽपि कोदण्डमेकं सहायं वहन्
सुहृदमिव महागुणं पञ्चशाखे विशाखोपमः ॥
द्विपपतिगतिरीश्वरीसिंहवर्मा स वर्मावृतः
समिदुदरमवीभरन्मुण्डखण्डैः प्रचण्डैर्द्विपाम् ॥१०८॥

समधिकतरमुच्चकैरुच्छलत्केतुपुच्छच्छटो
विकटनिनदनादिताशेषदिक्चक्रवालान्तरः ॥
असिनिशितनखो महानीश्वरीसिंह एष स्यदा-
दरिकरटिघटासु हंहो जिघांसुर्न्यपतत्तदा ॥१०९॥

१—ईश्वरविलासस्याविकलमनुकरणम् । दृश्यन्तां ६ सर्गे ३५-३८ आदिपद्यानि ।

तोपस्तोमस्तिमितवरणं वारितारिप्रहारे
भित्त्वा व्यूह प्रविशति नमामीश्वरीसिंहवीरे ॥
निस्त्रिंशाग्रप्रहृतिनिपतद्विद्विपन्मुण्डमुच्चै-
रन्याकुर्वन्समिति सचिवा राजमल्लादयोऽपि ॥११०
व्यापन्नद्विपकूटनिर्गलदसृक्स्रोत शतैरुच्छ्रिते
भूतप्रेतपिशाचराक्षसघटाप्रोत्तालकोलाहले ॥
चक्रे शत्रुचमूचमूरुकदनव्यापारवानीश्वरी-
सिंहो हन्त रणाटवीपरिसरे शार्दूलविक्रीडितम् ॥१११॥
इत्येवं क्रूरकोलाहलमुखरितदिक्कूलमाजानुबाहुः
सोत्साहं निर्ममन्थ प्रधनजलनिधिं खड्गमन्थेन वीरः ॥
शत्रुस्त्रीहत्सु दिक्षु प्रसृमरकिरणः सिन्धुमुद्वेलखेलं
तन्वानोऽमुष्य तस्मात्पुनरजनि यशश्चन्द्रमा निष्कलङ्कः ॥११२॥
सुनिबिडतया व्यातन्वन्ति प्रसह्य दरं दृशो-
ररिबलतमांस्यावृण्वन्ति क्रमात्समराङ्गणम् ।
स्फुरदसिकरैः संहृत्य प्रागमुष्य भुजोदय-
क्षितिधरशिरस्युच्चैस्तस्थौ प्रतापदिवाकर. ॥११३
यवनपसमादेशाद्देशान्तरे द्विपतां बलं
प्रबलमलमप्याजौ जित्वा धनंजयविक्रमः ।
रणभुवमलङ्काराकीर्णां वगाह्य वहन्धनं
जयपुरगतः पादद्वन्द्वं जयस्य ददर्श सः ॥११४॥
विजयिनमुपप्रह्वं पवित्रनयो जय ९
सदसि खलु भो योग्योऽसीति प्रशस्य पुनः पुनः ।
जयपुरपदे धृत्वा तस्यावतारितधूः सुखं
स्थितवति सुते यूनि ह्येषा प्रथा गृहमेधिनाम् ॥११५॥
विषयविमुखः श्रावं श्रावं पुराणकथास्तथा
सुकृतमनिशं कारं कारं फलाननुरोधत ।
स्मरगुरुपदं स्मारं स्मारं विशिष्य विशुद्धधी-
द्विजकुलमसौ[१] नामं नामं निनाय दिनान्यसौ ॥११६॥
गोविन्दस्य मुखारविन्दमनिशं पश्यंस्तदाख्या गृणं-
श्शृण्वंस्तस्य गुणांस्तदङ्घ्रितुलसी जिघ्रंस्तदग्रे लुठन् ।

१—ईश्वरविलासस्य दशमसर्गे २–१० पद्यानि द्रष्टव्यानि ।

प्रातस्तच्चरणामृतं परिपिबन्भक्तांस्तदीयान्स्पृश-
न्नित्येवं स तदेकतानहृदयो जीवन्विमुक्तोऽजनि ॥११७॥

राज्यं वर्धितमाहवेषु विजितं स्वच्छं यशोऽप्यर्जितं
शिल्पज्ञुष्यमयस्मय जयपुरं निर्माय विख्यापितम्।
येनाऽयाजि तुरङ्गमेधविधिना द्रव्यं द्विजेभ्योऽर्पितम्
सोऽयं श्रीजयसिंहवीरनृपतिः स्यात् कस्य वाग्गोचरः ॥११८॥

ऋग्वेदप्रवणः प्रभाकरभवः शांतस्वभावो महा-
राष्ट्रः श्रीव्रजनाथ इत्यभिधया यः कश्चिदासीद्द्विजः ॥
गीतं तेन वृसीगतेन भगवन्नाम्नां सहस्रं नृपः
शृण्वन्विष्णुपदीपयःप्लुतवपुर्लिल्ये परब्रह्मणि ॥ ११९॥

इह खलु चतुश्चत्वारिंशत्समाः कुसुमायुध-
प्रतिममहिमा राज्यं प्राज्यं प्रशास्य यथाविधि ।
खखवसुविधावब्दे पक्षे तथाश्वयुजेऽर्जुने
स्वरुषसि चतुर्दश्यां पुण्यैरपद्यत विष्णुजः ॥१२०॥

अथ वत तदा देव्यस्तिस्रः सतीत्वचमत्कृताः
प्रणतजनतामाशीर्वादैः प्रतर्प्य यथायथम्।
द्रुतमधिचितं स्वाङ्के राज्ञो निधाय तनूमहो
तदनुगमनोद्युक्ता दध्युः पदं परमेष्ठिनः॥१२१॥

सत्स्वप्युत्तमवाहनेषु बहुशः पद्भ्यां प्रपद्येश्वरी-
सिंहो हन्त तथा निरीक्ष्य पितरं हाहेति चुक्रोश हा ।
निर्मथ्याऽरणिमाशुशुक्षणिमरं सम्पादयद्भिर्द्विजै-
रस्य क्षिप्रमकारयच्च महितामन्त्यक्रियां यज्वनः ।।१२२॥

राजेन्द्रस्य निमीलनाज्जयपुरं जातं तदानीं महा-
शोकोद्रेकविविग्नया जनतया प्रक्रान्तहाहारवम्।
ब्रूमो हन्त पुनस्त्रिविष्टपपदं मुद्धे तुकेतुस्फुर-
त्सौधश्रेणि तदागमोत्सुकसुरप्रक्रान्तहाहारवम् ॥१२३॥

सश्रद्धं समनुष्ठितासु नृपतेः श्राद्धक्रियासु क्रमा-
दुत्क्रान्तेषु कतिष्वहःसु शनकैः शोके वहिर्नश्यति ।
विज्ञप्तः सचिवोत्तमैः कथमपि श्रीमानसावीश्वरी-
सिंहेन्द्रो द्रुतमन्वभूज्जयपुरे पट्टाभिषेकोत्सवम् ॥१२४।

श्रीमत्कुन्दननन्दनवैद्यश्रीकृष्णरामकविकलिते।
काव्येऽत्र कच्छवंशे समाप्तिमेकादशो ययौ सर्गः ॥

द्वादशः सर्गः

अथायमीश्वरीसिंहो राजा संजाय दिद्युते ।
मुक्तालताकङ्कणतिलकालंकृतालिकः ॥ १ ॥

रत्नसिंहासनगतश्चामरद्वयवीजित ।
राज्यलक्ष्मीस्मितच्छत्रस्वच्छच्छायप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

अमुष्य राजतिलके विरेजुः पुरगोपुराः ।
अशोकपल्लवस्रग्भिर्दूर्वाङ्काभिरलंकृताः ॥ ३ ॥

परिमृष्टचतुष्कानि लिप्तालिन्दानि गोमयैः ।
उत्पताकगवाक्षाणि गृहाणि गृहिणां बभुः ॥ ४ ॥

शर्करावुद्बुदानुच्चैरन्तःपुरपुरन्ध्रयः ।
परस्परं तदा प्रीताः सादरं ददुराददुः ॥ ५ ॥

द्विपैरश्वै रथैर्लोकैर्गतागतविधायिभिः ।
व्यधत्त राजतिलकोद्भवः पन्थानमाकुलम् ॥ ६ ॥

उपायनार्थमाजग्मुर्भूरिशो भूभुजां जनाः ।
विस्तीर्णमपि संकीर्णं यैर्जज्ञे राजसन्दिरम् ॥ ७ ॥

मेवाडमघवामुष्मै प्रजिघाय द्विपादिकम् ।
तेनासावतलस्पर्शं हर्षसिन्धुमगाहत ॥ ८ ॥

दत्तराज्यो जयेन्द्रेण दलेलो व्रजपार्थिवः ।
एष वः किङ्करोऽस्मीति ब्रुवन् प्रादादुपायनम् ॥ ९ ॥

बदनो-नाम जट्टेन्द्रो वीरसंघट्टवन्दितः ।
प्रेषयामास मातङ्गमुपदाभि सह स्वयम् ॥१०॥

कोटेन्द्रस्तत्प्रभावज्ञ प्रत्यर्प्य विविधोपदा ।
चकांक्ष तस्य करुणाकटाक्षक्षेपमात्मनि ॥११॥

गोपाल इत्यभिधया भूपतिर्यदुवंशज ।
नैकरत्नद्विपप्रायामुपदा समढौकयत् ॥१२॥
प्रेष्य कामवनीभूपो जैत्रसिंहोऽप्युपायनम् ।
राजेन्द्र इव न. पाहि राजन्नित्यलिखद्दलम् ॥१३॥

दिल्लीदुश्च्यवनः श्रीमान् मुहम्मद इति श्रुतः ।
तुरङ्गपंचकोपेतं कुञ्जरेन्द्रं ददौ मुदा ॥१४॥

कच्छवाहाः ससन्नाहाः कच्छवाहविडौजसम् ।
नेमुर्ननु नमन्मौलिस्रग्गुलच्छं सहस्रशः ॥१५॥

श्रुत्वेश्वरविलासं स काव्यं काव्यविचक्षणः ।
श्रीकृष्णभट्टकवये ग्राममेकं ददौ तदा ॥१६॥

न केवलमनेनाशाः सुराणां यशसा भृताः ।
भूसुराणामपि पुनः संभृता द्रविणेन ताः ॥१७॥

चतसृभ्य स आशाभ्यो धनान्याहृत्य भूरिशः ।
अतिथीनामसंख्येयास्तैराशाः समपूरयत् ॥१८॥

राज्यार्द्धमीप्सता भ्रात्रा माधवेन कनीयसा ।
आसीद्विद्वेष एवाऽस्य मातृपक्षसहायिना ॥१९॥

कश्चिद् विद्याधरो नाम बंगो गौडद्विजाग्रणीः ।
आसीदमुष्य सचिवश्चाणक्य इव चारुधीः ॥२०॥

यद्बुद्धिवैभवेनैव सवाई जयराडपि ।
चक्रे पुरं जयपुरं कमनीयविकल्पनम्[1] ॥२१॥

सन्त्येकतो बुधाः सर्वे सर्वाः सन्त्वेकतः श्रियः ।
एकतोऽसौ महाबुद्धिर्मन्त्री विद्याधरः स्थितः ॥२२॥

विद्यानां पारदृश्वानमीश्वरीसिंहवर्मणे ।
राजेन्द्रो मन्त्रिणममुमर्पयामास शर्मणे ॥२३॥

राजेन्द्र स्वान्तसमयं निकषा निकषो धियाम् ।
कुमारमीश्वरीसिंहं व्यधाद्विद्याधराङ्कगम् ॥२४॥

स मन्त्री स्वीयधिषणापरास्तधिषणस्तदा ।
राजेन्द्रवाक्यवशग श्रीश्वरीसिंहमाश्रयत् ॥२५॥

अन्येऽपि हरगोविन्दराजमल्लादिमन्त्रिणः ।
भेजुस्तमीश्वरीसिंहमीश्वरीसिंहविक्रमम् ॥२६॥

१—ईश्वरविलासस्य दशमसर्गस्थ ३६ श्लोकमारभ्य एकादशद्वादशसर्गस्थ प्रायः सर्वोपि विषय. अविकल सवदते । परीक्ष्यता प्राज्ञै ।

प्रोत्साहितः स तै राजा सैन्यं संग्राह्य षड्विधम् ।
कल्पान्तमिव कुर्वाणः प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥२७॥

गण्डाद्रिरुन्मदासारैः सम्प्रवर्तितनिम्नगाः ।
द्विपा विडम्बयामासुरुच्चैः कादम्बिनीं तदा ॥२८॥

उद्धूतपांशुभिः पादघातैरायासिता हयैः ।
मेदिनी कार्श्यमापेदे श्रमः स्थौल्यं व्यपोहति ॥२९॥

अश्वटापक्षतक्षोणीतलात्स्यां प्रकटोऽधुना ।
इत्याकुलो भिया शेषः शंके पातालमावसत् ॥३०॥

साग्नेयचूर्णपेटीनि पताकाभिलिखन्ति खम् ।
तुरगैस्तोपयन्त्राणि यत्नाच्चक्रुः परेतराम् ॥३१॥

पत्तय' प्रौढचर्मासिचापतूणीरकंकटाः ।
पीत्वा पार्दकिवं फेन धावन्ति स्म रणेच्छया ॥३२॥

यथा यथा पताकिन्याः पताकाभिः प्रकंपितम् ।
तथा तथा सपत्नानां पंक्तिभिश्च प्रकंपितम् ॥३३॥

विष्वग्वलेषु वल्गत्सु नागिन्यः प्राहुरित्यहिम् ।
याति कार्याय कच्छेन्द्रो धार्या भूरद्य यत्नतः ॥३४॥

इमे दन्ताः पंक्तिर्न वकमिथुनानां पुनरियम्
मदानामश्रान्तं परिपतति धारा न पयसाम् ।
इयं भूषा गोवेः स्फुरति न हि शम्पा, विरहिणि !
द्विपानेतान्नाव्दान्कलय सुतरामीश्वरपतेः ॥३५॥

वेगात्प्रतिष्टमानानां कच्छानामच्छतेजसाम् ।
सिंहनादेन महता सिंहनादोऽधरीकृतः ॥३६॥

विक्षुण्णायां क्षितावश्वैः खमावृण्वत्सु केतुषु ।
शेषश्च त्रिदशेशाश्च बिभ्यतुर्वल्गतीश्वरे ॥३७॥

द्विपत्सुरसमुद्रासी दिग्दन्तिमदमर्दनः ।
महादुन्दुभिभृङ्कारवारध्वनिरभूत्पुरः ॥३८॥

विद्विपस्तर्जयदिव मरुदेजद् ध्वजाञ्चलैः ।
कोणघातध्वनन्नैकानकैर्नादितदिङ्मुखम् ॥३९॥

अश्वोद्धूतरजःपुञ्जै रारब्धमुदिरच्छटम् ।
तरवारिचमत्कारैरुल्लासिततडिल्लतम् ॥४०॥

विश्च्योतद्भिर्मदं मत्तमातङ्गैर्मन्दगर्जिभिः ।
नयदावारिधितटं महीं जम्बालजालताम् ॥४१॥

दानवर्षैरिभैर्मार्गं नयज्जम्बालजालताम् ।
तमेव पुनरश्वौघैः क्षुण्णमाश्यानपङ्कताम् ॥४२॥

बलात्पदातिमालाभिः समाकुलमितस्ततः ।
उच्चकैर्लोलदुल्लोलमनुकुर्वाणमम्बुधिम् ॥४३॥

प्रौढोष्ट्रव्यूहसंभारं सामन्तैः परिरक्षितम् ।
वल्गति स्म बलं राज्ञश्चतुरङ्गं समं चितम् ॥४४॥

बहुयोजनविस्तारनिवेशा वेगवाहिनी ।
वाहिनी बाहुजग्राह्या द्विषामजनि दुस्तरा ॥४५॥

सुवर्णरत्नशृङ्गाराः सुवर्णकुथसंवृताः ।
रेजुः सुवर्णचित्राङ्गाः सत्सुवर्णस्रजो गजाः ॥४६॥

प्रचण्डोद्दण्डशुण्डाग्रगण्डच्योतन्मदापगाः ।
दन्तभग्नद्विषद्दन्तावलदन्ता द्विपा बभुः ॥४७॥

उद्यच्छुण्डा विधुतिभिः स्वर्नदीकंजकर्षिणः ।
उच्चैर्गण्डस्थलीश्लिष्टतारा जग्मुर्मतङ्गजा ॥४८॥

अधो निह्नुत्य यातीयं द्विजिह्वेन्द्रानिति क्रुधा ।
चख्नुः खुरैः किमु क्षोणीं क्षोणीन्द्रस्य तुरङ्गमा ॥४९॥

इति सज्जबलव्यूहे कच्छपे राज्ञि गच्छति ।
नृणां निरुद्यमानामप्यासीदुद्यम उच्चकैः ॥५०॥

एक एव गुणग्राही ननन्द स तदा नृपः ।
प्रास्तानपि श्रिया श्रीमान्गुणिनोऽत्र पुपोषयत् ॥ ॥५१॥

अन्वग्रहीत्स काव्यज्ञांस्तांस्तांज्ज्योतिर्विदोऽपि च ।
वैद्यानश्वादिशास्त्रज्ञान् रत्नजातपरीक्षकान् ॥५२॥

अपि प्रवीणान्वीणासु गानदक्षान्महानयम् ।
बलोद्भटान्भटांश्चापि समृद्धिभिरबीभरत् ॥५३॥

कांश्चिद्दृष्ट्या शिशिरया कांश्चित्स्मितरुचा नृपः ।
कांश्चिद् गिरा पुनः कांश्चित्करेण समभावयत् ॥५४॥

भ्रूसंज्ञयाऽपरानन्यान्मस्तकान्दोलनेन च ।
प्रीणयामास नीतिज्ञो परान्सन्निधिदानतः ॥५५॥

समृद्धं राजसैन्यं तद् यत्र यत्रोपितं पथि ।
तत्र तत्रैव सामन्ता विसस्मरुरलंकृतीः ॥५६॥

तास्ता नद्यो नगास्तेते तानि तानि वनान्यपि ।
गच्छता कच्छसैन्येन विष्वग् व्यानशिरे तरीः ॥५७॥

दुर्गमं मानवव्यूहैर्वनं श्वापदगर्जनम् ।
ईश्वरेणैव विदधे ध्वनद्दुन्दुभिमङ्गलम् ॥५८॥

खड्गोद्भटभटप्रौढसिंहनादैः प्रबोधिताः ।
सिंहाश्चलुभुरुत्फालप्रोच्छलत्पुच्छगुच्छकाः ॥५९॥

दुर्जीववासदानेन सापराधा व्यभेद्यत ।
कुठारिभिररण्यानी श्रीश्वरस्य निदेशतः ॥६०॥

समन्तात्पटपस्त्यानां विरेजुः सितभित्तयः ।
परितः सान्ध्यमेघानां सिताभ्रततयो यथा ॥६१॥

उच्चैर्हस्तिनमारूढः श्रीमानीश्वरपार्थिवः ।
वृद्धश्रवा इव बभावास्थितोऽभ्रमुवल्लभम ॥६२॥

उद्यद्धूलीतमस्तोमस्तिमितासु दिशास्वसुः ।
शक्तयो वीरदोर्दण्डप्रचण्डा दीपिका इव ॥६३॥

उच्चैरालोकशब्देन दिशोऽष्टौ पार्श्ववर्तिनाम् ।
समपूर्यन्त शिबिराद् गच्छतीश्वरपार्थिवे ॥ ६४ ॥

माद्यन्मतंगजघटा कूर्दद्वद्घटोत्कटा ।
दत्तद्विट्संकटाच्छन्नदिक्तटा सुभटा चमूः ॥६५॥

ईश्वरीसिंहसौभाग्यं सम्भाव्य महदद्भुतम् ।
स एकलिङ्गविषयक्षोणीन्द्रो विभ्यदभ्ययात् ॥६६॥

स कालोचितमालोच्य भूपालः कच्छभूपतेः ।
चक्रे महान्तमातिथ्यं वक्त्रेणापि हृदा स्वयम् ॥६७॥

प्रविश्य मेदपाटेन्द्रो पटमन्दिरमैश्वरम् ।
संव्यधत्त व्यवहृतिं जयस्वर्गतिहेतुकाम् ॥६८॥
शोचन् साश्रु क्षणं स्थित्वा व्यवहारविदां वरः ।
जगाम हर्म्यमात्मीयमीश्वरेण विसर्जितः ॥६९॥
स निशायां निशान्तस्थस्ताहगीश्वरवैभवम् ।
स्मारं स्मारं जजागार निद्रामत्सरिणाङ्कितः ॥७०॥
दधात्यम्बुधिगाम्भीर्यमेष गाम्भीर्यतोऽध्वनि ।
धीरताऽस्य पुनः क्वापि कलाशास्त्रेषु धीरता ॥७१॥
मन्येऽमुष्य यशो जन्ये जयत्यर्जुनमर्जुनम् ।
विभा विभासतेऽतीत्य विभाकरविभामपि ॥७२॥
योजनव्यापिपृतनं साहसैकप्रयोजनम् ।
कः स यो जन एनं हि धर्षयेद्वीरयोजनम् ॥७३॥
तप्तं किमप्यनेनोच्चैस्तपः परमदुष्करम् ॥
जयपत्तनसाम्राज्यश्रियं साधु भुनक्ति यत् ॥७४॥
एनां तनूमनूनां स्वां कीर्तिनाम्नीमिहापराम् ।
धृत्वा राजाधिराजः स्वः प्रास्थात्तन्वा तृतीयया ॥७५॥
कश्चिदस्य कुलस्याहो विशेषो दुर्लभः परैः ।
यः पुरो जायते प्राचां यशोभावुक एव सः ॥७६॥
श्रीमानेष गुरौ नम्रो हरौ भक्तिपरः परम् ।
बलवानचिरादेव दिशां जेता भविष्यति ॥७७॥
इत्थं विमृश्य राणेन्द्रो राजेन्द्रतनयेन सः ।
मैत्रीं कर्तुं नयेनैषीन्न येन सदृशोऽपरः ॥७८॥
धन्येहनि ततोऽन्यस्मिन्सैन्येन महता वृतः ।
धृत्वा पाणावसिं सज्जो राणाकस्य गृहान्ययौ ॥७९॥
गजाः सिन्दूरशृङ्गारा वर्षन्तो मदविप्रुषः ।
सन्ध्यांशुच्छुरितोच्छन्ना जीमूता इव रेजिरे ॥८०॥
धातुरागैर्विचित्राङ्गाः कम्पमानकुथाञ्चलाः ।
नवोन्मिषितपक्षाग्राः शैला इव गजा बभुः ॥८१॥

घटाटंकारिणो ध्वान्तसतीर्थ्याः पिप्पलाशनाः ।
चातकैरीडिता मेघाः प्रावृषेण्या इवास्फुरन् ॥८२॥

सक्त्थाः शृङ्खलैर्बद्धा भूशक्रेण मतंगजाः ।
अकृत्तलक्षगस्तो विचेलुर्गिरयो यथा ॥८३॥

आजानुबाहुसंव्यानाः समुन्मिषितशेखराः ।
चेतयन्तो द्विपाञ्जग्मुर्मदान्धान्पथि भल्लिनः ॥८४॥

भूसुनासीरनासीरे पंचरंगध्वजा गजाः ।
ततेन्द्रचापतडितो मेघा एव बभासिरे ॥८५॥

वर्मजालोज्ज्वला नागाः सेनाननमभूषयन् ।
छन्नाभोगास्तडित्वद्भिर्जङ्गमा इव पर्वताः ॥८६॥

सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रोतपल्याणपेशलाः ।
ननृतुरुच्चकैरश्वा मूर्तिमन्त इवानिलाः ॥८७॥

गरुत्मन्तो गरुड्डीनाः पवमानाः शरीरिणः ।
विवर्त्ता मनसां स्थूलास्तदातर्क्यन्त सप्तयः ॥८८॥

जग्मुराजानदेशोत्थाः पारसीका वनायुजाः ।
सप्तसप्तेर्यतो हीणाः सप्तयस्तेऽस्य सप्तयः ॥८९॥

तेजःप्रचण्डवर्ष्माणो वल्गाचर्वणतत्पराः ।
अर्वन्तश्चर्वयन्तोऽहीन् गरुडा इव लक्षिताः ॥९०॥

उच्चकर्मकच्छविस्फूर्त्तो तरलोत्तुङ्गपंक्तयः ।
तुरङ्गाः सैन्यपाथोधौ तरङ्गा इव रेजिरे ॥९१॥

मुक्तागुच्छोज्ज्वलाः स्वच्छरत्नजालचमत्कृताः ।
रथा रेजुः सुमनसां विमाना इव पंक्तिशः ॥९२॥

मारवैर्गोर्जरैः स्वर्णमालिभिर्दर्पशालिभिः ।
अनुद्घातं चकम्पिरे बलीवर्दवरै रथाः ॥९३॥

युद्धोपयोगिनः केचित् स्यंदनाः सज्जहेतयः ।
पलाशवस्त्रसंवीता मृगयार्हा बभुः परे ॥९४॥

उष्ट्रै रश्वैर्गजैर्वाह्याः कपत्कांचनशेखराः ।
वरूथिनो रथाः सैन्यं भूषयन्ति स्म नैकशः ॥९५॥

कलक्वणितसौवर्णकिंकिणीका महारथाः ।
उत्कन्धरं मयूरीभिरुत्सुकत्वाद्विलोकिताः ॥९६॥

बाणौघपूर्णतूणीराः स्कन्धासक्तशरासनाः ।
कक्षालंबीन्यभेद्यानि चर्माणि दधतोऽधिकम् ॥९७॥

शक्तिमन्तः परिकरप्रत्युप्तस्फीतशाक्तयः ।
स्वर्णसूत्राञ्चलश्मश्रुवेष्टना· क्रूरचेष्टनाः ॥९८॥

शूलिनोऽपि निरुद्वेगाः सगदा अपि नीरुजः ।
अतिसाराः पुनरहो शतशोऽथ सहस्रशः ॥९९॥

हन्त निमंक्तुमगच्छं सखीसमक्षं न्यमांक्षमपि सहसा ।
न हि जातु चेन्न्यमंक्ष्यं तदा न्यमंक्ष्य न किं मंक्षु¹ ॥१००॥

ज्वलत्कालानलज्वालाक्रूरप्रकृतयः परम् ।
बाहुकोशशयान्खङ्गान् बिभ्रतश्चित्रमुष्टिकान् ॥१०१॥

सैन्यसिन्धुमहापूरनृत्यत्कल्लोलविभ्रमा· ।
मूर्तिमन्तो यथा गर्वा रणकण्डूलबाहवः ॥१०२॥

वेगोद्रेकेण धावन्तः प्रौढा झञ्झानिला इव ।
पदातयः प्रभोरग्रे प्लवन्ते स्म मुहुर्मुहुः ॥१०३॥

सैन्यसन्नाहमालोक्य सीदन्सीसोदपार्थिवः ।
व्यवस्यति किमद्यैष ढुण्ढारोऽपृच्छदित्यहो ॥१०४॥

तं भीतं मन्त्रिणः प्राहुरस्थाने नाथ भीर्वृथा ।
अयं स्वाभाविकोऽमुष्य सन्नाहो विकृतिर्न हि ॥१०५॥

इत्याश्वस्तमनास्तत्र राणाको रणितानकः ।
सभामास्थाय सामन्तैः प्रत्यैक्षिष्ट तदागमम् ॥१०६॥

राजेन्द्रपरलोकाप्तिप्रहृष्टः कुटिलाशयः ।
तदानीं प्राह तत्रैत्य कोटेन्द्रो मेदपाटपम् ॥१०७॥

राजेन्द्रेण दलेलाय दत्तां बुन्दावतीपदम् ।
तद्दापय प्रभो तस्मै यः पुरा तत्र भूपति ॥१०८॥

१—इदं पद्य मध्ये प्रक्षिप्तमिव कथातोऽसबद्धम् ।

मतिमानीश्वरीन्द्रोऽद्य समभ्येति गृहांस्तव ।
तदेनं हिन्दुसुत्रामञ्शनकैरिति शिक्षय ॥१०९॥

आगासीद्यस्य वा बुन्दी स एवास्तु तदीशिता ।
दलेलः पुनरुद्दण्डः स्थानान्तरमुपेतु सः ॥११०॥

एवमद्धा त्वदुक्तं स स्वीकुर्यादपि जातुचित् ।
श्रेयस्कामो न कुर्वीत को नाम महतां वचः ॥१११॥

एवं सिद्ध्येदभिप्रायः प्रायः कल्याणमप्यलम् ।
न किंचिद् दुर्घटं राजन्ननुकूले सतीश्वरे ॥११२॥

अस्मिन्नेवान्तरेऽकस्मादुदस्थात्तोपनिस्वनः ।
कच्छेन्द्रनिर्गमाशंसी रोदसीभेदभीषणः ॥११३॥

यावद्राणाभिधो राजा दध्याविति किमेतदाः ।
तावदेव रयादागादुवलैर्वल्गद्भिरीश्वरः ॥११४॥

मत्तेभदानधाराभिः क्लिन्नं राजसभाङ्गणम् ।
तदेव घोटकव्यूहैः क्षुण्णत्वात्प्रकृतिं दधौ ॥११५॥

रेजे राणेन्द्रशिविरं सध्वजैरीश्वरद्विपैः ।
उद्भिन्नेन्द्रायुधैरब्दैर्व्योमेव निभृतान्तरम् ।

मुक्तागुलच्छच्छविभिः स्वर्णलेपचमत्कृतैः ।
राणेन्द्रशिविरद्वारं राज्ञो गजरथैर्बभौ ॥११७॥

खड्गचर्मोद्धुरैरंसन्यतिषक्तशरासनैः ।
उद्भटैरीश्वरभटैः पुपूरे तच्चतुष्ककम् ॥११८॥

बभौ भृत्यकराभ्रपुच्छैस्तुच्छेतरक्रमैः ।
कच्छवाहेन्द्रवाहौघै राणेन्द्रशिविराजिरम् ॥११९॥

वेत्रवाहुभिरुद्घुष्टजयशब्दैः समन्ततः ।
स्तूयमानावदानादिः श्रीमानागच्छदीश्वरः ॥१२०॥
मत्तं गजं समारूढो महान्तं स्वर्णमालिनम् ।
पश्चादारूढसचिवसमुच्चालितचामरः ॥१२१॥

स्वच्छरत्नच्छटोच्छूनच्छत्रविच्छित्तिविच्छुरः ।
पार्श्ववर्तिद्विपासीनैर्धूतपिच्छो मुहुर्नृपैः ॥१२२॥

प्रौढवेषमनोहारी मुक्ताहारैरलंकृतः ।
चर्ममण्डलविन्यस्तबाहुर्बाहुजवन्दितः ॥१२३॥

समुल्लासितनिस्त्रिंशैरुल्ललद्बर्हशेखरैः ।
वीरसाधुभिराबद्धं प्रेक्षमाणो मृषामृधम् ॥१२४॥

एकलिंगक्षितीन्द्रोऽपि समुत्थाय निजासनात् ।
अनुद्रुतः स्वसामन्तैर्ययावीश्वरसम्मुखम् ॥१२५॥

आस्थानमण्डपद्वारमुपेत्य विनयान्वितः ।
मिमेल कच्छवाहेन प्रचेता इव वज्रिणा ॥१२६॥

ज्वलिताग्नेयचूर्णानि दीप्तवर्त्तिनपाततः ।
तत्क्षणं दध्वनुर्धीरं तोपयन्त्राणि नैकशः ॥१२७॥

उपगम्य मिथः प्रह्वौ दृग्भ्यां संयोज्य तौ दृशौ ।
उपनीय करौ प्रेम्णा सस्वजाते मुहुर्मुहुः ॥१२८॥

राणेन्द्रः स्वाग्रतः कृत्वा कच्छवाहबिडौजसम् ।
प्रवेशयामास सदः स्नेहनिर्भरमानसः ॥१२९॥

उच्चैस्तस्य सदःसौधं सदुपस्करसज्जितम् ।
विशतिस्म प्रतापः प्राक्तदनन्तरमीश्वरः ॥१३०॥

शनैः शनैः सह प्राप्य तुङ्गमास्थानमण्डपम् ।
सिंहासनं समध्यासामासतुस्तौ नृपावुभौ ॥१३१॥

शुभालापेऽथ विरते मेवाटपरमेश्वरः ।
कोटेन्द्रप्रेरितः प्राह ढुण्ढारपरमेश्वरम् ॥१३२॥

विज्ञाप्यमद्य रहसि किमप्यस्ति भवत्सु मे ।
तेनान्तश्चलतु भवान्मन्त्रः स्याद्यत्र नौ सुखम् ॥१३३॥

इत्युक्त्वा स समुत्थातुं यावदिच्छति संसदि ।
तावद्विज्ञातहार्देन प्रत्यूचे श्रीश्वरेण सः ॥१३४॥

उक्तं वा श्रीमता नोक्तं सर्वं तत्स्वीकृतं मया ।
मत्पित्रा दत्तमेकस्य बुन्दीराज्यं विना प्रभो ॥१३५॥

अस्माभी राज्यमन्यस्य प्रसह्य जगृहे यथा ।
तदीयोऽपि तथाऽस्माकं गृह्णातु बलवान्यदि ॥१३६॥

न कस्यापि पितुः पृथ्वी पृथिवीशक्र ! दृश्यते ।
समामनन्ति वीरस्य केवलं वशवर्तिनीम् ॥१३७॥

शक्तोऽद्य यदि कोटेन्द्रो बुन्दीं गृह्णातु युद्ध्यतः ।
कोऽर्थः प्रश्ने समर्थस्य न तावदिति विद्महे ॥ ३८॥

तदानीं स गतः क्वाभूद्यदा बुन्दी जिता बलात् ।
कच्छैस्तदर्थमुप्तं स्वं शिरो बीजमिव क्षितौ ॥१३९॥

अगल्भमैश्वरं वाक्यं श्रुत्वा राणाह्वयो नृपः ।
पश्यन् कोटेन्द्रवदनं ह्रिया मौनमपद्यत ॥१४०॥

ततो वार्त्तान्तरव्याजात्तत्सर्वं निन्हुते स्म सः ।
मानहानिं तु निन्होतुं नाशकन्नमदाकृतिः ॥१४१॥

नाज्ञापयत्स सीसोदो वैमनस्यं समुत्थितम् ।
अवहित्थं दधौ किन्तु व्याहरन् कृत्रिमस्मितम् ॥१४२॥

इत्यन्योन्यमुभौ तत्र दर्शयन्तौ बहिर्मुदम् ।
विप्रतिपत्तिमात्मीयां व्यंजयामासतुर्न हि ॥१४३॥

उपायनं यथारीत्या राणाकेन निवेदितम् ।
दृग्भङ्गिदानमात्रेण जग्राह कमठेश्वरः ॥१४४॥

एकलिङ्गक्षितिपतिर्भव्यं ताम्बूलभाजनम् ।
ईश्वरस्य पुरो न्यस्य गृह्यतामित्यवोचत ॥१४५॥

अथेश्वरोऽपि ताम्बूलमुपादाय शुचिस्मितः ।
राणेन्द्रं सम्यगामन्त्र्य गतः सद्म यथागतम् ॥१४६॥

इति संगम्य राणेन्द्रः श्रीश्वरेण गतस्मयः ।
दधावमर्षविक्षोभभयाश्चर्यपरम्पराम् ॥१४७॥

दर्शयन्बहिरामोदं द्वेषमन्तर्विवर्द्धयन् ।
विचित्रभावसंकीर्णस्वान्तो राणाजिदाबभौ ॥१४८॥

हन्त कोटेन्द्रकौटिल्यं वितर्क्य कमठाधिपः ।
चिरं विचिन्तयामास स्वयमित्थमनेकशः ॥१४९॥

अहो असौ स्वयं लावः स्पर्द्धते किं गरुत्मता ।
जम्बुकः सिंहमुज्जृम्भं किमाक्रमितुमिच्छति ॥१५०॥

शशः स्पृशन्पदा गण्डं वेतण्डस्य विभेति नो ।
इत्येवं बहुधामृश्य चुकोप भृशमीश्वरः ॥१५१॥

गच्छन् विवृत्य कच्छेन्द्रः षष्टिसाहस्रसप्तिभिः ।
सत्वरं लुण्ठनोत्कण्ठी कोटाख्यं पुटभेदनम् ॥१५२॥

त्वरितं त्वरितंत्रज्ञश्छन्नमन्त्रः स कच्छपः ।
प्रापत्कोटापुरं रुष्टो विप्रकृष्टः किमश्विनाम् ॥१५३॥

उष्ट्रपृष्ठोढचण्डास्त्रस्तुष्टपुष्टभटोद्भटः ।
कुण्ठितारिर्लुलुण्ठ द्राक्कमठो हठनिष्ठुरः ॥१५४॥

कोटेन्द्रं दुर्जनं नाम स्वभावादपि दुर्जनम् ।
निहन्तुं चकमे राजा महानासीत्तदा रणः ॥१५५॥

निशम्य युद्धवृत्तान्तं राणाकः सन्नसंमदः ।
आजगाम स्वयं कच्छहड्डयोः संधिकाम्यया ॥१५६॥

सहसैव तयोर्भूत्वा सेनयोरन्तरे द्वयोः ।
क्षम्यतां नैष हन्तव्यो न्यषेधीदित्थमीश्वरम् ॥१५७॥

अरे दूरं ! पलायस्व प्राणितुं यदि ते स्पृहा ।
भर्त्सयन्निति राणाको दुर्जनं तमनीनमत् ॥१५८॥

इत्येवमीश्वरीसिंहग्रस्तं निःसार्य दुर्जनम् ।
य॰॰य नरस्तमापृच्छ्य राणाकोऽपि स्वपत्तनम् ॥१५९॥

ततः करमुपादाय कोटापत्तनतः प्रभुः ।
राणेन्द्रस्यानुरोधेन दुर्जनं न जघान तम् ॥१६०॥

अभयोऽपि भयस्पर्शी श्रीश्वरस्य सखाऽजनि ।
किं पुनर्नात्र मित्राणि बुभूषन्ति बलीयसः ॥१६१॥

अनुरागान्मरोरागादभयेन्द्रः क्रमेलकैः ।
मेलनादनयोश्चित्तं प्रीतिवित्तं मिथोऽभवत् ॥१६२॥

तावुभौ हन्त राजानौ लोकस्थितिनिबन्धनौ ।
पुष्पवन्ताविव परं दिदीपाते परस्परम् ॥१६३॥

संगतौ कच्छराष्ट्रोढौ श्रुत्वा दिल्लीपतेरपि ।
आतंकशंकुभिश्चित्तं शतभिन्नमजायत ॥१६४॥

तदा तत्र समेतौ तौ राजानौ राजदोजसौ ।
इन्द्रोपेन्द्राविव चिरं रुचिरां प्रीतिमापतुः ॥१६५॥

अथानुजोऽभयेन्द्रस्य स्मरन्वैरं पुरातनम् ।
खलताख्यलतागुल्मो वखताख्यो ह्हाययौ ॥१६६॥

श्रीसवाईजयेन्द्रेण वीकानेरं रिरक्षुणा ।
आस्कन्दता मरूद्देशान्यः पुराजौ पराजितः ॥१६७॥

ईश्वरीसिंहमाह स्म पुंसा मध्यगतेन सः ।
राजेन्द्र मेरुदेशश्रीलुंण्ठिता सा प्रदीयताम् ॥१६८॥

तदुत्तरमितो दातुं प्रहितः प्रहिताशयः ।
कश्चित्फकीरदासाख्यः श्रीश्वरेण विचक्षणः ॥१६९॥

उक्तिदक्षः स्वपक्षस्थः प्राप्य राष्ट्रोढसंमदम् ।
स तत्र प्राह तंत्रज्ञः श्रीश्वरस्य वचो यथा ॥१७०॥

कियद्गतं धनं ब्रूत भवतां वलशालिनाम् ।
तत्सर्वं वयमद्यैव शक्ताः स्मः पुनरर्पितुम् ॥१७१॥

किन्त्वेकमिन्दुविशदं राजेन्द्रैर्वो यशो हृतम् ।
दातुं नाद्य तदस्माभिरुदारैरपि शक्यते ॥१७२॥

मतंगाः परमोत्तुङ्गास्तरलाश्च तुरङ्गमाः ॥
महार्घमणिमुक्ताढ्याः संपत्तिर्वः पुरोऽर्पिता ॥१७३॥

यत्र यत्र जिघृक्षा वस्तत्तद्वस्तु प्रगृह्यताम् ।
मा शोचत चलां लक्ष्मीं यशोलुब्धा हि मानिनः ॥१७४॥

युद्धं कृतं जयेन्द्रैः स्वयशोर्थं वित्त वित्तमाः ! ।
वित्तमात्राय वो बुद्धिः प्रधने जातु यातु मा ॥१७५॥

इत्युक्तिनामितारातिः स्वपक्षोत्कर्षकारकः ।
निर्व्यूढस्वामिकार्यत्वात् सुप्रसन्नमुखच्छविः ॥१७६॥

आदौ युतः फकारेण कीरदासो महामतिः ।
प्रणम्य पुनराचख्यौ प्रभोरग्रे समग्रशः ॥१७७॥

षष्टिसाहस्रसंख्याकैर्वाढव्यानद्धकंकटैः ।
ऐश्वरं तद्बलं वल्गज्जगर्ज हयसादिभिः ॥१७८॥

प्रबलेन बलेनोच्चैर्भीषयन् वखतं नृप ।
आत्मभावेन भावेन युयुजेऽभयवर्मणा ॥१७६॥

अर्द्ध राज्यर्द्धिभाजं तमुग्रं भ्रातरमात्मनः ।
शंकते सोऽभयेन्द्रोऽपि स्वर्भानुमिव भानुमान् ॥१८०॥

अभूत्कमठराष्ट्रोढराजयोः प्रीतिसंगमः ।
भीतिमेकाकिभावेन बभार बखतस्तदा ॥१८१॥

ऐश्वरं बलमुद्वेलं समुद्रमिव दुस्तरम् ।
न सेहे द्रष्टुमपि स तीक्ष्णांशुमिव कौशिकः ॥१८२॥

संगतौ कच्छराष्ट्रोढौ हन्यातां जातु मां रुषा ।
इति संशयमापन्नो वखतो द्राक्पलायत ॥१८३॥

श्रीश्वरेन्द्रे तडिन्मौर्वीधनुर्विस्फार्य गर्जति ।
जनेषु जीवनेच्छुर्ना नारभेत नमांसि कः ॥१८४॥

आस्फोटयत्सु दोर्दण्डानीश्वरस्य पदातिषु ।
आशंक्य वखतो भीरुर्ययौ नागपुरं निजम् ॥१८५॥

इति राष्ट्रभृतां मध्ये जैत्रपत्रं पितेव सः ।
अर्जयित्वा यश शुभ्रं गोपयामास भूपतीन् ॥१८६॥

ईश्वरः पृथिवीशानामीश्वरः कमठेश्वरः ।
निग्रहानुग्रहं कर्त्तुं स साक्षादीश्वरः स्वयम् ॥१८७॥

शेषराजाद्वराहाच्च गां दधावधिकं स यत् ।
ततः प्रख्यातिमापेदे कमठेन्द्र इति स्फुटम ॥१८८॥

विरराज प्रकृतितः कृतितोऽपि मनोहरः ।
यशःश्रिया लसितया सितया कमठोद्वहः ॥१८९॥

स दिदीपे नरमणी रमणीगणमन्मथ ।
क्रतुप्रचरणेपूच्चैर्दत्त. किं च रणेष्वपि ॥१९०॥

दुधाव सुहितः स्वेषां परं वसुहितः परान् ।
सहितो मुख्यसामन्तै. स हि तोषितसैनिकः ॥१९१॥

क्षत्रव्यापाररुचिरो रुचिरोचितविग्रहः ।
कदापि नैव कलितः कलितः किल पार्थिवः ॥१९२॥

इति जित्वा दिशः सर्वा गर्वाध्मातमहाभुजः ।
स विवेश विशेषश्रीर्जैवाज्जयपुरं जयी ॥१६३॥

देव्यः श्रीकच्छदेवस्य नवासन्नवयौवनाः ।
ज्येष्ठा राणावती तत्र सलूमरसुता श्रुता ॥१६४॥

द्वितीया यादवी नाम सा करोलीपतेः सुता ।
तृतीया वीरपुरिका तुर्या कापि वनेडजा ॥१६५॥

अन्या बीकावती धन्या किं च शक्तावती परा ।
कांचित् सुजाणसीगोत्रा तथान्या गोडजाऽप्यभूत् ॥१६६॥

पुत्रौ कल्किप्रसादौ द्वौ बालकावेव तौ मृतौ ।
दुहिता दीपकुँवरा दीप्त्या दीपशिखोपमा ॥१६७॥

सा दत्ता समलंकृत्य श्रीश्वरेणेश्वरर्द्धिना ।
राष्ट्रोढ़रामसिंहाय योधपत्तनभूभुजे ॥१६८॥

अभये स्वर्गते रामो बखतेन निराकृतः ।
वसञ्जयपुरे हन्त कालधर्ममुपेयिवान् ॥१६९॥

सुखेन वर्तमानोऽपि दारैर्नवभिरीश्वरः ।
चकमे हरगोविन्ददुहितारं प्रसह्य हा ॥२००॥

तदर्थमेव निरमायि स्वसूचीसौध उच्चकैः ।
द्युव्यधत्तमूर्द्धा यो यौगिकीं ख्यातिमृच्छति ॥२०१॥

तमारूढ कदाप्येनां पश्यन्तीं स्वकुचौ रहः ।
दृष्ट्वा संबोधयन्नुच्चैरार्यामेतां पपाठ सः ॥२०२॥

अचिभ्रुवं नततया तुङ्गतया निस्तलौ स्तनौ सुतनोः ।
चिकुरा त्रिचक्किलरुचिभिर्व्यतिराते दीप्तिमपरिमिताम् ॥२०३॥

वाले द्विफाललम्बितचिकुरदशाचारुचूचुकौ स्वकुचौ ।
उत्फणफणीन्द्रपुच्छच्छन्नमुखाविव निबोध निधिकुम्भौ ॥२०४॥

क्रुद्धोऽजनि तदारभ्य श्रीश्वरे राज्ञि तत्पिता ।
माधवेन्द्रेण निभृतं चक्रे सन्धिमिति श्रुतम् ॥२०५॥

जगत्सिंहेन्द्रराणाको नासीरे न्यस्य माधवम् ।
जयपत्तनमुच्छेत्तुमाययौ दुर्जनोक्तितः ॥२०६॥

तमुपागतमाकर्ण्य प्रतिजेतुमना नृपः ।
बलेन महता साकं निश्चक्राम पुराद्वहिः ॥२०७॥

ईश्वरे चलति प्रौढो जज्ञे निःसाननिस्वनः ।
हृदयानि सपत्नानां ततोऽवेपन्त निर्भरम् ॥२०८॥

तत्ताद्दगुद्धतारोपं विलोक्य बलमैश्वरम् ।
राणेन्द्रस्य मनो मम्लौ धौतान्तः स्रवदम्भसः ॥२०९॥

ततः प्रववृते युद्धं परस्परजिगीषया ।
शीर्पोदकच्छवाहानां सिंहनादान्विमुञ्चताम् ॥२१०॥

संग्रामचत्वरे रक्तशीकरै रूषितोदरे ।
क्षुरप्रैः क्षत्रवीराणां प्राणद्यूतमवर्तत ॥२११॥

प्रारम्भ एव युद्धस्य भीतः शीर्पोदनायकः ।
निन्दन् दुर्जनसिंहेन्द्रं पलायत यथागतम् ॥२१२

किमागतं किमारब्धं किं मतं किं प्रतिश्रुतम् ।
इत्थमीश्वरवाद्यानि दध्वनुस्तत्पलायने ॥२१३॥

योद्धुं यदा यदा यातः शीर्पोदो माधवान्वितः ।
प्रसह्य द्रावयामास श्रीश्वरेन्द्रस्तदा तदा ॥२१४॥

पतृस्वस्रीयमाधातुं कच्छनीवृति माधवम् ।
मल्लाररावबीरेण युयुजे मेदपाटपः ॥२१५॥

जयपत्तनसाम्राज्ये स्थापयिष्यामि माधवम् ।
इति मल्लाररावोऽपि बलवानन्वमोदत ॥ १६॥

ईश्वरीसिंहमल्लाररावयोर्बद्धवैरयोः ।
बगरूप्रभृतिष्वाजिः स्थलेष्वसकृदैधत ॥२१७॥

मंत्रिभी राजमल्लाद्यै र्दृष्टराजेन्द्रदृष्टिभिः ।
ईश्वरो गुप्तपर्यन्तस्तृणवन्मनुते स्म तम् ॥२१८॥

कदाचिदथ राजानं दिल्लीदेवो मुहम्मदः ।
युद्धाय प्रेषयामास शतलंज-नदीं प्रति ॥२१९॥

साहाय्येऽयुङ्क्त नव्वावं महाबलपराक्रमम् ।
ईश्वरं सोऽप्यनुययौ पवमान इवानलम् ॥२२०॥

ईश्वरीसिंहनव्वाबौ विशिष्य मिलितौ मिथः ।
वभतुर्वासववलौ ऐकमत्यमिवास्थितौ ॥२२१॥

प्रतस्थे वलमादाय नृपो नव्वाबसंगतः ।
प्रकम्पनप्रकम्पेण केतुना खं खनन्निव ॥२२३॥

हयव्यूहखुरोदञ्चद्धूलीधोरणिधूसरम् ।
रुद्धार्कं व्योम विभ्राजे यद्वन्मुदिरमेदुरम् ॥२२४॥

वहन्तः प्रस्तरकलामधिस्कन्धं परेशयाः ।
मूर्तिमन्त इवोत्साहा कच्छवाहास्तमन्वयुः ॥२२५॥

अथ युद्धविधिर्वृत्तः शतलंजतटे महान् ।
ईश्वरस्य समद्वन्द्वो मुहम्मदविरोधिभिः ॥२२६॥

संपराये जितप्राये राज्ञा हन्त चराननात् ।
अश्रावि माधवोऽभ्येति जवाज्जयपुरीमिति ॥२२७॥

जन्यं प्रोज्झ्य जितप्रायं न्यवर्तत पुरं नृपः ।
स्वकार्याण्यनु कार्याणि भवन्ति व्यवहारिणाम् ॥२२८॥

वेष्टितः पंचसाहस्रैर्घोटकैः कमठो निशि ।
पन्थानं हा विसस्मार भ्रमन्नासीदितस्ततः ॥२२९॥

आलो नाम तदा जट्टो भ्रमन्तं पथि पार्थिवम् ।
अम्वावतीपरिसरमानिनाय कथंचन ॥२३०॥

विशन्नम्बावतीदुर्गं विशिष्य श्रान्तवाहनः ।
मल्लाररावमायान्तं शुश्राव पुनरीश्वरः ॥२३१॥

अविश्रम्यैव मल्लारमभ्यवर्तत साहसी ।
रिपौ वल्गति वीरेन्द्रा विश्राम्यन्ति न जात्वपि ॥२३२॥

श्रान्तोऽप्युद्वेल्लदुत्साहो नद्धासिर्नद्धकंकटः ।
आप मानी यथा श्येनः स मल्लाराजिघृक्षया ॥२३३॥

अथ प्रचेलुरन्योन्यं तरलास्तरवारयः ।
वालार्ककरसंपर्कसहस्रगुणरोचिषः ॥२३४॥

अधिपृष्ठमभेद्येन संवीतो वाढचर्मणा ।
कच्छो मल्लारसैन्याब्धिं जातभङ्गमगाहत ॥२३५।

सरम्भमैश्वरं वीक्ष्य मल्लारो भयविह्वलः ।
अनीकेनावशिष्टेन पलायत जिजीविषुः ॥२३६॥

लुलोकिपालोलजनं समन्ततः
समन्ततः स्फारगवाक्षतोरणम् ।
विद्राव्य मल्लारमुदारविक्रमः
क्रमेण पेदे जयपत्तनं नृपः ॥२३७॥

कथानिबन्धानवलोक्य नैकशः
पुनः समापृच्छ्य पुराविदो विदः ।
यथायथं श्रीश्वरसिंहभूपते-
र्दिग्जैत्रयात्राक्रम एष वर्णितः ॥२३८॥

स राजमल्लादिषु मन्त्रिचुञ्चुषु
यथाक्रमं कालगतिं गतेषु ।
व्यधत्त धीमन्तममात्यमुच्चकै-
र्धुरन्धरं केशवदासमीश्वरः ॥२३६॥

मल्लाररावो बत माधवोदितो
बिभेद सामन्तसमाजमैश्वरम् ।
स्यादन्यथा भाविनि हन्त भाविनी
दुर्भेद्यमप्यत्र सुभेद्यमंजसा ॥२४०॥

निरन्तरं माधवगूढवेतनैः
समेत्य सर्वैरपि राजपूरुषैः ।
राज्ञः कथंचिद् विमनस्कता शनै-
रुत्पादिता केशवदासमंत्रिणि ॥२४१॥

अहो अयं दास्यति माधवाय मा-
मिति भ्रमं तत्र दधौ सुमंत्रिणि ।
आसन्नपाता भवितव्यताबला-
द्धितं विपर्येण विदोऽपि मन्वते ॥२४२॥

अथो तमाहूय स पक्वकल्मषो
विलुप्तबुद्धिः प्रतिकूलदैवतः ।
चेदस्मदीयोऽसि तदेदमापिबे-
त्युच्चार्य तस्मै गरलं हहा ददौ ॥२४३॥

स्वय समर्थोऽपि स साधुरैश्वरी-
माज्ञामुरीकृत्य पपौ तदामृतम् ।
साध्वीमसाध्वीमपि वा गिरं प्रभोः
कुलप्रसूता न विलंघयन्ति हि ॥२४४॥

स मल्लनिघ्नः स्वसमाजवंचितो
विपाद्य भूजानिरमात्यतल्लजम् ।
न केवलं राजपदे निराशतां
दधौ विशेषेण निजेऽपि जीविते ॥२४५॥

निशम्य वृत्तान्तमिति प्रहर्षितो
मल्लारराव: पुनरप्यपद्यत ।
प्रचण्डमुच्छृङ्खलसैन्यचंक्रमो
लुलुण्ठ दुण्ढारमनायकं यथा ॥२४६॥

मल्लाररावस्य निशम्य तादृशं
व्यतिक्रमं क्रुद्धमना: पुनः पुनः ।
सेनापतीन्माधवपक्षतंत्रितान्
युद्ध्यध्वमित्याह स माधवाग्रजः ॥२४७॥

सर्वेऽपि सेनापतय. प्रभूदितं
शृण्वन्त आरादपि नैव शुश्रुवु ।
पृष्ठं प्रदर्श्य स्थितवत्यहो विधौ
पुंस स्वपक्षोऽपि विपक्षतामियात् ॥२४८॥

आसीद्द्विजः कश्चिदमुष्य पार्श्वगः
स द्रागमुं प्राह पुर. कृताञ्जलि' ।
राजन्नृते मामिह कोऽपि नास्ति वः
सर्वेऽधुना माधवमाश्रिता इति ॥२४९॥

निशम्य तादृक्स्वमनिष्टमुच्चकै-
र्धीरोऽप्यकस्मात्स्फुटिताम्वरः शुचा ।
रुरोद हा हन्त कुतो गतोऽसि भो
हित्वा सखे केशवदास मामिह ॥२५०॥

विलप्य कष्टं वहुधाभिचारवि-
दावाह्य कृत्या कलशे निशम्य सः ।

अमुं बले न्यस्य रिपोरुपेहि मा-
मित्यन्वशासद् द्विजमन्तिकस्थम् ॥२५१॥

द्विजस्तमादाय घटं नृपोदितः
कृत्यासमावेशवशेन दुर्वहम् ।
सैन्ये निधातुं द्विषतामशक्नुवन्
न्यधत्त भीतः पुरगोपुरान्तरे ॥२५२॥

राजा पुनर्व्यर्थमवेत्य कार्मणं
मल्लारमाकर्ण्य पुरोपकण्ठगम् ।
निपीय शिश्ये विषमुग्रमीश्वरः
प्रख्यापयन्नीश्वरतामिवात्मनि ॥२५३॥

निपीय हालाहलमित्थमुच्चकैः
समासजन्माधववर्मणि श्रियम् ।
दुर्गाधिपत्वेन विशिष्य विश्रुतः
स ईश्वरः प्राणितुमप्यनीश्वरः ॥२५४॥

सप्तैव वर्षाणि विमर्शकोविदो
द्विषष्टिमह्नामवनीमवत्सुखम् ।
अब्देऽद्रिखाष्टेन्दुमितेऽथ कृष्णगाम्
स द्वादशीं प्राप्य विषेण संस्थितः ॥२५५॥

हरादिगोविन्दमुखाः कुमन्त्रिणः
समेत्य दृष्ट्वा नृपमस्तजीवनम् ।
विधाय गुप्तिं नगरस्य संगताः
कथं दहेमैनमिति व्यचिन्तयन् ॥२५६॥

मल्लाररावेण निरुद्धनिर्गमाः
पुनः प्रजाक्षोभविशुष्यदाननाः ।
दाहक्रियां तालकटोररोधसि
प्रभोरकुर्वन्नुपराजमंदिरम् ॥२५७॥

अद्यापि यच्छ्रित्रिरजस्रदीपक-
ज्योतिः स्वभाग्याय जनैः समर्च्यते ।
गतेषु निष्ठामपि सिद्धिशालिषु
सिद्धिर्ह्यमीषामधिचैत्यमेधते ॥२५८॥

मल्लारकोऽप्यवगतक्षितिपप्रवृत्ति-
भूयो भिया मनसि संशयमादधानः ।
सेनां शनैरहह मौक्तिकदुर्गतः स्वा-
मुत्थाप्य पत्तनलुलुण्ठिषया प्रपेदे ॥२५६॥

आगच्छतोऽस्य पुरगोपुरमश्वटापैः
पुस्फोट हन्त स घटः कमठप्रणीतः ।
तत्कालमेव सहसा जगदण्डभेदी
वध्नीत गृह्णत हत ध्वनिरित्युदस्थात् ॥२६०॥

ब्रह्माण्डसम्पुटभिदा कलशादकस्मा-
दुद्गच्छता धृतिमुषा ध्वनिना विचेताः ।
मल्लार आः किमिदमित्यवलोकमानो
भीतः पलायत मिथो हतनैजसैन्यः ॥२६१ ।

मुद्राविमर्दरभसेन सहुंकृतेन
केनापि कुम्भजनुपा महसा प्रसह्य ।
आचम्य चण्डचरितेन महागभीरो
मल्लाररावधृतिसिन्धुरकारि रिक्तः ॥२६२॥

कृत्याचमत्कृतिबलेन मिथस्तदानीम्
खड्गागितान्यधिसपत्नवलं तृणानि ।
वज्रायितानि शकलान्यपि मार्तिकानि
नो शक्यते कलयितुं कमठाभिचारः ॥२६३॥

एवं सति द्रुतमुदित्वरसम्मदोऽसौ
स्वैरेत्य रामपुरतः खलु माधवो यत् ।
राजा वभूव जयपत्तनसम्पदस्त-
न्मार्जारभाग्यविभवादिह शिक्यपातः ॥२६४॥

अब्देऽद्रिविष्णुपदनागविधौ सहस्ये
पक्षे पुनर्धवलरोचिषि रोचमानः ।
श्रीमाधवो मनुतिथावतिथिस्तुतार्थो
राज्याभिषेकमहमन्वभवन्महान्तम् ॥२६५॥

श्रीमाधवस्य तुरगैर्द्रुतमागतस्य
यज्जायते स्म जयपत्तनराज्यलाभः

हा हन्त सोऽयमभवद्वृषदंशकस्य
भाग्यप्रभाववशतः खलु शिक्यपातः ॥२६६॥

ते ते गदाधरमुखाः खलु पल्लिवालाः
औदुम्बरा अपि सदाशिवभट्टमुख्याः ।
प्राक्सेविताङ्घ्रिमधुना फतहानदत्त-
मन्वीयुरेनमृभुवृत्तमिव ।द्विजौघाः ॥२६७॥

दिल्लीभुजाप्यरिभिरुद्विजितेन नत्वा
श्रीमाधवक्षितिभृतेऽधिगृहं स्थिताय ।
प्रत्यर्पि हन्त रणितभ्रमरः स दुर्गः
प्रत्यर्जयन्ति वसु भाग्यवतां हि भूताः ॥२६८॥

तं प्राप्य दुर्गमतिदुर्गममुच्चसालं
श्रीशालि माधवपुरं निरमापि तेन ।
तैस्तैश्चतुष्पटिमुखैर्विशिखाविशेषै-
र्यत् प्रायशोऽनुकुरुते जयपत्तनर्द्धिम् ॥२६९॥

जीवातुर्जन्मभाजां कमठकुलभुवां क्षत्रियाणां प्रणेता
नाथोऽनाथव्रजानां सुगुणमणिखनिर्भाग्यभूर्भूसुराणाम् ।
संहर्त्ता दुर्जनानां कविकलितवसुर्वासवस्पर्द्धिसारः
स्फारश्रीर्माधवः क्ष्मां शशिविशदयशःपूरिताशः शशास ॥२७०॥

सग्रामामन्दमाद्यद्विमतमदगिरिध्वंसदम्भोलिकेलि-
र्लोलल्लालित्यलीलालहरिविलुलितोल्लासिकन्दर्पदर्पः ।
तेजःप्राग्भारखर्वीकृतनिखिलनृपश्रेणिरुर्वीं स गुर्वीम्
धर्मात्मा माधवश्रीः सुचिरमिह दधौ माधवद्माधवेन्द्रः ॥२७१॥

श्रीमत्कुन्दननन्दनवैद्यश्रीकृष्णरामकविकलिते ।
काव्येऽत्र कच्छवंशे पफाण पूर्तिं त्रयोदशः सर्गः ॥२७२॥



॥श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीहयाननो जयति॥ विद्युद्द्युतिसमानमंशुमहसा पीतांबरोद्योतिनीला
वण्यैकजलजातधाम सजलनीलांबोदवद्धामभजे॥ श्रीलंभिकजयो चितानवमयामीलं सलीलं सुंदर
नीलं शङ्खचिजदसारिजलदश्रीलघिशीलं महः॥१॥ अस्तु प्रस्तुतवस्तुनः स्तुतिमतीसंपूर्तीर
तिच्छिदो दैत्यारेरनुकंपया तिविषमा विघ्नावलीकंपतां॥ नीचीनूतसुधासमुद्रविलसद्धीचीभि
रुच्चैस्तरां कंचिच्चारुरसं सुधीः सपदि नव्यासमाचामतु॥२॥ प्रशस्ता प्रस्तावप्रसृतरसयुक्ता गु
णवतीदयानालेकारप्रकरमपिनानाविधमियं॥ सन्नीतिः सज्जातिः सरसपदरीति· कुलजिता प्र
मोदाय स्तात्तेसवद्गुनवकांतेव कविता॥३॥ प्रकुर्वती जातु न दृक्प्रसंगं विनक्ति विश्रामपदा श्रेनृ
हा॥ सालंकृतिः किंच सरीतिरेव शशावलीनातिकुलांगनेवा॥४॥ अस्थानविन्यस्तपदापि गादसे
श्रयहीनाप्यनलंकृतापि॥ अयुक्तवाक्यापि मतानवोढनारीव विज्ञैः कविता रसाढ्या॥५॥ गुणैर्वि
युक्ता अपि काव्यकंजः सतां मुखाद्गुल्फमिगाः स्वदंते॥ क्षारा· समुद्रस्य पनेयपाथो निपीय नूकामधुरा

ता किं ते प्रतिज्ञा क्विज निरचितो वीरसार्धं विकत्थ्यः॥२३॥ इत्थं श्रीश्वरसिंहनाम नृपतेर्नी
सीरधीरध्वनिक्षोणघातगभीरढुंढुभिमहागर्जारवैस्तर्जिताः॥ निर्धूताखिलधैर्यसंपदद्र
मेराणकसैन्यवजाः कत्यंतस्यनिनिंदुरागतभयाः ता क्षात्दरोनेतथा॥२४॥ वैरीश्वरसिंह
नामनिमदीपालेकजानां निधे संपूर्णोदितमंडलद्युतिधरे विद्योतमाने भुवि॥ भ्रातः सर्वत
एव पर्वतसमा मातंगवाजिव्रजा· सेनासागरसांद्रवीचिसदृशा दृष्टिं परां देधिरे॥२५॥ सेना
सागरपूरपूरितधराचक्रे समंतादहो वेगादीश्वरसिंघभूपतिकलानाथे गृहीतोदये॥ स
द्यः संप्रति सर्वतः समकुचत्सर्यस्तपत्रवजो राणकस्य सदुर्यशोमधुकरः सैन्योघपद्माक
रः॥२६॥ आयातः पुरुहूतपथधरणेवीराग्रणीरीश्वर· जेयद्वारणवारिदे हयबलस्फीचंडपू
र्वानिलैः॥ धारा शक्तिसमूहदीप्तिविसरैः शौर्योष्मविस्तारणैः सद्राणकल्लुत्यदर्पदहनः शां
तो भवत्तावता॥२७॥ इति श्रीमदीश्वरविलासे कविश्रीकृष्णकृते राणपराभवो नाम षष्ठसर्गः

'ईश्वरविलास काव्य'की मूल प्राचीन प्रतिके आद्यन्त पृष्ठोंकी प्रतिकृति

श्री .

तैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभ-देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिविरचितम्

ईश्वरविलासमहाकाव्यम्



प्रथम. सर्ग.

विद्युद्वल्लिसमानमञ्जुमहसा पीताम्बरोद्द्योतिनीं
लावण्यैकललामधाम ललनां काञ्चिद्दधानं भजे ।
ह्रीलम्भि व्रजयोषितां भवभयाऽऽभीलं सलीलं हर-
न्नीलं प्रावृषिजप्रसारिजलदश्रीलङ्घिशीलं महः ॥ १ ॥

महन्मनोमन्दिरमध्यवासिनीं प्रणम्य वाणीं प्रतिभाविभासिनीम् ।
समुल्लसत्सूक्तिसुधाविकासिनीं तनोमि तावद्विमलां विलासिनीम् ।।१।।

विद्युद्वल्ल्यास्तुल्येन सुन्दरेण निजतेजसा पीताम्बरम् (श्रीकृष्णस्य पीत पटम्) भासयन्ती सौन्दर्यस्य एकस्थानभूता काचित्सुन्दरीम् (श्रीराधाम्) धारयत्, व्रजस्त्रीणा (रतिसचारिभूत) लज्जाजनकम्, भक्ताना भवभय महत् कष्ट च ('स्यात् कष्ट कृच्छ्रमाभीलम्',) लीलयैव हरत् । अथवा भक्तानां सासारिकभयरूप कष्ट हरत् । वर्षाकालिकस्य सर्वत प्रसरणशीलस्य जल-दस्य शोभाविडम्बिस्वभाव नील किञ्चिन्मह तेज (श्रीकृष्णम्) भजे । विद्युद् यथा मेघस्य स्वभावादेव सहचारिणी तथा राधारूपा सेय विद्युदपि श्रीकृष्णरूपजलदस्य सदैव सहवासिनी । तडित् पीतम् अम्बरम् (आकाशम्) उद्द्योतयति तच्छीला । इय श्रीराधिकाऽपि श्रीकृष्णेन धार्यमाणस्य पीतपटस्य उद्द्योतिनी, इति शब्दशक्त्युत्थध्वने सहकार ।।१।।

अस्तु प्रस्तुतवस्तुनः स्तुतिकरी संपूर्तिरार्तिच्छिदो
दैत्यारेरनुकम्पयाऽतिविषमा विघ्नावली कम्पताम्।
नीचीभूतसुधासमुद्रविलसद्वीचीभिरुच्चैस्तरां
कञ्चिच्चारुरसं सुधीः सपदि मद्वाचाभिराचामतु ॥ २ ॥

आर्तिनाशकस्य दैत्यारेः (श्रीकृष्णस्य) अनुकम्पया प्रस्तुतस्य वस्तुनः (प्रक्रान्तस्य ऐतिहासिककथावस्तुन) स्तुतिकरी (सहृदयैः प्रशसनीया) सपूर्तिः अस्तु । अतिविकटा विघ्नपरम्परा प्रतिहता भवतु । तथा च प्रतिबन्धकानां विघ्नाना नाशे सति प्रशसनीया ग्रन्थसमाप्तिरनायासमेव भवेदिति सूचितम् । नीचीभूता (तिरस्कृता) सुधासमुद्रस्य विलसन्त्यो वीचयो याभ्यः (यासा वाणीना समक्षे सुधासमुद्रस्य वीचयोऽपि नीचीभूता प्रतीयन्ते इति भाव) ईदृशीभिः मम वाचाभिः वाणीभि (भागुरेर्मतेन वाक्शव्दात् आप्) सुधीः सुमतिशाली सहृदयः कमपि रमणीय रसं समास्वादयतु ॥२॥

प्रशस्ता प्रस्तावप्रसृतरसयुक्ता गुणवती
दधानाऽलंकारप्रकरमपि नानाविधमियम् ।
सभीतिः सद्गीतिः सरसपदरीतिः सुललिता
प्रमोदाय स्वान्ते भवतु नवकान्तेव कविता ॥ ३ ॥

वीरचरित्ररसिकै सहृदयै श्लाघिता, प्रकरणानुगतेन रसेन (वीर-शृङ्गार-अद्भुतादिना) युक्ता, ओज प्रसादादिगुणवती, नानाविधम् उपमा-रूपकादिकम् अलकारसमूहमपि धारयन्ती, शत्रुनिष्ठभयानकरसमहिम्ना भीतिशालिनी, छन्दोमाधुर्यात् गीतिस्वरमनोहरा, सरसपदा सरसपदशालिनी वैदर्भी-गौडीयाप्रभृतिरीति (संघटना) यस्यामीदृशी, इयं सुललिता कविता (उपमेयभूता)—निर्मलशीलकारणात् चरित्रपरीक्षकैः श्लाघिता, प्रसङ्गप्रचलितेन रसेन आनन्देन युक्ता, चातुर्यसौन्दर्यादिगुणवती, विविधं हार-ताटङ्कादिकं भूपणसमूहमपि धारयन्ती, नवोढास्वभावाद् सभीतिर्भयशीला, सरसगानचतुरा, सुभग-चरणन्यासशालिनी नवीना सुन्दरीव सहृदयानां मानसे प्रमोदाय भवतु ॥३॥

प्रकुर्वती जातु न वृत्तभङ्गं विभक्तविश्रामपदार्थगूढा ।
सालंकृतिः किञ्च सरीतिरेवं शब्दावली भाति कुलाङ्गनेव ॥ ४ ॥

कदाचिदपि छन्दोभङ्ग न कुर्वाणा, विभक्तानि अर्थबोधे अन्यानपेक्षाणि पदानि यस्याम्, अथवा अर्थबोधसौकर्याय पृथक् पृथक् स्थितानि बोधे श्रम(आयास)रहितानि पदानि यस्या सा । अर्थगाम्भीर्यवती, उपमारूपकाद्यलकारसहिता, वैदर्भीगौडीयादिरीति(पदसघटना)सहकृता शब्दावली (रमणीयार्थप्रतिपादिका शब्दसहति) उपमेयभूता—सकटदशायामपि चारित्र्यभङ्गं न कुर्वती, विभक्तविश्रामाणि पदानि (चरणन्यासा) यस्या ईदृशी [गमनसमये मध्ये मध्ये किञ्चिद्विश्रामेण सुकुमारताऽतिशयो ध्वन्यते] अर्थगूढा अर्थस्य निजाभिप्रायस्य प्रकाशने नवोढास्वभावात् अतिगुप्ता, भूषणसहिता, मर्यादानुगामिनी कुलाङ्गनेव शोभते । प्रकृतसदर्भे एवविध एव काव्यगुम्फो विलोक्येत सहृदयैरिति गुम्फिष्यमाणकविताया उत्कर्षो ध्वन्यते ॥४॥

अस्थानविन्यस्तपदापि गाढं संश्लेषहीनाप्यनलंकृतापि ।
अयुक्तवाक्यापि मता नवोढ-नारीव विज्ञैः कविता रसार्द्रा ॥ ५ ॥

अस्थाने विन्यस्तानि पदानि (सुप्तिङन्तादीनि) यस्याम्, श्लेषादिशब्दचमत्कारहीना, उपमाद्यर्थालकाररहिता, मिथो वाक्यसगतिरहिताऽपि रसार्द्रा रसै. वीर-शृङ्गारादिभि सरसा कविता—अस्थाने स्थापितचरणा, निर्भरमालिङ्गनरहिता, निराभरणा, मुग्धतया पूर्वापरसबन्धरहितवाक्याऽपि नवोढा नारीव मार्मिकै रसेन आनन्देन निर्भरा समता ॥५॥

गुणैर्वियुक्ता अपि काव्यबन्धाः सतां मुखादुल्लसिताः स्वदन्ते ।
क्षाराः समुद्रस्य घनैर्यथाऽऽपो निपीय मुक्ता मधुरा भवन्ति ॥ ६ ॥

गुणैः कवितागुणै. ओज प्रभृतिभी रहिता अपि कविताागुम्फा. सहृदयानां मुखादुद्गताः सन्तो रोचन्ते । यथा पूर्व मेघैः पीता. ततस्तैर्वर्षिताः समुद्रस्य क्षारा आप. (जलानि) मधुरा भवन्ति ॥६॥

दाह्यः समुद्रो बडवानलस्य जात्या कठोरः कनकाचलोऽपि ।
समन्ततः शून्यमिदं वियत्तत् महन्मनः साम्यमुपैतु केन ॥ ७ ॥

रत्नानामाकरोऽपि समुद्रो बडवानलस्य दाह्य, समुद्रोदरे निरन्तरं वाडवाग्नि प्रज्वलतीति तात्पर्यम्। सुवर्णमयोऽपि सुमेरुर्जन्मनेव (प्रारम्भादेव) कठोर । इदमाकाश सर्वत शून्यम् । तत् तस्मात् महापुरुषाणा मन· केन सह समानता भजतु ? महता मनस कुत्रापि सादृश्य समञ्जसतया न घटते इत्याशय· ॥७॥

तुच्छान्तरं निर्भरपाकशालिगुणोच्चयानुज्ज्वलयन्तमुच्चैः ।
मुहुर्विघातैर्बहुलोहतुण्डं खलं समानं मुशलेन मन्ये ॥ ८ ॥

तुच्छमन्त करण यस्य ईदृशम्, मुहु विघातै· मिथ्यापवादादीनामाघातैः निर्भरं, द्राक्षापाकादि–काव्यप्रौढिशालि–प्रसादमाधुर्यादिकाव्यगुणसमूहान् अतितमाम् उत्कर्षयन्तम् । खल अपकारबुद्धया यथा यथा सज्जनाना निन्दा सर्वत प्रचारयति तथा तथा तत्त्वपरीक्षकाणा सतां मनसि तेषा गुणा एव प्रतिभासन्ते । ततश्च खलोऽय सज्जनाना गुणानेवोज्ज्वलीकरोतीति वक्तुस्तात्पर्यम् । अतएव वहुला· ऊहाः मिथ्याकल्पना यस्मिन् ईदृश तुण्ड मुख यस्य एतादृशं खल मुशलेन समानं मन्ये । मुशलोऽपि तुच्छः तनुः मध्यभागो यस्येदृश· (कुट्टकस्य हस्तेन ग्रहणसौकर्यार्थ तस्य मध्यदेशः कृशो भवति) । तथा मुहु· निजाघातै निर्भर· पाक पक्वता येषाम् ईदृशानां शालीना तण्डुलानां गुणसमूहान् उज्ज्वलता–मार्दवादीन् (तन्तुनिकरान् वा) तुषदूरीकरणेन उज्ज्वलीकरोति । तथा–वहु वहुतरो लोह (कालायसम्) तुण्डे यस्य ईदृशो भवति ॥८॥

तमोहरां रामकथां समन्ताज्ज्योत्स्नामिवोल्लासितवन्तमुच्चैः ।
पीयूषधामानमिवातिशुद्धं वाल्मीकिनामानमृषिं नमामि ॥ ९ ॥

ज्योत्स्नाम् (चन्द्रिकाम्) इव तमोहराम् अन्धकारदूरीकारिणीम् तम (अज्ञानपाप)हारिणी रामकथा समन्तात् प्रसारितवन्तम् । अतएव—

पीयूषधामान चन्द्रमिव स्थितं वाल्मीकिमहर्षि प्रणमामि । पीयूषधामा सकलङ्कोऽपि विलोक्यते किन्तु अयम् (वाल्मीकि) अतिशुद्ध सकलदोषादिरहित इति व्यतिरेक ॥९॥

त्रैलोक्यभूषायितसूक्तिरत्नैर्भृतं महाभारतनामसिन्धुम् ।
यः सृष्टवानद्भुतसर्गलीलं द्वैपायनाख्यं तमृषिं नमामि ॥१०॥

त्रैलोक्यस्य भूषणीभूतै सूक्तिरत्नैर्निर्भर महाभारताख्य समुद्रम् (सागरवत् विस्तृतमगाध चेति तात्पर्यम्) य उत्पादितवान् । अत एवायम् अद्भुता सर्गस्य सृष्टे लीला यस्य ईदृशोऽस्ति । तत एव वेदव्यासाख्यमिम मुनि प्रणमामि । एकेन ऋषिणा रत्नै सभृत. समुद्रश्चुलुकीकरणेन सहृत. अय तु समुद्र सृष्टवानिति अस्य सर्गलीला अद्भुतेति तात्पर्यम् ॥१०॥

श्रीरामायणभारतार्णवयुगप्रव्यक्तसर्गक्रमौ
श्रीवल्मीकजनुःपराशरसुतौ नत्वा कवीनां विधी ।
भूयो नौमि बृहत्कथाकविमहं प्रोद्भाविता यैर्भुवि
त्रिस्रोता इव भारती प्रवहति प्रोद्यत्तरङ्गाकुला ॥११॥

श्रीरामायण भारतसमुद्रश्चेति युगे (युगले) प्रस्फुट सृष्टे क्रमो ययो ईदृशौ । अतएव कवीना विधी विधातृभूतौ । विधे किल युगे युगे सर्गक्रम प्रव्यक्तो भवति । इति युगपदस्वारस्यम् । श्रीवल्मीकजनु (वाल्मीकि) पराशरसुत (व्यास) चेति द्वावपि नत्वा । भूय (पुन. बहुतर वा) बृहत्कथाकविम् (बृहत्कथाग्रन्थनिर्मातार गुणाढ्यकविम्) नौमि । यै (वाल्मीक्यादिभिस्त्रिभि) प्रोद्भाविता भारती (वाणी) प्रचलत्तरङ्गसकुला त्रि.स्रोता: (त्रिपथगा, भागीरथी) इव भुवि प्रवहति ॥११॥

मातर्वाणि कृपातरङ्गिणि सदा जिह्वाग्रजाग्रद्गृहा
यस्य त्वं भवसि स्फुरत्परिमलश्रीकल्पवल्ली परा ।
तत्काव्यैः कविचञ्चरीकपटलीचेतश्चमत्कारिभिः
सौरभ्यैः सकला सभा सुरभिता सौन्दर्ययुक्ता कृता ॥१२॥

दाह्यः समुद्रो वडवानलस्य जात्या कठोरः कनकाचलोऽपि ।
समन्ततः शून्यमिदं वियत्तत् महन्मनः साम्यमुपैतु केन ॥ ७ ॥

रत्नानामाकरोऽपि समुद्रो वडवानलस्य दाह्य, समुद्रोदरे निरन्तरं वाडवाग्नि प्रज्वलतीति तात्पर्यम् । सुवर्णमयोऽपि सुमेरुर्जन्मनैव (प्रारम्भादेव) कठोर । इदमाकाश सर्वत शून्यम् । तत् तस्मात् महापुरुषाणां मनः केन सह समानता भजतु ? महता मनस कुत्रापि सादृश्य समञ्जसतया न घटते इत्याशय ।।७।।

तुच्छान्तरं निर्भरपाकशालिगुणोच्चयानुज्ज्वलयन्तमुच्चैः ।
मुहुर्विघातैर्बहुलोहतुण्डं खलं समानं मुशलेन मन्ये ॥ ८ ॥

तुच्छमन्त करण यस्य ईदृशम्, मुहु विघातैः मिथ्यापवादादीनामाघातै निर्भर, द्राक्षापाकादि–काव्यप्रौढिशालि–प्रसादमाधुर्यादिकाव्यगुणसमूहान् अतितमाम् उत्कर्षयन्तम् । खलः अपकारबुद्ध्या यथा यथा सज्जनाना निन्दा सर्वत. प्रचारयति तथा तथा तत्त्वपरीक्षकाणा सता मनसि तेषा गुणा एव प्रतिभासन्ते । ततश्च खलोऽय सज्जनाना गुणानेवोज्ज्वलीकरोतीति वक्तुस्तात्पर्यम् । अतएव बहुलाः ऊहाः मिथ्याकल्पना यस्मिन् ईदृश तुण्ड मुख यस्य एतादृश खल मुशलेन समानं मन्ये । मुशलोऽपि तुच्छ. तनु. मध्यभागो यस्येदृश (कुट्टकस्य हस्तेन ग्रहणसौकर्यार्थं तस्य मध्यदेशः कृशो भवति) । तथा मुहु निजाघातै. निर्भर. पाक. पक्वता येषाम् ईदृशानां शालीना तण्डुलाना गुणसमूहान् उज्ज्वलता–मार्दवादीन् (तन्तुनिकरान् वा) तुषदूरीकरणेन उज्ज्वलीकरोति । तथा–बहु. बहुतरो लोहः (कालायसम्) तुण्डे यस्य ईदृशो भवति ।।८।।

तमोहरां रामकथां समन्ताज्ज्योत्स्नामिवोल्लासितवन्तमुच्चैः ।
पीयूषधामानमिवातिशुद्धं वाल्मीकिनामानमृषिं नमामि ॥ ९ ॥

ज्योत्स्नाम् (चन्द्रिकाम्) इव तमोहराम् अन्धकारदूरीकारिणीम् तम (अज्ञानपाप)हारिणी रामकथा समन्तात् प्रसारितवन्तम् । अतएव—

पीयूषधामान चन्द्रमिव स्थितं वाल्मीकिमहर्षि प्रणमामि । पीयूषधामा सकलङ्कोऽपि विलोक्यते किन्तु अयम् (वाल्मीकि) अतिशुद्ध सकलदोषादिरहित इति व्यतिरेक ॥९॥

त्रैलोक्यभूषायितसूक्तिरत्नैर्भृतं महाभारतनामासिन्धुम् ।
यः सृष्टवानद्भुतसर्गलीलं द्वैपायनाख्यं तमृषिं नमामि ॥१०॥

त्रैलोक्यस्य भूषणीभूतै सूक्तिरत्नैर्निर्भर महाभारताख्य समुद्रम् (सागरवत् विस्तृतमगाध चेति तात्पर्यम्) य उत्पादितवान् । अत एवायम् अद्भुता सर्गस्य सृष्टे लीला यस्य ईदृशोऽस्ति । तत एव वेदव्यासाख्यमिम मुनि प्रणमामि । एकेन ऋषिणा रत्नै सभृत समुद्रश्चुलुकीकरणेन सहृत. अयं, तु समुद्र सृष्टवानिति अस्य सर्गलीला अद्भुतेति तात्पर्यम् ॥१०॥

श्रीरामायणभारतार्णवयुगप्रव्यक्तसर्गक्रमौ
श्रीवल्मीकजनुःपराशरसुतौ नत्वा कवीनां विधी ।
भूयो नौमि बृहत्कथाकविमहं प्रोद्भाविता यैर्भुवि
त्रिस्रोता इव भारती प्रवहति प्रोद्यत्तरङ्गाकुला ॥११॥

श्रीरामायण भारतसमुद्रश्चेति युगे (युगले) प्रस्फुट सृष्टे क्रमो ययो ईदृशौ । अतएव कवीना विधी विधातृभूतौ । विधे किल युगे युगे सर्गक्रम प्रव्यक्तो भवति । इति युगपदस्वारस्यम् । श्रीवल्मीकजनु (वाल्मीकि) पराशरसुत (व्यास) चेति द्वावपि नत्वा । भूय (पुन बहुतर वा) बृहत्कथाकविम् (बृहत्कथाग्रन्थनिर्मातार गुणाढ्यकविम्) नौमि । यै (वाल्मीक्यादिभिस्त्रिभि) प्रोद्भाविता भारती (वाणी) प्रचलत्तरङ्गसकुला त्रि स्रोता (त्रिपथगा, भागीरथी) इव भुवि प्रवहति ॥११॥

मातर्वाणि कृपातरङ्गिणि सदा जिह्वाग्रजाग्रद्गृहा
यस्य त्वं भवसि स्फुरत्परिमलश्रीकल्पवल्ली परा ।
तत्काव्यैः कविचञ्चरीकपटलीचेतश्चमत्कारिभिः
सौरभ्यैः सकला सभा सुरभिता सौन्दर्ययुक्ता कृता ॥१२॥

कृपानदीरूपे हे सरस्वति मातः! स्फुरत्सौरभ-शोभा-शालिनी परा कल्पवल्लीव त्वं यस्य कवेः जिह्वाग्रे सर्वदा जाग्रद्गृहा स्फुटनिवासा भवसि, कविमधुकरसमूहमानसचमत्कारकै तस्य कवे. सौरभभूतै. काव्यैः सकला सभा सुरभीकृता सौन्दर्ययुक्ता च कृता । वाणीरूपा कल्पवल्ली सौरभस्य श्रिया. (शोभाया) च आकरभूता । अतएव तत्प्रभावात् सहृदयसभा सुरभिता च सौन्दर्ययुक्ता च क्रियते इत्याशय ॥१२॥

आज्ञातः श्रीसवाईश्वरधरणिपतेः प्राप्तभूरिप्रमोदः
संप्राप्योत्साहकश्रीहरिहरसुकवेः संमतं संशयघ्नम् ।
काव्यं नव्यं सुभव्यं भुवि रचयति यः प्रीतये पण्डितानां
सोऽयं श्रीकृष्णशर्मा कृतमति नमति श्रीगुरोरङ्घ्रिपद्मम् ॥१३॥

आज्ञात. आदेशात् हेतौ पञ्चमी । हरिहरकविर्ग्रन्थकारस्य कुटुम्बे ज्येष्ठ । (ग्रन्थस्यास्य भूमिकाया (साहित्यवैभवस्य) वंशवीथ्यां च विलोकनीयोऽस्य वंशवृक्ष) । 'ग्रन्थं रचयामि न रचयामि वा' इति संशयस्य दूरीकारक तस्य संमत सप्राप्य । कृतमति ग्रन्थरचनाया दृढीकृता मतिर्यस्मिन् कर्मणीति क्रियाविशेषणम् । अथवा कृता ग्रन्थरचनायोग्या मतिर्येन, ईदृशं गुरोरङ्घ्रिपद्मम् ॥१३॥

श्रीसूर्यवंशो भुवनप्रकाशकस्तत्रापि पुण्यं कथितं रघोः कुलम् ।
तत्रापि कीर्तिः किल मानवंशजा पावित्र्यमेतद् भृशमुत्तरोत्तरम् ॥१४॥

भुवनं प्रकाशयति कीर्तिप्रभया उद्भासयति । मानवंशजा महाराजमानसिंहस्य वंशजाता । सार. ॥१४॥

श्रीशालिसूर्यांशुसमूहतुल्यो विभाति भूमौ खलु सूर्यवंशः ।
नित्यं सतां मानसपुण्डरीकप्रबोधने संततमेव दक्षः ॥१५॥

श्रीशाली य. सूर्यस्तस्य अंशु (किरण) समूहतुल्यः । अत एव मानसपुण्डरीकस्य प्रबोधने विकासने चतुर ॥१५॥

भास्वद्वंशवतंसतां दधति ये धर्मात्मनां धीमतां
धौरेया धरणीतले सुविदिता मान्धातृमुख्या नृपाः ।
तस्मिन्नेव कुलेऽमले विधुरिव क्षीराम्बुधौ पार्थिव·
पृथ्वीराज इति प्रसिद्ध उदभूद्यो विष्णुभक्ताग्रणी· ॥१६॥

धर्मात्मना बुद्धिमता च धौरेया (धुर्याः अग्रगण्या) मान्धाता मुख्यो येषां, ते नृपाः ये भास्वद्वशस्य (सूर्यवशस्य) अवतसता शिर शेखरता दधति। वतंसेति पदे भागुरेर्मतेन अव-उपसर्गस्य अकारलोप । क्षीरसमुद्रे विधुरिव (चन्द्र इव) अमले तस्मिन्नेव कुले पृथ्वीराज इति प्रसिद्ध· पार्थिव. उदभूत् ॥१६॥

तस्यानेकप्रचुरविबुधाराधनेन प्रकामं
श्रीमद्विष्णौ परिणतिमगाद्भाग्यतो भक्तिभावः ।
योऽधिद्वारावति सुकृतभृत्स्वप्नमध्ये प्रयातः
प्रातर्जातः प्रकटितवपुः शंखचक्रादिचिह्नः ॥१७॥

तस्य (पृथ्वीराजस्य) प्रचुरेण देवताऽऽराधनेन भाग्यत महाभाग्यवशात् श्रीविष्णौ भक्तिभाव. परिणति परिपाकोन्मुखतामगात् । सुकृतभृत् पुण्यवान् य (पृथ्वीराज) स्वप्ने अधिद्वारावति द्वारकापुरीमध्ये प्रयात , प्रात.-काले च शङ्ख चक्रादिचिह्नयुक्तो बालक प्रकटितवपुर्जात । अर्थात् पृथ्वीराजस्य रात्रौ स्वप्नोऽभवद् यथा स द्वारकापुर्यां गतोऽस्ति द्वितीयदिने च तद्गृहे पुत्र उत्पन्नोऽस्ति, यस्य शङ्ख-चक्रादीनि श्रीविष्णोश्चिह्नानि प्रकटानि ॥१७॥

तस्याभूत्तनयस्त्रिविक्रम इवाविर्भूतसद्विक्रमः
पृथ्वीभारसमूहधारणविधौ शेषावतारः स्वयम् ।
अध्यम्बावति यश्च राज्यमकरोल्लब्धं निजं पैतृकं
विख्यातो भुवि भारमल्ल इति स क्षोणीभृतां शेखरः ॥१८॥

त्रिविक्रमो वामनावतार इव आविर्भूत श्रेष्ठः पराक्रमो यस्य ईदृश । य पराक्रमाल्लब्ध पैतृक राज्यम् अध्यम्बावति अम्बावती (आम्वेर)-मध्ये अकरोत्, स भुवि भारमल्ल इति विख्यात ॥१८॥

तस्य श्रीभगवन्तदास उदितः पुत्रः पवित्रक्रियः
शूरः क्षत्रियवंशविस्तरशिरोलंकारहीराङ्कुरः ।
इन्द्रप्रस्थपुराधिराजपुरुषप्रोत्थापनस्थापन-
स्वच्छन्दप्रसरत्प्रतापमहिमा योऽभूत्प्रभूतः स्वयम् ॥१९॥

उदितः उत्पन्न. । क्षत्रियवशस्य यो विस्तार. परम्परा तस्याः शिरोऽलकारस्य (मस्तकमुकुटस्य) हीरकाङ्कुर, क्षत्रियवशे सर्वश्रेष्ठ इति यावत् । इन्द्रप्रस्थस्य (दिल्ली) ये अधिराजपुरुपा (सम्राज 'बादशाह') तेपां प्रोत्थापनस्थापनाभ्याम् (कस्यचित्सम्राज. निर्वासन कस्यचिन्च सस्थापन ताभ्याम्) स्वच्छन्द प्रसरन् सर्वतो व्याप्नुवन् प्रतापस्य महिमा यस्य स । प्रभूत सर्वत प्रभु प्रभावशाली ॥१९॥

तस्याभूद् भूरिभूमीपतिविनतशिरोमञ्जुमाणिक्यमाला-
स्थाने संस्थापिताऽऽज्ञामयमधुरवचा मेदिनीमण्डलस्य ।
साक्षादाखण्डलो यः प्रतिधरणिभृतां मानसंछेदनार्थं
हस्तन्यस्तासिवज्रः समरभुवि जयी मानसिंहो महीन्द्रः ॥२०॥

तस्य भगवन्तदासस्य । भूरीणा वहुतराणा भूमीपतीना विनतानि यानि शिरांसि (तेपामुपरि) या. मञ्जुला माणिक्यमाला तत्स्थाने । संस्थापितानि आज्ञारूपाणि मधुराणि वचासि यस्य स. । अनेकभूमिपालैरादरातिशयात् निजमस्तकेपु यस्याऽऽज्ञामधुरवचनानि स्थापितान्यभूवन्निति भाव. । मधुरवचनानीति मधुरविशेपणेन महान् प्रतापातिशयो ध्वन्यते—यत् यस्य प्रतापस्तथा प्रवलोऽभवद् यत् मधुरवचनै साधारणतया दत्ता आज्ञैव प्रणतशिरोभिर्भूपालैर्निजशिरोभिरुह्यते स्म, का कथा क्रोधे दत्तानामाज्ञावचनानाम्? आज्ञाप्रतीक्षकेषु नरपालेपु न कदाचित्कोपकठोरवचसामवसर

इति । मेदिनीमण्डलस्य (भूमिवलयस्य) साक्षात् आखण्डल इन्द्र । प्रतिधरणिभृता प्रतिपन्थिभूपालानाम् । धरणिभृत्शब्दशक्त्या पर्वतरूपोऽप्यर्थ. पर्यन्ते ध्वन्यते । तथा च—आखण्डलो यथा प्रतीपगामिना पर्वताना 'वय पक्षधरा' इत्यभिमानच्छेदनार्थं हस्ते वज्र न्यस्तवान्, तथा अय प्रतीपभूपालाना समरे वीरताऽभिमानच्छेदनार्थं निजहस्ते खड्गरूप वज्र न्यस्तवान्, इति युद्धदुर्धर्षत्व ध्वन्यते ॥२०॥

अकबरसमुदञ्चच्चेतसा वर्धनीयो
जलधियुगलधौतप्रस्फुरच्चन्द्रहासः ।
सुखजनिरनिरुद्धश्रीगुरुप्राप्तसिद्धि-
र्व्यजयत वसुमत्यां मानवन्मानसिंहः ॥२१॥

अकबरसम्राज औदार्यादुज्जृम्भमाणेन चेतसा सर्वविषयेषु परमोन्नतिं प्रापयितु योग्य (सहैव विद्या-कलासु शिक्षमाणस्याऽकबरस्य बभूव मानसिहमहाराजे सुमहती प्रीति । सा चाऽलौकिकशौर्यादिदर्शनेन शनै शनै राज्यशासनसबद्धा भूत्वा भारते परमोत्कर्प प्राप । सहृदयैर्द्रष्टव्यो मल्लिखितो 'मोगलसाम्राज्यसूत्रधारो महाराजमानसिह' इति निबन्ध) जलधियुगले (पूर्व-पश्चिमसमुद्रयो) धौत (प्रत्यर्थिरक्तरक्त) प्रस्फुरन् चन्द्रहास खड्गो यस्य स । (निजबाहुबलेन भारतसीमानमासमुद्र स वर्द्धयामासेत्याशय । तथा च राजस्थानीयकवीनामैतिहासिकोद्घोष —'समँदर खाडो (प) खालियो काबुल पाडी हद्द ।') सुखजनि प्रजाजनाना सुखकारिका जनि (जन्म) यस्य । अनिरुद्ध०—अनिरुद्धाचार्यात् श्रीगुरो प्राप्ता समरविजयादिसिद्धिर्येन स । वसुमत्या व्यजयत भूतले विजयी बभूव ॥२१॥

यस्तुङ्गोत्तुङ्गरिङ्गत्तुरगखुरपुटोध्दूतभूयोधरित्री-
धूलीधाराधराडम्बरितमिव नभो जैत्रयात्रासु कुर्वन् ।
जाग्रन्निःसानढक्कासमसमयसमुद्भासिताऽरातिभूभृद्-
दुर्गान् दुर्गाहमार्गान्कति कति न नृपः स्वप्रतापैर्जिगाय ॥२२॥

जैत्रयात्रासु निजविजययात्रासु तुङ्गेभ्योऽपि तुङ्गाः (अत्युन्नताः) रिङ्गन्तः (अतिवेगशालितया भूमिलग्ना इव धावन्तः) ये तुरगाः तेषां खुर-पुटैः क्षुण्णा या विस्तृतधरित्री तस्या धूल्येव सजातो मेघाडम्बरो यस्मिन् ईदृशं नभ (आकाश) कुर्वन् यः नृप । जाग्रती विजृम्भमाणा या नि.सान-(विजयध्वज)सहकृता ढक्का यश पटह (हस्त्युपरिस्थितो दुन्दुभि), तत्समसमय तद्ध्वने समकालमेव समुद्वासिता. (दुर्गेभ्यो वहिर्निस्सारिता) अरातिभूभृत वैरिभूपाला येभ्य ईदृशान् । दुर्गाह दु खेन गाहितुम् उल्लङ्घयितु शक्यो मार्गो येषाम् ईदृशान् कति कति दुर्गान् ('किले') स्वप्रतापै. न जिगाय? अपितु बहूनेव दुर्गान् विजितवानित्याशय । ग्रन्थेऽस्मिन् भाषा-प्रसिद्ध–'निशान' (राजध्वज) वाचको 'नि सान' इति सस्कृतीकृत शब्दो बहुत्र प्रयुक्त कविना । युद्धारम्भसूचक—ढक्काध्वनिसमकालमेव अराति-भूपाला निर्वासिता भवन्तीत्यतिशयोक्ति ॥२२॥

श्रीमान् यो मानसिंहो मिहिरकुलमणिर्मानिनामग्रगण्यो
राणाकस्याऽतिदर्पात्सदसि विधिवशाज्जातचेतोविरोधः ।
दिल्लीशस्य प्रकोपप्रलयहुतभुजि प्लोषयामास सर्वं
तद्देशग्रामशाखानगरपरिवृतं तत्पुरं चित्रकूटम् ॥२३॥

मिहिरकुल भानुवंश । मानवताम् अग्रगण्य, अतएव राणाकस्य महाराणाप्रतापसिहस्य (उदयपुरेशस्य) अतिगर्वाद् सदसि सभायां जातः चेतोविरोधो यस्य स । निजगृहे प्राघुणिकीभूतस्यापि महाराजमानसिहस्य गर्वितवचनैरवमान प्रदर्श्य तन्मनसि विरोधस्याऽङ्कुरमुद्भावयामास महा-राणामहोदयो येन न केवल मेदपाटस्यैव, अपितु भारतमात्रस्य महती हानिः संवभूव । अत्र हि प्रतिकूलेच्छस्य विधातुरेव वश ,कुतोऽन्यथा देशहितैषिणो धार्मिकराजन्यस्य पक्षाद् गृहाऽऽगतस्याऽतिथेरपमानप्रसङ्ग.? इति विधि-वशादिति वदतो ग्रन्थकारस्याऽऽशय ॥ प्लोषयामास दाहयामास । शाखा-नगर प्रधाननगरसनिहितम् उपनगरम् । चित्रकूट चित्तौड ॥२३॥

वृन्दावने यामुनपुण्यतीरे गोविन्ददेवालयकैतवेन ।
अग्रे कलौ जन्मवतां जनानां वैकुण्ठनिःश्रेणिमयं चकार ॥२४॥

अयं (मानसिहः) यामुने यमुनाया इद यामुन तस्मिन् पवित्रे तीरे। अग्रे कलौ जन्मधारिणा कृते गोविन्दमन्दिरमिषेण वैकुण्ठसोपान चकार ॥२४॥

यः कुर्वन् सुकृतानि पूर्वसुमहादिग्जैत्रयात्राविधौ
काशीतीर्थगयाप्रयागनगरेष्विष्टानि पूर्तानि च ।
जित्वा तत्र शताधिकान् क्षितिभृतां दुर्गान्सुदुर्गाहनान्
दुर्गामालयमानिनाय करुणाशीलां शिलामातरम् ॥२५॥

पूर्वा या सुमहती दिक् तस्या विजययात्राविधौ। इष्टानि यज्ञकार्याणि, पूर्तानि वापी-कूपादिखननकार्याणि (यानि काश्यादिषु 'मानमहल-मान-मन्दिर' इत्यादिनामभि साम्प्रतमपि विद्योतन्ते) च कुर्वन् य । सुदुर्गाहनान् अतिदुःखेन गाहन लघन (विजयो) येषा तान् जित्वा शिलामातर तन्नाम्ना प्रसिद्धां दुर्गाम् आलये निजगृहे आनिनाय ॥२५॥

काश्यां क्लेशवविश्वनाथसुमहादेवालयादीन्यसौ
संख्यातीतमहोन्नतानि सुकृतान्युच्चैः समासादयन् ।
जित्वाऽनन्यगतिं सुदुर्गवसतिं केदाररायं नृपं
दैवं तस्य शिलामयीं भगवतीं मानी समानीतवान् ॥२६॥

असौ (मानसिह) । सख्यातीतानि महोन्नतानि च काश्या केशव-विश्वनाथादीना सुमहान्ति देवालयादीनि सुकृतानि पुण्यकार्याणि उच्चै (सर्वदेशकालेषु कीर्तिकर) यथा स्यात्तथा समासादयन् अर्जयन् । सुदुर्ग-वसति सुदृढे दुर्गे वसतिर्वासो यस्य तम् (उडीसाप्रान्ते कायस्थजातीय केदार-रायो महता प्रतापेन दुर्गाण्यधितिष्ठन् राज्यशासनमकरोत्। किन्तु साम्राज्य-शासनस्य यदाऽय प्रतीपोऽभवत्तदा) एन महाराजो मानसिह्हो न्यरुणत् । अनन्यगति (नास्ति अन्या गतिर्यस्य) विवश त नृप जित्वा तस्य देवम् इष्टदेवं शिलामयी भगवती मानी य (आम्बेरराज्ये) समानीतवान् । (केदार-रायस्य समीपे बहुतराणा गायत्रीपुरश्चरणानामधिष्ठानभूता सेयं सिद्ध-शिलारूपैवाऽभवत् । सैषा हि भगवती सुप्रसिद्धस्य प्रतापादित्यस्येष्टदेवी ।

यदा च सेयं मानसिहेनाम्बेरराज्यमुपनीता, तदा अस्या एव भगवत्या आदेशानुसारं तान्त्रिकाणा सप्रदायानुसारमस्यां शिलाया महिषमर्दिन्या मूर्तिरुत्कीर्णाऽभूत् । एषा हि तत्कालादारभ्य अद्यपर्यन्त न केवल जयपुर-धराधीशानामेव, अपि तु राज्यमात्रस्याऽऽराध्या सिद्धा भगवती । सिद्धपीठ-स्यास्य यात्रार्थं वङ्गदेशीया बहवो यात्रिणो दूरदूरदेशेभ्य. प्रतिवर्षं समा-यान्ति । एतस्या. पूजका अपि वङ्गदेशादेव आनीता अभूवन्पूर्वम्, किन्तु साम्प्रतं ते जयपुरीयाऽऽचारा एव समभवन् । एतस्या वृत्तान्तो 'जयपुरवैभ-वस्य' उद्यानवीथ्या ३१६ पृष्ठे, चित्रं च वर्णन'कवित्त' च १४२ पृष्ठे विलोकनीयानि ।) ॥२६॥

अङ्गं वङ्गं कलिङ्गं मरहठतिपुराकामताकामरूपा-
नान्ध्रं कर्णाटचोलद्रविडतिरहुतिद्वारकाचोलपाण्डयान् ।
भोटान्तं मारवारोत्कलमलयखुरासानखान्धारजम्बू-
काशीकाश्मीरठट्टाबलखबुखहराकाबिलान् यः शशास ॥२७॥

मुष्टौ कर्तुमलं भवेद् गगनगास्ताराः समस्ता इमा
भूयो भूमिरजांसि वाऽपि गणयेत्कश्चिद्विपश्चिन्नरः ।
संख्यातुं प्रभवेद्वियन्निपतितान् बिन्दून् पुनर्वार्षिकान्
निःसंख्यान्न तु मानसिंहनृपतेः संग्रामभूमीजयान् ॥२८॥

गगनस्थिता तारा. मुष्टौ कर्तु करे ग्रहीतुम् । अलं भवेत् समर्थो भवेत् । वियन्निपतितान् गगनात्प्रपतितान् वार्षिकान् वर्षा-भवान् बिन्दून् सख्यातु समर्थो भवेत् । किन्तु नि सख्यान् असख्यान् माननृपते सग्रामभूमौ विजयान् (सख्यातुम्) न प्रभवेत् इति सवन्ध. । (अय नृपो ह्यनन्तेषु युद्धेषु प्रावर्तत, पर कस्मिन्नपि विफलता नाऽभूत् । सर्वत्र विजयोऽनेनैव लब्ध. । इय तावदितिहासेऽङ्कुता कथा । तदिद तथ्य 'आईन अकबरी'प्रभृतिषु प्रामाणिकेपु इतिहासनिबन्धेपु स्वीकृतम्) इयमेव मन्ये अनिरुद्धाचार्यगुरोः प्राप्ता सिद्धिर्नूनम् ॥२७॥

तस्याभूद्भासमानो भवभवनभवद्भूरिभाग्यप्रभावो
भूभर्ता भारभर्ता भुवनभविकभृद्भूयसां वैभवानाम् ।
भावानीते भवानीपतिभजनभरे भाविताऽभ्रान्तभव्यो
भूभूषा भावभाग्भाभवनमभिभवन् भूपतीन् भावसिंहः ॥२९॥

तस्य (मानसिहस्य) भावसिह अभूत् इत्यन्वय । कीदृश ?— भासमान तेजसा दीप्यमान । भवभवन०—भवभवने ससारालये भवन् (प्रसरन्) भूरि प्रचुरो भाग्यस्य प्रभावो यस्य स । भूभर्ता पृथिव्या. पोषयिता । भारभर्ता सकलप्रजाना भार (दायित्वम्) बिभर्ति धारयति स । भूयसा वैभवाना बहुतराणा सपदाम्, भुवने भविक कल्याण बिभर्ति धारयति, अन्ये राजानो वैभवेषु सत्स्वपि भुवने कल्याण न वहन्ति, अय तु बहुतरवैभवाना लोके कल्याण धारयति । लोके मङ्गलसपदा धारक इत्याशय । भावेन हृदयानुरागेण आनीते भवानीपते शिवस्य भजनभरे सेवनादिकार्ये भावित विचारितम् अभ्रान्त निश्चित भव्य कल्याण येन स । पृथिव्या भूषणभूत । भावभाजा (भावुकानाम्) भाया शोभाया आलय । वीराभिमानिनो भूपतीन् अभिभवन् पराजयमान ॥२९॥

श्रीमान् श्रीमानसिंहक्षितिपजलधिजः श्रीजगत्सिंहसंज्ञ-
श्चन्द्रः सौन्दर्यसंदीपितसकलजगत्कामिनीकामकेलिः ।
दाता शूरः स सूरद्युतिभरसदृशाऽखण्डखड्गप्रभावः
सर्वानेकैकगुण्यान् नलबलिविजयादीन् जगत्युज्जिगाय ॥३०॥

श्रीमानसिहक्षितिप(भूप)रूपात् जलधेर्जात श्रीजगत्सिहसज्ञ चन्द्र । कीदृश ?—गगनस्थितचन्द्रवत् निजसौन्दर्येण सदीपिता (प्रकामम् उद्दीपिता) सकलभुवनाना कामिनीना कामक्रीडा येन स । सूरद्युति०— सूरस्य सूर्यस्य द्युति(दीप्ति)भरेण सदृश अखण्ड (सर्वाङ्गपूर्ण) खड्गप्रभावो यस्य स । एकैकगुण्यान् सौन्दर्य—औदार्य—शौर्यादिएकैकगुण-

---

१ भुवमभिभवता भूयसा ।

युक्तान् यथाक्रमं नल–वलि—विजय(अर्जुन)प्रभृतीन् भूपतीन् जगति उज्जिगाय विजितवान् । अय भाव.—नले सौन्दर्यं, बलौ औदार्यम्, अर्जुने शौर्यमित्येकैके गुणा. प्रसिद्धा, अस्मिस्तु सर्वेपि समुदिता गुणा इत्येतान् सर्वानुल्लङ्घितवान् ॥३०॥

[मानसिहज्येष्ठतनयस्य जगत्सिहस्य प्रथममुल्लेखमकृत्वा भावसिहादनन्तर वर्णने ऐतिहासिक रहस्य नूनम् । यतो हि मानसिहमहाराजस्यैकादश पुत्रा. षड्विंशती राज्ञ्य पञ्च पुत्र्यश्चासन् । तेषु जगत्सिह सर्वतो ज्येष्ठोऽपि मानसिहस्य जीवद्दशायामेव स्वर्गमगमत् । सर्वतो ज्येष्ठस्य प्रियतरस्य चाऽस्यैव स्मरणार्थं महाराजेनाऽम्वेरराजधान्यां तन्नाम्ना 'जगत् शिरोमणि' मन्दिर निर्मापित यद्धि कारुकार्यखचितसुन्दरपाषाणैर्निर्मित-मतिविशालमैतिहासिकं च । तत अकवरसम्राज पुत्रस्य जहागीरस्य विशेषसाहाय्येन भावसिह (मानसिहपुत्राणामन्यतम) आम्वेरराज्यस्याऽधिपतिर्वभूव । नियमानुसार तु—ज्येष्ठतनये जगत्सिहे स्वर्गते तत्तनयस्य महासिहस्यैव सिंहासनाधिकार आसीत् किन्तु राजनीतिकुशल. अकवरो महासिहमपि नानोपायै प्रसन्नमस्थापयत् । पर महासिह. साम्राज्यकार्यैर्दक्षिणप्रान्त गतस्तत्रैव स्वर्गवासी वभूव । एवमवस्थाया भावसिंहो निष्कण्टक सन् आम्वेरराज्यस्याऽधिपत्यमकरोत् ।

चौमूनगरनिवासिना प० हनूमानशर्मणा 'नाथावतानामितिहासे' जयपुर-राज्यस्य यदितिवृत्त प्राचीनलेखेभ्य सगृहीत तत्र तु निर्दिष्टमस्ति—"महाराजमानसिंहस्य दक्षिणप्रान्ते (इलिचपुरे) स्वर्गवासे सति तत्र सनिहितो महासिहः आम्वेर-राज्यस्य सामन्तानामभिलापानुसार दक्षिणप्रान्ते राज्याधिकारी नियतोऽभूत् । इतः आम्वेरराजधान्यां (जहागीरस्य साहाय्यात्) सम्राजोऽकवरस्यानुग्रहात्तु भावसिंहो राजाऽभवत् । एव युगपद् द्वयो राज्याधिकारिणोरपूर्वोऽवसरस्तदा प्राप्तोऽभवत् । राज्याधिकारप्राप्ते. संमानसूचक महार्घवस्त्रादिकम् ('शिरोपाव') अपि सम्राज. सकाशाद् द्वयोरेव कृते प्राहीयत । सेयमपूर्वा घटना तात्कालिकसामन्ताना प्रभावस्य, भारतसम्राजो दूरदर्शितायाश्च फलमस्ति" ॥३०॥]

समुद्भूतोऽमुष्मादनुपमधनुष्मानतिमहा
महासिंहो नाम क्षितिविबुधकामाक्षितिरुहः ।
तपोध्यानासक्तैः परमहरिभक्तैः सुकृतिभिः
शुभाशीर्भिः सद्यः प्रतिगतविपद्यः समभवत् ॥३१॥

अमुष्मात् (अस्मात् भावसिंहात्) अनुपम अद्वितीयो धनुष्मान् धनुर्धारक· । अति अतिशयित मह तेज यस्य स अतिमहा महासिंह· समुद्भूत । क्षितिविबुध०—क्षितिविबुधानां भूसुराणा (विप्राणा कृते) कामक्षितिरुह—कल्पवृक्ष । य सुकृतिभि (पुण्यवद्भि·) शुभाशीर्द्वारा प्रतिगतविपद् दूरीभूता विपत्तिर्यस्य तादृश समभवत् ॥३१॥

तस्यात्मजो नरपतिर्जयसिंहवर्मा
कर्माणि यस्य कलयन्नवरङ्गजेबः ।
सिंहासनस्थितिमदं विजहौ समन्ता-
त्संतापितः परबलोदयिभिः प्रतापैः ॥३२॥

तस्य (महासिंहस्य) आत्मज जयसिंहवर्मा नरपति (अभूत्) । यस्य कर्माणि कलयन् अनुभवन् (अवरङ्गजेब·) परमोत्कृष्टात् बलात् (पराक्रमात्) उदयिभि (जयसिंहस्य) प्रतापै (कोषदण्डजैस्तेजोभि) समन्तत संतापित सन् साम्राज्यसिंहासनस्थितेः मदम् (गर्वम्) तत्याज । (तस्य अद्भुतानि कर्माणि प्रत्यक्षीकुर्वन्, तत्प्रतापैश्च निरुद्धसर्वसामर्थ्य स्वेच्छया न किञ्चित्कुर्वन्, अपि तु तस्येच्छयैव जायमान सर्वकार्यं सहमान· स अहं साम्राज्यसिंहासने स्थितोऽस्मीति मद निरर्थक भावयामासेत्याशय) ॥३२॥

[१—राजस्थानीयेष्वितिहासनिबन्धेषु सुविस्तृत ('मिर्जाराजा') जयसिंहमहाराजस्य चरित्रम् । तस्य यत्किञ्चिद्दिग्दर्शनं विना वर्णनमिद न भवेद् हृदयगममिति भावयित्वा अधस्तादशत किञ्चिदुद्धरामि—

महाराजजयसिंहस्य जन्मतिथि आषाढ कृ० १ वि० स० १६६८ (२९ मई १६११) आख्यायते । शीशोदियावंशीयाया महाराज्ञ्या दमयन्त्या गर्भान्महाराजस्य जन्म । केचिदैतिहासिका राठोडवंशीयाया राज्ञ्या गर्भाज्जननमाहु, किन्तु नेद स्वीकुर्वतेऽन्ये । जयपुरराज्ये उदयपुरराजवंशीयैव महाराज्ञी जयसिंहस्य जन्मदात्री प्रसिद्धा । तात्कालिकभूपालमालाया महाराजो जयसिंह परमराजनीतिज्ञो रणविद्याकुशल प्रतिपदमुन्नतेर्मार्गानुगामी अपि धार्मिक उदारो रन्ध्रपातेऽप्यविश्वासघाती आसीत् । अय भाविनी राजनीतिं तत्त्वतोऽनुशीलयन् अवरङ्गजेबस्य पक्षपोषकोऽपि औचित्य न कदाचिद्विजहौ । अवरङ्गजेबस्य कथनेऽपि दाराशाहस्य पुत्र सुलेमाशाह न जघान, किन्तु

तस्मै मन्त्रणामदात् यत् स श्रीनगरं गत्वा तच्छासकस्य संरक्षायां तिष्ठेत् । एवमेव अजमेर-समीपस्थवोराईस्थाने अवरङ्गजेवस्य सहचरः सन् यदा दाराशिकोहेन सह युयुधे तदा मर्मपतितं तं सत्यशीलोऽयं न जघान, प्रत्युत सोऽयं सूचयामास 'यद्भवान् युद्धक्षेत्रात्साम्प्रतं त्वरितमेवाऽपसरतु । अहमवसरं दास्यामि' । दाराशाहो महाराजस्य कृतज्ञतां हृदयेन वहन् निजान्तःपुरैः सह निर्जगाम युद्धक्षेत्रात् । अवरङ्गजेवस्याज्ञया तस्य पृष्ठे तं घातयितुं प्रेरितोऽपि तस्य हानिं कथमपि न चकार ।

समस्ते दक्षिणप्रान्ते एव किम्, भारतमात्रेऽपि प्रसरत्प्रभावस्य छत्रपतेः शिवाजी-वीरस्य वशीकरणम्, वहूनां सिद्धसेनापतीनां साहसं यत्र विफलीभूतमभूत् तस्य वीजा-पुरराज्यस्य शक्तिविध्वंसनम्, भारतवहिर्भूतस्य वलखराज्यस्याऽपि प्रवलशत्रुभ्यः संरक्षणम्, एवंविधैरसाध्यैः कार्यैर्महाराजस्याद्भुतां शक्तिं दृष्ट्वा अवरङ्गजीवो राज-नीतौ न केवलं परास्त इवाऽभूत्, अपि तु तस्य हृदि जयसिंहस्य महद् भयं व्याप्नोति स्म । कृतघ्नोऽसौ अभिभूतः सन् तस्याऽपघातार्थमपि मुहुः प्रायतिष्ट, इति ऐतिहासिकानां कथनम् । डा० स्ट्रेटन (रेजिडेण्ट मेवाड वा जयपुर) जयपुरस्येतिहासे स्पष्टं लिखितवान् यत् 'मिर्जाराजा जयसिंह एतावत्प्रवलोऽभूद् यत्तस्माद् भीतो वादशाहस्तमन्ते दुष्प्रयोगै-र्घातयामास' । मोगलसम्राजां शासनस्येतिहासो यैः समनोयोगं पठितस्ते अवरङ्गजीवस्य क्रूरं शासनं मन्ये न कदाचिद् विस्मरेयुः । साम्प्रदायिकसंकीर्णताऽऽक्रान्तः सोऽयं हिन्दुसम्प्रदाये हिन्दुसमाजे हिन्दूनां मन्दिरादिषु च कीदृशानत्याचारानाचरदिति नाऽपरोक्षमितिहास-ज्ञानाम् । यैः राजभिर्महाराजैश्च साम्राज्यसिंहासनाऽधिरोहणे अवरङ्गजीवस्य परमं साहाय्यमाचरितं कृतघ्नेनाऽनेन तेषामप्यहितमनुष्ठितम् । संकीर्णतमहृदयानां माहम्म-दानां दुर्मन्त्रणापतितः सोऽयं नानाप्रकारैः राजपुत्रान् परितः पीडयामास । परं सर्वप्रकारैः-र्मोगलसाम्राज्यं मुष्टौ कृतवन्तं जयसिंहमहाराजमन्तर्द्विषन्नपि प्रभावपरवशः सोऽयं भयकातराभ्यां दृग्भ्यां व्यलोकयत्केवलम्, परं जयसिंहस्य संघर्षे पतितुं नायमशक्नोत् । प्रच्छन्नं त्वस्य मूलविच्छेदाय निरन्तरं प्रायतिष्ट । किञ्चित्कालपूर्वं सोऽयं महाराज-कुमारं रामसिंहं सिंहेन सह योधयामास । आसीच्च तत्र कुटिलस्याऽस्य प्रतिवन्धो यत् पञ्जरान्निस्सारितस्य क्रुद्धस्यापि सिंहस्य प्रतियोधने नाऽयं किञ्चिच्छस्त्रं गृह्णीयात् । आत्मवलसम्पन्नः असाधारणशक्तिशाली च रामसिंहो निःशस्त्र एव सिंहमिमं भूमौ पात-यामासेति प्रथितमेवेतिहासे । एनं सत्वादं श्रुत्वा महाराजो जयसिंहः परमं क्रोधाविष्टो-ऽभवत् । 'वंशावल्यां' लिखितमस्ति यत् महाराजः अवरङ्गजेवमलिखत्—"यदि मम रामसिंहस्य काचिदपि हानिर्भवेत्तर्हि निश्चितं जानीहि यत् साम्राज्यमन्य एव करिष्यति ।" अपि अधीनीकृतः कश्चिदन्यो राजा मोगलसम्राजः संमुखे, तत्रापि क्रूरतमस्य अवरङ्ग-जेवस्य समक्षे प्रवक्तुं शक्नुयादेवम् ? अनेन किं जयसिंहमहाराजस्यासाधारणं प्रभुत्वं वोद्धुमवशिष्येत कस्यचित् ?

साम्राज्यसिंहासनाऽऽसीनोपि अवरङ्गजेवो महाराजजयसिंहस्य प्रभावेण कियदाक्रान्तोऽभूदिति अधस्ताद्वर्णितया घटनया सुस्पष्टं प्रतीयेत मार्मिकाणामितिहासज्ञानाम् । तथाहि—माहम्मदसम्प्रदायस्यान्धभक्तो हिन्दुप्रजासु सुस्पष्टमत्याचारान् कुर्वन्नवरङ्गजीवो हिन्दूनां देवमन्दिराणि स्थाने स्थाने भञ्जयामास, विरूपीचकार, 'मस्जिद'रूपे च परिणमयामास । किन्तु महाराजजयसिंहात्तस्य तादृग्भयमासीद् यत्तस्य समुखे नास्य मन्दिराणां खण्डनस्य साहसमभूत् । यस्मिन्दिने महाराजजयसिंहस्य स्वर्गवासस्य संवाद अवरङ्गजेबेन श्रुत. तस्मिन्नेव दिने अष्टोत्तरशतमन्दिराणां भञ्जनस्य घोरामाज्ञामय प्राचारयत् । जोधपुरे महाराजजसवन्तसिंहस्य समीपे महाराजजयसिंहस्य मृत्युसंवादो नाद्यापि प्राप्तोऽभूत्, किन्तु मन्दिराणां भञ्जनस्य संवादस्तस्य समीपे प्राप्नोत् । तत्क्षण एव महाराजो निश्चितमकरोद् यदद्य महाराजो जयसिंहो नास्ति भूतलेऽस्मिन् । यद्यसौ जीवितोऽभविष्यत्तर्हि सम्राजो नेदं साहसमभविष्यत् । तदैव तेन दोहापद्यमिदमुदीरितम् —

"घण्ट न बाजै देहराँ सक न मानै साह ।
हेकरसाँ फर आवज्यो माहूरा जयसाह ॥"

युद्धनीतिकुशलो दक्षिणप्रान्ते दृढीकृतप्रभावश्च शिवाजी वीर सर्वैरप्यन्यै सम्राज सेनापतिभिर्न वशीकृत, न विजित । जयसिंहमहाराजेन मासत्रयमध्ये एव शिवाजीविजितानि सर्वाणि दुर्गाणि परावर्तितानि, शिवाजीवीरश्च सम्राजोऽधीनीकृत । दक्षिणप्रान्ते कतिवर्षेभ्य प्रचलिता अशान्ति, महान् विप्लवश्च सुतरामुपशमित. । नाय महाराजेन कृत सामान्यो विजय । इतिहासे महन् महत्त्वमेतस्य ।

महाराजोऽयमतिदूरदर्शी राजनीतिकुशलो वाग्मी द्वितीयस्य हृदयनिश्चय निजवाक्प्रभावेण, दर्शिताभिर्युक्तिभिश्च शिथिलीकर्तुमद्वितीयोऽभूत् । प्रत्यक्षमस्य प्रमाणम्—यत् जयसिंहस्य स्वपक्षे आनयनार्थं शिवाजी सममिलत् महाराजेन, किन्तु महाराजस्य नीतिप्रभावेण, वाचोयुक्तिभि, मूर्ते प्रतापेन च तथा विवशीकृतोऽभूद् यथा सोय सम्राज पक्षमङ्गीकृत्य अधीनीकृत इवाऽभूत् । सर्वोपि च विप्लव समापत् ।

एतदतिरिक्तम्—अय न केवल मन्त्रणाचतुर एव, अपि तु युद्धकुशलो वीरोऽपि परकाष्ठाया. । बीजापुरे एकदा इतिहासप्रसिद्धमेकं महद् युद्धमजनि, यत्र शिवाजी वीर, कीर्तिसिंहश्च (जयसिंहमहाराजस्य लघु पुत्र) द्वावपि नासीरे[1] समयुद्धचता गजेन्द्रस्थितौ । स्वय महाराजश्च तद्दिने प्रधानसेनापति. । तदेतन्महायुद्ध महाराजेन मार्मिकवीरता प्रदर्श्य तथा विजित यथा सर्वतोऽपि साधुवादा प्रादुरासन् । तद्दिने बीजापुरीयास्तथा

१–रणाङ्गणस्य अग्रभागे, 'हरावल' इति भाषा ।

पराजिता यथा पर.शतानात्मनो वीरान् मृतानेव रणक्षेत्रे परित्यज्य ते पलायन्त, न पुनस्तेषामौर्ध्वदैहिकसंस्कारादेरपि तेषां स्मरणमासीत् । महन् महत्त्वमितिहासे एतस्याऽपि विजयस्य ।

१६९५ तमे विक्रमसवत्सरे राजपुत्र शुजाख्य सह दत्त्वा विंशतिसहस्रसैन्येन सह सम्राट् शाहजहाँनो महाराज जयसिह कावुल-कन्वारयोर्विजयाय प्रेषयामास। एतयो. प्रदेशयो सजायमान विप्लवम्, प्रचण्ड च तत्रत्य शत्रुसैन्यं दमयितु ये ये प्रवन्धकर्तारः पूर्व प्रैष्यन्त न ते तत्र साफल्यमभजन् । अत एव सम्राट् शाहजहानो महामूल्यं समानवस्त्रम् (शिरोपाव), स्वर्णकार्यखचितमहार्घासनमण्डित स्वर्णोपकरणसहित च जात्यमश्व महान्त मातङ्ग च सादर समर्प्य महाराज विजययात्रायै व्यसृजत् । महाराजोऽपि सुदूरे म्लेच्छप्रान्ते प्रचण्डाना प्रत्यर्थिना मध्ये निर्भयरणकुशलेषु निजेषु राजन्येषु युद्धभार मनसि सम्यग् विश्वस्य निर्भय विजययात्रामकरोत् । तस्मिन् प्रान्ते प्राप्य दृष्ट महाराजेन यत्—तत्रत्य दुर्गमीरानीयैर्दस्युभि. प्रवलतया परिवेष्टितम् । रणकुशलः सुधीरश्च महाराज समुखयुद्धस्य पूर्ण प्रवन्ध कृत्वा परीक्षितपूर्व निजसैन्य रणक्षेत्रेऽवातारयत् । वर्वरप्राया रणराक्षसाश्च ईरानीया पिशाचपातेन सम्राट्सैन्योपरि पर्यपतन् । किन्तु महाराजाधिष्ठितेन राजपुत्रसैन्येन तादृश भयकरं युद्धमक्रियत येन क्रूरा रणदुर्मदा अपि ईरानीया न स्थातुमशकन् रणाङ्गणे। दुर्ग त्यक्त्वा पलायाचक्रिरे। विजयस्रङ्मण्डितो महाराज समरात्परावृत्त्य यदा देहली गच्छन्नासीत्तदा सम्राट् कार्श्मीरान् प्रति यात्रामकरोत् । सम्राट् राजकुमारसहित महाराज रावलपिण्डीस्थाने सादरं समाह्वयत् । समयेऽस्मिन् सम्राजा सह ज्येष्ठयुवराजो दाराशाहोऽप्यासीत् । सपरिकर सम्राट् अवहितेन चेतसा सर्वं युद्धवृत्तान्त सकौतूहलमश्रृणोत् । समरात्परावर्तमान समग्रं सैन्य च सर्वतो विलोकयामास । शाहजहानो महाराजस्याऽनेन शौर्येण सुप्रसन्न सन् महाराजाय 'मिर्जा राजा' इति पदवीं रत्नमण्डनमण्डितं स्वर्णोपकरणभूषितमश्वम्, रत्नालकारभासुरं महान्तमेक मातङ्गम्, महामूल्यमौक्तिकानामेक हार च ससमादरं समार्पयत् (वैशाख कृ० ११ वि० स० १६९६ (ता० २९ अप्रैल सन् १६३९) ।

अवरङ्गजेवस्य साम्राज्य जयसिहमहाराजस्य राजनीत्या, शासनकौशलेन, असाधारणवीरतया च यथा सुस्थिरीभूत तथा शाहजहानस्य शासनकालेऽपि महाराजेन वहुतराण्येव वीरोचितान्यसाधारणकार्याणि संपादितानि यै. सम्राज, प्रजाना चाखिलानां हृदये महाराजस्याऽसाधारण प्रभाव. सर्वदार्यमङ्कितोऽभवत् । मोगलसम्राजा सर्वेषामेवाऽऽसीद् मत्त-मातङ्गाना द्वन्द्वयुद्धदर्शनस्य महद् व्यसनम् । शाहजहानस्य सभायामभूत्कौतुक यन्नवीनागतयोर्द्वयोरनयोर्मातङ्गयोर्महद् युद्ध विलोक्येत । हस्तिना युद्धरङ्गस्थलमिदं कतिपयमासाना सज्जया प्रशस्तीकृतमभूत् । इतो मतङ्गजाविमौ नानाविधै-

भोज्यैर्दृढ-पीवरगात्रौ युद्धदुर्मदौ चाऽक्रियेता स्वै स्वैराधोरणै । नियते दिने पूर्वकालादेव द्वावपि कुञ्जरौ मदेन द्विगुणीकृतपराक्रमौ समपाद्येताम् । रङ्गमध्यस्थले व्यमोच्येतां द्वावपि मत्तदन्तावलौ । प्रावर्तत महद् युद्धम् । सर्वेऽपि दर्शका कुञ्जरयो शरीर च बलं च युद्धकौशल च निर्निमेषेण चक्षुपा व्यलोकयन् । सपरिकर सम्राट् राजपुत्रैः सह परमं प्रीत प्रेक्षमाणोभूद् युद्धमपूर्वमिदम् । सहसैव युध्यमानयोरनयो कुञ्जरयोर्मध्यादेक. कुञ्जरो युद्ध त्यक्त्वा दर्शकाभिमुखमधावत् । दृढामर्गला नाऽसौ मेने । घोरतर मत्तोऽसौ निजाना हस्तिपकाना निवारणमपि न व्यलोकयत् । प्रचण्ड धावमानोऽसौ राजकुमारस्यावरङ्गजेवस्योपरि भयकरमाक्रमत् । समीपस्थिता सर्वेऽपि भयविह्वला भूत्वा न किञ्चित्कर्तुमशकस्तस्मिन् समये । वीर समयज्ञश्च महाराजो विद्युद्वेगेनाग्रेसरीभूय निजभल्लेन तथाऽऽक्रमत्कुञ्जर यथाऽस्य मदो दूरे व्यगमत् । राजकुमाराद् विमुखो भूत्वा परावर्तत । घटनयाऽनया सम्राट् कीदृश प्रसन्नो भवेदिति मार्मिकै स्वयमनुमातव्यम् । (वि० स० १६९०) ।

१६८६ तमे विक्रमसवत्सरे खानजहाँनो लोदी यो दक्षिणाञ्चलस्य प्रान्ताधिपतिः (सूबेदार) आसीत्, राजविद्रोही अभूत् । जयसिहमहाराजस्तस्मिन् समये तत्रत्य. सैन्यप्रवन्धकर्ताऽऽसीत् । अत एव महाराजेन वहुश प्रतिवोधितोऽयम् यन् मत्संनिधौ मैवमाचरतु भवान् । किन्तु यदा नासौ हितोपदेश जग्राह तदा महाराज परमचातुर्येण स्वसैन्यसहितस्त्वरिततर सम्राज शाहजहानस्य समीपमागात् । समस्तं वृत्तान्त तत्रत्य प्रतिवोध्य सामयिककर्तव्ये मन्त्रणामदात् । महाराजस्य नीतिनैपुण्येन सतुष्ट. सम्राट् विशिष्टेन पारितोपिकेण समान्य महाराजस्य भूयस्तरा पदवृद्धिमकरोत् । महाराजस्य मन्त्रणानुसार च खानजहानलोदिन दमयामास सम्यक्प्रकारेण, निगडयामास कारागारे ।

सोथ लोदी कारागारात्पलायाचक्रे । तत शाहजहाँनस्त निगृह्य दण्ड दातु जयसिहमहाराजमेव तस्य पृष्ठत प्राहिणोत् । धवलपुरराज्यस्य समीपे द्वयोर्भीपणयुद्धमभूत् । पराजितो लोदी पलायामासे । महाराजस्त पुनर्जग्राह । इदानी हैदरावादस्य निजामो लोदिन सहायतार्थं निजा सेना प्रैषयत् । ततो युध्यमानयोर्द्वयोरपि दल्यो रीवाराज्यान्तर्गतस्य नीमीस्थानस्य रणाङ्गणे भयकर युद्धमभूत् । तुमुलयुद्धेऽस्मिन् माधवसिंहकच्छपघातस्य (कछवाहा) कुन्तेन खानजहा लोदी पञ्चत्वमगात् । निजामो महत्सैन्य पुन प्रेषयामास । किन्तु ललीनयुद्धक्षेत्रे तस्यापि पराजयोऽभवत् । इदानी वीजापुरस्याऽऽदिलशाह, निजामश्चेत्युभावपि सेनामादाय जयसिहस्य प्रतिरोधायाऽऽगच्छताम् । सम्राट्सैन्यं सर्वैरपि संभूय परिवेष्टितमक्रियत । भयकर चाऽऽक्रमणमकारि । किन्तु महाराजो महता रणचातुर्येण निजसेनामयोधयत् । शत्रुदलभीपणां तादृशी वीरता च प्रादर्शयत्

यत् सम्राट्सैन्यस्य परितो वेष्टन तत् नि.सहमभज्यत । वेष्टननिर्मुक्ता सेना वीरतयाऽयुध्यत । भीषणमिद युद्धं कतिचिद्दिनानि निरन्तर पर्यचलत् । किन्त्वन्ते आदिलशाहो निजामश्चेत्युभावपि पृष्ठदर्शिनावभूताम् । जयसिंहपरिचालिताया सेनायाः सर्वतो विजयोऽभवत् । विजयविभूषितस्य महाराजस्य नानाविधैरुपायनै. सम्राट् समानमकरोत् । अस्मिन् समरे 'अमीरुल् उमरा' शास्तिखानोऽपि (शाइस्ताखाँ) महाराजेन साकमासीत् (वि० स० १६८६-८९) ।

जम्बूप्रदेशे नूरपुरकांगडाप्रान्तस्य तोमरवशीयो राजा जगत्सिंह. साम्राज्यविद्रोहमाचरत् । प्राहिणोत् शाहजहानो दमनाय बहुतरान् सामन्तान्, परं सर्वेऽपि निष्फला असिध्यन् । अन्ते १६९८ तमे विक्रमसंवत्सरे महाराजो जयसिंहस्तत्राऽगात् । महावीरः सोय नूरपुरस्य मऊप्रदेशस्य च सुदृढेषु दुर्गेषु भयकरमाक्रमणमकरोत् । प्रदेशेऽस्मिन् निबिडतममासीदरण्यम् । वृक्षस्थिता भयानका. क्षौद्रपटला. ('छत्ते') क्रूरस्य सैन्यस्य कार्यमसाधयन् । सैनिकाना संमुखे भीषणा समस्या समुपातिष्ठत् । पर महाराजस्तादृशेन रणकौशलेन सेनामयोधयत् येन तोमरभूपालस्य बलं शनै शनैरक्षीयत । युद्धमिदं तादृशं भयानक रूपमालम्बत यस्माद् भीत स्वय शाहजहानोऽपि युद्धस्थलमुपाऽगमत् । कतिपयमासाना भीषणयुद्धोत्तर व्यतिकरोऽयमशाम्यत् । जयसिंहमहाराजस्य मध्यस्थतायां तोमरभूपालोय साम्राज्यस्याऽङ्गीचकाराऽधीनताम् । महता कार्येणाऽनेन संतुष्ट. सम्राट् भूयस्तरा समानयामास महाराजम्, तादृशी च पदप्रतिष्ठामतनोद् यादृशी नान्येन भूपालेन लब्धासीदद्यावधि । ततो मऊ-नूरपुर-कागडाप्रान्तस्य दुर्गाणा सरक्षां समर्पयन्महाराजायैव, या हि निर्वाहिता महाराजेनोत्तमरीत्या । विद्रोहाचरणस्यापराधो यदा क्षान्तोऽभूत् सम्राजा, तदा जयसिंहमहाराज एव तोमरभूपालमिम जगत्सिहं सहाऽऽदाय सम्राजो राजसभाम् (दरबार) प्रापयत् । नीतिचातुर्यैरेवविधैर्भृशं परितुष्टः सम्राट् सुवर्ण—रत्नोपकरण मातङ्गम्, महामूल्यमश्वम्, रत्नजटितान्यायुधानि, महार्घवस्त्राणि चोपायनीचकार महाराजाय] ॥ ३२ ॥

आबद्धाञ्जलिराजगाम शरणं यस्य प्रतापाग्निना
संभीतः शिवराजनामविदितो वीरः स दुर्गेश्वरः ।
दिल्लीशेन च मेलितः कृतरुषस्तस्यैव कारागृहे
रुद्धोऽप्येष दुरुद्धरे निजबलाद् भूयो विनिष्कासितः ॥३३॥

यस्य (जयसिंहस्य) प्रतापाग्निना सभीतः शिवराजेति नाम्ना विदितः दुर्गाणाम् ईश्वरः स वीर. आबद्धाञ्जलि. सन् यस्य शरणम् आजगाम । दिल्ली-

शेन (अवरङ्गजेबेन) सह मेलित सगमित (साक्षात्कार कारित)। कृतरोषस्य तस्य (सम्राज अवरङ्गजीवस्य) एव दुरुद्धरे अतिदुष्करमोचने कारागारे रुद्ध अपि महाराजजयसिहेन निजबलाद् भूय (पुन) विनिष्कासित ॥३३॥

(१—'वशावली' ग्रन्थे—शिवाजीवीरस्योपरि आतङ्कसचारस्य सबन्धे सेय कथा समवाप्यते यद् 'द्योसा'नगरस्य सूर्यमलनामक उपदेव (भोमिया) जयसिहमहाराजाय सतुष्ट सन् वरमिममदात् यत्सकटे सस्मृतोऽह त्वरितमेवोपतिष्ठेय। दक्षिणप्रान्ते शिवाजिनो दुर्गाणामुपरि सग्रामसमये सस्मार महाराज सूर्यमल्लम्। त्वरितमुपागत स महाराजमप्राक्षीत्—'वद, किमित्यह ध्यात ?' जयसिहेन प्रोक्तम्—'समयेऽस्मिन्नावश्यकतरमेक मे कार्य क्रियताम्। शिवाजिनो मस्तकस्योष्णीष तु मत्समीपमानीयताम्, मया लिखितमिद पत्र च उष्णीषस्थाने निधीयताम्'। उपदेवस्तथैव त्वरितमकरोत्। प्रातरुत्थित शिवाजी निजमुष्णीष नाऽवाऽऽलोकयत्, तस्य स्थाने पत्रमेकमपश्यत्। आसीत्तत्र लिखितम्—'यदि इदानीमपि सावधानो न भवेस्तर्हि मस्तकस्थमुष्णीष यथा अपहारित तथा मस्तकस्यापहरणेऽपि विलम्बो न भवेत्। पत्र पठित्वैव सविनयमुपतिष्ठे' शिवाजी भीतोऽभवत्। सर्व वृत्तमिद मातरमकथयत्। माता मन्त्रणामदात्—'वत्स भूपालोऽयमित्थपराक्रम एव। पर बाढ धर्मात्मा, एतस्य समीपगमने एव मङ्गलम्। मा विभीहि, त्वरितमुपयाहि'। एतदुत्तर शिवाजी नि शस्त्र सन् जयसिहमुपययौ, क्षमा चाभिययाचे। विजयोऽभवत् जयसिहस्य, शिवाजिन प्रैषयद् देहलीराजधानीम्।

अथवा काव्यवर्णनसौष्ठवमिद भवेत्। किन्तु राजनीतेर्महद्रहस्यमासीदत्र। १६६५ तमे ख्रिष्टीयवत्सरे दिलेरखान सह कृत्वा जयसिहमहाराज शिवाजीद्वारा सजात दक्षिणदिग्विप्लव शमयितु पुण्यपत्तन (पूना) प्रान्ते प्रापत्। पुरन्द (न्ध) रनामक दुर्ग शिवाजिन पराक्रमस्य सर्वस्वमासीत्। इद दुर्गमापातत एकमिव दृश्यते स्म, किन्तु वास्तवे शैलशिखरस्थिताना बहूना दुर्गाणा समूहोऽयमासीत्। समूहोऽय परित क्रोशत्रयविस्तृतोऽभूत्। एतत्समूहस्य अधस्तनमेक दुर्ग वज्रगढमासीत्। यद्धि समूहस्यास्य सुदृढतममङ्गम्। नीतौ युद्धे च कुशलो महाराज प्रथममस्यैव दुर्गस्य विजय निश्चितमकरोत्। अग्रिम सर्व प्रवन्ध कृत्वा, जयसिहमहाराजो निजस्य ३००० राजपुत्रसैन्य दत्त्वा, दिलेरखान वज्रगढस्य विजयाय प्राहिणोत्। दुर्गमिद सम्राट्सेनाभि सर्वत परिवेष्टितमक्रियत, येन बहि प्रदेशाद् भोजनादिसामग्री न तत्र प्रविशेत्। ततो महत्सैन्यमादाय राजपुत्राणा प्रबलेन बलेन दिलेरखानो वज्रगढोपरि प्रचण्डमाक्रमणमकरोत्।

भीषणयुद्धोत्तर महाराजस्य युद्धचातुर्येण दुर्गमिद पराजितमभूत्। महाराष्ट्राणा वीरनायको 'मुरारबाजी प्रभु' अतिवीरतया युयुधे, किन्तु राजपुत्राणा पराक्रमस्याग्रे

पराजितो भूत्वा प्राणानेव व्यसृजत् । वज्रगढ महाराजस्य हस्तगतमभूत् । इदानी प्रधान-दुर्ग पुरन्दरमपि पतनोन्मुखमेवाऽऽसीत् । अतएव निजस्य यत्किञ्चित् समान रक्षितुम्, वृथा जनक्षय च परिहर्तुं विवश शिवाजीवीरो महाराजजयसिहस्य सनिधौ सन्धे. प्रस्तावं प्राहिणोत् । कञ्चित्काल शिवाजिन सुप्रतीक्ष्य महाराजो विजितानां सर्वेषा दुर्गाणां परावर्तने स्वीकृते त सन्धि स्वीकर्तुमसूचयत् । शिवाजी निजस्य जीवनस्य संमानस्य च सुदृढरक्षाया निश्चित वचन प्राप्य सन्धये समागन्तुमसूचयत् । महाराजेन प्रेपिते प्रत्युतरे, शिवाजीमहोदयो नि शस्त्र षड्भिर्ब्राह्मणै सह निजाद् राजगढदुर्गात् प्रातिष्ठत। उपकार्याया प्राप्ते शिवाजीवीरे निजासनाद् द्वित्राणि पदान्यग्रे गत्वा महाराजः शिवाजिन स्वागतमकरोत् । स्नेहेन च त कण्ठेन परिरेभे । अस्तु-विशेपविशेपनियमोपरि समभूत् सन्धि । शिवाजी वीजापुरयुद्धे सम्राडवरङ्गजीवस्य साहाय्य प्रदातु वाग्-वद्धोऽक्रियत ।

अवसरज्ञो महाराज कालयापनमकृत्वा वीजापुरोपर्याक्रमणमकरोत् । शिवाजिन निजेन नवसहस्रात्मक(९०००)सैन्येन सह तस्मिन् युद्धे संगन्तुमादिशत् । कुटिलमतिरवरङ्गजीवो युद्धेऽस्मिन् आवश्यकव्ययार्थं वनादीना साहाय्यं यथासमयं न प्राहिणोत्, येन महाराजस्य हृदये महानाघातोऽभवत् । अतिसंकटसमये महाराजस्य निजानि कतिपयलक्षाणि मुद्राणा व्ययीभूतान्यपि । अस्तु, दिसम्वरमासस्य २७ तारिकाया महाराजो महदेकमाक्रमणमकरोत् । छत्रपति शिवाजी, महाराजस्य पुत्रः कीर्तिसिहश्च, गजारूढौ भूत्वा नासीरे ('हिरावल, अग्र भाग में') समयुध्येताम् । अद्य महाराज स्वय सैन्यपरिचालनमकरोत्। महाराजस्य युद्धकौशलेन वीजापुरीयवीराणां हस्तपद शिथिलमभूत् । विकटयुद्धोत्तर शत्रुसेना पृष्ठदर्शिनी समभूत् । पर शतान् मृतान् सैनिकवीरान् रणक्षेत्रे एव परित्यज्य पलायांचक्रे ।

किन्तु सम्राज सकाशाद् युद्धेऽस्मिन्नावश्यकतया शीघ्रं प्रेषयितु याचितमपि धन-जनादीना साहाय्यं नाऽद्यावध्यपि प्राप्नोत् । अनेन युध्यमान सम्राट्सैन्यं शिथिलोत्साह भूत्वा अग्राऽभिसरणे विलम्बितमभूत् । अस्मिन्नवकाशे वीजापुरीयशासकः आदिलशाह. सावधानो भूत्वा युद्धादे सम्यक्प्रवन्धमकरोत् । जनवरीमासस्य समाप्तौ महाराज पुनस्तद्विजयायाऽग्रेऽभ्यसरत् । महाराजो वीजापुरीयसैन्य विशृङ्खलं कर्तुं तस्याऽवधान विच्छिन्न विधातु च शिवाजिनमग्रे संप्रेष्य पन्हालादुर्गं विजेतुमादिशत् । किन्तु शिवाजी न तथा कर्तु प्राभवत् । ऐतिहासिकाना कथनमस्ति यत् शिवाजी निष्कपटेन मनसा न साहाय्यमकरोत् सम्राज । स हि युद्धेऽन्यमनस्क समवालोक्यत। अस्मिन्नेवाऽवसरे शिवाजिनो विश्वस्त सामन्तो 'नेताजी' विद्रोही भूत्वा वीजापुरीयै सह संगतोऽभूत् । महाराजो राज्याधिकारप्रदानादीना वहूनि प्रलोभनानि तस्मै प्रादर्शयत्

किन्तु नेताजी न कथचिदनुमतोऽभवत् । इदानी नीतिचतुरस्य महाराजस्य मनसि भयमभूद् यत् अवसरेऽस्मिन् शिवाजी अपि न कदाचिद् विद्रोही भवेत् । अतएव राजनीतेर्महान् गुरुर्महाराजो युद्धस्य सर्वां परिस्थिति ससूच्य सम्राडवरङ्गजीवमलिखत्––यत्समयेऽस्मिन् स. (सम्राट्) शिवाजिन परमादरेण निमन्त्र्य निजराजसभाया समाह्वयेत् ।

इत: स्वय महाराज उपायशतानि कृत्वा, धर्म-कर्मादीना नानाशपथै शिवाजिन विश्वस्तं कृत्वा सम्राज समीपे आगरानगर गन्तु समतमकरोत् । सम्राज स्वीकृतौ उपलब्धाया––निजस्य ज्येष्ठपुत्रस्य रामसिंहस्य सरक्षायां शम्भुनामकेन निजपुत्रेण सह शिवाजिनमागरानगर प्रैषयत् । तत्र मईमासस्य द्वादशतारिकायाम्, यस्मिन् दिने अवरङ्गजेवस्य जन्मोत्सव आसीत्, शिवाजी महाभाग कुमाररामसिंहेन सह सम्राजो राजसभा प्राविशत् । तत्र पञ्चसाहस्रिकसामन्ताना पक्तौ समावेशेन शिवाजी कथमकुप्यत्, क्रोधावेशेन मूर्च्छित स उशीरजलादीना निक्षेपेण कथचिल्लब्धसज्ञो राजसभात कथं वहि प्रापित, गृहगमनानुमतौ याचितायामवरङ्गजेबेन विश्वासघात कृत्वा कथ स कारारुद्ध कृत इति हि जानन्त्येव इतिहासविद । इतिहासलेखेन नात्र तात्पर्यम्, किन्तु दक्षिणप्रान्तादपसार्य सम्राट्समीपे प्रापणस्य कीदृशी आवश्यकताऽऽसीत्, कथ च सा जयसिंहमहीभृता नीतिचातुर्येण संपादितेति सूचनाया प्रयोजनम् ।

तत क्षत्रियाणा वचनदृढता सुस्मरन् रामसिंह काराऽऽगारात्समोच्य शिवाजिन स्वगृह प्रेषयितु वहुधा समसूचयत् किन्तु कुटिलमतिरवरङ्गजीवो नैतत् सममन्यत । ततो महत्सु मिष्टान्नकरण्डकेषु निभृत सस्थाप्य, कारागारतो वहिर्नीतौ, दूरान्तरे स्थितयोरश्वयोश्चारोप्य शिवाजी-शम्भुजीति द्वावपि कथ निजगृह प्रापितौ इति सर्वमिदमितिहासज्ञा पाठका विदन्ति । अनेन हि जयसिंहमहाराजस्य कीदृशी राजनीतिनिपुणता, कीदृक् च सामर्थ्यमासीदिति ज्ञातु शक्नुयु काव्यपाठका ॥३३॥

बद्ध्वा दाराशिकोहं रणभुवि सहसा दोर्बलेनानिनाय
द्रागेव द्रावयित्वा भृशमनभिमतं यो विजिग्ये शुजाख्यम् ।
कर्तुं चाकर्तुमीशः प्रसभमितरथा कर्तुमप्येष राजा
चक्रे नोरङ्गजेबं निजबलविभवेनैव दिल्लीशमेकम् ॥३४॥

बद्ध्वा०––दोर्बलेन निजस्य भुजयोर्बलेन रणाङ्गणे दाराशिकोह सहसा बद्ध्वा (य) आनिनाय। (कदाचिद् भवेदिदमितिहासान्तरे । जयपुरेतिहासविषये विशेषज्ञेन विद्याविभूषणपुरोहितश्रीहरिनारायण बी० ए० महोद-

येन प्रकाशिते जयसिंहमहाराजस्य जीवनचरित्रे तु प्रथितमस्ति यत् स्वयमवरङ्गजीव एव दाराशिकोहस्य विजयाय ससैन्य. परापतत् । महाराजजयसिंहस्तु तेन साकमासीत् । अजमेरस्य समीपे धोराईस्थाने अवरङ्गजेवेन साकं दाराशिकोहस्य घोरं युद्धमभूत् । तत्र निजाना सामन्ताना विद्रोहेण दाराशाह स्वय पराजितोऽभवत् । ईदृश सकटावसरः समापतत् यद्दाराशाहो महाराजस्य हस्तपतितोऽभवत् । पर सत्यशील., न्यायानुकूले निजकर्तव्ये निर्भीकश्च महाराजो न रुद्धवानिमम् । प्रत्युत सादरमिममसूचयद्——'समयप्राप्तमिदमेवाऽस्ति यत्स्थानादस्मात्त्वरितमपसर्तव्यम्' इति]

भृशम् अनभिमतम्——'सिंहासनारोहणार्थं यादृशी नीतिरपेक्षिता न तस्यामय प्रभुर्भवेदिति' अनभिरोचित शुजाख्य द्वितीयं सम्राट्पुत्रं शीघ्रमेव द्रावयित्वा पलायित कृत्वा विजिग्ये विजितवान् ।

[सम्राट् शाहजहान सिंहासनार्थमाक्रमत शुजाख्यस्य द्वितीयपुत्रस्य निरोधार्थं दाराशाहस्य पुत्र सुलेमाशाहम् (स्वपौत्रम्) सह दत्त्वा महाराजजयसिंह वङ्गदेशाभिमुखं प्रेषितवान् । आसीद् गुप्त सूचना यद् यावच्छक्य युद्धस्याऽवसरो न भवेत् । किन्तु सामादिभिर्निपुणैरुपायै स निजाभिशासित वङ्गप्रान्त प्रति प्रेष्यताम् । पर नवयुवकस्य सुलेमांशिकोहस्योद्रिक्तभावेन युद्ध प्रावर्ततैव । भयानक च तद् युद्ध समभूत् । वहुतर च तत्रासीत्सभवो यत् शुजा युद्धेऽस्मिन्निहतो भवेत्, निगडितो वा स्यात् किन्तु महाराजस्यौदार्येण तस्मै पलायनस्याऽवकाश प्रादीयत, इति प्राचीनमितिवृत्तम्] ।

कर्तुम् अकर्तुम् प्रसभ बलात् इतरथा (अन्यथा) कर्तुं च ईशः समर्थ. एष राजा निजबलवैभवेन एव नोरङ्गजेबम् एक दिल्लीशं चक्रे ।।३४।।

(देशस्य परिस्थितिं विश्रृङ्खला विभाव्य, खण्ड-खण्डेऽवस्थितताना राज्यानां शासकक्षत्रियाणा पतनोन्मुखी शक्ति पृथ्वीराज(चौहान)समयादेव परस्परमसहयोगिनी प्रत्युत विद्रोहिणी परिज्ञाय, आम्बेरराज्यस्य भूपालै राजनीतिद्वारा मोगलानाममीषां स्वहस्ते करगमेवाऽन्ततो निर्धारितमासीत्, इति नीतिं प्रधानीकृत्य इतिहासमालोचयतां मार्मिकाणा मतम् । अतएव आम्बेरनरपालेषु परमराजनीतिज्ञो महाप्रतापशाली पुरुषपरीक्षायामनुपमश्च महाराजो जयसिंह. सम्राज शाहजहानस्य जीवनकाले एव तत्पुत्राणां राजकुमारत्वे एव च सुनिश्चितमकार्षीद् यत् चतुर्णां राजकुमाराणां मध्ये साम्राज्यसिंहासनभाक् को भविष्यतीति । सम्राट् शाहजहानो दाराशिकोहं स्वकीयं युवराजमकार्षीत् । स हि साम्राज्यकार्येषु अन्तर्भुक्तोऽप्यभूत् । अन्यै राजभि. सोयमेव भावी सम्राट्

कदाचिन्निश्चितोऽपि कृत स्यात् । आसीदपि दाराशिकोहो वास्तवे उदारो विद्वान् निष्पक्षपात प्रणयनिर्वाहकश्चापि । एप हिन्दुशास्त्रेषु श्रद्धाशाली, हिन्दूना पक्षपाती चाऽप्यासीत् । अनेन उपनिषदादीनामनुवाद पारस्यभाषया कारित आसीत् । पण्डित-राजो जगन्नाथोऽपि तमेन काव्येषु तुष्टाव । किन्तु तात्कालिकयवनसाम्राज्यसिंहासनं लब्धु ये गुणा अपेक्षिता, भारतराजनीतेर्वातावरण च तस्मिन् समये यादृगासीत् तत्र की-दृशा गुणा विजय लभेरन्, एतदादि सर्वं दृष्ट्वा राज्यानामुत्थान-पतनादीना मार्मिको-राजसभाया अनुभवी च महाराजो जयसिंहो निजया दूरदर्शितया, पुरुषपरीक्षानुसार च अवरङ्गजेबस्य बाल्यावस्थायामेव पर्य्यचिनोद् यत् राजपुत्राणा मध्ये अयमेव सिंहासन लप्स्यते इति ।

काममन्ये राजकुमारा निजस्य शासनयोग्यताया, नीतिकुशलताया, धनस्य शक्तेश्च गर्वं वहेयु किन्तु तात्कालिकपरिस्थितेरुपरि अवरङ्गजेब एव विजय प्राप्नु-यात् । यतो हि मुसलमानराज्यस्य शासनयोग्यता, प्रस्फुरत्प्रतिभता, धूर्तता च (या हि राज्यशासने बहुष्ववसरेषु अपेक्षिता) यादृशी अवरङ्गजेबेऽस्ति न तादृक् अन्यान्येषु । महाराजो जन्मसिद्धस्य अधिकारस्य, धर्मज्ञतायाश्च कारणेन दाराशिकोह-मेव सिंहासनोपयुक्त निजहृदये अभावयत् । किन्तु अवरङ्गजेबस्य कूटनीतेरग्रे दाराशाह-स्य प्रगतिमतीव दुर्बला परीक्षाञ्चक्रे । अतएव शासननीतेर्विवशतया अवरङ्गजेबस्य पक्षग्रहणे एव महाराजो बाध्योऽभवत् । पर दाराशिकोहस्य हस्तपतितत्वेऽपि न तस्या-निष्ट कदाचिन्महाराजेनाऽऽचरितम् । प्रत्युत गुप्तरूपेण तस्य हितमेवाऽनुष्ठितम् । इति हि स्थाने स्थाने पूर्वं सूचितमेव । ततश्च-अग्रे यत् स्वयमेव भावि, तत्र सर्वदार्थं स्वस्यो-पकारभारस्थापनार्थं महाराजो नोरङ्गजेब दिल्लीश चक्रे इति ग्रन्थकारस्याशय] ॥३४॥

श्रीमान् श्रीमानसिंहक्षितिपकुलमणेः स प्रपौत्रो महीन्द्रः
प्रोदञ्चल्लक्षचण्डीविधिसुकृतनिधिः कोटिभिः पार्थिवैश्च ।
प्रोद्भूताखण्डपुण्यः क्वचिदपि न पराभूतिमापद्धरायां
संग्रामोत्साहचञ्चत्तुरगखुरपुटाक्रान्तदुर्गाहदुर्गः ॥३५॥

क्षितिपकुलमणे भूपकुले मणि(मण्डन)स्थानीयस्य श्रीमान् प्रपौत्र. कोटिभि पार्थिवै कोटिसख्याकपार्थिवद्वारा प्रोदञ्चल्लक्ष० प्रोदञ्चन् प्रोद्भवन् लक्षचण्डी(पाठ)विधानजन्यसुकृतरूपो निधि यस्य स । अथवा कोटिभि पार्थिवै प्रोद्भूताऽखण्डपुण्य, निजसरक्षाया रक्षिता ये अनेके पार्थिवा तेषा द्वारा सपादिताऽखण्डपुण्य. । सग्रामोत्साह० युद्धोत्साहेन

चञ्चन्त. सरभसं चलन्तो ये तुरगा तेषां खुरपुटै. आक्रान्तानि दुर्गाहाणि (दु खेन गाहितुम् आक्रमितु शक्यानि) दुर्गाणि येन सः। (ईदृशः मानसिह-भूपकुलमणे प्रपौत्र) धराया क्वचिदपि पराभवं न प्रापत् ॥३५॥

प्रालेयाचलपातदुर्गमतरान्म्लेच्छावलीदुःसहा-
त्स्वं सैन्यं बलखाख्यदुर्गविषयान्निष्कासयामास यः।
गोवत्सव्रजगोपबालकगणं संजातपातं क्षणा-
द्दुर्निस्तारमघासुरस्य वदनात्कृष्णो यथैवाऽक्षतम् ॥३६॥

प्रालेयाऽचलस्य हिमालयस्य य पात· मध्ये प्राप्ति· तेन दुर्गमतरात् अत्यन्तदुर्गमात् । म्लेच्छमण्डलीदुर्धर्षात्, 'वलख'नामकात् दुर्गमविषयात् (देशात्), य· स्व सैन्य निष्कासयामास शत्रूणां दृढपरिवेष्टनात् निस्सार-यामास । कः कस्मात् कमिव ? कृष्ण अघासुरस्य वदनात् सजातपातम् (सजात पतन यस्य तम्) दुर्निस्तारं (दु.खेन निस्तारः उद्धारो यस्य तम्) गोवत्सानां व्रजस्य गोपवालकाना च गणं यथा अक्षतं अखण्डित नि.सार-यामास ।३६॥

[साम्राज्यकार्यं कुर्वता युवराजेन दाराशिकोहेन वलखप्रान्तस्य प्रवन्धकर्ता नजरमुहम्मदखान कृतोऽभूत् । प्रदेशेऽस्मिन् शत्रूणामाक्रमणे जाते तन्निराकरणाय सम्राट्-पुत्र अवरङ्गजेव, अलीमर्दानखा, वहादुरखानादयो यवना., राजापृथ्वीराजादयो हिन्दुसामन्ताश्च प्रेषिता अभूवन् । महाराजजयसिंहोऽपि तै· साकमासीत् । महाराजेना-द्भुतया वीरतया, महता साहसेन च शत्रुसकटादस्मात् सम्राट्सैन्य नि सारितमासीत् । पर सर्वेप्यमी महती हानि विपद्य विफला परावर्वृतिरे । गृहमर्मज्ञ सम्राट् शाहजहानो महत. पराभवस्यास्य कारणमवरङ्गजेवस्य धार्मिकीमसहिष्णुतामेव निर्धारयामास । अतएव १७०८ तमे विक्रमसवत्सरे अमात्य सादुल्लाखान सहकारिण कृत्वा महाराजं जयसिंहमेव च नासीरयोधिन प्रवानीकृत्य वलखप्रान्ते प्रैषयत् । तत्र इतिहासप्रसिद्धानि वहूनि वीरताकार्याणि महाराजेन कृतानि ।

शत्रुसकटादस्मात् सेनाया नि.सारणे या वीरता च चतुरता च महाराजजय-सिंहेन कृता तस्या वर्णन हिन्दीमहाकविर्विहारिमहोदयोऽप्येव कृतवान्—

"यो दल काढे वलख तैं, तैं जयसिंह भुआल ।
उदर अघासुर के परैं ज्यौं हरि गायगुवाल ॥"

(विहारीसतसई)

पाठकमहोदयैरवधानीय स्याद् यत् बलखप्रान्तोय न केवलमेकवारमेव महाराजेनाऽधीनीकृत । अपि तु सीमाप्रदेशस्य विकटेऽस्मिन् प्रान्ते त्रीन् वारान् जयसिंहमहाराजोऽय शत्रूणा दमनार्थमगात्, सफलश्चाऽभवत् । एकवार खानखानाँ महावतखानेन साकमय प्रेषितोऽभूत् यदा हि नजरमुहम्मदखानस्य विरोधे युद्धकरण-मावश्यकमभूत् । नजरमुहम्मदखानेनाऽनेन सम्राड्विजितस्य काबुलस्योपरि आक्रमण-मासीत्कृतम् । किन्तु महाराजस्य प्रातिद्वन्द्वचे सोऽपि परास्तोऽभवत् । विजयपताका च महाराजजयसिहस्य हस्तगताऽभवत् । वि० स० १६८६] ॥३६॥

विद्वद्दैन्यान्धकारक्रथनपटुरुचिः किं नु चण्डांशुरन्यो
जैमिन्युक्तिं विधुन्वन्नयमुदयति वा भूतले नाकपालः ।
किं वा पूर्णः कलावानजनितजडतासंगतिः सार्वभौमः
किं वा संपूरिताशो जगति स विजयी मानसिंहप्रपौत्रः ॥३७॥

विदुषा दीनतारूपस्य अन्धकारस्य क्रथने नाशने पट्वी चतुरा कान्तिर्यस्य स, दाता इत्यर्थ । कि नु अन्य चण्डाशु सूर्य ? 'मन्त्रात्मका दिव्या एव देवा' इति जैमिने उक्ति विधुन्वन् खण्डयन् अय भूतले नाकपाल इन्द्र उदयति वा ? किवा न जनिता जडताया शीतताया (राजपक्षे मूर्ख-ताया) सगति सबन्धो यस्य स, सार्वभौम सर्वभूमिशोभक कि कलावान् चन्द्रः ? कि वा सपूरिता आशा दिशा (अर्थिनाम् अभिलाषश्च) येन ईदृश मानसिहस्य प्रपौत्र ? सदेहालकार ॥३७॥

यो दुर्दान्तदलेलखानसुभटस्याग्रे स्थितो दर्शयन्
स्वीयात्कञ्चुकवामबाहुधुवनाद्दिल्लीश्वरान्निर्यतः ।
चक्रे वै नवरङ्गजेबयवनाधीशस्य राज्यश्रियं
शंपातीक्ष्णकृपाणहैन्दवचमूसंपातकम्पाकुलाम् ॥३८॥

दुर्दान्तस्य दलेलखानाख्यसुभटस्य अग्रे स्थित, (तथा) कञ्चुकस्य कवचस्य यो वामो बाहु तस्य धुवनात् कम्पनात् निर्यत निर्गच्छत दिल्ली-श्वरान् दर्शयन् य । औरङ्गजेबसम्राज राज्यलक्ष्मीम् । शम्पावत् तडिद्वत्

१–राजा द्विजानामजनित० ।

चञ्चल. कृपाणः (खड्ग·) येपाम् ईदृशा ये हिन्दव., तेषां या चमूः (सेना) तस्याः संपातेन अकस्मात् अभियानेन कम्पाऽऽकुला (भयात् कम्पमानाम्) चकार। अयं भाव —दलेलखानाख्यपठानस्याग्रे युध्यमान· अयं यदा कवचाच्छादितं स्वीय वामं बाहु कम्पयामास तदा एव प्रतीयते स्म यत् तस्मात् (तस्य सकाशात्) निर्गच्छन्त· अनेके दिल्लीसम्राज. सन्ति। (मम वामबाहो कम्पने कृते एव अनेके सम्राजो नि सरन्ति कि मे वल त्वं ज्ञास्यसि ? इत्यर्थ.)। यो जयसिह· यवनानामधीशस्यापि अवरङ्गजेवस्य सेना हिन्दुसेनासपातस्य भयात्कम्पमाना चकार, यस्या. किल हिन्दुसेनाया. खड्गो विद्युद्वत् समरे चपलं चञ्चति। यस्य जयसिहस्य प्रतापेन यवनाना सम्राजोऽपि सकला राजलक्ष्मीः सर्वदा हिन्दुसेनासपातस्य भयात् कम्पमाना तिष्ठति स्म। हिन्दुवीरतास्थापकोऽय महाराज इत्याशय ॥३८॥

(१६८२ तमे वैक्रमे सवत्सरे दलेलखान पठान प्रवल सैन्यमादाय मोगलसाम्राज्यस्य विरोवे सरभस भारतमाचक्राम। येन सीमाप्रान्तेन भूत्वा सोय भारतं प्रविवेश तस्मिन् तस्मिन् प्रान्ते एव प्रजासु महानातङ्क· प्रावर्तत। आसीत्तस्मिन् समये भारतस्य सम्राड् जहागीर। एष हि तस्मिन् समये प्रख्यात-पराक्रमं नीतिचतुर च महाराजं जयसिहमेव एतत्कार्यार्थं प्रेपयामास। महाराज स्वानुकूल सैन्य सहाऽऽदाय पठानस्याऽस्याऽग्रे ससमारोहमागात्। भीपण युद्धमभूत्। प्राणपणेन युध्यमानोऽपि पठानो न प्राभवन्महाराजस्याऽग्रत। अतएव कचित्काल नियुध्य पलायाञ्चक्रे सापमान· पठान. सोयम्)।

महाराजजयसिहस्य समये संस्कृत-फारसी-हिन्दीभाषाणा वहव· पण्डिता. कवयश्च तत्समानिता समभवन्। 'सतसई'कर्ता हिन्दीमहाकविर्विहारीलालस्तेनैव पुरस्कृत आसीद् येन निजसप्तशत्या स्थाने स्थाने जयसिहमहाराजस्य वीरचरितमुत्कीर्तितम्[१]। व्रजभाषाया रीतिकाव्यस्याचार्य कुलपतिमिश्रोऽस्यैव समये समभवद्

सामां सेन, सयानकी सबै साहि कै साथ।
वाहुवली जयसाहजू फतै तिहारे हाथ ॥७१०॥
यो दल काढे वलखतें तैं जयसिह भुवाल।
उदर अघासुर कै परें ज्यों हरि गाय गवाल ॥७११॥
घर घर हिन्दुन तुरकिनी देत असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर चुरी तैं राखी जयसाहि ॥७१२॥
रहति न रन जयसाहमुख लखि लाखन की फौज।
जाचि निराखरऊ चलै लै लाखन की मौज ॥८०॥

येन युक्तितरङ्गिणी—रसरहस्य-दुर्गाभक्तिचन्द्रिकाप्रभृतयो ५२ ग्रन्था निर्मिता । छप्पय-कवित्तादिहिन्दीछन्दस्सु महाभारतीयद्रोणपर्वणोऽनुवादरूप. सग्रामसारोऽनेनैव विहित । कुलपतिमिश्र सस्कृतसाहित्ये सुप्रसिद्धस्य महाकवेर्जगन्नाथपण्डितराजस्य शिष्य, जयसिहज्येष्ठराजकुमारस्य रामसिहस्य च काव्यगुरुरासीत्। मिश्रमहाभागो जयसिंहमहाराजेन सह दक्षिणप्रान्तीये युद्धेऽप्येकवारमगाद् यस्य वर्णनमेकस्मिन् काव्ये कृत तेन । कुलपतिमिश्र सतसईनिर्मातुर्विहारीलालस्य भागिनेय आसीत् ।

वीरविनोदस्य रचयित्रा कविराजाश्यामलदासेन जयसिहमहाराजस्य पड् महाराज्य., सप्त उपराज्य ('पातरें') द्वे भुजिष्ये च निर्दिष्टाः । ज्येष्ठपुत्रो रामसिहः चौहानवशीयाया महाराज्ञ्या. समुदभवत् । एष एव जयसिहमहाराजस्योत्तरम्, आम्बेरराज्यसिहासनमलचकार (जन्म भाद्र शु० ५ स० १६९२) । लघुतनय कीर्तिसिह. पूर्वदेशीयस्य राज्ञ सूरसिहस्य तनयाया महाराज्ञ्या सभूत (जन्म स० १७१०) । अय कामाप्रान्तस्य राजाऽभवत् । महाराजजयसिहस्य स्वर्गवासे सति बुरहानपुरनगरे तस्य शरीरेण साक बीकावतवशीया एका महाराज्ञी, द्वे उपराज्ञ्यौ, द्वे भुजिष्ये चेति पञ्च सत्य समभवन् ।

(मिर्जाराजा) महाराजजयसिंहस्य स्मारका 'सतसई' प्रभृतयो यथा ग्रन्था सन्ति तथा आम्बेरराजधान्या राजप्रासादा, तत्रत्य 'जयगढ' दुर्गम्, बुरहानपुरस्य गुल्मटिका (छत्री), औरङ्गाबादप्रभृतिषु 'जयसिहपुरा'ख्या सनिवेशा अपि तस्य स्मारका सन्ति । आगरा–दिल्लीनगरयोरपि 'जयसिहपुरा'स्थान महाराजस्य स्मारकम् । आगरानगरे पुरा जयसिहपुराऽभिधोऽन्योपि भूसनिवेश आसीद् यस्योपरि साम्प्रतं 'ताजबीबी का रौजा' नामक विश्वविख्यात भवन विभाति) ।

तत्पुत्रो रामसिंहः सकलवसुमतीभाग्यसौभाग्यभूमा
भूयः श्यामाऽसिधूमानुमितपरबलोत्तापितेजोहुताशः ।
यत्सौन्दर्यप्रसारैर्जगति रतिपतिर्भाविनं मानभङ्गं
स्वस्याऽभिज्ञाय विज्ञस्तनुमतनुहरक्रोधकुण्डे जुहाव ॥३९॥

प्रतिविम्बित जयसाहिदुति दीपति दरपनधाम ।
सव जग जीतन को करयो काय-व्यूह मनु काम ॥१६७॥
अनी बडी उमडी लखै असिवाहक भट भूप ।
मङ्गल करि मान्यो हिये भो मुह मङ्गल रूप॥२२६॥

[विहारीरत्नाकर]

सकलवसुमत्या भाग्यभूत सौभाग्यस्य भूमा (महत्त्वं) यस्य । अर्थात् यस्य सौभाग्यातिशय. सकलपृथिव्या भाग्यभूतः । पृथिव्या भाग्येनैव रामसिहसदृशस्य सौभाग्यवृद्धिर्जातेत्याशय. । भूय. श्याम. अतिकृष्णः यः असिः स एव धूम , तेन अनुमित. शत्रुवलाना (सैन्यानाम्) उत्तापी तेजोरूपः अग्निर्यस्य स । धूम दृष्ट्वा यथा वह्नेरनुमान भवति तथा रामसिहस्य खड्गरूप धूम दृष्ट्वा शत्रुसैन्येषु प्रवृत्त रामसिंहस्य तेजोरूप. अग्नि. अनुमीयते इत्याशय. । यस्य रामसिहस्य सौन्दर्यविस्तारै स्वस्य भाविनं मानभङ्गं विज्ञाय विज्ञ वुद्धिमान् रतिपतिः (काम) । अतनुः (न तनु कृश , महान्) यो हरस्य क्रोध स एव यज्ञकुण्ड. तस्मिन् स्वस्य तनु शरीर जुहाव हुतवान् । रामसिहस्य सौन्दर्यस्याऽग्रे मम अग्ग्रे मानभङ्गो भविष्यतीति विचार्य पूर्वमेव कामेन निजशरीरं शिवस्य क्रोधाग्नौ हुतमिति भाव. । अहेतोरपि हेतुत्वकल्पनात् हेत्वपह्नुति. ॥३९॥

काले प्रालेयहेमाचलयुगलमपि प्रस्खलेत्, सागरोपि
क्षोभेण त्यक्तवेलो भवति, न तु चलेद्रामसिंहोतिधीरः ।
सेवा-शुम्भावसंभावितमयवनाधीशकाराविमोकौ
सद्यो निर्मोच्य भूयस्तरमुपरि भरं स्वात्मनः सोयमूहे ॥४०॥

प्रालेयस्य हिमस्य, हेम्न सुवर्णस्य च अचलयुगलम्, हिमालय-सुमेरु-पर्वतौ इत्यर्थः । प्रस्खलेत् कस्मिन्नपि काले प्रचलेत् । सः अयं (रामसिह.) असभाविततम. अत्यन्तम् असभावित यवनाधीशस्य अवरङ्गजेबस्य या कारा (कारागारम्) तस्या सकाशाद् विमोक्ष ययो ईदृशौ । सेवाशुम्भौ शिवाजी—शम्भुजी (सभाजी) इतिनामधेयौ महाराष्ट्रराजन्यौ सद्य निर्मोच्य कारागारात् निष्कास्य, तयो भूयस्तर भरम् महान्तं भारम् आत्मन उपरि स्वस्योपरि ऊहे धारयामास । सपुत्रस्य शिवाजिन. कारागारान्निष्कासने समग्रोपि अवरङ्गजेवस्य कोपभारो रामसिहस्योपर्यव समागत इत्याशय. । शिवाजी-सभाजीति महाराष्ट्रे प्रसिद्धौ राजपुत्रप्रान्ते 'सेवासम्भू' इति प्रथितौ । लुण्ठन-हिसादिकरणात् महाराष्ट्रान् प्रति राजपुत्रप्रान्तीयानां कोपावेशः । अतएव 'सेवा-शुम्भौ' इति शुम्भदैत्यस्मारिका कवेस्तिरस्कारोक्ति ॥४०॥

(क्षत्रियवीरो रामसिंहो निजप्रतिज्ञायामचल । अत एव यै कैरप्युपायै शिवशम्भू कारागाराग्निस्सारयामास । पश्चात्कुटिलमतेरवरङ्गजेवस्य एतत्कृते रामसिहस्योपरि सदेहोऽप्यभवत् । अत एव महाराजजयसिंहस्य स्वर्गवासे सति क्रूरोऽयमवरङ्गजीवो रामसिहस्य वीरताम्, समये समये तत्कृता साम्राज्यसेवाश्चेत्यादि सर्व विस्मृत्य आम्बेरराज्योपरि साम्राज्यस्य प्रवन्धम् (खालसा) अस्थापयत् । किन्तु यदा सीमाप्रान्ते शत्रुकृतान्याक्रमणान्यभवन् सम्राट्प्रहिता अन्यान्ये च वीरास्तत्कार्ये न प्राभवन्, तदा साम्राज्यप्रवन्धमुत्थाप्य आम्बेरराज्य रामसिहसादकरोत् । इम च शत्रुनिर्वासनरूपकार्याय युद्धे प्राहिणोत्) ४०॥

यस्योत्तुङ्गतुरङ्गसंगतमदप्रोद्दाममातङ्गभू-
भारान्दोलचलाचलाचलधराचक्रस्य यात्राविधौ ।
आसामाधिपतिः प्रकम्पितमतिः कष्टेन हाऽवर्तत
प्रायोऽनन्यगतिर्भवे स वरुणं कृत्वा शरण्यं स्थितः ॥४१॥

उत्तुङ्गतुरङ्गै संगता (युक्ता) मदप्रोद्दामानश्च मदै प्रचण्डाश्च ये मातङ्गा (हस्तिन) तद्भू. तज्जातो यो भार तस्य आन्दोलेन (इतस्ततश्चलनेन) चलाचल चञ्चलम् अचलाना (पर्वतानाम्) धराया. (भूमेश्च) चक्र यस्मात् तस्य । यस्य (रामसिहस्य) यात्राविधौ युद्धादियात्राकार्ये आसामदेशाधिपति. 'एवं भूमिचक्रस्य चलने सति अग्रे कि भावि' इति भयात् प्रकम्पितमति सन् कष्टेन अवर्तत । प्राय भवे ससारे नास्ति अन्या गतिर्यस्य ईदृश स (आसामाधिपति) वरुणदेव शरण्य शरणदायक कृत्वा तदालम्बेन कथचित् स्थित । पर्वतभूम्यो प्रकम्पमानताया पोतादिषु स्थित समुद्रस्य साहाय्येन कथचिदतिष्ठदित्याशय ॥४१॥

काव्यालाप-कलाकलाप-कलनाकौतूहलोत्कर्षकः
प्रोद्यन्नाटकसाटक-प्रहसनाख्यान-प्रबन्धोत्सुकः ।
श्रीरामायणभारतादिविलसत्पौराणवाग्विस्तर-
क्षीराम्भोनिधिराजहंसरुचिरः श्रीरामसिंहो नृपः ॥४२॥

काव्यालाप काव्यविषयिणी चर्चा, कलाकलाप सगीत-वादित्रादिचतु षष्टिकलावर्ग, तयो कलना (सेवन) कौतुकस्य उन्नायक । साटकं

सट्टकम्, अभिनयात्मकरूपकविशेष. । श्रीरामायण—भारतादयश्च, विलसन् (शोभमान) पुराणसबन्धिवाचां विस्तारश्च, एप एव क्षीराम्भोनिधिः तत्र राजहंसवद् रुचिर । साहित्य-सगीतादिगुणोत्कर्पक इत्याशय. ॥४२॥

पूर्वदिग्विजयमुद्वहतोऽस्य प्रोद्भटाः किल भटाः सुविशङ्काः ।
रङ्गमृद्भुवि कुरङ्गमृगव्यां चक्रिरे परविलासवनेपु ॥४३॥

पूर्वदिश विजय कुर्वत अस्य (रामसिहस्य) प्रकर्पेण उद्भटा विकटाः सैनिका. सुविशङ्का (अर्थात् सतर्का सावधाना. सन्त.) रङ्गमृद् ('रङ्गून') भूमौ परेषा शत्रूणां क्रीडावनेषु कुरङ्गाणा मृगव्याम् आखेटं चक्रु: ॥४३॥

भूयो निःसानघोषप्रपतदातिहिमोपद्रवेणातिदुर्गान्
दुर्गाह्यान् काबिलादीन् बलखबुखहरारूमसामान्तदेशान् ।
यः सद्यो निर्जिगाय प्रबलनिजबलाच्छादितारातिभूमिः
प्रोद्यत्सांग्रामिकाश्वप्रवरपरिलसत्पृष्ठपल्याणरोपम् ॥४४॥

निस्सानस्य विजयदुन्दुभे. घोषेण प्रपतन् य अतिहिम तस्योपद्रवेण अत्यन्तदुर्गमान् । हस्तिस्थितस्य महतो दुन्दुभेस्तादृश. प्रचण्डो ध्वनिरभूद् यस्य कम्पेन पर्यन्तस्थितो हिमोपि न्यपतदिति प्रतापातिशयो द्योत्यते । दुर्गाहान् दु खेन गाहितुम् अतिक्रमितुम् शक्यान् । प्रबलेन निजबलेन (सैन्येन) आच्छादिता स्थगिता आक्रमिता अराति(शत्रु)भूमय येन ईदृश य (रामसिह) । प्रोद्यत्साग्रामि० प्रोद्यन्त विजृम्भमाणा ये सग्रामयायिन अश्वप्रवरा तेषु परिलसन् पृष्ठे पल्याणस्य (पृष्ठासनस्य) रोप स्थापनं यस्मिन्कर्मणि यथा भवति तथा । निर्जिगाय विजितवान् । युद्धयायिनामश्वानामुपरि एकवार यत्पल्याण स्थापित तावति काले एव शत्रुदेशानसौ विजितवान् । न पुन पल्याणस्थापनस्याऽवसरोभूदित्यर्थ. । अतिशीघ्रमित्याशय ॥४४॥

तस्य नृपस्य कुमारः कुमार इव पार्वतीशस्य ।
श्रीकृष्णसिंहनामा जातः श्रीकृष्णचरणधृतचित्तः ॥४५॥

पार्वतीशस्य शम्भो कुमार कार्तिकेय इव तस्य नृपस्य (रामसिहस्य) कुमार ॥४५॥

यस्याभूच्छैशवेपि क्षितिपकुलमणेर्दुष्टदिल्लीन्द्रसेना-
मध्ये शार्दूलदीर्घोदरदलनवलत्कालदंष्ट्राभिघातैः ।
प्रोद्भूताखण्डधारासमुदितरुधिराऽऽसारसंभिन्नभूयो-
दृक्कोणद्वन्द्वशोणच्छविभरभरिता कापि तारुण्यकान्तिः ॥४६॥

दुष्टस्य दिल्लीन्द्रस्य (अवरङ्गजेबस्य) सेनामध्ये । भूपकुलरत्नस्य यस्य (कृष्णसिहस्य) शैशवेऽपि । शार्दूलस्य यद् दीर्घमुदर तस्य दलने (पाटने) वलन्तीना चलन्तीना कालस्य (मृत्यो) दष्ट्राणाम् अभिघातै । प्रोद्भूतया अखण्डधारया समुदित (उत्पन्न, प्रवहन्) यो रुधिरासार (रुधिरनिपात) तेन सभिन्न मिश्रित यो भूयान् (बहल) दृक्कोणद्वन्द्वस्य (दृशो कोणद्वयस्य) शोणच्छवे (अरुणकान्ते) भर, तेन भरिता पूर्णा काऽपि (अनिर्वचनीया) तारुण्यस्य कान्ति (आसीत्) । दुष्टस्य अवरङ्गजेबस्य सेनासनिवेशे स. शैशवाऽवस्थायामपि सिह हन्तुमाज्ञाप्यत । अय च शस्त्रेण तस्योदर विदार्य त निजघान । ततश्च मन्ये मृत्युदष्ट्राभिर्विपाटितोदरस्य सिहस्य अखण्डधारया निपतता रक्तप्रवाहेण मिश्रिता क्रोधारुणा तस्य नेत्रयो कान्ति तरुणाऽवस्थाऽऽपन्नस्येवाऽऽसीत् । एव च शैशवावस्थायामपि तात्कालिकी सा नेत्रकान्ति तादृशशौर्येण तरुणावस्थाया इवाऽऽसीदित्याशय ॥४६॥

हत्वा यत्नात्सपत्नान् समरभुवि हठात्प्राप्तसिंहासनस्थे
श्रीमन्नोरङ्गजेबे कतिचिदुदगमन् सप्तनामाभिधानाः ।
औद्धत्यादुद्धवाध्वप्रचलनकुशलाः शस्त्रिणोऽशस्त्रघात-
प्रख्यातास्तस्य तेजःशिखिनि समभवंस्ते पतंगायमानाः ॥४७॥

समरभुवि नानाविधयत्नात् सपत्नान् (दायादान्) हत्वा प्राप्त सिहासनम् अधिष्ठितवति श्रीमति नोरगजेबे सप्तनामाऽभिधाना (सतनामी) ये

ये कतिचित् (शात्रव) उदगमन् उद्धूता, उद्धततया उद्धतमार्गप्रचलने एव स्वस्य कौशल मन्यमाना शस्त्रिण युद्धार्थ शस्त्रादियुक्ता अपि शस्त्रघात विनैव प्रख्याता प्रतिख्याता तिरस्कृता. तस्य (कृष्णसिहस्य) तेज शिखिनि तेजोरूपेऽग्नौ पतङ्गायमाना शलभायमाना समभवन्। उद्धततां कुर्वाणास्ते शस्त्रग्रहण विनैव नीतिचातुर्येण तस्य तेजसा भस्मीभूता इव व्यलुप्यन्तेत्या-गय ॥४७॥

याः पूर्वं बडगूजराख्यजलदश्यामप्रसर्पद्घटा
वीरेन्द्रेण पितामहेन मरुता चण्डेन निर्वासिताः।
तासामेव विशेषतो निरसनं कर्तुं समर्थोदयो
यो भास्वत्करमण्डलाग्रकलनादासीदृतुः शारदः ॥४८॥

वीरेन्द्रेण पितामहेन (जयसिहेन) चण्डेन मरुता, पितामहरूपेण प्रचण्डमारुतेनेत्यर्थ (व्यस्तरूपकम्) । बडगूजराख्याना जलदाना श्यामाः प्रसर्पन्त्य या घटा पूर्वं निर्वासिता स्वाऽऽघातेन विलोपिता, तासा (घटा-नाम्) विशेषरूपेण निरसन राजचर्यातो दूरीकरण साधयितु समर्थ उदयो यस्य ईदृश य । भास्वति प्रकाशमाने करे निजे हस्ते मण्डलाग्रस्य खड्गस्य कलनाद् धारणाद् शारद ऋतु आसीत् । शरदृतु भास्वत (सूर्यस्य) करमण्डलस्य किरणसमूहस्य अग्रे कलनात् धारणात् यथा जलदघटाना विशेषतो निरसन कर्तु समर्थोदयो भवति तथा सोऽय करे खड्गं गृहीत्वा बडगू-जरराजपुत्ररूपां घटां पूर्णरूपेण निरसितु समर्थोदय आसीत् । 'पितामहेन मरुता' 'य. ऋतु शारद' इति व्यस्तरूपकम् । तच्च भास्वत्करमण्डलाग्रे-त्यादिश्लेषेणोत्थापितमिति द्वयोरङ्गाङ्गिभावसकर । स च चरमव्यङ्ग्यस्य वीररसस्य अलंकारक इति ज्ञेयम् ॥४८॥

(टाडराजस्थाने लिखितम्—यत् बडगूजरराजपुत्राणा देवतीनामकमेक स्वल्प राज्यमासीद् यस्य दुर्ग राजोरगढाख्यम् । महाराजजयसिहस्य समये ये बडगूजरास्तत्र कृताधिकारास्ते आत्मान लवस्य वशज ख्यापयन्ति स्म । राजोरगढस्याऽधिपतिरनूपशहर राजधानी कृत्वा तत्रैव न्यवसत् । राजोरगढे तु बभूव राजपुत्रस्य निवास । एकदा नव-तारुण्यस्योत्तेजनाया राजोरस्य राजकुमारो महाराजजयसिहस्योपरि, यो ह्यन्यमनस्को

मार्गं गच्छन्नासीत्, सहसा भल्लं[1] प्राक्षिपत् । नासौ भल्लो महाराजस्य शरीरमस्पृशत् । किन्तु महाराजस्य शरीररक्षकैः राजकुमारोऽयं गृहीतः, तन्नाम-ग्रामादिकं च पृष्टम् । शरीररक्षकैः राजकुमाराय कठिनदण्डस्य व्यवस्थाऽक्रियत किन्तु नीतिज्ञो महाराजस्तस्मिन् समये राजकुमाराय समाननीयराजवस्त्रादिकम् (खिलअत-शिरोपाव) दत्त्वा सादरं पञ्चाशदश्वारोहान् तत्सेवायां प्रहितवान् प्रापितवांश्च तस्य निजं राज्यम् । किन्तु किञ्चित्कालानन्तरमवसरं निरीक्ष्य महाराजो बणवीरपोताख्यराजन्यशाखाया फतहसिंहस्य (सावलीभूमिपतेः) संरक्षकतायां पञ्चसहस्रात्मकं सैन्यं सम्प्रेष्य बलान्निग्रहपूर्वकं राजोरराज्यमिदमाम्बेरराज्ये संयोजयामास ।

'राजपुत्राणामितिहासे' ('राजपूताने का इतिहास')—देवतीह्रदं अलवरस्य समीपेऽभूत्, प्रतिहारगोत्रीयगुर्जरराजमन्थनदेवस्य राजधानी राजोरगढमासीत् । इत्येव प्राप्यते । भल्लप्रक्षेपस्य कथा केवलं टाडराजस्थाने एव दृश्यते ।)

दत्त्वा यद्वाञ्छितार्थं सपदि सुमनसां तोषयत्येव सार्थं
तत्तच्छाखावलम्बिद्विजनिचयहृदक्षामविश्राममूमिः ।
दातॄणां चोपरिष्टाद्विमलगुणगणैर्निर्भरं भ्राजमान-
स्तेन श्रीकृष्णसिंहः समभवदवनौ कल्पवृक्षः कवीनाम् ॥४१॥

वेदानां तैत्तिरीय-माध्यन्दिनीयादितत्तच्छाखावलम्बिनां द्विजानाम् (ब्राह्मणानाम्) निचयस्य (समूहस्य) हृद् हृदयस्य अक्षामा दृढा विश्राम-

---

१ टॉडराजस्थाने एतस्य कारणकथापि रोचिका सूचिता । "राजकुमाराय भ्रातुष्पत्न्या वाग्बाणो दत्तोऽभूद् यद् भवांस्तु तथा गर्वायते यथा जयसिंहवक्षसि भल्ल एव प्रक्षिप्तो भवेत् । मानिनो राजकुमारस्य हृदि व्यङ्ग्यबाणोऽयं निखातोऽभूत् । अश्वारूढः स हि शस्त्रास्त्रसज्जो जयसिंहाभिमुखं प्रातिष्ठत । व्यतीता कतिपयमासाः । महाराजजयसिंहः सम्मुखमेवोपलभ्येत, परिकरसेनया, सेवकैश्च परिवृतो न भवेत्, ईदृशः सुयोगः अतिसुलभस्तु नासीत् । अत एव दिनोपरि दिनानि व्यतिययुः । न प्राप्यत तादृशः सुयोगः । क्रमेण निःशेषितमभूत्महानीतं धनम् । अश्वोऽपि विक्रीतः । वस्त्राण्यपि विक्रीतानि । किमधिकम्, शस्त्राण्यपि विक्रयमुपगतानि । किन्तु वाग्बाणेन विद्धो राजकुमारो न परावर्तितुमशक्नोद् गृहम् । न च कस्मैचित् स स्वपरिचयमेवाऽदात् । शस्त्रेषु साम्प्रतं केवलं भल्ल एवैकोऽवशिष्टो यस्य कृते इयती यात्रा । अकस्मादेकदा मार्गे गच्छन्नवाप्यत जयसिंहमहाराजो यस्य परिवारवर्गः किञ्चित्पश्चादासीत् । अवसरप्रतीक्षिणा राजकुमारेण प्राक्षिप्यत महाराजस्य वक्षो लक्ष्यीकृत्य निजः कुन्तः ।"

धन्या क्षत्रियजातेर्मानिता । घटनयाऽनया सहैव चैतदपि व्यज्यते यत्तस्मिन् समये देशमात्रेऽपि महाराजो जयसिंहोऽयमापामरं भृशं दुर्धर्षः प्रासिध्यत् । क्षत्रियाऽन्तःपुरमहिला अपि तत्काले धन्याः यासां हृदि जातीयाऽभिमानः प्रतिक्षणमजागः ।

भूमि य वाञ्छितमर्थं दत्त्वा सुमनसा पण्डिताना सार्थं यत् तोषयति । निजविमलगुणै दातॄणा वदान्यानाम् उपरि भ्राजमान शोभमान. (वर्तते) तेन श्रीकृष्णसिह भूमौ कवीना कृते कल्पवृक्ष ममभवत् । कल्पवृक्षोपि—— सुमनमा देवाना मार्थं तोपयति । तत्तच्छाखा (विटपा) वलम्बिद्विज-(पक्षि) समूहस्य हृदयानां सुस्थिरा विश्रामभूमि । नथा कल्पवृक्षोपि निजगुणै दातॄणामुपरि विराजमान । कल्पवृक्ष एव सर्वेपा दातॄणामुपमान-भूतो भवति । श्लेपोत्थापित साङ्गं व्यस्तरूपकम् ॥४९॥

यस्य वक्रतया नित्यमुद्विजन् भयकातरः ।
दिल्लीश्वरो बभूवान्तर्जिघांसुर्भूरिकैतवैः ॥५०॥

इतिश्रीतैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान–देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधि–
कृतावीश्वरविलासमहाकाव्ये वंशानुचरित नाम प्रथम सर्ग ॥

यस्य वक्रतया प्रतिकूलत्वेन भयकातर, अत एव नित्यमुद्वेग प्राप्नु-वन् दिल्लीश्वर (अवरङ्गजेव) वहुभि कैतवै कपटैः अन्तर्जिघासु गुप्तरूपेण हन्तुमिच्छु समभवत् ॥५०॥

(कृष्णसिंहस्यायमितिहासो जयपुरप्रान्तीयप्राचीनपुस्तकेष्वेव प्राप्येत । टाडराजस्थाने, तदाधारकेष्वन्येपु इतिहासपुस्तकेपु नायं दृश्यते । तत्र हि—'कृष्णसिंहो रामसिंहस्य ज्येष्ठपुत्र आसीत् किन्तु युवराजावस्थायामेवाऽसौ परलोकमगमत् । अत-एव रामसिंहस्य पौत्रो विष्णुसिंह एव रामसिंहादुत्तरमाम्बेरराजसिंहासनमलभत' इति प्राप्यते ।)

इतिश्रीमञ्जुनाथापरनामदेवर्षिभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्रि-
कविशिरोमणिविरचितायां मर्मविभासिन्यां

विलासिन्यां प्रथमः सर्गः

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्गः प्रथम एषकः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

ततो विष्णुसिंहाख्यभूपालवर्यः स्फुरद्राज्यलक्ष्मीपतिर्विष्णुरेव ।
कृपातोऽवतीर्णः कलौ साधु चक्रे व्रजे माथुरे मण्डले यो विहारम् ॥१॥

स्फुरन्त्या (जृम्भमाणाया) राज्यलक्ष्म्या पति विष्णुसिहाख्यो नृपश्रेष्ठ साक्षाद् विष्णुरेव । कृपात कृपावशात् कलिकाले अवतीर्ण य व्रजे व्रजान्तर्गते मथुरामण्डले साधु यथा स्यात्तथा विहार चकार। विष्णुर्यथा लक्ष्मीपति तथा अय राजा राज्यलक्ष्म्या पति । कलिकाले भूमौ अवतरण, मथुरामण्डले विहारश्चोभयो साम्य स्पष्टमेव ॥१॥

श्रीमन्नोरङ्गजेबाभिधयवनपतेर्दक्षिणाशास्थितस्य
प्राप्याज्ञां दूरतो यः प्रतिभटदलनः स्वप्रतापैः प्रसिद्धः ।
चक्रे निष्कण्टकं श्रीपतिरमणगृहं माथुरं मण्डलं तद्-
यत्राऽगुः पञ्चसाहस्रिकविततमहाभाग्यवन्तोभिभूतिम् ॥२॥

निजै प्रतापै दूरत एव प्रतिभटाना शत्रूणा नाशक प्रसिद्ध । श्रीपते कृष्णस्य रमणस्य विहारस्य गृह तत् मथुरामण्डल निष्कण्टक कण्टक (शत्रु)-शून्य चक्रे, यत्र (माथुरे मण्डले) पञ्चसाहस्रिक वितत महाभाग्यमस्ति येषा ते ('पञ्चहजारी मन्सबदार') अभिभूतिम् अभिभव पराजयम् अगु प्रापु ॥२॥

(सम्राट् अवरङ्गजेवस्तस्मिन् समये दक्षिणप्रान्ते युद्धादिषु प्रसक्त आसीत्। अस्मिन्नवकाशे वर्तमानभरतपुरस्य प्रान्ते जाटा उपद्रव चक्रु । तेषु नन्दानामको जाटो यो योद्धाप्यासीत्, मण्डल्या प्रधानमभवत् । अय भरतपुरमारभ्य दिल्लीपर्यन्त लुण्ठन चकार । जाटैरेभि शनै शनैर्दुर्गाण्यपि निर्मितानि । कालिन्द्यास्तटे नन्दाजाटस्य एक दुर्गमासीद् यत् 'जुआरी का किला' 'जुआर का किला' वा प्रसिद्धम् । उपद्रव वर्द्धमान दृष्ट्वा सम्राट् अवरङ्गजेबो महाराज विष्णुसिंहं तद्दमनाय प्रेषयामास । इत पूर्वमन्ये पञ्चसाहस्रिकपदाभिषिक्ता अपि जाटाना विजयायागच्छन्, किन्तु न ते प्राभवन् । प्रत्युत तेषामुपद्रवो वर्द्धमानोऽभूत् । तत १७४६ तमे विक्रमवत्सरे कार्तिकमासे महाराजो विष्णुसिंहो राजपुत्राणा प्रबल बलमादाय जाटानामुपरि आक्रमणमकरोत् । वसुवा—

मथुरानगर्य्यो परिसरे प्रसग्त् इद युद्ध कालिन्दीतट व्याप्नोत् । बभूव तत्र द्वयोरपि दल-योर्भयकर युद्धम् । महाराजस्य दलेन तादृश युद्ध कृत यत् जाटाना दल पराजितमभूत् । राजपुत्रैरेकस्यामेव रात्रौ 'जुआरी दुर्गम्' इद विध्वस्तम् । जाटै सम्राजो वश्यता स्वीकृता ।) ॥२॥

यद्भीत्या प्रपलायितस्य समरात् त्यक्त्वा पुरं शिशिनीं
राजारामजटाधिपस्य गहने भालत्वचं कण्टकैः ।
वृक्षौघो विददार सोऽनुभविता क्लेशं कमद्याऽप्यसा-
वित्त्थं द्रष्टुमिवाक्षराणि लिखितान्यन्तर्विधेः पाणिना ॥३॥

यस्माद् विष्णुसिहाद् भीत्या (भयेन) शिशिनीनामिका पुरी त्यक्त्वा पलायितस्य राजारामनामकस्य जाटानामधिपस्य । भालत्वच ललाटस्य चर्म 'अद्यापि असौ क क्लेशम् अनुभविता अनुभविष्यति' इत्थ विधे (विधातु) पाणिना अन्त (चर्मण अभ्यन्तरे) लिखितानि अक्षराणि द्रष्टुम् इव गहने (वने) वृक्षसमूह कण्टकै विददार पाटयामास । द्रष्टुमिव इति फलोत्प्रेक्षया अनया 'महान्त क्लेश सहमानोसौ वनाद् वन वभ्राम' इति व्यङ्ग्येन महाराजगत शौर्यातिशयश्चरम ध्वन्यते ॥३॥

राधाकृष्णविलासलासभवनान्येकादशैकाधिका-
न्यासन् यानि वनानि कण्टककुलैः कीर्णानि कालक्रमात् ।
तानि श्रीयुतविष्णुसिंहनृपतिश्चक्रे सुखासेवना-
न्यानन्दोत्सवगीतवाद्यविविधक्रीडाविनोदादिभिः ॥४॥

राधाकृष्णयो विलासस्य (विहारस्य) लासस्य (रासस्य) च एका-दशैकाधिकानि द्वादश वनानि (वृन्दावन-महावन-भाण्डीरादीनि) यानि काल-क्रमात् कण्टककुलै कीर्णानि व्याप्तानि आसन् । तानि विष्णुसिह. आनन्दो-त्सवादिभि सुखम् (सुखकारकम्) आसेवन येषामेवविधानि चक्रे । जीर्ण-शून्यप्रायेषु तेषु स्थापत्यपरिष्कारादिना रम्यतां विधाय जनसुखकारकाणि तानि चकारेत्याशय. ॥४॥

नानाकौतुककाव्यनाटककथासंगीतभङ्गीभरै-
यैस्तावन्मथुरापुरीमधिवसन् भोगांश्चकार स्वयम् ।
खेलोत्खातखलेऽतिखड्गजबले खंगारपुत्रेऽखिलां
क्षिप्त्वा राज्यधुरं धुरन्धरवरे वीरे हरीसिंहके ॥५॥

अतिशयित खड्गजात बल यस्य तस्मिन् । अतएव खेलयैव लीलया एव उत्खाता नाशिता दुष्टा येन ईदृशे । 'खगारोत'शाखाप्रसूते हरिसिहके वीरे राज्यभार क्षिप्त्वा । सगीतभङ्गीभरै सगीतस्य नानाप्रकारै । भोगान् आनन्दविलासान् चकार ॥५॥

महासर्वमन्त्रौघपट्टाभिषेकप्रभूतं पदं संस्पृशन् पुण्यकर्मा ।
महाराज्यसाम्राज्यविद्यामवाप्य क्रमादेष जग्राह पूर्णाभिषेकम् ॥६॥

पुण्यकर्मा य । महान् य सर्वमन्त्रौघ (अर्थात् सर्वे ये महामन्त्रा-स्तेषा समूह) तेन जातस्य पट्टाभिषेकस्य प्रशस्त पद सस्पृशन् प्राप्नुवन् । मन्त्र-तन्त्रपटिष्ठै गुरुभि प्रदत्ता महाराज्यविद्या साम्राज्यविद्या च क्रमश प्राप्य तन्त्रानुकूल पूर्णाभिषेक स्वीचकार ॥६॥

श्रीविद्यामन्त्रदीक्षाकरणपटुमतेः श्रीगुरोः पादपद्मे
ग्रामान् कामाभिरामांश्चतुर उदसृजत् पूरयन् पाद्यपाथः ।
यश्चैष श्रीभवानीपुरमथनपदाम्भोजभक्तिप्रभावा-
न्निस्त्रैगुण्यं पदं तत्समलभत परं सच्चिदानन्दमेकम् ॥७॥

श्रीविद्याया (षोडश्या त्रिपुरसुन्दर्या) मन्त्रदीक्षाकरणे चतुर-मते श्रीगुरो पादकमले पादार्घ्य प्रददत् । कामपूरकान् चतु सख्याकान् ग्रामान् उदसृजत् समार्पयत् । श्रीभवान्या पार्वत्या, पुरमथनस्य शिवस्य च चरणकमलभक्तिप्रभावात् । सत्-चित्-आनन्दात्मकम्, त्रिगुणातीतम्, एक शाश्वत स्थानमलभत ॥७॥

अथ पूर्णाभिषेकं आश्विनशुक्लपञ्चम्यां भौमवासरे (आश्विननवरात्रेषु) १७८९ तमे वैक्रमे संवत्सरे समवर्तिष्ट । यस्य दक्षिणायां 'हरिवंशपुरा' नामकं ग्रामं 'ताम्रपत्र' द्वारा श्रीगुरवे समार्पिपत् श्रीविष्णुसिंहः । यदिदं ताम्रपत्रं राज्ञा श्रीगुरवे समर्पितम्, यच्च ग्रामनं राजकर्मचारिभिः पत्रेऽस्मिन्नलिख्यत तदिदं मे सम्प्रति संमुखे वर्तमानम् । पाठकानां विनोदाय तस्येदं प्रतिरूपकं निम्ने उद्धरामि येन श्रीगुरोर्नाम संवत्सरादिकं च सम्यग् विदितं भवेत् । सहैव चेदमपि परिज्ञातं भवेद् यत् तस्मिन् समये यवनसम्राड्भिः सह प्रत्यहं पत्रादिव्यवहारात् राजस्थानीयानां नरेशानामपि कार्यालयेषु व्यवहारभाषा कीदृशी संवृत्तासीत् ।

येन श्रीगुरुणा सेयं मन्त्रदीक्षा महाराजश्रीविष्णुसिंहाय समदीयत तस्य महाभागस्य नाम श्रीशिवानन्दगोस्वामीति । अयं द्राविडावटङ्कः कृष्णयाजुषतैत्तिरीयशाखाध्यायी आत्रेयगोत्रस्तैलङ्गब्राह्मणः । 'ईश्वरविलास' महाकाव्यनिर्मातॄणां कविकलानिधिश्रीकृष्णभट्टमहाभागानां सजातीयः । एतस्य पूर्वजा अपि मद्रासप्रदेशात् (पाणि पट्ट इति प्रख्यातप्रान्तात्) प्रस्थाय नानानरेशैः सत्कृता एषु देशेषु समागताः । राजस्थानीयनरेशैश्च असाधारणगुणदर्शनेन ग्रामादिजीविकां प्रदाय निजनिजदेशेषु निवासिताः ।

गुरवे श्रीशिवानन्दगोस्वामिमहाभागाय ये चत्वारो ग्रामाः समार्प्यन्त तेषां नाम—'महापुरा—रामचन्द्रपुरा—चिमनपुरा—हरिवंशपुरा' इति । एते ग्रामाः साम्प्रतमपि तद्वंशीयैरधिकृताः । दीक्षागुरोः श्रीशिवानन्दगोस्वामिनो वंशः साम्प्रतमतिविस्तृतोऽस्ति । वर्तमानकाले यद्वंशजाः पुरुषोत्तमगोस्वामी, लक्ष्मीनारायणगोस्वामी, गोस्वामी हरिकृष्णशास्त्री, रामस्वरूपगोस्वामी रत्नाकरगोस्वामीप्रभृतयः साम्प्रतमपि महापुराग्रामे निवसन्ति । विलासिनीटीकाया एतस्या निर्मातुः आसां पङ्क्तीनां लेखकस्य मञ्जुनाथस्यास्य वर्तमानं स्वगुरुकुलमपि श्रीशिवानन्दवंशजानामेवाऽस्ति । ग्रामोयं जयपुरनगरस्य पश्चिमदिशि (अजमेरससरणे) पञ्चक्रोशदूरेऽस्ति । श्रीशिवानन्दमहाभागस्य वंशजा बीकानेरराज्येऽपि राजसमानिताः सन्ति येषु श्रीफाल्गुनगोस्वामी—आशुकरणगोस्वामीप्रभृतयः राजकीयेष्वधिकारपदेषु सभाविताः परिगण्यन्ते ।

श्रूयते श्रीशिवानन्दगोस्वामीमहाभागस्य तनयः श्रीगणेशानन्दगोस्वामी अपि मन्त्र-तन्त्रशास्त्रादीनां प्रगाढो विद्वान् महासिद्धश्चासीत् । अयं महाभागो बीकानेरराज्यं गतः तत्रत्यस्य राज्ञो माननीयो गुरुरभवत् । यस्मै ग्रामादिसम्पत्तिर्बीकानेरनरेशेन ससमादरं समार्प्यत । एतद्वंशजाः श्रीकामेश्वरगोस्वामी—नरसिंहजीप्रभृतयः साम्प्रतमपि राज्ञो गुरवो ग्रामादिसम्पत्तेर्भोक्तारश्च सन्ति ॥७॥

नकल तॉम्बापत्र

श्रीरामजी

—सही—

सिद्धि श्री महाराजाधिराजमहाराजा श्री विष्णुसिहजी देववचनात् कमैती परगनै आम्बेरिका दिसे सुप्रसाद बच्या । अपरच मो० हरबसपुरा बास मदाऊ तपा खोंह परगनै मजकूर हवैतदाह फसल षरीफ सन् ११०० सवत् १७४९ सौ उदक गुसाई सेवानन्दजीने दीया । तगो ३ मातफर सन् ११०० मिती आसोज सुदी ५ मगलवार सवत् १७४९ नै पूरण अभिषेक करयो । तीकी दक्षिणाके वास्ते अरज पहोची हुकम हुवो जो मौ० मजकूरकै कीज्यौ, ज्यौ हासिल वहा कडिय आसीरवाद देवो करै । वरसालै किसोरदास व विजैराम दीवान नौवति वाकानवीस सदानद अलमुकररा तनखाह मौ० हरवसपुर मदाऊ तपा षोह दवैतदा छ फसल षरीफ सन् ११०० संवत् १७४९ मौ० दरोवस्त वावति उदिक ।

स्वदत्ता परदत्ता वा ये हरन्ति वसुन्धराम् ।
ते नरा नरक यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरम् ॥

तो० १४ मा० सफर सन ११०४४ उकरम पाधौर—

येन पुण्यमथुरापरपारे वासितं किल पुरं निजनाम्ना ।
पूर्वदिग्भवसमस्तवसूनां वास्तुसद्म निरचायि यदेकम् ॥८॥

मथुराया परस्मिन् पारे निजनाम्ना पुरम् (विष्णुपुरम्) । पूर्वदिग्० पूर्वदिग्जातानां समस्तद्रव्याणाम् । वास्तुसद्म निवासगृहम् । निरचायि निर्धार्यते स्म ॥८॥

('टॉड राजस्थाने' जाटानामधिपस्य 'चूडामणि' इति नाम निर्दिष्टम् । थून (नदून) तथा सिनसिनीनगरयोरेतस्य निवास । अस्तु, महाराजविष्णुसिहस्य १७५६ तमे विक्रमसवत्सरे माघकृष्णसप्तम्या 'कावुल' नगरे वैकुण्ठवासोऽभवत् । 'वशावली' लेखानुसार महाराजस्य चतस्रो राज्ञ्य आसन्—द्वे हाडावशजे, एका चौहानवशीया, एका च बडगूजरवशजा । पर म० म० प० गौरीशकरओझामहाभागेन 'सवाई जयसिंह' नामके निबन्धे विष्णुसिहस्य एका महिषी राठोढवशजाऽपि सूचिता । 'कच्छवशमहाकाव्यस्य' आधारेण यस्या नाम 'इन्द्रकुवरि' इति । अस्या एव गर्भात् विश्वविदित-

प्रभावशाली सवाई जयसिंहमहाराजो जज्ञे। विष्णुसिंहमहाराजस्य समयपर्यन्तं प्रभावशाली कवि कुलपतिमिश्र कविता प्रसारयामास, यस्य हि जयसिंहस्य (मिर्जा राजा) समये विहारीलालस्येव महान् संमानोभूत्)।

तस्यात्मजः कीर्तितपुण्यकर्मा श्रीमत्सवाईजयसिंहवर्मा।
बभूव सम्राट् चतुरग्निचिद् यः पञ्चाधिकप्राप्तशताश्वमेधः ॥९॥

११९७० इष्टकाभि. सपादिते श्येनाकारसंस्थाने अग्निचयननाम्नि स्थण्डिलविशेषे संपाद्यस्य 'चयन' यागस्य कर्ता अग्निचित्। चतुर्षु वर्षेषु भेदेन चतुर्णां सोमयागानां कर्तेति चतुरग्निचित्। पञ्चाधिका प्राप्ता.(अनुष्ठिताः) शतसंख्याका अश्वमेधा येन। अत एव सम्राट्पदोचितो बभूव ॥९॥

('सोमयागस्य या उत्तरवेदि (आहवनीयाग्नेराधारभूता भूमिः) तां वर्द्धयित्वा तत्रैवेष्टकाभिश्चयनं सपाद्य तदुपरि आहवनीय प्रतिष्ठाप्य तत्रैव—अग्निष्टोमोक्थ्याऽतिरात्रषोडश्यत्यग्निष्टोमाप्तोर्यामवाजपेयाख्यसप्तसोमसंस्थाकज्योतिष्टोम., असंख्याका अहीनाश्च सोमयागाः क्रियन्ते। अग्न्याधारत्वादस्य स्थण्डिलविशेषस्य अग्निचयनमिति संज्ञा। केचनाग्निपदेनापि केवलेन चयन व्यवहरन्ति। एतादृशस्थण्डिलविशेषनिर्माणाय वेदेषु ११९७० संख्याका इष्टका विहिता। इमाश्च वेदाभिहितपरिमाणावच्छिन्ना अध्वर्युणा निर्मीयन्ते, यथाशास्त्रं तेनैव चोपधीयन्ते। इष्टकोपधानानन्तर स्थण्डिलविशेषस्याऽऽकार श्येनस्येव स्यात्। अत एव 'श्येनचित चिन्वीत' इति विधि। अत्र पञ्च चितयो भवन्ति। एकस्याश्चितेरुपरि द्वितीया चिति। एवं पञ्च चितयः संपादनीया.। अनन्तर क्रमेण पूर्वोक्ता क्रतवोऽनुष्ठेया। एकस्मिन् वत्सरे एक एव चयनयागोऽनुष्ठातुं शक्यते। यदि कोपि चतुर्षु वर्षेषु पूर्वोक्त स्थण्डिलविशेष सपाद्य तत्र भेदेन सोमयागान् करोति तर्हि स 'चतुरग्निचित्' इति व्यवह्रियते।(इति मीमासाकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, जयपुरराजकीयमहाराजसंस्कृतकालेजाध्यक्ष।)

'पञ्चाधिकप्राप्तशताश्वमेधः'—अश्वमेधोऽपि सोमयाग एव ज्योतिष्टोमविकारः। अत्र सवनीयपशोरश्वरूपत्वात् 'अश्वमेधः' इति संज्ञा। अस्मिन् यागे अभिषिक्त एव राजाधिकारी। फाल्गुनशुक्लाऽष्टम्यां नवम्यां वाऽस्यारम्भः। आरम्भानन्तरं संवत्सरपर्यन्तं सावित्र्येष्टयः 'गानम्' पारिप्लवाख्यानम्, प्रक्रमहोमाः धृतिहोमा यज्ञियाश्वपरिभ्रामण चेत्यादयो यथाशास्त्रमनुष्ठेयाः। अनन्तरं चैत्र्यां पूर्णिमायामाश्वमेधिकं कर्मारभ्य

द्वात्रिंशद्दिनपर्यन्त साङ्गमनुष्ठेयम्। एवञ्च महाराजेन पञ्चाधिकमश्वमेधशत प्राप्तमित्यतिशय्य काव्ये कीर्तनमिति जाने। (पूर्वोक्तमहाभाग ॥) ॥ ९ ॥

चक्रे स सर्वयजनात्मकसर्वमेधं दध्रे पुनः पुरुषमेधविधेर्विधानम्।
सोमांश्चकार शतशः प्रतिवर्षमेव पूर्णस्य धर्मजलधेः परपारमाप॥१०॥

(सर्वमेध. चतुस्त्रिंशद्दिनसाध्य सोमयाग । प्रथममह अग्निष्टोमसस्थम् । ततो दिनत्रये इन्द्रस्तुत्, सूर्यस्तुत्, वैश्वदेवस्तुत क्रमेणोक्थ्यसंस्था, ततो महाव्रतमह, ततो वाजपेय, तत. आप्तोर्याम ततस्त्रिणवस्तोम उक्थ्य, ततस्त्रयस्त्रिशस्तोम उक्थ्य, ततो विश्वजित्सर्वपृष्ठोऽतिरात्र । इत्येवरूपेणानुष्ठीयमान क्रतु सर्वमेध । पुरुषमेधश्चत्वारिंशद्दिनसाध्य सोमयाग । चैत्रशुक्लदशम्यामस्यारम्भ । अत्र पशुभि सह चतुरशीत्यधिकशतसख्याका. पुरुषा वेदोक्ता यूपेषु बध्यन्ते । अनन्तर पुरुषसूक्त–क्रमेण यजमान सर्वानुपतिष्ठेत। ततस्तान् पुरुषान् यजमान उत्सृजेत्। या या देवतामुद्दिश्य यो य पुरुषो नियुक्तस्तस्यै तस्यै देवतायै वेदोक्तप्रकारेणैकामाज्याहुतिं जुहुयात् । अनन्तर यजमान आत्मन्यग्नि समारोप्य उत्तरनारायणमन्त्रेण सूर्यमुपस्थाय पश्चादनवलोकयन् अरण्य गत्वा वानप्रस्थो भवेत् । यदि पुनर्ग्रामिवासेच्छा स्यात्तदा अरण्योरग्नि समारोप्य गृहे एव वसेदग्निहोत्रादिक च कुर्याद् यावज्जीवमिति पुरुषमेध. ।

सोमाश्चकार शतश —ताण्ड्यमहाब्राह्मणे लक्षसख्याका सोमयागा विविधफलोद्देशेन विहिता । सोमयागा एकदिनसाध्या अपि बहव । सवत्सरसाध्या अपि बहव । अत प्रतिवर्ष सोमयागान् चकार। इति पूर्वोक्त मीमासाकेसरिमहाभाग] ॥१०॥

योऽतीवमान्यान् गुरुमुख्यविप्रान् श्रीपौण्डरीकिप्रमुखान् प्रपूर्य ।
प्रदेयसौवर्णतुलाधिरोपादनर्घ्यतायै समतोलयत् किम् ॥११॥

रत्नाकरपौण्डरीको महाराजस्य गुरु. तत्प्रमुखान् । प्रपूर्य तुलाफलके आस्थाप्य, अथवा प्रभूतदक्षिणा—उपायनादिभि पूर्णान् कृत्वा । प्रदेया या सौवर्णी तुला तस्यामधिरोपात्—'इमे तथा अमूल्या सन्ति यथा सुवर्णेन सतोल्यन्ते' इति ॥११॥

विप्रेभ्यः कति कति नो सुवर्णभारान् योऽदासीत् प्रतिपदमेव पर्वकाले।
नंक्ष्यन्तं कनकगिरिं विभाव्य देवा भूदेवा इति कपटाद् भुवं प्रपन्नाः॥१२॥

कति कति सुवर्णस्य भारान् न अदासीत् अपि तु बहून् अदात् । अत एव क्रमक्रमेण सुमेरु नाशशालिनं विचार्य 'भूदेवा. विप्रा:' इति छद्मना सुमेरुवासिनो देवा भूमि प्राप्ता । राज्ञो वदान्यतातिशयेन सह, विप्राणां देववन्महिमातिशयो ध्वन्यते—चरम तु राज्ञो गुणातिशय· ॥१२॥

शस्त्रास्त्रैः सह सह च स्वया महिष्या सौवर्णीः कति कति नो तुलाश्चकार।
आनिन्ये किमु भवनं सुमेरुखण्डं देवानां पतिमसकौ रणे विजित्य ॥१३॥

शस्त्रास्त्रै पट्टराज्ञ्या च सह स्थित सोयमात्मनो बह्वी सुवर्णतुला· चकार । अत एवोत्प्रेक्ष्यते यत् असौ रणे देवानां पतिम् (इन्द्रम्) विजित्य सुमेरुखण्ड स्वभवनम् (भवने) आनिनाय किम् ? ॥१३॥

ब्रह्माण्डं कल्पवृक्षं कनकगिरिमथो कामधेनुं समुद्रं
भूमिं स्वर्णैः पिनद्धां प्रतिपदमवनीदैवतेभ्यो ददौ यः ।
यस्येष्टापूर्तपुण्यान्यतिशयितविधिश्रद्धया कर्मकर्तुः
संख्यातुं सोपि शक्तो न सुरगुरुरिहाऽसंख्यसंख्यावदीशः ॥१४॥

स्वर्णै पिनद्धाम् आच्छादिताम् । अवनीदैवतेभ्य विप्रेभ्य । ब्रह्माण्डादीना सुवर्णप्रतिमादिभिरनुकल्प क्रियते । अतिशयि० अतिशयिता या वैदिकविधे श्रद्धा तया, अर्थात् श्रद्धापूर्वक धार्मिककार्याणा कर्तु यस्य इष्टापूर्तपुण्यानि (यागादि-कूपतडागखाननादीनि च) सख्यातु गणयितुम् । असख्याना सख्यावता (विदुषाम्) ईशोपि स सुरगुरु वृहस्पति न समर्थ.॥१४॥

श्रीकुण्डे मथुरापुरे व्रजगिरौ वृन्दावने गोकुले
काशीपुष्करफल्गुगातटहरिद्वारप्रयागादिषु ।
शङ्खोद्धारसवेंकटाचलजगन्नाथप्रभासादिषु
क्षेत्रेष्वक्षय एतदीय उदयत्यार्केन्दु पुण्योत्करः ॥१५॥

व्रजगिरौ गोवर्द्धने । फल्गुगा गयायां नदी । वेंकटाचलसहितो जगन्नाथ । आर्केन्दु अर्केन्दू सूर्याचन्द्रौ आ अभिव्याप्य उदयति उज्जृम्भते ॥१५॥

भूमीरजांसि गणयेदपि नाम कश्चित्
संख्यातुमभ्रकणिकाश्च भवेद् विपश्चित् ।
कुर्यादुडूनि सकलान्यपि मुष्टिमध्ये
न त्वस्य पुण्यनिवहं गणितुं समर्थः ॥१६॥

अभ्रकणिका मेघबिन्दून् सख्यातु विपश्चित् पण्डितो भवेत् । उडूनि आकाशस्था तारा ॥१६॥

(जयसिंहमहाराज १७९१ तमे विक्रमवत्सरे श्रावणशुक्लनवम्या वाजपेययज्ञस्यारम्भमकरोत् । भाद्रशु० द्वादश्या च अवभृथस्नानमकार्षीत् । यज्ञसामग्री १ लक्षमुद्राणामासीत् । यज्ञस्य पूर्णाहुत्या ग्रामान् धन-रत्नानि दास-दासीप्रभृति भूरिदानमकरोत् । अर्थदक्षिणा च पादोनलक्षद्वयमुद्राणामभवत् (म० म० प० गौरीशंकरओझा) । महाराजो दक्षिणप्रान्ते उमेदिन्यास्तापीनद्यास्तटे राजप्रासादान्निरमापयत् । तत्रैव ७ समुद्रानखानयत् । सर्वं चेद सज्जीकृत्य विपुलदक्षिणया सह ब्राह्मणेभ्यो ददौ । दानपुण्यादिषु महाराजेन त्रयस्त्रिंशत्कोटिमुद्रा व्ययीकृता । 'जयपुरहिस्ट्री') ॥ १६ ॥

यस्य क्ष्माभृत्सहस्रस्फुटमुकुटमणेर्जैत्रयात्राप्रसङ्गे
माद्यद्दन्तावलोद्यत्तुरगचयचमूचङ्क्रमोद्भूतभारैः ।
भग्नीभूतासु वेलास्वतिचपलपयःसंघसंघर्षधावत्-
कल्लोलाक्रीडशाली जयति जलनिधिर्जैत्रनिःसानघोषम् ॥१७॥

क्ष्माभृत्सहस्राणा नृपसहस्राणा शिरोमणेर्यस्य (जयसिंहस्य) विजययात्राप्रसङ्गे । माद्यन्त (मत्ता) ये हस्तिन, उद्यन्त उच्छलन्तश्च ये तुरङ्गा एषा चय समूह । चमू सेना च, एतेषा चङ्क्रमणेन पुन पुन चलनेन उद्भूता ये भारा तै । वेलासु (तटेषु) भग्नासु सतीषु । वेलाऽवरोधाऽभावात् अतिचपलो य पय सघ (जलपूर) तस्य सघर्षेण मिथ आघट्टनेन धावन्त ये कल्लोला महान्तस्तरङ्गा तेषाम् आक्रीडनयुक्त जलनिधि । विजयदुन्दुभिघोष जयति अभिभवितु क्षमते । एवमुद्रिक्ताऽवस्थायुक्तो जलनिधिरेव यस्य दुन्दुभिघोष जेतु समर्थो, नान्य इति यात्रासमारोहस्य प्रचण्डभीषणत्व ध्वन्यते ॥१७॥

जातोज्जागरजेजियाभिधकरस्तोमात्तभूमीरस-
प्रस्फूर्जद्यवनेन्द्रभास्वति कलिग्रीष्मेऽतिभीष्मे नृणाम् ।
भाग्यैर्यः प्रविराजते प्रमुदितोऽजस्रं सहस्रं समाः
सद्यःस्वोदयसंहृताखिलविपत्पीयूषधाराधरः ॥१८॥

जात. उज्जागर (दु.खेन उन्निद्रता) येन, अथवा सर्वप्रसिद्धता, ('उजागर' इति हिन्दी) ईदृशो यः जेजियाभिधः करस्तोम. (राज्ञा आदेय शुल्क.) । करस्तोम. सूर्यस्य किरणसमूहोऽपि तादृश., जात. उज्जागरः प्रातः-काले उन्निद्रता येन ईदृशधर्मत्वात् । प्रस्फूर्जन् विजृम्भमाणो यवनेन्द्र (अवरङ्ग-जेव) रूपो भास्वान् सूर्यो यस्मिन् ईदृशे । नराणा कृते अतिभीषणे, कलिरूपे ग्रीष्मे निदाघकाले । स्वोदयेन सहृताः अखिलाः विपदः (ग्रीष्मजनिताः उत्ता-पादय. क्लेशा.) येन ईदृशः । य. (जयसिह.) अजस्रं निरन्तरं प्रमुदितः पीयूषधाराधर अमृतवर्षी मेघः प्रविराजते । ग्रीष्मकाले सूर्यो यथा निजकरैर्भूमे रसम् आकर्षति, तथा कलिरूपे ग्रीष्मे अवरङ्गजेवरूप. प्रचण्डसूर्यः जेजिया-प्रभृतिभि. करै. (शुल्कै. 'टैक्स') भूमे. रसं सारं नि.शेषयति । एवविधस्य कलिरूपस्य ग्रीष्मस्य विपत्संहरणार्थं प्रजाना भाग्यै. जयसिहरूपः अमृतमेघः प्रविराजते इत्याशयः । 'अमृतमेघः' इति विशेषणोक्त्या साधारणमेघवन्न केवलमयमुत्तापमेव शमयति, अपितु मृतान् (सर्वथा नि.शक्तीन्) जीव-यतीत्यपि , अतिशयो ध्वन्यते ॥१८॥

(कुटिलमतिरवरङ्गजेवो हिन्दूनामुपरि 'जजिया'नामकं करमास्थापयदिति प्रथितमितिहासे । तत फर्रुखसियर प्रजासु विद्रोहप्रवर्तक करमिम निजशासनप्रारम्भे न्यरुगत् । किन्तु 'मक्का'तीर्थस्य यवनधर्माधिपतिना प्रार्थनापत्र प्रदाय पुनरयं करो हिन्दुषु प्रवर्तित. । सप्रति सर्वेपि हिन्दूराजानो दुष्कार्येणाऽनेन भृशमप्रसन्ना अभवन् । सम्राट्फर्रुखसियरं प्रति तेषा मनोभावो विकृतिमयात् । तत सैयदानामन्ते जाते मुह-म्मदशाहस्य शासनकाले १७७७ तमे वैक्रमे वत्सरे महाराजो जयसिहो दिल्लीमगात् । मुहम्मदशाहं सर्वप्रकारैः प्रबोध्य, आत्मन प्रभावेण चाऽभिभूय दु.खकर चैत करं सर्वात्मना निरोधयामास । म० म० पं० गौरीशंकरओझा) ॥१८॥

अस्फूर्जेज्ज्वलदुज्ज्वलोज्ज्वलवलज्ज्वालावलीताण्डव-
प्रक्षीणप्रतिपक्षपत्तनपुरग्रामाच्छधामाङ्गणः ।
आशाकुञ्जरकर्णतालबहलोद्भूतप्रचण्डानिल-
प्राप्तप्राज्यजवो जगत्यभिनवो यस्य प्रतापानलः ॥१९॥

अस्फूर्जन्ती अशब्दायमानैव ज्वलन्ती, उज्ज्वलोज्वला (अत्यन्तं प्रकाशमाना) वलन्ती चलन्ती च या ज्वालावली (अग्निशिखामाला) तस्याः ताण्डवेन (उद्धतनृत्येन) प्रक्षीणा क्षयं नीता. प्रतिपक्षाणां शत्रूणां पत्तन-पुर-ग्राम-अच्छधाम(स्वच्छगृह)अङ्गणा येन ईदृश । आशानां कुञ्जरा दिग्गजाः तेषां कर्णतालैः अत्यन्तोद्भूता ये प्रचण्डानिला, तेषां द्वारा प्राप्त प्राज्य पुष्कल जवो वेगो येन । ईदृशो यस्य प्रतापाऽनल अन्येषामपेक्षया अभिनव एव । अभेदेऽपि भेदवर्णनात् भेदकातिशयोक्तिः ॥१९॥

साधीयान् यस्य बाहुः समरमखमहादीक्षया लब्धकीर्तिः
शस्त्रास्त्रध्वानवेदध्वनिजनितविधिर्वीरऋत्विक्परीतः ।
जातप्राज्याऽसृगाज्याहुतिसततपरिस्निग्धया खड्गदर्व्या
चण्डक्रोधाग्निकुण्डे सकलमपि बलं सैयदानां जुहाव ॥२०॥

यस्य (जयसिंहस्य) बाहु साधीयान् अतिप्रशस्त (साधक यजमान) य. समररूपस्य मखस्य (यज्ञस्य) दीक्षया प्राप्तकीर्ति । युद्धे शस्त्राऽस्त्राणा ध्वानः (खडखडादिशब्द)एव वेदध्वनि तेन जनित सपादित. विधि (यज्ञकर्तव्यम्) यस्मिन् । युद्धवीरा एव ऋत्विज. याजका तैः परिवृत । जाता या प्राज्यस्य (बहुलस्य) असृक्(रुधिर)रूपस्य आज्यस्य (घृतस्य) आहुति. तया परित स्निग्धया खड्गरूपया दर्व्या (घट्टन्या 'कडछी') । आत्मन' प्रचण्डक्रोधरूपे अग्निकुण्डे सैयदाना सकल बल सैन्यं हुतवान् ॥२०॥

(अवरङ्गजेबादुत्तर फर्रुखसियरस्य साम्राज्ये सैयदअब्दुल्लाखान, सैयदहुसेनखान्प्रभृतीना प्रभाव प्रवृद्धिमाप । फर्रुखसियरेण सप्तसाहस्त्रिकपदम् (मन्सबमातहजारी जात), 'कुतुबउल्मुल्क' इतिपदवी च प्रदाय अब्दुल्लाखानो निजस्य प्रधा-

नामाख्यो निर्मितः । एवमेव हुसेनअलीखानस्य सहोदराय अब्दुल्लाखानाय 'कुतुबुल्मुल्क' इति पदवी च वितीर्णा, निजस्य चायं प्रधानसेनापतिः कल्पितः । प्रावर्तत तत्रैव सैयदानां साम्राज्ये प्राबल्यम् । किन्तु फर्रुखसियरः सैयदान् अपहाय स्वेच्छया अन्येभ्योऽपि पदप्रदानादि-सम्मान प्रददौ । अत एव ते हृदि असन्तोषमवहन् । पर मुहम्मदशाहस्य राज्यारम्भकालेन सैयदानां दिल्लीसाम्राज्ये सम्प्राबल्यमासीत । तेषु महाराजं 'जयसिंहं' प्रति सदा भृशमीर्ष्याभावमधारयन् । किन्तु महाराजस्तु आगतान् तेनान् सेहे ।

प्रत्युत फर्रुखसियरो महाराजस्य महान्तं प्रभावमवलोक्य १७७४ तमे विक्रम वत्सरे 'राजाधिराज' इति पदवीम्, पञ्चहजारिम्, महामत्यान् उच्चपदवारौन्, अनर्घ्याणि रत्नानि, कनिलक्षमुद्राश्च महाराजाय प्रददौ । आसीदत्र स्वार्थः फर्रुखसियरस्य । तस्मिन्-अस्मिन् वर्तमानभरतपुरप्रान्ते चूडामणिजाटस्य महानुपद्रव आसीत् । तस्मात् एतद्दमनाय समर्थ महाराजमेव मत्वा, अतिसम्मान—सत्कारप्रदानपूर्वकं तं महाराजं प्राहिणोत् । जयसिंहः परमचातुर्येण एकवर्षं यावत् चूडामणेर्दुर्गं परितस्तथा पर्यवेष्टयद् यथा चूडामणेः प्राणान्तिकपीडाऽभवत् । तस्य बन्दीभावो हस्तगत इवासीत् । किन्तु चूडामणे-र्विजये महाराजस्यैव ख्यातिर्भवेत् । अतएव ईर्ष्याकषायितः सैयदः अब्दुल्लाखानो महाराजस्य असान्निध्ये खानेजहान सम्प्रेष्य चूडामणिना सह सन्धिमकरोत् । तथ्यमिद-माकर्ण्य महाराजः परममकुप्यत् । अप्रसन्नोऽसौ तत्काल युद्धादस्मात्परावर्तिष्ट । किन्तु सैयदानां मृत्युबीज महाराजस्य खड्गफलके तस्मिन्नेव दिने मन्ये उप्तमिवाऽभूत् ।

न केवल महाराज एव, अपि तु फर्रुखसियरस्य मृत्योरुत्तर साम्राज्यसिंहासनाधिरूढ-सम्राड् मुहम्मदशाहोऽपि सैयदानां दुर्व्यवहारादसन्तुष्टोऽभवत् । न हि तेषां अधिकार-मेवैच्छत् । अतएव प्रधानसैयदस्य विरोधिन निजामुल्मुल्क स हि स्वीचकार । आसीत्त-स्मिन् समये निजामुल्मुल्कस्य च सैयदानां च परस्पर वैमनस्यम् । इदानीं सैयदानां निजा-मुल्मुल्कस्य च प्रत्यक्षं युद्ध प्रावर्तत, यत्र निजामुल्मुल्क प्रबलोऽभवत् । अनन्तरं तु १७७७ तमे विक्रमवत्सरे फतहपुरात् ३५ क्रोशोत्तर तोरास्थाने काशगरी हैदरखानस्य हस्तेन सैयदहुसेनअलीखानो निहतोऽभवत् । आसीदत्र महाराजस्य कोपकटाक्ष एव कारणम्, येन हि महाराजस्य नीतिचातुर्येण सम्राजो जननी सैयदस्यास्य हनने मन्त्रणा-दात्री समभूत् ।

इतो भ्रातुर्निधन श्रुत्वा ज्येष्ठो भ्राता अब्दुल्लाखान प्रतिशोधग्रहणाय मुहम्मद-शाहमेव साम्राज्यसिंहासनात् च्यावयितु प्रायतत । इदानीं महाराजो जयसिंह सैयदाना-मपराधावधि पूर्ण परिज्ञाय सम्राट्सेनामादाय निजसेनया सह अब्दुल्लाखानस्य दमनाय प्रातिष्ठत । हसनपुरस्य समीपे अब्दुल्लाखानेन सह समवध्यत युद्धम्, किन्तु महाराजस्य

समुखे कियदसौ तिष्ठेत् ? शीघ्रमेव बन्दीकृत्याऽऽनीयत । द्वे वर्षे कारागारे निपत्य प्राणान् विससर्ज । अवशिष्टा अन्येऽपि सैयदा महाराजस्य कोपाग्नौ शलभा अभूवन् । महाराजस्य कृपाकटाक्षेण मुहम्मदशाह साम्प्रतमात्मान निर्भय मन्यमान शशास दिल्लीम् । म० म० प० गौरीशकर ओझा) ॥२०॥

मुग्धास्तास्तत्प्रतापद्युतितरुणवयोभावितास्तद्बलौघ-
प्रोद्यद्भूयोरजस्कारस्तदुपचितयशोवारिसंस्नानशुद्धाः ।
प्रोद्यत्तद्वारणेन्द्रध्वजवसनवृतास्तद्रताः सौख्यपुत्रो-
पेता राजाधिराजक्षितिपकुलमणेः कामिनीवद्दिशोऽष्टौ ॥२१॥

अष्टौ दिश राजाधिराजस्य (जयसिहस्य) कामिनीवत् कामयमाननारीवत् तस्य (जयसिहस्य) प्रतापस्य द्युतिश्च, तरुणवयश्च ताभ्या भाविता सजातभावा (अनुरक्ता इति यावत्)तस्य बलौघात् (सैन्यसमूहात् पौरुपाच्च) प्रोद्यत् उदीयमान रज (धूलि, स्त्रीणा रजोधर्मश्च) यासा ता । अतएव तच्छुद्ध्यर्थम् तस्य (जयसिहस्य) उपचित (राशीभूत) यद् यशोरूप वारि (जलम्) तत्र सस्नानेन शुद्धा । स्नानोत्तरम्—तस्य वारणेन्द्रोपरि स्थितानि यानि ध्वजवस्त्राणि तै सवृता । तस्मिन् (जयसिहे) रता अनुरक्ता । तज्जनितेन सौख्यरूपेण पुत्रेण युक्ता । कामयमाना नार्य सौन्दर्यकान्ति-तारुण्यादिभिराकृष्टा सत्य तदर्थमेव यथा शृङ्गारादिक कुर्वन्ति, तथा अष्टावपि दिश तद्रता तेनैव शृङ्गारिता तस्मादेव च सुखसतानमपि लब्धवत्य इत्याशय । वाच्यया उपमया राजाधिराजालम्बना रति, तया च अष्टास्वपि दिक्षु प्रसृतप्रभावत्व ध्वन्यते ॥२१॥

यस्याऽवलोक्य धरणीवलये समन्तात्
सर्वेषु राजसु विशिष्टतरानुभावम् ।
दिल्लीश्वरः सपदि जातमनःप्रसादो
राजाधिराजपदमर्पितवान् प्रकामम् ॥२२॥

विशिष्टतरम् अतिशयेन विशिष्टम् अनुभाव प्रतापम् ॥२२॥

(प्रजानामरुन्तुदाना सैयदाना सर्वत समुच्छेदेन साम्राज्ये पुन शान्तिरास्थापितेति सर्वत सतुप्यन् सम्राट् मुहम्मदशाहो महाराजाय 'राजराजेश्वर' 'सरमदे राजहाय' इति परमसमाननीयमुपाधिद्वय समर्पयामास । १७८० तमे विक्रमवत्सरे सम्राट् महाराजमागरामण्डलस्य प्रधानशासक (सूबेदार) कल्पयामास । ततो जाटानामुपद्रव शमयितु महाराजमेव समर्थ भावयित्वा सेनाभि सह ससमानमिम प्रेषयामास । तत्र शौर्ये नीतिचातुर्ये चाऽद्वितीयो महाराजः सर्वमुपद्रव शमयित्वा जाटानामधिकृते थून-(तहून-तवनगढ)स्थाने साम्राज्याधिकारमास्थापयत् (म० म० प० गौरीशकर ओझा) ॥२२॥

शाकम्भर्यास्तडागोपरि परिपतितं यत्प्रभावप्रसर्पत्-
सेनावीरेन्द्रवर्यप्रकरकरचलत्तीक्ष्णकौक्षेयकाग्रैः ।
उच्चैरातालुकृत्तं पुरहरमहिषीमुण्डमालान्त्रसूत्र-
प्रभ्रष्टं मुण्डवृन्दं क्षितिरजसि लुठन्निःश्वसत्सैयदानाम् ॥२३॥

शाकम्भर्यास्तडागः (साभरझील) तत्र परिपतितम्—यस्य (जयसिहस्य) प्रभावेण प्रसर्पन् यो वीरेन्द्रवर्याणा प्रकर. (समूह) तस्य करे प्रचलतां तीक्ष्णाना कौक्षेयकाणा खड्गानामग्रै आतालु तालुपर्यन्तं कृत्त छिन्नम्। अत एव पुरहरमहिष्या (चण्डिकाया) मुण्डमालाया यत् अन्त्रसूत्र (शवानाम् अन्त्रमेव सूत्रम्) तस्मात् प्रभ्रष्ट विगलितम् । (मुण्डानि तालुपर्यन्त कृत्तानि, अत एव अन्त्रसूत्रेण तेषा निवन्धन न जातमित्याशय.) सैयदाना मुण्डवृन्द मृत्युयन्त्रणया निश्वसत्, भूमिधूलौ लुठत् च (अभूत्) ॥२३॥

हिरण्यपुरसंनिधावतिभयानके संगरे
प्रचण्ड-यदनीकिनीसुभटचन्द्रहासक्षतैः ।
अभेदि रभसोच्छलद्यवनवीरवर्यव्रजै-
र्नरेन्द्रकुलकोटिकृद्दिनकरः प्रकोपादिव ॥२४॥

हिरण्यपुरस्य (कदाचित् 'हिण्डौन' स्यात्) समीपे । प्रचण्डा यस्य (जयसिहस्य) अनीकिनी (सेना) तस्या सुभटाना चन्द्रहासेन (खड्गेन) क्षतै खण्डितै रभसेन (युद्धसभ्रमेण) उच्छलद्भि यवनवीरवर्याणा व्रजै

(समूहै.) नरेन्द्रकुलकोटे (शाखाया 'खाप') कर्ता दिनकर कोपादिव अभेदि अभिद्यत। संमुखयुद्धे मृता सूर्यं भित्त्वा उच्चगतिं गच्छन्तीति पुराणमर्यादा। तदनुसार जयसिंहसुभटखड्गैर्हता यवना सूर्यं भित्त्वा गता। तत्र कवेरुत्प्रेक्षा यत् क्षत्रियखड्गखण्डितैर्यवनै क्षत्रियजन्मदाता सूर्य प्रकोपकारणादेव विपाटित इति ॥२४॥

यत्तुङ्गोत्तुङ्गरिङ्गत्तुरगखुरपुटाक्रान्तविद्वेषिदेश-
क्षोणिप्रोद्यद्रजोभिर्व्यरचि दिवि परं भूतलं श्यामवर्णम्।
यद्वीरेन्द्रासिकृत्तं प्रतिनृपतिपदस्थापनाधारतायै
शङ्के यद्वारणेन्द्रैः प्रचुरकरपयःसीकरैर्द्रावितं तत् ॥२५॥

यस्य तुङ्गेभ्योऽपि उत्तुङ्गा (उन्नता) रिङ्गन्तश्च वेगातिशयेन भूमिनिलीना इव धावन्तश्च ये तुरगा तेषा खुरपुटै आक्रान्ता या विद्वेषि-(शत्रु)देशाना क्षोणि (पृथ्वी), तस्या (तत्सकाशात्) प्रोद्गच्छद्भि रजोभि दिवि आकाशे श्यामवर्ण परम् (अन्यद्) भूतल व्यरचि। यस्य (जयसिंहस्य) वीरेन्द्राणाम् असिभि (खड्गै) कृत्ताना खण्डिताना प्रतिपक्षिनृपाणा (सूर्यमण्डल भित्त्वा उपरि गच्छताम्) पदस्थापनस्य आधारो न स्यादिति ईर्ष्यया। यस्य गजेन्द्रै प्रचुरैः कराणा (शुण्डाना) पयःशीकरै तत् (भूतलम्) द्रावित प्रवाहितम्। खुरपुटाना इयती धूलिरुड्डीना यथा आकाशे अन्यद् भूतलमिव समजायत। किन्तु हस्तिना शुण्डाभि इयान् सीकरप्रवाह उच्छालितो येन स धूलिनिकरो नीचै प्रवाहित। तत्र शंकेपदवाच्या कवेरुत्प्रेक्षा यत् यदि भूतल निर्मित स्यात्तर्हि सूर्यमण्डलभेदिन शत्रव तत्र पद निक्षिप्य सुखेन गच्छेयु। अत एव तदीर्ष्यालुभि गजै निजशुण्डाभिस्तद् भूतल द्रावितम्। अनेन युद्धस्य भयकरताव्यञ्जनपुरस्सरं युद्धनायकस्य जयसिंहस्य शौर्यातिशयो ध्वन्यते ॥२५॥

यस्योद्यद्द्विपदानवारिभिरभूत्प्रस्थानभूः पङ्किला
सा नीता प्रकृतिं चलत्खुरपुटैरश्वैः कृतोर्द्ध्वक्रमैः।
इत्यालक्ष्य कृतत्रपैरिव गजैरुत्क्षिप्तशुण्डोच्चल-
द्वार्भिर्व्योम्नि रजोभरः शबलितो जम्बालपिण्डायते ॥२६॥

यस्य (जयसिंहस्य) उद्यद्भि उच्छलद्भि द्विपाना दानवारिभि (मदजलै) प्रस्थानस्य युद्धयात्राया भूमि पङ्किला कर्दमयुक्ता अभूत् । सा (भूमि) कृत ऊर्ध्वक्रम (उपरि उच्छलनम्) यै अत एव चञ्चलखुरपुटै अश्वै प्रकृति नीता यथावस्थिता कृता । हस्तिना मदजलैरार्द्रा भूमिरश्वाना खुरपुटै अशोष्यत इत्यर्थ । इदम् आलक्ष्य दृष्ट्वा 'हस्तिभि कृत कार्यम् अश्वैर्विलुप्तम्' इति सजनितलज्जै इव, अत एव उत् ऊर्ध्व क्षिप्ता प्रेरिता या शुण्डा तस्या. सकाशात् उच्छलद् वा (वारि जलम्) येषाम् एवविधैर्गजै व्योम्नि आकाशे (व्याप्त) रजोभर धूलिपुञ्ज शबलित मदजलमिश्रित कृत । अत एव स जम्बालस्य (कर्दमस्य) पिण्ड इवाचरति । अश्वै रजोभर उत्थापित, गजै निजशुण्डाजलैरार्द्रीकृत्य स कर्दमपिण्डो विहित । एव च गजै कृतमार्द्रतारूप कार्य यथा अश्वैर्विलुप्त तथा अश्वै कृत शुष्कधूल्युच्छालनरूप कार्य गजै पुनरार्द्रीकृतम् इति गजैर्निजस्य लज्जा निवारितेत्याशय । कृतत्रपैरिव इति वाच्यया हेतूत्प्रेक्षया सह 'जम्बालपिण्ड इवाचरति' इति उपमाया अङ्गाङ्गिभाव । अनेन सकरालकारेण च युद्धयात्राया उद्धतताद्योतनपुरस्सर नायकस्य प्रभुत्वातिशयो ध्वन्यते ॥२६॥

येन ब्रह्मपुरी कृताऽतिधवलैः कैलासशैलोपमै-
विप्राणां भवनैः सदा समुदयत्संपद्विलासाञ्चितैः ।
प्रत्यागारमुरुप्रकारहवनैर्यत्राग्निहोत्राण्यमु-
लीलादत्तचतुःपुमर्थपटलीजातादराणि स्फुटम् ॥२७॥

सर्वदा समुदयन् (उज्जृम्भमाण) य सपदा संपत्तीना विलास तेन प्रशस्तै विप्राणां भवनै (करणै) येन ब्रह्मपुरी (एतन्नामिका ब्राह्मणाना वसति) कृता । यत्र (ब्रह्मपुर्याम्) प्रत्यागार प्रतिगृहम् उरुप्रकारै उन्नतप्रकारैर्हवनै 'अग्निहोत्राणि' अशोभन्त । कीदृशानि? लीलयैव दत्ता या धर्म-अर्थादिचतु पुरुषार्थानां पटली (वर्ग , समूह) तस्या जातादराणि ॥२७॥

यत्र ब्राह्मणसद्मजालविवरप्रोत्थाग्निहोत्रानल-
प्रोद्यद्धूमपरम्परा घनरुचिर्नाऽज्ञायि विज्ञैरपि ।

प्रत्यट्टाल-लसद्गवाक्षपटलीपर्युप्तवैदूर्यभा-
संदोहे यमुनाऽलिकोकिलकुलश्यामे समुत्सर्पति ॥२८॥

यत्र (ब्रह्मपुर्याम्) यमुना च अलिकुल च कोकिलकुल च तद्वत् श्यामे। प्रत्यट्टाल प्रत्येक-अट्टालिकायाम्, लसन्ती या गवाक्षपरम्परा तत्र पर्युप्त (प्रोत व्याप्त) य वैदूर्य(हरितमणि) प्रभासदोह (पुञ्ज) तस्मिन् समुत्सर्पति बहिर्निस्सरति सति। घनरुचि मेघवत् नीला ब्राह्मण-गृहाणा जालविवरेषु प्रोत्थिता या अग्निहोत्रानलस्य प्रोद्यन्ती (उद्गच्छन्ती) धूमपरम्परा (राजि) सा विज्ञै अपि (पदार्थाना मिथोभेदज्ञै अपि) न अज्ञायत। गवाक्षविवरेभ्यो गारुत्मतमणीना ('पन्ना') नील प्रभापटल तथा निस्सरति स्म यथा तस्मिन्मिलितो धूमपुञ्जो निपुणैरपि न पर्यचीयत। वाच्येन मीलितोदात्त-सकराऽलकारेण ब्राह्मणगृहाणा सपत्त्यतिशयशालित्व, तेन च नायकस्योत्कर्षातिशयो ध्वन्यते ॥२८॥

यत्रौदीच्यब्राह्मणागारभूषामुग्धापाङ्गैर्जातकामाभिलाषम्।
कामाक्रान्तस्वान्तमुद्भ्रान्तमन्तश्चातुर्वर्ण्यं होमधूमः पुनाति ॥२७॥

यत्र (ब्रह्मपुर्याम्) उदीच्यब्राह्मणागाराणा भूषणभूता या मुग्धा (नववयस्का स्त्रिय) तासामपाङ्गै, कटाक्षैरिति यावत्। उत्पन्नकामेच्छम् अत एव मदनाऽऽयत्तमानस चातुर्वर्ण्य (ब्राह्मण-क्षत्रियादीन्) होमधूम पवित्रीकरोति ॥२९॥

यत्र त्रिसन्ध्यपठनाभ्युदितात्रिवेदीपूतात्मभिस्त्रिषवणाध्वरकर्मदक्षैः।
विप्रैस्त्रयीमयतनुर्भगवांस्त्रिमूर्तिराराध्यते त्रिविधतापविनाशनाय ॥३०॥

अभ्युदिता उज्जृम्भिता या त्रिवेदी (त्रयो वेदा) तया पवित्रान्त-करणै। त्रिसवन प्रातर्मध्यसायसन्ध्या, तत्र यत् यज्ञकार्यम् तत्र दक्षै चतुरै ॥३०॥

यत्रोच्चघोषपठदुद्धुरबाडवौघ-
कण्ठोत्त्थवेदललितस्वरसौष्ठवानाम् ।
आकर्णनेन मुषिताशय एष मन्ये
मध्येऽह्नि वासरमणिः स्थिरतां प्रयाति ॥३१॥

उद्धुर प्रौढो य. वाडवौघ (ब्राह्मणसमूह)। ललितो य· कण्ठस्वर तस्य सौष्ठवाना (सुन्दरतानाम्) आकर्णनेन वशीकृताशय वासरमणि सूर्य । मध्याह्ने क्षण सूर्य स्थिरीभवति तत्र चोरितचित्ततया स्थिरीभावस्योत्प्रेक्षा ॥३१॥

प्रत्यागारं मुरारेः समयडमडमड्डिण्डिमीदीर्घडंफा-
ढक्कानिःसानडक्कातत घनसुषिरानद्धवाद्यप्रणादैः ।
यज्ञेषु ब्रह्मयज्ञेषु च वितततमैर्वेदघोषैर्द्विजानां
चण्डप्रक्ष्वेडनौघैरिव कलिरगलद् यत्र संताड्यमानः ॥३२॥

मुरारे. प्रत्यागारं प्रतिमन्दिरम् । समये नीराजनादिसमये । डमडमन्ती डमडमशब्द कुर्वन्ती डिम्डिमी, डंफा ('डफ') डक्का ('डुग्गी') तत (वीणादि) घन (कास्यतालादि) सुषिर (वंशादि) आनद्ध (मृदङ्गादि) एवंविधवाद्यानां प्रणादै नि स्वनै । ब्रह्मयज्ञा वेदाध्ययनानि । चण्डप्रक्ष्वेड० प्रचण्डाना प्रक्ष्वेडनानां वीरसिंहनादाना समूहै· इव । ताड्यमान कलि (कलिकाल) अगलत् अनश्यत् ॥३२॥

श्रियं धत्ते यस्यामधिगिरिशिरः श्रीगणपते-
र्गृहं दूराद्दृश्यं सुखचितमणीभाभिररुणम् ।
ध्रुवं तस्या एव क्षितिपतिरमण्याः सुरुचिरे
ललाटे सिन्दूरैः कलितमिव सौभाग्यतिलकम् ॥३३॥

अधिगिरिशिर· अधिपर्वतशिखरम् (पर्वतशिखरोपरि) । सुखचिताना (जटितानाम्) मणीनां भाभि कान्तिभि· । स्त्रीलिङ्गान् मणि-

शब्दात् 'कृदिकारादक्तिन' इति ङीप् । तस्या क्षितिपतिरमण्या ब्रह्मपुरीरूपाया राजमहिष्या (व्यस्तरूपकम्) । गणपतेर्गृहम् ('गणेशगढ') ब्रह्मपुरीरूपराजमहिष्या ललाटे सिन्दूरैः कृत सौभाग्यतिलकमिव श्रिय धत्ते इति योजना ॥३३॥

या चाऽत्यन्तवलक्षलक्षणलसत्प्रासादलक्षोल्लस-
ल्लक्ष्मीः संनिधिसत्तडागतटगा सा तेन भातेतराम् ।
क्षीराम्भोनिधितीरशोभितरुचिं हीरांशुजालोज्ज्वलां
श्वेतद्वीपपुरीमपि प्रहसति श्वैत्याश्रिया वेश्मनाम् ॥३४॥

अत्यन्तवलक्ष (धवल) लक्षणै शोभमान च यत् प्रासादलक्ष तस्य उल्लसन्ती लक्ष्मी. (शोभा) यस्यामीदृशी । सनिधौ सन् (वर्तमान) य तडाग. (राजमल्लाख्य) तस्य तटगा । तेन (तडागेन) भातेतराम् अतिशयेन शोभते । हीराशु०—हीरकमणीना यत् अशुजाल (किरणसमूह) तेन उज्ज्वलाम् । वेश्मना गृहाणा श्वैत्यश्रिया श्वैत्यस्य धवलताया श्रिया ॥३४॥

यत्र ब्राह्मणमन्दिरेषु सतताभ्यासात्पठद्भिर्द्विजैः
श्रुत्वा पञ्जरसारिका अपि पठन्त्युच्चैः श्रुतीनां गणम् ।
विस्मृत्या पठतोऽपटून् किल बटून् यत्र क्रमं शिक्षय-
न्त्यक्षुण्णाखिलसंहिताक्रमविदस्ता विप्रभार्या अपि ॥३५॥

सतताभ्यासात् निरन्तर आवृत्त्यादिभि परिशीलनात् । श्रुतीना वेदानाम् । अक्षुण्णा०—अक्षुण्णानाम् अखण्डिताना समग्रसहिताना क्रमपाठ विदन्ति (जानन्ति) ता ब्राह्मणभार्या अपि क्रम क्रमपाठम् ॥३५॥

यत्रात्यन्तसमीपशोभिसुमहाकासारपर्यन्तग-
प्रोत्फुल्लामलपुण्डरीकभवनस्याऽन्तः समुद्भासिनी ।
साक्षात् केशववक्षसि स्थितिमती लक्ष्मीः सदोपासिता
विप्रौघैः परमप्रसन्नहृदया धत्ते सदा संनिधिम् ॥३६॥

सुमहत कासारस्य (जयसागराख्यतडागस्य) पर्यन्ते (तटप्रान्ते) गतानि प्रोत्फुल्लानि यानि अमलपुण्डरीकाणि (कमलानि) तद्रूपस्य भवनस्य अन्त अभ्यन्तरे शोभिनी। तथा 'यत्र (ब्रह्मपुर्याम्) गृहस्य अत्यन्तसमीप-शोभिन सुमहाकासारस्य पर्यन्त(तट)गत प्रोत्फुल्ल प्रहृष्ट निर्मल (स्वच्छ) यत् 'पुण्डरीक' इति जनतासु प्रसिद्धस्य जयसिंहगुरो (रत्नाकरस्य) भवन तस्य अभ्यन्तरे शोभमाना' अयमप्यर्थ सूच्यते। तेन स्वमित्रस्य पुण्डरीक-महोदयस्य वैभवातिशय सविनोद ध्वन्यते। विप्रौघै: (ब्राह्मणसमूहै) सदा उपासिता। प्रसन्नहृदया सती सर्वदा सनिधि सामीप्य धत्ते ॥३६॥

यत्रोन्नता धवलवस्त्रलताः पताकाः
स्वर्गङ्गया सदृशमुज्जिहते प्रभाभिः।
श्यामांशुका यमुनया सममर्यमाङ्के
रक्तांशुका विधिगृहेऽथ सरस्वतीवत् ॥३७॥

धवलानि लताकाराणि वस्त्राणि यासाम् ईदृश्य उन्नता पताका प्रभाभि कान्तिभि स्वर्गङ्गासदृशम् उज्जिहते (ऊर्ध्वमुड्डीयन्ते)। श्यामवस्त्र-युक्ता पताका अर्यम्ण सूर्यस्य (पितु) अके यमुनया समम्, रक्ताशुका (पताका) विधे ब्रह्मण गृहे सरस्वतीवत् (उज्जिहते)। ब्रह्मपुर्या उपरि त्रिवेणी समुज्जृम्भते इति कवे कल्पना ॥३७॥

यत्रोदीच्यमहाराष्ट्रब्राह्मणानां गृहे गृहे।
भान्ति भिक्षाभृतां साक्षादन्नपूर्णा इव स्त्रियः ॥३८॥

ब्राह्मणत्वाद् भिक्षा चरन्ति तादृशाना गृहे अन्नपूर्णा इव सपद्गृह-भृता शोभन्ते। भर्तृणा ब्राह्मणाना शिवसाम्य व्यङ्ग्यम् ॥३८॥

यत्र शुद्धदयाधीता भीतावीताः खलात्कलेः।
तुलितद्रौपदीसीनाः स्फीता (गीता) द्विजस्त्रियः ॥३९॥

शुद्धे दया च अधीत (अध्ययन) च यासा ता । अथवा शुद्धया दयया (ईश्वरस्य) अधीता अधिगता । खलात् पिशुनात् कले भीता- अतएव आवीता परित परिवृता । स्फीता स्वच्छा पवित्रा इति यावत् । गीता जनै श्लाघिता ॥३९॥

यत्रोच्चघोषपठदुद्धुरकण्ठविप्र-
सत्सामगानसतताभ्यसनप्रवीणाः ।
कुर्वन्ति पञ्जरशुका अपि चारु चित्रं
तादृक्स्वरेण जनचित्तविमोहनेन ॥४०॥

उद्धुरकण्ठा उदार कण्ठो येषाम् ईदृशा ये विप्रा- तेषा सत समीच सामगानस्य अभ्यसने प्रवीणा । पञ्जरस्था शुका अपि जनाना चित्तविमोहकेन तादृशेनैव स्वरेण चित्रम् आश्चर्य कुर्वन्ति (जनयन्ति) ॥४०॥

यस्यां समाघ्राय शुभाग्निहोत्रप्रभूतमुच्चैर्हुतहव्यवाहम् ।
कामादिकेभ्यः कलिदूषणेभ्यस्तदैव मुक्ता मनुजा भवन्ति ॥४१॥

शुभ यत् अग्निहोत्र तत्र प्रभूतम् (उत्पन्नम्)। हुत कृतहवन हव्यवाहम् अग्निम् आघ्राय, अग्निजनित गन्धमाघ्रायेत्यर्थ । कले दूषणभूतेभ्य कामक्रोधादिभ्य ॥४१॥

गेहेषु प्रतिनिष्कुटं द्विजनुषां यत्र स्फुटं शिक्षित-
प्रोन्मुक्ताः प्रतिवृक्षनीडमुषिताः पुत्रप्रियासंयुताः ।
संतुष्टाः पतगा अपि प्रतिपदं राज्ञे दिशन्त्याशिषः
श्रीमानेष महीतले जयपुराधीशो जयी स्तादिति ॥४२॥

द्विजनुषा द्विजाना गृहेषु प्रतिनिष्कुट प्रत्येकगृहोद्याने। पूर्व शिक्षिता पश्चात् उन्मुक्ता (पञ्जराद् विसृष्टा) । प्रतिवृक्षनीड प्रत्येकवृक्षकुलाये उषिता कृतनिवासा । पुत्रै प्रियया च सहिता सकुटुम्बा इति यावत् । पतगा पक्षिणोऽपि । अपिना सकुटुम्बा ब्राह्मणास्तु निश्चितमेव आशिष- प्रददत्येव इत्याशय ॥४२॥

यत्संनिधौ जयति दीर्घतरस्तडागः

पश्यत्प्रसन्नजललोचनदत्तरागः ।

अम्भोजकाननमधून्मदमञ्जुगुञ्ज-

द्वीणाकलस्वनमनोज्ञमिलिन्दपुञ्जः ॥४३॥

पश्यना ततश्च प्रसन्नाना जनाना लोचनेपु दत्तो राग (अनुराग) येन स । कमलवने मधुना (मकरन्देन) उन्मद, मञ्जु गुञ्जन्, अत एव वीणावत् कल(मनोहर) नि स्वनेन मनोज्ञ मिलिन्दाना (भ्रमराणा) पुञ्जो यस्मिन् ईदृश । तडाग अस्ति ॥४३॥

या मातङ्गतुरङ्गवर्यकलितः सोल्लासपद्माश्रयो

मध्येऽम्भःस्थितपुण्डरीकनयनः सानन्दभूभृत्प्रियः ।

अन्तर्वारिनिमग्नबाडवमुखाऽऽचान्तोदकः प्राणिनां

पातालोचितभूरिविस्तरभरः साक्षात्सरस्वानिव ॥४४॥

यस्तडाग समुद्र इव । तथाहि—ऐरावत-उच्चैःश्रवोयुक्त समुद्र, स्नानाद्यर्थ समागतै गजाश्वैर्युक्तस्तडाग । पद्माया लक्ष्म्या आश्रय समुद्र., पद्मानामाश्रयस्तडाग । मध्येऽम्भ मध्येजल स्थित पुण्डरीकाक्षो यस्मिन् (समुद्र), पुण्डरीकाणि (कमलानि) एव नयनानि यस्य (तडाग.) । सानन्दा पक्षयो अच्छेदनेन सुप्रसन्ना भूभृत (मैनाकादय पर्वता) यस्मिन् (समुद्र), सानन्दस्य भूभृत. राज्ञ प्रिय (तडाग) । वाडवाग्निमुखेन आचान्तजल (समुद्र.) विप्रमुखै आचान्तजल तडाग । पातालपर्यन्तगत भूरि विस्तरभर यस्य (उभयत्र समानम्) ॥४४॥

यश्चतुर्मुखमनोहरः स्फुटश्रीधरः सकललोकशंकरः ।

भाति सर्वजगदेकसंश्रयो ब्रह्मविष्णुशिवमूर्तिरद्भुतः ॥४५॥

चतुर्भिर्मुखैर्मनोहरो ब्रह्मा । चतुर्मुख चतुरस्र मनोहर तडाग । श्रिय लक्ष्मी धरति विष्णु, श्रिय शोभा धरति तडाग । सकललोकाना श कल्याण करोति शिव तडागश्च । अत एव त्रिमूर्तिरय सकलजगताम् एक सश्रय । (तडागोपि विशालत्वात् सर्वस्य जगत एक आश्रय) । तत एव अद्भुत ॥४५॥

वक्त्रश्रीजितपद्मकाननरुचिर्दृङ्निर्जितेन्दीवरो
वक्षोजार्जितकोकलोकविजयस्ताम्यत्तरङ्गद्युतिः ।
प्रव्यक्तत्रिबलिश्रियाऽलकलताशोभाभिभूतभ्रमद्-
भृङ्गो वीक्ष्य ललामविप्रललनाः शङ्केऽनिशं कम्पते ॥४६॥

ललाम (अलकार) भूतविप्रललना वीक्ष्य अय तडाग अनिश कम्पते । वायुना तडागस्य कम्पे स्वाभाविकेऽपि कविर्हेतुमुत्प्रेक्षते यत् विप्रललनाभिस्तडागस्य प्रत्येकवस्तु निर्जितम् । अत एव भयेन लज्जया वा अय तडाग कम्पते । तथा हि-मुखश्रिया जिता पद्मकाननस्य रुचि (कान्ति) यस्य, दृग्भ्या निर्जितानि इन्दीवराणि यस्य । वक्षोजाभ्याम् अर्जित कोकलोकाना विजयो यस्य । प्रव्यक्तया त्रिवलि (उदरस्थरेखात्रय)-श्रिया ताम्यन्ती (लज्जया म्लायन्ती) तरङ्गद्युतिर्यस्य । अलक (केश)-लताशोभया अभिभूता भ्रमन्तो भृङ्गा यस्य ॥४६॥

यत्पार्श्वे विलसत्सुवर्णकलशश्रीविस्फुरच्छेखरः
पूजाकालसमागतद्विजवरप्रोद्भूतसंमर्दकृत् ।
लीलालब्धचतुःपुमर्थपटलीसोत्साहयात्राजनः
कैलासाचलचारुतुङ्गधवलः श्रीशङ्करस्याऽऽलयः ॥४७॥

विलसन्ती या सुवर्णकलशस्य (मन्दिरगुलमटिकाशीर्षस्थस्य) श्री तया विस्फुरन् (देदीप्यमान) शेखर मौलिभागो यस्य । पूजाकाले समागताना द्विजवराणा प्रोद्भूतस्य (सजातस्य) समर्दस्य (सकुलताया 'भीड') कृत् कारक । लीलयैव लब्धाया चतु पुमर्थानाम् (धर्म-अर्थादिचतु - पुरुषार्थानाम्) पटल्या (समूहे) सोत्साहो यात्रिकजनो यस्य । कैलासपर्वत-वत् चारु तुङ्ग धवलश्च । श्रीशकरस्य (श्रीयागेश्वरस्य) आलय (मन्दिरम्) यस्या (ब्रह्मपुर्या) पार्श्वे अस्ति ॥४७॥

यस्यां गृहाणि शिखरैः शशिनं स्पृशन्ति
तत्स्थाः शुका उडुषु ताण्डवयन्ति तुण्डम् ।

शालिस्थतण्डुलधियाऽपि च मौक्तिकानां
भ्रान्त्या प्रसारितकराश्च भवन्ति मुग्धाः ॥४८॥

यस्या गृहाणि निजशेखरै (निजमौलिभागै) चन्द्र स्पृशन्ति। तत्स्था शिखरस्था शुका शालि(व्रीहि)मध्यस्थिततण्डुलबुद्ध्या उडुपु तारकेपु तुण्ड मुख (चञ्चू) चालयन्ति। मुग्धा (मुग्धललना) मौक्तिकाना भ्रमेण (उडुपु) प्रसारितकरा भवन्ति। भ्रान्तिमानलकार, तेन च गृहाणामत्युन्नतत्व व्यङ्ग्यम्। तेनापि च तन्निर्मापकस्य कथानायकस्य उत्कर्षातिशयश्चरम व्यङ्ग्यम् ॥४८॥

अस्यां संततमध्वरेषु कलिताह्वानो मरुत्वान् वस-
त्यस्याऽतीव वियोगतश्च न शची प्राप्नोति दुःखं हृदि।
सा वैवाहिकनित्यमङ्गलविधिष्वासादयन्ती सदा
सांनिध्यं यदसाविहैव कुरुते वास्तव्यमस्तव्यथम् ॥४९॥

अस्या (ब्रह्मपुर्याम्) अध्वरेपु (यज्ञेपु) कृताऽऽवाहन मरुत्वान् (इन्द्र) सतत वसति। अस्य (इन्द्रस्य) वियोगत शची (इन्द्राणी) हृदि दु ख न प्राप्नोति। यत वैवाहिकविधानेषु सदा तस्य सानिध्यं (सहवासम्) प्राप्नुवन्ती सा असौ (शची) इहैव अस्तव्यथ (अस्ता तिरोहिता व्यथा पीडा यस्मिन्) ईदृश वास्तव्य निवास कुरुते। विवाहमङ्गलेपु शचीपुरन्दरौ नित्य सह आहूयेते। अत एव नित्यमिहैव वसन्ती शची इन्द्रस्य विरह नानुभवतीत्याशय। नित्योत्सवत्व पुर्या अस्या ध्वन्यते ॥४९॥

महोच्चप्रासादप्रकटवलभीषु प्रमुदिताः
कुरङ्गाक्ष्यो यस्यां द्विजवरगृहाभूषणपराः।
विमानाग्रस्थाभिस्त्रिदशवनिताभिः प्रतिपदं
शुभान् वार्तालापान् विदधति मनोहारिवचसः ॥५०॥

वलभीपु शिरोगृहेपु ('अटारी') प्रमुदिता, द्विजवरगृहाणाम् आभूपण(प्रसाधन)तत्परा कुरङ्गनयना (स्त्रिय) विमानाऽग्रस्थिताभिः देवाङ्गनाभि वार्तालापान् कुर्वन्ति ॥५०॥

एतादृशीं ब्रह्मपुरीं चकार श्रीमत्सवाईजयसिंहदेवः ।
यस्यां स्थिता विप्रवराः प्रशस्तक्रियाभृतोऽनेकमखैर्यजन्ते ॥५१॥

प्रशस्तक्रियाकारका विप्रवरा अनेकै मखै (यज्ञै) यजन्ते ॥५१॥

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एष द्वितीयकः ॥

इति श्रीमदीश्वरचरिते ब्रह्मपुरीवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥



तृतीयः सर्गः

तेन प्रोद्भूतवप्रप्रसरणपरिखातोरणात्यन्तदुर्गं-
प्रोद्यत्प्रासादशीर्षध्वजवसनमिलच्चन्द्रबिम्बातिरम्यम् ।
श्रीसंदोहेन पूर्णं व्यरचि पुरमतीवोज्ज्वलं रत्नभाभि-
र्भाति श्रीमत्सवाईजयपुरमिति यन्नाम लोके प्रसिद्धम् ॥ १ ॥

प्रोद्भूतै वप्र (कोट्ट) प्रसरण (गोपुरसमुखप्रसार) परिखा (खाई)-तोरणै (बहिर्द्वारै) अत्यन्तदुर्गमम् । प्रस्फुरन्ति यानि प्रासाद-शिखरेषु ध्वजवस्त्राणि तै सह मिलता चन्द्रबिम्बेन अतिरम्यम् । प्रासादा इयदुन्नता येन तन्मौलिस्थपताकाश्चन्द्रबिम्ब चुम्बन्तीत्याशय । रत्नप्रभाभि. अतीव उज्ज्वलम् ॥ १ ॥

अस्तातङ्काः संनिरस्ताघपङ्काः पीडाशङ्कावर्जिता निःकलङ्काः ।
विध्वस्ताऽऽधिव्याधितापानुबन्धाः सर्वे यस्मिन्सत्यसन्धा वसन्ति ॥२॥

अघपङ्क पापकालुष्यम् । सत्यसन्धा सत्यप्रतिज्ञा: ॥ २ ॥

निरस्तखलनागराः सुजनतासुधासागराः
समस्तनयनागराः सरसतासदोज्जागराः
परोध्दृतिसदानवाः क्षपितदुष्टहृद्दानवाः
स्फुरद्दुरितदानवा इह वसन्ति ये मानवाः ॥ ३ ॥

निरस्ता. खला (दुष्टा) नगरवासिनो येभ्य । समस्तनयेषु (नीतिषु) नागरा (चतुरा) । सदा उज्जागरा (जागरूका. सावधाना) । परस्य उद्धारे (सहायतायां) सदा आनवो नम्रता येषाम् । उपकार कृत्वापि येषा गर्वो न, प्रत्युत उपकृतस्य स्तुतिरेव क्रियते इत्याशय । क्षपिता: नाशिता दुष्टहृदयरूपा दानवा यैस्तादृशा । स्फुरन्ति दुरितानि दान्ति (नाशयन्ति) तादृशाश्च ये नवाश्च-अर्थात् आपत्तिहिंसने सर्वदा नवोत्साहेन प्रवृत्ता. ॥ ३ ॥

आलिङ्गनं कुरबकेषु पराङ्गनानां मुख्यासवाऽऽस्वदनमैक्ष्यत केसरेषु ।
अम्भोरुहेषु निरणायि कुशेशयत्वं स्याल्लक्ष्मणामलनमत्र च सारसेषु ॥४॥

मुख्यस्य मुखस्थापितस्य आसवस्य आस्वादन केसरेषु (वकुलेषु) । लक्ष्मणा सारसस्य पत्नी तस्या आमलनम् आमर्द्दनम् । न तु लक्ष्मणस्य (रामाऽनुजस्य) अमलन अधारण मनुजेषु ॥ ४ ॥

आरान्म्लेच्छमुखावलोकनमिह स्यादाकरेषु स्फुटं
नाडीशोधनमामनन्ति नितरां नाडिन्धमेषूच्चकैः ।
संभाव्या वरवर्णिनीविरहिता श्राद्धान्नभुक्तौ तथा
मातङ्गेषु मदोद्गमः प्रतिपदं नो मानवेष्वीक्ष्यते ॥ ५ ॥

आकरेषु खनिषु म्लेच्छाना तत्कार्यकर्तृणा मुखदर्शनम्, न तु मानवेषु । नाड्या फूत्करणनाल्या शोधन स्वच्छीकरण नाडिन्धमेषु स्वर्णकारेषु । न तु मानवेषु हस्तनाड्या शोधनम्, सर्वदा सवलसुस्थत्वात् । श्राद्धादि-कार्येषु धर्मशास्त्रीयनियमात् स्त्रीविरहो नान्यत्र ॥ ५ ॥

यत्र नीलमणिवेश्मदीधितिस्तोममेत्य निशि सोमभास्वपि ।
निर्विशङ्कमसिताऽभिसारिका यान्ति कान्तसदनं मुदान्विताः ॥६॥

नीलमणिनिर्मितगृहाणा दीधितिस्तोम किरणसमूह लब्ध्वा सोम-भासु अपि चन्द्रस्य प्रभासु (चन्द्रिकासु) अपि । असिताऽभिसारिका, असिते अन्धकारे अभिसरणपरा स्त्रिय ॥ ६ ॥

यत्राभ्रंलिहसौधजालखचितैर्माणिक्यलक्षैर्दिवि
व्याकीर्णेष्वरुणारुणद्युतिभरेष्वागत्य सन्ध्यागणः ।
अश्रान्तं वसतीव दूरविसरत्सिन्दूरपूरद्युति-
र्विप्रैर्नित्यमुपासितः प्रतिपदं दातुं प्रसन्नो वरान् ॥ ७ ॥

अरुणादपि अरुणेषु द्युतिभरेषु व्याकीर्णेषु परित प्रसृतेषु । सन्ध्यागणो विप्रैर्नित्यमुपासित अतएव प्रसन्न सन् प्रतिपद वरान् (अभीष्टमनोरथान्) दातु सतत वसतीव ॥ ७ ॥

यत्र वाजिमखयाजिभूपतेः कीर्तिशीतकरकौमुदीभरे ।
कान्तसद्म सितवेषधारिणी याति मेघसमयेऽभिसारिका ॥ ८ ॥

वाजिमखोऽश्वमेध तेन यजनशीलस्य भूपते । कीर्तिरूपो य शीतकरश्चन्द्र ॥ ८ ॥

उत्तुङ्गसौधवलभीविलसद्गवाक्षपर्युप्तरत्नकिरणावलिचन्द्रिकासु ।
जोषं प्रयान्त्यसितपक्षनिशास्वपीह मुक्तान्धकारभरभूरिभया मनुष्याः॥९॥

गवाक्षेषु पर्युप्तानि जटितानि यानि रत्नानि तेषा किरणावलिरूप-चन्द्रिकासु । असितपक्षस्य कृष्णपक्षस्य ॥ ९ ॥

दन्तज्योतिष्युदयति मम स्वल्पभासाममीषां
क्रेता मूल्यं बत परिमितं दास्यतीत्याशयेन ।
यत्राऽऽसीना रतिरिव वणिक्प्रेयसी वीथिकायां
विक्रीणीते मुकुलितमुखी संज्ञया मौक्तिकानि ॥ १० ॥

मम दन्ताना ज्योतिषि प्रकाशे उदयति सति स्वल्पा भाः (कान्तिः) येषामीदृशानाम् । दन्तानामग्रे मौक्तिकाना स्वल्पा कान्तिरित्यर्थः । मुकुलित मुद्रित मुख यया, अतएव सञ्ज्ञया इङ्गितैः विक्रीणीते । वीथिकाया (गली) मौक्तिकविक्रयेण नगरस्य समृद्ध्यतिशय, दन्तैः मौक्तिकविजयेन च विक्रेत्र्या रूपातिशयो ध्वन्यते ॥ १० ॥

कुन्दं यत्र रदत्विषा विदलितं चाम्पेयमङ्गद्युति-
प्राक्चूर्णीकृतसौभगं विचकिलं मन्दस्मितैर्निर्जितम् ।
अत्यर्थं मुखचन्द्रकान्तिपटलीसंकोचि पङ्केरुहं
मालाकारमृगीदृशः प्रतिपदं कष्टेन विक्रीणते ॥११॥

रदत्विषा दन्तकान्त्या । चाम्पेय चम्पापुष्पम् अङ्गद्युत्या चूर्णीकृतं सौभग सौन्दर्यं यस्य तादृक् । विचकिल द्विपुटा मल्लिका । मुखकान्ते पटलेन सकोचशालि ॥ ११ ॥

काश्मीरपुण्यवीथीषु यत्रार्कनवरश्मयः ।
नागरीवदनाम्भोजप्रीत्येव न्यवसंश्चिरम् ॥१२॥

काश्मीरस्य केसरस्य पण्यवीथीषु विपणिषु । केसररागजनिता रक्तता सदा भवति, अत कविर्हेतुमुत्प्रेक्षते यत् नेय रक्तता किन्तु नगर-निवासिनीना मुखरूपकमलाना प्रीत्या बालार्कस्य रक्ता किरणा सर्वदा निवसन्तीति ॥ १२ ॥

नानारत्नमनोहरः परिलसन्मुक्तागणो विद्रुमैः
पूर्णश्चन्द्रविवृद्धिमानविरतं लक्ष्मीविलासाञ्चितः ।
गम्भीरोऽखिललोकजीवननिधिर्गर्जन् सदा निर्भरं
वैपुल्येन यदापणो विजयते साक्षात्सरस्वानिव ॥१३॥

यस्य आपणो नानारत्नैर्मनोहर । तथा हि-नगरनिवासिधनिकेषु विक्रय्यपण्येपु च मुक्ता-विद्रुमा सन्त्येव । चन्द्रेण चन्द्रप्रकाशेन शोभाविवृद्धिमान् । किवा चन्द्रेण कर्पूरेण । लक्ष्म्या (सपद) विलासै पूजित । जीवनस्य जलस्य निधि समुद्र, जीवनस्य जीवितस्य (जीविकाया वा) निधि आपण । लोकाना कोलाहलैर्गर्जन् शब्द कुर्वन् । अतएव नगरस्याऽऽपण समुद्र इव ॥ १३ ॥

समन्ततः कोटिश आव्रजद्भिर्निरन्तरं तण्डुलमुद्गभारैः
नरं नरं वीक्ष्य परं भरन्ती यत्राऽन्नपूर्णा वसतीव नित्यम् ॥१४॥

समन्तत आव्रजद्भि· आगच्छद्भि तण्डुलमुद्गाना राशिभि· । प्रत्येकनर भरन्ती अन्नपूर्णा अत्र वसतीव ॥ १४ ॥

यत्राऽगण्यसुपण्यवीथिविलसत्कर्पूरकालागुरु-
श्रीखण्डप्रकरप्रभूतसुमनःसौरभ्यधारामिषात् ।
आरात्कोविदकीर्त्यमानविपुलश्रीवाजिमेधैकयाट्
श्रीसम्राड्जयसिंहकीर्तिरुदयत्यावासयन्ती दिशः ॥ १५ ॥

कर्पूरादीना प्रकरश्च सुमनासि (पुष्पाणि)च एतेषा सौरभप्रवाहस्य मिषात् । आरात् दूरात्, अर्थात् दूरदूरदेशीयै कोविदै· कीर्त्यमाना विपुला श्रीर्यस्य, वाजिमेधेन एक यजते तादृशस्य जयसिहस्य कीर्तिर्दिश आवासयन्ती (आमोदयन्ती) उदयति अर्थात् इय सौगन्ध्यस्य धारा नास्ति सेयमश्वमेधयाजिनोऽस्य कीर्तिरस्तीति भाव ॥ १५ ॥

यस्मिन्संचरमाणपौररमणीरम्याङ्घ्रिपद्मान्यहो
　　काचाऽऽबद्धमहीतलप्रतिफलच्छायाच्छलेन स्फुटम् ।
सेव्यन्ते कमलावलीभिरमलास्येन्दुप्रभानिर्जित-
　　श्रीसंदोहविभूतिभिः सरभसं सार्थं स्थिताभिः सदा ॥ १६ ॥

रमणीरम्याङ्घ्रि (चरण) पद्मानि काचाच्छादिते महीतले प्रतिविम्वस्य च्छलेन आस्येन्दु (मुखचन्द्र) प्रभानिर्जित शोभासदोह(समूह)स्य वैभव यासामीदृशीभि अतएव सार्थं (सार्धम्) स्थिताभि कमलराजीभि. सेव्यन्ते । कमलावलीना शोभावैभव रमणीना मुखचन्द्रेण निर्जितम् अतएव निर्जिता कमलावल्य चरणप्रतिविम्वच्छलेन रमणीचरणानि सेवन्ते इत्याशय· ॥ १६ ॥

यत्रोर्ध्वमध्यतलवेश्मनिवासिलोक-
　　सानन्दसम्पदुदयं सततं समीक्ष्य ।
त्रैलोक्यवासरचनाऽजनि नान्तरीयं
　　स्वं हस्तलेखमवधारयितुं विधात्रा ॥ १७ ॥

यत्र जयपुरे उन्नत-मध्यम-निम्नेतित्रिविधभवनेपु निवासिना लोकानामानन्दसहिताया सपत्तेरुदय दृष्ट्वा । ब्रह्मणा स्वकीय हस्तलेख स्थिरीकर्तुम् इय नान्तरी आवश्यकी त्रैलोक्यवासरचना अजनि उत्पादिता । यथा कश्चित् स्थिरां काञ्चन लिपि जनयिष्यन् पूर्वं पाण्डुलिपिम् (अस्थिरां लिपिम्) करोति तथा विधात्रा (ब्रह्मणा) लोकाना कृते त्रैलोक्यवासस्य रचनार्थं इय नान्तरी (आवश्यकी) अभ्यासार्था जयपुरस्य त्रिषु खण्डेपु सुखपूर्विका रचना अजनि जनिता । त्रैलोक्यरचनासाम्येन जयपुरस्य परमविस्तृतत्व महाश्रीशालित्व च ध्वन्यते ॥ १७ ॥

यत्र स्वर्णाद्रिवर्णाश्चलविबुधधुनीधौतदोधूयमान-
　　ध्यानैकज्ञायमानध्वजवसनभृतः कान्तिभिर्भान्ति सौधाः ।
उत्तुङ्गोत्तुङ्गशृङ्गस्थलसदनमतिक्रान्तनक्षत्रकान्ताः
　　प्रातर्जातभ्रमान् ये विदधति भुवने कोकलोकान्विशोकान् ॥१८॥

स्वर्णाद्रि (सुमेरु) वत् वर्ण (राग) येषा ते । चलया विबुधधुन्या (आकाश-गङ्गया) धौत, दोधूयमान (वातेन प्रस्फुरत्) । ततश्च विमल चञ्चल पताकावस्त्रमाकाशगङ्गायामज्ञेय स्यात् ? अत आह-ध्वानेन 'फर्र फर्र' इति प्रस्फुरणशब्देन 'वस्त्रमिदम्' इति ज्ञायमान ध्वजवस्त्र बिभ्रति तादृशा सौधा (धनिना हर्म्याणि) कान्तिभि शोभन्ते । (येषा सौधानाम्) अतितुङ्गशृङ्ग (मौलि) स्थलसदन (गृहम्) म् अतिक्रान्तै नक्षत्रै कान्ता (मनोहरा) ये (सौधा) प्रात काले भ्रान्तान् चक्रवाकान् पुन शोकरहितान् कुर्वन्ति । सौवर्णवर्णान् सौधान् अत्युन्नतान् दृष्ट्वा चक्रवाकाना पूर्व भ्रमो भवति यत् अय सुमेरुरस्ति येन किल प्रियवियोगकारिणी रात्रिर्जनिता । ततो ध्वजवस्त्र-शब्दादिभि सौधाना परिचये सति तेषा भ्रमनिवृत्त्या शोकापगमो भवतीत्याशय ॥ १८ ॥

एत्य सायमनुसौधमुदीतैर्यत्र पौररमणीमुखचन्द्रैः ।
भाति पूर्णशतचन्द्रमिवाऽभ्रं कामिनां किमपि दृक्कुमुदेषु ॥१९॥

अनुसौध सौधस्य समीपे उदीतै उदितै आगतैरित्यर्थ । 'ईङ्गतौ' । दृग्रूपेषु कुमुदेषु (रात्रिविकासिकमलेपु) मुखचन्द्रोदये विकासित्वात् ॥ १९ ॥

यत्र राजपथसंचरमाण स्वैरिणीनयनलासविलासैः ।
जीवतीव सततं रतिकान्तः क्रुद्धशम्भुनयनाऽनलशान्तः ॥२०॥

शान्तो मृत । रतिकान्त काम ॥ २० ॥

विस्तीर्णराजपथसंचरमाणराजलोकावलोकरसपूर्णगवाक्षजालैः ।
अट्टालिका मृगदृशां वदनैर्नितान्तं संजायते विकचपुष्करिणीव यत्र ।२१।

राजलोकानामवलोकनरसेन पूर्णानि गवाक्षजालानि यै, ईदृशै वदनै अट्टालिका (शिरोगृहम्) प्रफुल्ला पुष्करिणी कमलिनीव । मुखानि कमल-स्थानीयानि ॥ २१ ॥

यच्चायोध्याऽविजेयं विलसितमधुरोदारमुद्दाममाया-
स्थानं शश्वत्प्रकाशीभवदमितगुणं शोभिकाञ्चीशुभाङ्गम् ।
युक्तं भासोज्जयिन्या कनकमयशुभद्वारकाभामिरामं
स्वीयैः सम्पत्समूहैरुपहसति पुरीः सप्त निःसाम्यमेकम् ॥२२॥

जयपुरम् अयोध्यम् (योधयितुमशक्यम्) अविजेय च । विलसितं च मधुर च उदारं च । उद्दामाया उत्कटाया मायाया. मोहकशक्ते स्थानम् । काञ्च्या (मेखलया) सुन्दरशरीरम् (तन्निवासिस्त्रीणाम्) । उज्जयिन्या उत् उत्कृष्ट जयशालिन्या भासा कान्त्या युक्तम् । शुभाना अरकाणा (द्वाराणाम्) आभाभि अभिरामम् । स्वार्थे कः । अयोध्या-मथुरा-मायेत्यादिक्रमिकपदार्थाना क्रमशो वर्णनात् रत्नावली अलकार ॥ २२ ॥

अनेकपाकशासनप्रकाशिताऽतिसौष्ठवै-
द्विजाधिपैर्गुरूत्तमैर्विराजितं समन्ततः ।
यदेकपाकशासनप्रशासनप्रभाविनं
दधानमेककं गुरुं हसत्यहो हरेः पुरम् ॥ २३ ॥

अनेके पाका (द्राक्षापाक—वृन्ताकपाकादय) येपु ईदृशेषु शासनेपु (आलकारिकशास्त्रेपु)प्रकाशितम् अतिसौष्टव यै. ईदृग्गैर्गुरुश्रेष्ठैर्विराजितम् । एको य पाकशासन. (इन्द्र) तस्य प्रशासनेन शिक्षणेन प्रभुत्वशालिन गुरुं वृहस्पति दधत् हरे (इन्द्रस्य) पुरं हसति ।।२३।।

प्रतिपदधनदाधिष्ठितमुपहसतितरां यदेकधनदामलकाम् ।
सद्रूपसेवितं यत्कुरूपसेव्यं च हस्तिनापुरमनिशम् ॥ २४ ॥

प्रतिपद धनदायकै (वदान्यै) अधिष्ठित यत्, एक. धनद (कुवेर) यस्याम् ईदृशीमलकाम् । तथा सद्रूपै सुरूपै सेवित यत् कुत्सितरूपै. सेव्य हस्तिनापुरम् उपहसति । वास्तवे तु कुरुमि (धार्तराष्ट्रै) उपसेव्यम् ।।२४।।

यत्राऽभ्रंकषजातरूपशिखरैः संलग्नतारागण-
व्याप्तव्योमतलच्छलेन दधते प्रासादभूमीभृतः ।
पर्युप्ताऽमलमञ्जुमौक्तिकमयप्रोद्भासिगारुत्मत-
ग्रावग्रामकिरीटकोटिकलनां कृष्णात्रियामास्वपि ॥२५॥

यत्र प्रासादरूपा. भूमीभृत (पर्वता) । अभ्रकपै गगनचुम्बिभि- र्जातरूपस्य कनकस्य शिखरै. । सलग्नतारागणैर्व्याप्तस्य व्योमतलस्य

मिषेण पर्युप्त (जटित) निर्मलमौक्तिकमय्या, प्रोद्भासी (देदीप्यमान) गारुत्मतग्रावग्राम (हरितमणि रत्नसदोह) यस्याम् ईदृश्या किरीटकोटे (किरीटाना कोटिसख्याया, कोटिसख्यककिरीटानामिति यावत्) कलना क्रियां दधते धारयन्ति। प्रासादशैला सलग्नतारागण नीलमाकाश निजशेखरै तथा धारयन्ति यथा मौक्तिकजटित हरितमणीना किरीटमेभिर्मस्तके धारित स्यात्॥ २५॥

सकलनगरस्तोमैश्वर्यं प्रकाशयितुं ध्रुवं
वहति रुचिरं चिह्नं यच्चक्रवर्तिमहीपतेः।
स्फुरदतिसमीपोद्यत्पर्वप्रगर्वितशर्वरी-
रमणसुमहाबिम्बव्याजात्सितातपवारणम्॥२६॥

यत् (जयपुरम्) नगरस्तोमस्य (समूहस्य) ऐश्वर्य स्वामित्व प्रकाशयितुं चक्रवर्तिनृपस्य यत्चिन्ह तत् सितम् आतपवारण (छत्रम्) वहति, कथम्? उच्चत्वात् अतिसमीपे एव उदयत पर्वणि (पूर्णिमायाम्) प्रगर्वितस्य शर्वरीरमणस्य (चन्द्रस्य) बिम्ब (मण्डल) मिषात्। सकलनगराणा राजा, अतएव चन्द्रबिम्बस्य मिषात् श्वेत छत्र धारयतीतिभाव.॥ २६॥

तदमितकरश्रेणीव्याजान्महीपतिमण्डली-
सुमहितमहीपालस्याङ्कं दधातितरां च यत्।
अनुचरकरक्रीडत्पार्श्वद्वयप्रचलत्तर-
प्रचुरचमरद्वन्द्वश्रेष्ठश्रियः समुदञ्चलम्॥ २७॥

तस्य (चन्द्रस्य) अपरिमिताना किरणश्रेणीनाँ व्याजात् महीपतिमण्डल्या महितस्य (पूजितस्य) महीपालस्य (अर्थात् चक्रवर्तिन) अङ्क चिह्नम्। अनुचराणा करेषु क्रीडत, उभयवार्श्वे प्रचलत्तरस्य (अतिशयेन प्रचलत) प्रचुराया चमरयुगलस्य श्रेष्ठशोभाया सम्यक् उत्कृष्टम् अञ्चल (समूह) धारयति। जयपुरस्योपरि चन्द्रस्येय किरणश्रेणी नास्ति किन्तु पार्श्वद्वये प्रचलतः चमरद्वन्द्वस्य सोय शोभासमूह इत्याशय॥ २७॥

यस्मिन् रत्नगवाक्षनिःसरदुरुश्यामाऽगुरुप्रोल्लस-
द्धूमस्तोमघनान्धकारसमये सज्जाभिसाराः प्रियाः ।
उत्तुङ्गस्तनलिप्तहारिणमदामोदोन्मिलन्मारुतैः
संकेतस्थलमार्गदत्तनयनानाश्वासयन्ति प्रियान् ॥ २८ ॥

उरुश्यामस्य अतिकृष्णस्य अगुरो प्रोल्लसतो धूमसमूहस्य घनान्धकारसमये । कृताभिसारा प्रियतमा । हारिणो मद कस्तूरी तस्य आमोदेन (गन्धेन) समिलितै पवनै. सकेतमार्गप्रहितनयनान् प्रियान् आश्वासयन्ति । अभिसारे आगच्छन्तीनां प्रेयसीना मार्गं पश्यन्त प्रिया. तासां कुचयोः कस्तूरीसौरभमाघ्राय-आगता प्रेयसीति आश्वासिता भवन्तीत्याशयः ॥२८॥

प्रोद्यद्यौवनयौवतोद्धतयुवप्रारब्धमानोल्लस-
न्नानाबन्धनिबन्धवन्निधुवनप्रौढिक्रियासादिषु ।
यत्सौधेषु समीरणाः सुमनसां सौरभ्यसंभारिणो
भान्तीशेक्षणवह्निदग्धकुसुमेषूच्छ्वासजीवातवः ॥ २९ ॥

उदयद्यौवनेन यौवतेन (युवतिसमूहेन), उद्धतैर्युवभिश्च प्रारब्धस्य । मानेन (प्रणयमानोत्तरम्) उल्लसत. । नानावन्धाना (नानाविधानामासनानाम्) निवन्धवत निधुवनस्य सुरतस्य प्रौढि क्रिया च आसादयन्ति (प्राप्नुवन्ति) तादृशेषु यस्य सौधेषु सौरभयुक्ता समीरणा. (पवना.) ईशस्य ईक्षणवह्निना (नेत्राग्निना) दग्धस्य कुसुमेषो उच्छ्वासवत् निश्वासवत् जीवातव. जीवनौषधयो भान्ति । सुरभिपवना. सुरतखिन्नाना कामिनां कृते कामदेवस्य निश्वासवत् (कामस्य मुखवायुरत्यन्त जीवक इत्याशयेन) जीवनौषधयो भवन्तीत्याशय. ॥ २९ ॥

यस्मिन्नुत्तुङ्गसौधोपरिशिखरशिखाकेतुदण्डप्रचण्ड-
व्याघट्टाऽऽशङ्कयैव स्फुटमिह भगवान्संततं भानुमाली ।
आदत्ते दक्षिणोदग्गमनमिति वयं मन्महे बुद्धिमन्तो
दैवज्ञा वर्णयन्ति ग्रहगणगणितैरन्यथा तन्निदानम् ॥ ३० ॥

उपरिशिखरस्य या शिखा अग्रकोटि तत्र य पताकादण्ड· तेन सह प्रचण्डाघातस्य आशङ्कया भानुमाली (सूर्य) दक्षिणाया उदीच्याश्च दिश गमनम् आदत्ते स्वीकरोति इति वय मन्यामहे। बुद्धिमन्त इति साकूतोक्ति ॥ ३० ॥

दुष्टाहिदशनभञ्जनपद्धतिरलमाहितुण्डिकजनेषु।
गलिताकृतिरिति दुर्बलवृषभेषु विलोक्यते यत्र ॥ ३१ ॥

अहे दन्तभञ्जनपद्धति आहितुण्डिक(सर्पमान्त्रिक 'सँपेरा')जनेषु अलम्, न जयपुरजनेषु। शक्तोपि अधूर्वहो वृषो गलि, गलित्वस्य कृति (करणम्) दुर्बले वृषे। न तु गलिता आकृतिर्नागरेषु ॥३१॥

यत्र च रसनानिरसनमनङ्गकेलीकलासु भवेत्।
शाख्यव्यतिक्रमः किल शाखाहरिणेषु यत्र संभाव्यः ॥ ३२ ॥

रसनाया काञ्च्या निरसन दूरीकरण, नतु जिह्वाया नि सारण दण्ड। शाखाया भव शाख्य (यूथ्य)तस्य व्यतिक्रम-उल्लङ्घनम्। निजपरिगृहीतवेदशाखाव्यतिक्रमो न ब्राह्मणादिषु ॥३२॥

यत्रोच्चैर्गतिजितवैनतेयगर्वा
गन्धर्वा विदधति राजमार्गशोभाम्।
अत्यर्थं विधिवशतो गृहीतदेहाः
सोत्साहाः किमु विलसन्ति गन्धवाहाः ॥ ३३ ॥

वैनतेयो गरुड। गन्धर्वा अश्वा। देववशाद् गृहीतदेहा कि गन्धवाहा (पवना) ॥ ३३ ॥

यत्राऽत्यन्तविचित्रकम्बलभृतः प्रोत्तुङ्गताशालिनो
मातङ्गाः कलयन्ति राजपथगाश्चित्ते जनानां भ्रमम्।
पारावारजलान्तरात् किमधुना लोकश्रियं वीक्षितुं
सद्योऽमी बहिरागताः क्षितिभृतः संलक्ष्यपक्षश्रियः ॥ ३४ ॥

कम्बल हस्तिना पृष्ठास्तरणम् 'झूल'। संलक्ष्या दृश्या पक्षयो. श्री शोभा येषा तादृशा क्षितिभृत पर्वता वहिरागता. किम्? उपरि आस्तृत कम्बल दर्शनीयपक्षस्थानीयमित्याशय ॥ ३४ ॥

सद्योऽभिभूतपुरुहूतविमानवेगाः
पर्य्युप्तरत्ननिचयाः परितः स्फुरन्तः।
ये लग्नवारणतुरङ्गवृषोष्ट्रवर्या-
स्ते स्यन्दना ददति यत्र मनस्सु चित्रम् ॥ ३५ ॥

पर्युप्तो जटितो रत्नसमूहो येषु। लग्ना योजिता. वारणादयो येषु। अर्थात् केचित् हस्तिना रथा, केचित् तुरङ्गाणां रथा. इत्यादि ॥ ३५ ॥

लावण्योल्लासिकायाः प्रतिवलदलनोद्यत्कृपाणीसहायाः
संग्रामोत्साहयुक्ता वपुषि परिलसन्मञ्जुमाणिक्यमुक्ताः।
रूपन्यग्भूतमाराः समरजयमहाशक्तिमन्तः कुमारा
यत्रोच्चैः शौर्यभारानुमितकुलयुगाचारशुद्धाः कुमाराः ॥ ३६ ॥

उल्लासी शोभमान कायो देहो येपाम्। प्रतिवलस्य प्रतिपक्षस्य दलने नाशने उद्यन्ती उत्तिष्ठन्ती कृपाणिका (लघुखड्ग) सहायो येपाम्। न्यग्भूत. तिरस्कृत. मार कामदेवो येभ्य.। समरजयार्थं महाशक्ति (तत्सज्ञकशस्त्र) युक्ता कुमारा कार्तिकेया। इमे तु शक्ति (सामर्थ्य) युक्ताः। शौर्यभारेण अनुमित. कुलयुगस्य (मातापित्रोर्वंशस्य) आचारो येषाम्, अतएव शुद्धा। कुमारा क्षत्रियवीराणा कुमारा. 'कुँअर' ॥ ३६ ॥

कर्पूरागुरुकस्तूरीनानाकुसुमसौरभैः।
यद् भृङ्गधोरणीतारझंकारमुखरं सदा ॥ ३७ ॥

यद् जयपुर भृङ्गधोरण्या (समूहस्य) तारै उच्चै झकारै गुञ्जारवै. मुखरम् ॥ ३७ ॥

वसुधामहितभवनमपि भवतितरां नवसुधामहितभवनं यत्।
बहलगृहजालरन्ध्रैः संयुतमपि निर्व्यथनरहितमवभाति ॥ ३८ ॥

वसु (धनम्) धाम (तेज) तयो कृते हितम् अपि भवनम् न वसुधामहित भवन कथ भवेत् इति विरोध । नवया सुधया (विलेपनद्रव्येण 'कलई') हित हितकारकमिति तत्परिहार । बहलै (प्रभूतै) गृहजालस्य (गृह'जालिकानाम्') रन्ध्रै छिद्रै सयुत निर्व्यथन(छिद्र)रहित कथ भवेत्, निर्व्यथन नितरा व्यथाभि रहितमिति तत्परिहार । आर्यागीतिश्छन्द ॥ ३८ ॥

धत्तेऽन्तः क्रयविक्रयागतधनाढ्यानेकलोकोल्लसत्-
संलापप्रसभप्रभूतबहलोद्घोषेण यस्याऽऽपणः ।
वेगभ्रामितमन्दराऽचलशिलासंघातसंघर्षण-
क्षुब्धक्षीरसमुद्रतत्क्षणवलत्कल्लोलकोलाहलम् ॥ ३९ ॥

अनेकलोकानाम् उल्लसन् य सलाप तस्मात् प्रसभम् अत्यर्थ प्रभूतेन (उत्पन्नेन) बहलोद्घोषेण महता नि स्वनेन । शिलासघातस्य (समूहस्य) सघर्षणात् क्षुब्ध आलोडितो य क्षीरसमुद्रस्तस्य तत्क्षण वलता प्रचलता कल्लोलाना महातरङ्गाणाम् (इव) कलकल धत्ते ॥ ३९ ॥

पूर्णानिश इवाऽमन्दचारुचन्द्ररुचिस्पृशः ।
सारङ्ग्य इव सानङ्गमृगयूथनिषेविताः ॥ ४० ॥

पूर्णिमातिथीना रात्रयो यथा अमन्दचारु (अत्यन्तशोभनाम्) चन्द्रकान्ति स्पृशन्ति तादृश्य, तथा चन्द्रवद् विमला कान्ति स्पृशन्ति (अथवा चन्द्रस्य कर्पूरस्य कान्तिम्) तादृश्य अगण्या पण्यवीथय एतस्मिन् (जयपुरे) सन्तीति ४२ तमपद्यपर्यन्तमन्वय । सारङ्ग्च हरिण्य यथा सानङ्गेन सकामेन मृगयूथेन, तथा वीथयोऽपि सकामेन मृगजातीयपुरुषसमूहेन सेविता अनुगता ॥ ४० ॥

सरागाविद्रुमोपेता वनान्तवसुधा इव ।
तारस्वरसमाकीर्णा यज्ञवाटधरा इव ॥ ४१ ॥

वनान्तवसुधा सरागा राग (गान) सहिता ये वय पक्षिण, सानुरागा द्रुमाश्च तै, तथा वीथय रक्तिम्ना सहितै विद्रुमै प्रवालैरुपेता । तारेण

वेदघोपप्रसिद्धेन उच्चेन स्वरेण व्याप्ता यज्ञवाटभूमय, जनकोलाहलव्याप्ततया महाशव्दयुक्ता पण्यवीथय ॥ ४१ ॥

शतधान्यधनस्तोमबहुलाभोपचायिकाः ।
गृहिण्य इव चैतस्मिन्नगण्याः पण्यवीथयः ॥ ४२ ॥

शतप्रकारकाणा धान्याना धनाना स्तोमस्य समूहस्य वहुलाया आभाया शोभाया उपचायिका सग्राहिका पण्यवीथय, वहु-लाभस्य उपचायिका सवर्द्धिका गृहिण्य ॥ ४२ ॥

सभा इव रसज्ञानां सदापिकविभूषिताः ।
समाजा इव साधूनां विषमेषुसहायकाः ॥ ४३ ॥

सभा सर्वदाऽपि कविभूपिता, आरामा सदा पिक(कोकिल)भूपिता इति ४७ तमपद्यपर्यन्तमन्वय । समाजा विपमेपु सकटेपु, आरामा प्रिय-सगमकतया विपमेपो कामस्य सहायका ॥ ४३ ॥

सर्वदा सघनच्छायाः प्रच्छन्नत्वसमातपाः ।
शिखण्डिताण्डवोपेता वर्षर्तुदिवसा इव ॥ ४४ ॥

घनाना मेघाना छायया सहिता वर्षा दिवसा, घनया निविडया छायया सहिता आरामा । एकत्र मेघप्रच्छन्नत्वेन, अपरत्र वृक्षाद्याच्छन्नतया छाययैव समं आतपो येपु अर्थात् छायाऽऽतपौ समानौ इति ।

शिखण्डिना मयूराणा (वर्षासु), शिखण्डधारिणा नर्तकानाम् (आरा-मेपु) ॥ ४४ ॥

करजश्रीफलभाजश्चन्दनतिलकातिसौरभोल्लासाः ।
नागस्यन्दनसहिताः काञ्चनबाणासनोच्छ्रायाः ॥ ४५ ॥

सुमनःसुरभिसुजातिश्यामाश्लिष्टाः समन्मथाः सेव्याः ।
ताम्बूलरागसहिता भूभृत इव मधुरसासक्ताः ॥ ४६ ॥

करज(करञ्ज)श्रीफल(विल्व)अतिसौरभ(रसाल)नाग(सर्प) स्यन्दन (तिनिश) काञ्चन (चाम्पेय) वाण (झिण्टी) असन (बन्धूक)

जाति (मालती) श्यामा (रोचनी) मन्मथ (कपित्थ) मधु (क्षौद्र) रसासक्ता एवंविधा आरामा । भूभृत राजानस्तु सुरतादिषु करज(नख) शोभाशालिन, चन्दनतिलका, अति सौरभस्य उल्लासो येषाम्, नागै (हस्तिभि) रथैश्च सहिता, काञ्चनजटितबाणासनस्य (धनुष) उच्छ्राय उन्नतिर्येषाम् । सुमनोभि (माल्यै) सुगन्धिता, सुजातयश्च या श्यामा उत्कृष्टा षोडशवार्षिक्यो वा स्त्रिय ताभिराश्लिष्टा । समदना, जनै सेवनीया, मधु(मद्य)रसे आसक्ता इत्यादि स्पष्टम् । भूभृत्पदेन पर्वतोऽपि ग्रहीतु शक्यते । आरामपक्षे यथा वनौषधयो गृहीतास्तथाऽत्रापि ।। ४५-४६ ।।

आपानभूमय इव प्रतिप्रसर्पत्प्रमत्तमधुपोपास्याः ।
विदधति मनोभिरामा आरामा यत्समन्ततः शोभाम् ॥ ४७ ॥

प्रतिप्रसर्पद्भि विशेषप्रकारेण चलद्भि प्रमत्तै मधुपै मद्यपायिभि उपास्या (आपानभूमय), मधुपै भ्रमरै उपास्या (आरामा) ।। ४७ ।।

येन श्रीजयदुर्गनामविदितो दुर्गः कृतो दुर्गमः
श्रीसंदोहयुतं पुरं जयपुरं नाम प्रतिष्ठापितम् ।
कासारः प्रसरत्सरोरुहवनीसौन्दर्यसारान्वितः
सोत्यर्थं जयसागरो विरचितः कस्तत्समानो जयी ॥ ४८ ॥

जयदुर्गं (जयगढ) । श्रीसदोह शोभासमूह । प्रसरन्ती या सरोरुहाणा कमलाना वनी (समूह)तत्सौन्दर्यसारेण अञ्चित । जयसागरो नाम कासारस्तडाग ।। ४८ ।।

एतत्पदार्थत्रितयं जयाङ्कं श्रीमत्सवाईजयसिंहनाम्ना ।
कृतं,तदारभ्य 'जयः'कुलेऽस्मिन् सुनिश्चितोऽभूत्त्रितयेन वाचाम्॥४९॥

जयदुर्ग–जयपुर–जयसागरेति पदार्थत्रितयम् । दुर्गादिषु त्रीन् वारान् जयशब्द उच्चारित । अतएव वाचा त्रितयेन (त्रिवाचा इति लोकप्रसिद्धि) जय सुनिश्चित । इत्याशय ।। ४९ ।।

जयपुरजयदुर्गकृत्सवाई जयनृपतिर्जयसागरं चकार ।
जयति जयचतुष्कमेतदस्मिन् जगति जयस्तत एव निश्चितोऽस्ति ॥५०॥

इति श्रीतैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधि-
कृतावीश्वरविलासमहाकाव्ये नगरादिवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्गः एष तृतीयकः ॥



चतुर्थः सर्गः

जजागार द्विजागारविकीर्णस्वर्णसंचयः ।
श्रीमान् राजाधिराजोऽसौ धन्यो धरणिमण्डले ॥ १ ॥

(दान दत्त्वा) द्विजागारेषु ब्राह्मणगृहेषु विकीर्ण प्रसारित कनकपुञ्जो यन ईदृश जजागार सर्वनृपेषु जागृतवान् । जागर्तेर्लिट् ॥ १ ॥

अत्यर्थं वृद्धिमाप्तैरतुलतरतपोदानदीक्षाप्रकार-
प्राप्तेष्टापूर्तपुण्यप्रकरसमुदितज्ञानभक्तिप्रकारैः ।
साक्षान्निस्तक्ष्य टङ्कैरिव विमलतरैरात्मनः क्षात्रदेहं
विश्वामित्राधिको यः सुकृतभरनिधिर्ब्राह्मणं प्रोच्चकार ॥ २ ॥

वृद्धि गतै तपो-दान-दीक्षा(व्रतग्रहण)प्रकारै प्राप्ताना सचितानाम् इष्टापूर्त-पुण्याना प्रकरै (समूहै), समुदितै ज्ञानभक्तिप्रकारैश्च । अति-विमलै टकै (पाषाणदारणै इव, 'टाकी') निजस्य क्षत्रियदेह निस्तक्ष्य उपरित सक्षुद्य । पुण्यनिधिर्य ब्राह्मण (ब्राह्मणत्वम्) उत् उपरि चकार उद्भावितवान् ॥ २ ॥

निर्जित्य वीरः स्वबलैर्दिशोऽष्टौ पदप्रणम्राखिलभूमिपालः ।
धर्माय धर्मात्मजवद्धुरीणः प्रभूतमुच्चैर्वसु संचिकाय ॥ ३ ॥

धुरीण सर्वेषा राज्ञा धुरि मौलौ स्थित । वसु धन सचिकाय सचितवान् ॥ ३ ॥

धर्मेण भूयः स्वभुजार्जितं तद्वसु प्रभूतं विनियोक्तुकामः ।
श्रीवल्लभाचार्यमतानुवर्ती श्रुत्युक्तकर्मण्यनिशं रतोऽभूत् ॥ ४ ॥

उपयोक्तु काम अभिलाषो यस्य ॥ ४ ॥

धीरस्त्रिरग्नेश्चयनं चकार शुद्धावशुद्धाखिलकर्मतत्त्वः ।
तद्दक्षिणाभिर्ववृते द्विजानां दारिद्र्यदुःखं श्रुतिमात्रशेषम् ॥५॥

त्रि अग्नेश्चयन चकार, त्रीन् वारान् चयनयाग चकार । तस्य (जयसि-हस्य) दक्षिणाभि श्रवणमात्रार्थं ववृते वर्तते स्म । लुप्तमित्यर्थ ॥ ५ ॥

अभूदधिब्रह्मपुरि द्विजानां तद्दक्षिणाभूरिसमृद्धिभाजाम् ।
गृहेषु सम्यग् विततावध्वरेषु सुरेश्वराह्वानमजस्रमेव ॥ ६ ॥

अधिब्रह्मपुरि ब्रह्मपुर्याम् । तस्य (जयसिंहस्य) दक्षिणाया बहुसंपत्तियुक्तानाम् । विततेषु अध्वरेषु विस्तारिषु यज्ञेषु । सुरेश्वरस्य इन्द्रस्य आवाहन निरन्तरमभूत् ॥ ६ ॥

अहर्निशं तेन वितायमानेष्वुच्चैः कृताह्वानतयाऽध्वरेषु ।
पुरन्दरो नित्यमभूत्प्रवासी पुलोमजालिङ्गनसाभिलाषः ॥ ७ ॥

वितायमानेषु वितन्यमानेषु क्रियमाणेषु । कृताऽऽवाहन पुरन्दर (इन्द्र) नित्य प्रवासी कृतपरदेशगमन, अत एव शच्या आलिंगने साभिलाष (उत्कण्ठित) अभूत् ॥ ७ ॥

तस्यैव यज्ञोत्सवजातहर्षास्तद्दक्षिणाप्राप्तधनप्रकर्षाः ।
प्राज्ञा द्विजाः श्रीविनिवृत्ततर्षाः काशीं श्रयन्ते धृतमोदवर्षाः ॥८॥

श्रिया दक्षिणाप्राप्तया लक्ष्म्या दूरीकृततृष्णा । अत एव धृतानन्दसमूहा ॥ ८ ॥

स वाजपेयाध्वरदीक्षयाऽऽप्तसम्राट्पदः शुद्धतमोऽभिषेकात् ।
शीर्षे सितच्छत्रमुवाह भूयो राज्याभिषेकावसरेऽनुभूतम् ॥ ९ ॥

वाजपेययज्ञसंपादनेन प्राप्तसम्राट्पद राज्याभिषेकसमये अनुभूत श्वेतच्छत्र पुनर्दधार ॥ ९ ॥

स वाजपेयावभृथे प्रभूतचन्द्रामलच्छत्रविराजिशीर्षः ।
द्विजावलिप्रेरितवारिधारामिषाद्दधौ चामरवीजितानि ॥ १० ॥

अवभृथे यज्ञान्तस्नाने । विराजि शोभमान शीर्ष यस्य स विप्रदत्तमन्त्रजलधाराव्याजात् चामरवीजितानि (स्फुरणानि) दधौ ॥ १० ॥

नित्यं वितानेषु वितायमानेषूच्चैर्द्विजेभ्यः प्रददौ यथैषः ।
तथैव संपद्व्रुवे वितीर्णास्रसारितं कोटिगुणं वहन्ती ॥ ११ ॥

वितन्यमानेषु यज्ञेषु यथैव ददौ तथैव कोटिगुणता धारयन्ती सपत्ति-र्ववृधे ॥ ११ ॥

संपद्विवृद्ध्यैव विवृद्धहर्षः श्रद्धालुतां कर्मविधौ दधानः ।
स वाजिमेधेन महामखेन विद्वत्सभां यष्टुमनाश्चकार ॥ १२ ॥

वाजपेयेन यष्टु मनो यस्य स विदुषा सभा चकार ॥ १२ ॥

समन्ततः श्रीजुषि तत्सभायां महामणिस्तम्भविभूषितायाम् ।
चतुर्दिगन्तेभ्य उपेत्य नित्यं समे समेता विबुधा बभूवुः ॥ १३ ॥

श्रीजुषि शोभायुक्तायाम् । समे सर्वे ॥ १३ ॥

श्रीमत्सवाईजयसिंहविद्वन्महामहाराजसभान्तरालम् ।
विभूषयन्ति स्म बुधा गुणौघैर्गीर्वाणगुर्वन्तरगर्वभाजः ॥ १४ ॥

जयसिहरूपस्य विदुपा मध्ये महामहाराजस्य सभामध्यम् । गीर्वाण-गुरोर्वृहस्पते अन्तरस्य हृदयगर्वम् । अथवा एकस्माद् गीर्वाणगुरो अन्यो गीर्वाणगुरुर्भवेत्तादृश गर्वम् ॥ १४ ॥

सर्वावनीचक्रपुरन्दरस्य महाश्रियः श्रीजयसिंहनाम्नः ।
सभावपुः प्राज्ञगुरुद्विजेन्द्रैर्युक्तां सुधर्मामपि निर्जिगाय ॥ १५ ॥

सभाया वपु (शरीर, स्थानम्), सुधर्मा देवसभामपि जिगाय ॥ १५ ॥

तस्यां स विद्वद्वरचक्रवर्ती समस्तभूमीपतिचक्रवर्ती ।
उवाच राजा महता स्वरेण सुधापयोदं सहसाऽनुकुर्वन् ॥ १६ ॥

विद्वद्वराणा चक्रे मण्डले वर्तमान । नृपतीना चक्रवर्ती सार्वभौम । सुधावर्षिण मेघम् ॥ १६ ॥

समस्तशास्त्रार्थविवेचनोद्यत्प्रज्ञावितानांऽशुसमूहभाजः ।
यूयं भवे भास्करतुल्यरूपास्तमो विहन्तुं भ्रमसंशयाख्यम् ॥ १७ ॥

विवेचनेन उदयन् प्रज्ञावितान (बुद्धिपटल) एव किरणसमूह, तद्भाज तद्युक्ता । यूय सूर्यसमरूपा ॥ १७ ॥

कृष्णावतारे सुचरित्रसारे तिरोहिते तुर्ययुगं प्रवर्त्य ।
संवत्सराः पञ्चसहस्रसंख्या व्यतीयुरस्यां भुवि किञ्चिदूनाः ॥१८॥

तुर्य चतुर्थ युग (कलिम्) प्रवर्त्य प्रवृत्त कृत्वा तिरोहिते सति ॥ १८ ॥

धर्मस्तथा ज्ञानमथापि सर्वे भावाः सुनिर्णीतशुभस्वभावाः ।
तिरोहिताकारतया बभूवुः क्षिताविदानीं श्रुतिमात्रशेषाः ॥ १९ ॥

शुभस्वभावा (अर्थात् उत्तमा) सर्वे भावा.। तिरोहित लुप्त आकारो येषा तत्तया । क्षितौ पृथिव्याम् ॥ १९ ॥

एवंविधे घोरतमोमयेऽस्मिन् कलित्रियामावसरे प्रवृत्ते ।
क्व दृश्यते धर्ममयः प्रकाशः सतां मनःपद्मविकासशाली ॥ २० ॥

कलिरूपाया त्रियामाया. (रात्रे.) अवसरे ॥ २० ॥

अहं पुनः प्राज्ञवरास्ततेऽस्मिन्कलौ भवत्पादतलं प्रपन्नः ।
करोमि कर्माणि भवन्मुखेभ्यः श्रुतानि नित्यं हरिभक्तिसिद्ध्यै ॥२१॥

तते व्याप्ते ॥ २१ ॥

कृतं त्रिरग्नेश्चयनं यथावत्कृताश्च सोमाः प्रणयेन भूयः ।
बृहस्पतेश्चापि सवाजपेयाः सर्वाः सहस्रं विहिता हिताय ॥ २२ ॥

अग्नेश्चयन चयनयाग । सोमा सोमयागा. ॥ २२ ॥

अतः परं कर्तुमनाः किलास्मि भवत्प्रसादादहमश्वमेधम् ।
जवेन तन्मामनुमन्तुमर्हाः सर्वे बुधाः शास्त्रदृशो भवन्तः ॥ २३ ॥

जवेन शीघ्रम् । शास्त्र पर्यन्त यद्वा शास्त्रमेव दृग् येषा ते ॥ २३ ॥

इत्युक्तवत्युक्तिविचक्षणेऽस्मिन् सम्राजि सर्वाऽजिजयैकभाजि ।
यथा मरुत्वज्जनमेजयोत्था कथा तथा तां स्म बुधाः (हृदि)
स्मरन्ति ॥ २४ ॥

सर्वेषाम् आजीना (युद्धाना) जयम् एक एव भजते स' तस्मिन् । मरुत्वान् (इन्द्र), जनमेजय एतदुत्था एतत्सवन्धिनी तथा कथा । अर्थात् इन्द्रेण जनमेजयेन वा यथा काचिद्वार्ता पृष्टा स्यात्तथा ता बुधा अत्यादरपूर्वक स्मरन्तीत्याशय ॥ २४ ॥

अथोचिरे तेऽञ्जलिबन्धपूर्वं समस्तशास्त्रार्थविवेकदक्षाः ।
महान् पदार्थोऽयमिहाश्वमेधस्त्वयैव कर्तुं पृथिवीन्द्र शक्यः॥ २५ ॥

परंतु राज्ञो जनमेजयाख्यादनन्तरं देव महीतलेऽस्मिन् ।
केनापि नैवाऽऽहृत एष यज्ञः क्षितीश्वरेण श्रुतिबोधितोऽपि ॥२६॥

केनापि क्षितीश्वरेण (राज्ञा) श्रुतिबोधितोपि यज्ञ न आहृत न कृत ॥ २६ ॥

अतः परं देव भवान् प्रमाणं श्रुतिस्मृतिज्ञातसमस्ततत्त्वः ।
अहो तवैवाविदितं हि किञ्चिद्यदस्ति तन्नास्ति च कर्म योग्यम् ॥२७॥

योग्य तत् किञ्चित् कर्म नास्ति यत् तवैवाऽविदितम् आस्ते ॥ २७ ॥

ततः किलास्मिन् विषयेऽत्यनल्पे स संशयानो धरणीमहेन्द्रः ।
चक्रेऽधिवाराणसि पत्रलेखं महामहापण्डितराजचक्रे ॥ २८ ॥

अत्यनल्पे अतिमहति । सशयान सशय प्राप्नुवन् । अधिवाराणसि वाराणस्याम् ॥ २८ ॥

तत्रैकमत्यं विबुधैर्विधाय समस्तशास्त्रार्थकृतान्तविद्भिः ।
महीभुजे प्रैष्यत निश्चितार्थो दूतो गरीयानिव पत्रलेखः ॥ २९ ॥

कृतान्त सिद्धान्त । गरीयान् दूत इव निश्चितार्थ ॥ २९ ॥

स्वस्ति श्रियालंकृतसर्वलोकातिक्रान्तकान्तप्रसरद्गुणाब्धे ! ।
त्रिरग्निचिद्दीक्षितवर्य सम्राड् भवाधुना त्वं हयमेधयाजी ॥ ३० ॥

प्रसरता गुणानामब्धे ! ॥ ३० ॥

यावद्भवेद् विष्णुपदीप्रवाहो यावच्च वेदस्य भवन्ति शाखाः ।
यावच्च वर्णाश्रमसंविभागस्तावत्कलावप्ययमश्वमेधः ॥ ३१ ॥

विष्णुपदी गङ्गा ॥ ३१ ॥

परं त्वदन्यो न कलौ प्रभूतः श्रद्धालुतासद्गुणवारिराशिः ।
समस्तदिग्जैत्रतया च वीरो राजाश्वमेधं किल योऽकरिष्यत् ॥३२॥

जैत्रतया जयकारकतया वीरो राजा ॥ ३२ ॥

त्वं तादृशोऽद्य द्विजलोकभाग्यैः श्रीविष्णुसिंहक्षितिपालमौलेः ।
सद्धर्मपत्न्यां नृपतेऽवतीर्णो मताविवाऽऽनन्दभरो बुधस्य ॥ ३३ ॥

बुधस्य मतौ आनन्दपूर इव ॥ ३३ ॥

यजस्व यज्ञैर्वितनुष्व दानं मनुष्व वेदान् विचिनुष्व सारम् ।
सुनुष्व सोमं प्रहिणुष्व विष्णोर्मिनुष्व भक्तिं स्वकृतार्थतायै ॥३४॥

मनुष्व मनन कुरु । विचिनुष्व सचिनु । सुनुष्व कण्डय । विष्णो कृते सोम प्रहिणुष्व प्रेषय, निवेदय । मिनुष्व परिमाहि ॥ ३४ ॥

एवंविधेन श्रुतिमार्गभाजा तत्पत्रलेखेन हृदि प्रसन्नः ।
आकारयामास स तान् समस्तान् विद्यातपःश्रौतपटून् द्विजाग्र्यान्॥३५

अथाययौ ज्ञातसकल्पसूत्रश्रुतिस्मृतिज्यौतिषशास्त्रतत्त्वः ।
अयाचितोपाख्यतया प्रसिद्धः श्रीमान् द्विजेन्द्रः किल रामचन्द्रः॥३६॥

ज्ञातसकल्प०—ज्ञात कल्पसूत्रसहित श्रुत्यादितत्त्व येन । अयाची अवटङ्क ॥ ३६ ॥

तत्राययौ श्रौतपटुर्द्वितीयः स रामचन्द्रो द्राविडाद्विजेन्द्रः ।
काश्यामुपाध्यायतया प्रसिद्धिं यः प्राप्तवान् पण्डितमण्डलेषु ॥३७॥

आगात् पुनः श्रौतकलावतंसः सर्वक्रियातन्त्रसुधाब्धिहंसः ।
यः सोमयागैः प्रतिवर्षयज्वा स व्यासशर्मा मुकुटो द्विजानाम् ॥३८॥

श्रौतकला (क्रिया) एव अवतसो भूषण यस्य। क्रियाणा तन्त्रम् (प्रबन्ध) एव सुधाब्धि तत्र हस । प्रतिवर्ष यज्वा यजनशील ॥ ३८ ॥

भूयः स तत्राभ्यगमद् द्विजन्मा यः केवलं यज्ञकरः प्रसिद्धः ।
करस्थ एवाऽजनि तस्य यज्ञस्ततो बभूवैष यथार्थनामा ॥ ३९ ॥

यज्ञ करे (हस्ते) यस्य स ॥ ३९ ॥

गुणाकरोऽत्रागमदङ्गयुक्तत्रयीविलासालयकण्ठपीठः ।
यः कर्मविद्यानिधिरग्रजन्मा शिष्टोऽधिवाराणसि सुप्रसिद्धः ॥ ४० ॥

अङ्गयुक्ताया त्रय्या (वेदत्रयस्य) विलासालय कण्ठपीठ (स्थल) यस्य । साङ्ग वेदत्रय कण्ठस्थ यस्येत्याशय ॥ ४० ॥

कार्णाटदेश्यद्विजवंशदीपश्चराचरे यश्चयनीप्रसिद्धः ।
सोऽत्रागतः श्रीहरिकृष्णशर्मा पुरस्कृतो गोकुलवासिवर्यैः ॥ ४१ ॥

चयन्याम् । अग्निचयनयागे ॥ ४१ ॥

अथासमुद्रं किल ये वसन्ति द्विजोत्तमाः श्रौतविधिप्रवीणाः ।
परश्शतास्ते समुपाययुस्तं राजाधिराजस्य समाजमध्ये ॥ ४२ ॥

अहर्निशं यज्ञविधानदीक्षायशोमये वाद्यति दुन्दुभौ ते ।
स्वत्यादराकारितवद् द्विजौघाः स्वयं समेता अभवन् दिशाभ्यः ॥ ४३ ॥

राजाधिराजो नृपतिर्धृतश्रीस्तन्मण्डलस्थः शुशुभेतरां सः ।
समस्तताराग्रहचक्रमध्ये प्रसारितज्योत्स्न इव क्षपेशः ॥ ४४ ॥

क्षपेश चन्द्र ॥ ४४ ॥

उत्कण्ठितो वाजिमखं विधातुं दिलीपमान्धातृतुलां प्रयातुम् ।
ससारसंभारगणं पुरस्ताच्चकार सत्कारनियुक्तभृत्यैः ॥ ४५ ॥

वाजिमखम् अश्वमेधम् । ससार सारसहित सभारस्य सामग्र्या गणं राशि भृत्यै (करणभूतै) चकार सपादयामास । अथवा पुरस्तात् निजस्य समक्ष सभारगण ससार अनुससार । स्वय तस्य समीपे जगाम ॥ ४५ ॥

जलजाः स्थलजा वनेचराः पशवः पक्षिगणाश्च संभृताः ।
हयमेधविधानकोविदैर्द्विजवर्यैः श्रुतितो निवेदिताः ॥ ४६ ॥

श्रुतित वेदेन । अथवा शब्दद्वारा ॥ ४६ ॥

तिलमुद्गतन्दुलयवाऽऽज्यशर्करा मणिरूप्यकाञ्चनदुकूलसंचयाः ।
हिमशैलमेरुमलयाद्रिसंनिभाः शनकैरकारिषत तेन तत्क्षणात् ॥४७॥

गव्यूत्यर्द्धोपरि जयपुरादुत्तरत्र प्रदेशे
श्रीगोविन्दालयविलसितोद्यद्ध्वजच्छायजुष्टे ।
पूर्वं मानक्षितिपतिकृतेः सागरस्य प्रतीरे
राज्ञा तेन व्यरचि विभवैर्मण्डितो यज्ञवाटः ॥ ४८ ॥

जयपुरात् उत्तरदिशि । गव्यूत्यर्धमेकक्रोश । उद्यत. ध्वजस्य (पताकाया)छायाजुष्टे । ध्वजच्छायमित्यत्र 'विभाषा सेने' त्यादिना वा क्लीबत्वम् । मानकृतिभूतस्य सागरस्य (मानसागर) इति प्रथितस्य ॥ ४८ ॥

यत्प्राचीरं कनकरजतोत्तुङ्गभित्त्युप्तरत्नं
यत्र स्तम्भाः खचितमणयोऽन्योन्यदत्तानुबिम्बाः ।
पत्नीशालाध्वरमुखहविर्गेहवेदीसभाद्यै-
र्योऽन्तः कारुप्रवररचितैः स्थानभेदैश्चकाशे ॥ ४९ ॥

उत्तुङ्गभित्त्याम् उप्तानि जटितानि रत्नानि यस्मिन् । अन्योन्य दत्त (पतित)प्रतिविम्वो येपु ते । कारुप्रवरा. शिल्पिश्रेष्ठा. । वेदी—सभा-आद्या येषा तै ॥ ४९ ॥

शीर्षः साक्षात् त्रिवृत्ते विलसति नयनं छन्दसां मुख्यमुच्चै-
र्गायत्रं नाम पक्षद्वितयमपि बृहत्साम राथन्तरं च ।
निर्णीतस्तोम आत्मा तव पतगपतेऽन्यानि चाङ्गानि सर्व-
च्छन्दांस्येवं यजूंषि प्रसरति भवतो नाम नानाविधानि ॥ ५० ॥

ननूः सा हनूः वामदेव्यं प्रसिद्धं सुपर्णोऽसि सत्वं गरीयान् गरुत्मान्।
इति स्तूयते या भृशं वेदशब्दैरभूत्सा शुभा वेदिका यज्ञवाटे ॥ ५१ ॥

त्रिवृत्ते इत्यादि शीर्षम् । छन्दसा मुख्य गायत्र नाम छन्द नयनम् । बृहत्साम रथन्तर चेति पक्षतिद्वयम् । निर्णीतिस्तोम आत्मा । ननू. सा० इत्यादि वैदिकी आनुपूर्वी । यज्ञवाटे एव वेदमन्त्रै रूपकालकारविधया स्तुता वेदि निरमीयत । इत्याशय ॥ ५०-५१ ॥

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एष तुरीयकः ॥

इति श्रीतैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-देवर्पिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधि-
कृतावीश्वरविलासमहाकाव्ये नगरादिवर्णन नाम चतुर्थ सर्ग. ॥



पञ्चमः सर्गः

तत्र ब्रह्माऽभवत्कश्चिद्द्विजराजस्त्रयीपटुः ।
वितानकर्मसंदोहवितानविचक्षणः ॥ १ ॥

विताननं विस्तारणे ॥ १ ॥

सर्वं ऋत्विग्गणाधीनकर्मतन्त्रविधानवित् ।
कृताकृतविधिज्ञाता मुख्यः सर्वक्रियासु यः ॥ २ ॥

ऋत्विग्गणकर्तव्य कर्मतन्त्रविधान वेत्ति स ॥ २ ॥

आसीददासीममहीमण्डलाखण्डलादृतः ।
आसीद्यज्ञकरोऽध्वर्युः काशीवासी द्विजोत्तमः ॥ ३ ॥

आसीदत् (आसन्नम्) आसीम (सीमापर्यन्तम्) यत् महीमण्डलं तस्य आखण्डलेन इन्द्रेण (सार्वभौमेन) आदृत ॥ ३ ॥

माध्यंदिनमहाशाखां यजुःकल्पमहीरुहः ।
धत्ते यज्ञमधुशब्दमारुह्य स वनप्रियः ॥ ४ ॥

स वनप्रिय (कोकिल) वास्तवे तु सवन(सुत्या)प्रिय यज्ञकराख्य. यजूरूपस्य कल्पवृक्षस्य माध्यन्दिनशाखामारुह्य यज्ञे मधुशब्द धत्ते करोति । स यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनशाखाध्यायी आसीदिति अध्वर्यो परिचयो दत्त ॥४॥

तत्र होत्रक्रियामात्रपात्रतामात्मना दधत् ।
ऋग्वेदकोविदः कश्चिद् द्विजः प्रावर्तयन्मखम् ॥ ५ ॥

होत्रक्रियामात्र०—यज्ञे स्वय होमक्रियाकर्ता इतिभाव । एवविध ऋग्वेदी प्रारम्भयत् ॥ ५ ॥

कण्ठस्वरपराभूतगन्धर्वस्वरधोरणिः ।
औद्गात्रं बिभ्रदभ्रान्तं बभ्राजे ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६ ॥

कण्ठस्वरेण विजिता गन्धर्वाणा स्वरधोरणी (प्रवाह) येन स । औद्गात्र यज्ञे उद्गातृपदं बिभ्रत् ॥ ६ ॥

सर्वे स्वस्वगणोपेता देवा इव दिवस्पतेः ।
श्रीमद्राजाधिराजस्य विप्राः प्रावर्तयन्मखम् ॥ ७ ॥

स्वै. स्वै गणै (अधीनै) उपेता युक्ता । दिवस्पते इन्द्रस्य ॥ ७ ॥

यावत्तुरङ्ग उत्सृष्टः कृतरक्षो धनुर्धरैः ।
तावदङ्गाहुतीरग्नौ सायं प्रातर्ददुर्द्विजाः ॥ ८ ॥

उत्सृष्टस्य अश्वस्य पुनरावर्तनपर्यन्त साय प्रात अङ्गभूता आहुती जुहुवु ॥ ८ ॥

द्वौ वीणागायिनौ विप्रौ तत्र दक्षिणतोऽध्वरात् ।
जगतुर्यजमानस्य यज्ञदानोद्भवं यशः ॥ ९ ॥

द्वौ वीणया गायकौ अध्वरात् दक्षिणत , यज्ञस्य दक्षिणभागादित्यर्थ. ॥९॥

सायं संग्रामविजयप्रभूतममलं यशः ।
श्रावयामासतुर्नित्यं सम्राजस्तस्य भूपतेः ॥ १० ॥

विजयात् प्रभूतम् उत्पन्नम् ॥ १० ॥

अवगाह्य महीं कृत्स्नां प्रत्यावृत्तो यदा ययुः ।
यजमानयुताः सर्वे यज्ञवाटं तदा ययुः ॥ ११ ॥

ययु अश्वमेधीयोऽश्व ॥ ११ ॥

आरेभिरेऽभितो विप्रास्तत्र सर्वाङ्गसंभृतम् ।
अश्वमेधं महायज्ञमिन्द्रस्येव महीपतेः ॥ १२ ॥

वास्तोष्पतिरिहाहूतः सुब्रह्मण्यद्विजन्मना ।
अहल्याजारमात्मानमाकर्ण्यान्तस्त्रपां दधौ ॥ १३ ॥

सर्वस्वर्णमयाकारस्तत्रोच्छ्रायं दधद्दिवि ।
रेजे यूपावलीमध्ये महायूपो मनोहरः ॥ १४ ॥

द्यवि आकाशे उच्छ्रायम् औन्नत्य दधत् । सर्व सुवर्णमय आकारो यस्य ईदृशो महायूपो रेजे शुशुभे ॥ १४ ॥

यथा भूपावलीमध्ये महाभूपो विराजते ।
अम्बावतीपुरश्रेष्ठपरिव्रढिमकीर्तितः ॥ १५ ॥

भूप कथ गुशुभे, तत्रोपमामाह—अम्बावती (आम्बेर) पुरश्रेष्ठस्य परिवृढ स्वामी तस्य भाव परिव्रढिमा, तेन कीर्तित. महाभूप (राजाधिराजो जयसिह) यथा भूपावलीमध्ये तथा अन्यासा यूपावलीना मध्ये महायूप ॥१५॥

मिष्टान्नभोजनैर्विप्रा बिभ्राणास्तृप्तिमध्वरे ।
प्रत्यक्षं कथयांचक्रुः संतोषं हृदि मध्वरेः ॥ १६ ॥

अध्वरे तृप्ति बिभ्राणा (वहन्त) विप्राः मध्वरे. विष्णोस्तृप्ति हृदि कथयामासु ॥ १६ ॥

दीनानाथजनैर्लब्धा इष्टा मिष्टान्नभुक्तयः ।
यजतां राजशार्दूलो नित्यमित्थमवादयन् ॥ १७ ॥

दीनै अनाथैश्च लब्धा इष्टा वाञ्छिता मिष्टान्नस्य भुक्तय (भोजनानि)—'राजश्रेष्ठो नित्य नित्यमेव यजताम्' इति अजल्पयन् । ब्राह्मणद्वारा इत्थमाशीर्वादानदापयन्नित्यर्थ ॥ १७ ॥

सभाजयतसंदत्ता तथा पचतभृज्जता ।
एका प्रवर्तिता तत्र क्रिया खादतमोदता ॥ १८ ॥

"लोकान् सभाजयतं (सत्कुरुत), सदत्त (दान दत्त)" इति सततं यस्यामभिधीयते सा क्रिया सभाजयतसदत्ता । एवमन्यत्रापि विग्रहो बोध्य ॥ १८ ॥

प्रातः पर्वतसंकाशाः प्रकाशन्तेऽन्नराशयः ।
सायं शुद्धधराशेषा दृश्यन्ते प्रतिवासरम् ॥ १९ ॥

पर्वताकारा अन्नाना राशय साय शुद्धा रिक्ता धरा एव शेषो येषां तादृशा दृश्यन्ते ॥ १९ ॥

सुदेश्यानि दुकूलानि मिष्टान्नानि च भूरिशः ।
अयाचितोपपन्नानि सर्वैर्लब्धानि भूपतेः ॥ २० ॥

सुदेश्यानि सुन्दरदेशोद्भवानि दुकूलानि पट्टवस्त्राणि । अयाचितानि च तानि उपपन्नानि (प्राप्तानि) ॥ २० ॥

दीप्ताभिरग्नेर्ज्वालाभिराननैश्च द्विजन्मनाम् ।
दत्ता आहुतयो यज्ञे गृहीताः स्मितिवर्जिताः ॥ २१ ॥

अग्ने ज्वालाभि ब्राह्मणाना मुखैश्च दत्ता आहुतयो गृहीता । स्मिति स्मय , मद आश्चर्य वा । अग्नौ हुत ब्राह्मणाश्चापि भोजिता इत्याशय ॥ २१॥

द्वौ वीणागायिनौ विप्रौ श्रीकृष्णकविलक्ष्मणौ ।
राजर्षिभिः समं तत्र यजमानमगायताम् ॥ २२ ॥

राजर्पिभि समम्, प्राक्तनाना राजर्षीणा गानप्रसङ्गे यथा ते अगीयन्त तथा यजमान (जयसिह)अपि अगीयतेत्याशय' । अनेन यजमानस्य प्राचीन-राजर्पिवन् महामहिमत्व ध्वन्यते ॥ २२ ॥

पृथुमान्धातृसगरदिलीपनहुषादयः ।
तस्य स्रष्टुर्विधेस्तत्र हस्तलेखा इवाबभुः ॥ २३ ॥

विधे विधानस्य कर्तुस्तस्य (जयसिहस्य) पृथ्वादयो हस्तलेखा इव प्रतीयन्ते स्म । हस्तलेखा यथा तत्काल समक्षमुपनीयन्ते तथा यजमानेन विधिद्वारा पृथ्वादय प्राचीनलेखा इव समक्षमुपस्थापिता इत्याशय ॥ २३॥

जायमानासु सुत्यासु तायमाने ततोऽध्वरे ।
महेन्द्रेण समं भूयो यजमानमगायताम् ॥ २४ ॥

सुत्यासु सोमस्य सवेषु (कण्डनेषु) । यथा इन्द्रस्य स्तुतिरगीयत तथा यजमानस्याऽपीति तत्साम्येन लोकातिशायि माहात्म्यमभिव्यज्यते ॥ २४ ॥

महेन्द्रः सम्यगाहूतः सुब्रह्मण्यप्रयोगिभिः ।
विलोक्य राजशार्दूलं स्वद्वितीयममन्यत ॥ २५ ॥

ऋग्वेदप्रयोक्तृभि. आहूत इन्द्र त द्वितीयमिन्द्रममन्यत । इन्द्रस्यापि दृष्टौ इन्द्रत्वप्रतीत्या महाप्रभावत्व ध्वन्यते ॥ २५ ॥

वितायमाने विप्रौघैर्वितानेऽस्मिन् विशेषतः ।
प्रजापतिसमं विप्रौ यजमानमगायताम् ॥ २६ ॥

विप्रौ वीणया गायिनौ तौ । इदानी प्रजापतिना सममगायताम् प्रजापतिसमानुभावत्वं व्यञ्जयन् ॥ २६ ॥

एवं सर्वाङ्गसंपन्नः सोऽश्वमेधो महामखः ।
लब्धो राजाधिराजेन श्रेयसः प्रतिभूरिव ॥ २७ ॥

श्रेयस पुण्यस्य प्रतिभू प्रामाण्यमध्यस्थ इव 'जामिन' ॥ २७ ॥

विरेजुर्लोहितोष्णीषाः प्रचरन्तो मखे द्विजाः ।
राज्ञेऽस्मै यजमानाय दायमानाः शुभाशिषः ॥ २८ ॥

विधेरनुसार लोहितमुष्णीष धारयित्वा प्रचरन्त. परितः प्रचरणं कुर्वन्त ॥ २८ ॥

अस्मिन् यज्ञे जायमाने यावद्यद् येन याचितम् ।
तावत्तत् तेन विप्रेण क्षिप्रमस्मादलभ्यत ॥ २९ ॥

अस्मात् (जयसिहात्) ॥ २९ ॥

लेभे प्राच्यादिदिग्देश्यं प्राज्यं राज्योद्भवं धनम् ।
ऋत्विग्भिर्दक्षिणात्वेन श्रीमद्राजाधिराजतः ॥ ३० ॥

प्राची-दक्षिणा-पश्चिमेत्यादिदिग्देशभव प्राज्य प्रभूतम् ॥ ३० ॥

रेजे सौवर्णयूपेन मानसागरतीरभूः ।
जयस्तम्भेन महता यथासागरतीरभूः ॥ ३१ ॥

महता विशालेन विजयस्मारकस्तम्भेन यथा सागरस्य तीरभूस्तथा यूपेनेति एतल्लोकपरलोकयोरुभयत्र विजयशालितया महाभाग्यत्व ध्वन्यते ॥ ३१ ॥

अहर्दिनवहद्दिव्यप्राज्यसाराज्यधारया ।
सप्तजिह्वः परिप्राप्तसंतृप्तिर्दीप्तिमान् बभौ ॥ ३२ ॥

अहोरात्र प्रवहत दिव्यस्य (उत्कृष्टस्य) प्राज्यस्य प्रभूतस्य सारभूतस्य आज्यस्य (घृतस्य) धारया ॥ ३२ ॥

नित्यलग्नाज्यधाराभिर्भग्नावयवतानवम् ।
पश्यन्ती पतिमग्नायी प्रेममग्ना मुदं दधौ ॥ ३३ ॥

नित्यसबद्धाभिर्घृतधाराभि भग्न दूरीभूतम् अङ्गाना तानव (कार्श्य) यस्य ईदृश पतिं पश्यन्ती अग्नायी अग्ने पत्नी ॥ ३३ ॥

विताने वितताने कभाजनोच्छूनविग्रहम् ।
दृष्ट्वा पुलोमजा कान्तमन्तः संतोषमातनोत् ॥ ३४ ॥

विततेषु अनेकभाजनेषु उच्छून उत्फुल्ल विग्रह (शरीर) यस्य तम् ॥ ३४ ॥

कृतं राजाधिराजेन हयमेधं महामखम् ।
जगुर्गन्धर्वपतयः स्वयम्भूसदनान्तरे ॥ ३५ ॥

अमुं राजाधिराजस्य विततं सुमहाक्रतुम् ।
शृण्वतां सर्वदेवानामश्लाघत बृहस्पतिः ॥ ३६ ॥

शृण्वता सर्वदेवाना, शृण्वत्सु सर्वदेवषु इत्याशय ॥ ३६ ॥

तत्र धौततमे सूक्ष्मे वाससी विमले वहन् ।
कृष्णाजिनधरः स्कन्धे मृगशृङ्गं करे दधत् ॥ ३७ ॥

अश्वमेधमखे दीक्षां बिभ्रत्परमदुर्लभाम् ।
महाभाग्यवतामीशोऽपारपौरुषसारभृत् ॥ ३८ ॥

अपारस्य पौरुषसारस्य धारक ॥ ३८ ॥

शिखासूत्रधरोदारदीप्ती राजार्षिसंस्तुतः ।
साक्षाद्धर्मावतारोऽसौ यजमानो व्यराजत ॥ ३९ ॥

शिखासूत्रधरश्चासौ उदारदीप्तिश्च, (उदारा दीप्ति कान्तिर्यस्य) । राजर्षिभि अपि सस्तुत श्लाघित ॥ ३९ ॥

भयेनालोकितो राजा नयेनाढ्यो युधिष्ठिरः ।
मयेन वह्निनिर्दिष्टं स एनमवलोकताम् ॥ ४० ॥

यज्ञवाटस्य परितो वापीः पुष्करिणीः कृति ।
चक्रे स राजशार्दूलः कूलस्थाम्भोजकाननाः ॥ ४१ ॥

वापी दीर्घिका, कूले स्थितम् अम्भोज(कमल)कानन यासा ता पुष्करिणी सरसी ॥ ४१ ॥

उन्मीलत्कमलामोदकमलामोदधारिणीः ।
कलहंसकुलाकाण्डकेलिकूजितकारिणीः ॥ ४२ ॥

उन्मीलताम् (प्रफुल्लाना) कमलानाम् आमोद (सुगन्धम्), अतएव कमलाया लक्ष्म्या (मोदम् आमोद वा हर्षम्) धारयन्ती (पुष्करिणी)। कलहसकुलस्य अकाण्डे अनवसरे (सर्वदा इत्याशय) केलिकूजित कुर्वन्ति कारयन्ति वा या ता ॥ ४२ ॥

फुल्लारविन्दकोशान्तर्वेश्मनित्यविलासिभिः ।
आरब्धतारझङ्कारसंगीता भृङ्गकिन्नरैः ॥ ४३ ॥

फुल्लस्य अरविन्दकोषस्य अन्त (आभ्यन्तरिकभाग) एव वेश्म (गृह) तत्र नित्य विलासिभि भृङ्गरूपै किन्नरै प्रारब्ध झकाररूप सगीत, यासु ता ॥ ४३ ॥

तीरभूविलसद्दिव्यविष्णुवेश्मविराजिताः ।
उपनीरस्वर्णहीरनिश्रेणिश्रेणिशालिनीः ॥ ४४ ॥

तीरभूमौ विलसद्भिर्विष्णुमन्दिरैर्विराजिता । नीरस्य समीपे उपनीर जलसमीपे, स्वर्ण-हीरकनिर्मिता या निश्रेणि-(सोपान)श्रेणि (परम्परा) तया शोभमाना ॥ ४४ ॥

अविश्रान्ततमैकान्तस्वाध्यायाध्ययनोद्धुरैः ।
द्विजैः सेवितपर्यन्ताः प्रत्यब्दं सोमयाजिभिः ॥ ४५ ॥

निरन्तरम् एकान्ते वेदाध्ययने उद्धुरै प्रौढे, प्रतिवर्ष सोमयागकारिभि द्विजै सेवितपरिसरा ॥ ४५ ॥

अश्वमेधमखोत्सृष्टैः कैश्चित्स्वैरविहारिभिः ।
पशुभिः पक्षिभिश्चैव जीवनीकृतजीवनाः ॥ ४६ ॥

अश्वमेधयज्ञादुत्तर बन्धनादुत्सारितै पशुप्रभृतिभि जीवनाधारीकृत जीवन (जल) यासा ता ॥ ४६ ॥

विप्रैरवारितद्वारमन्नसत्रमुपाश्रितैः ।
भोजनाच्छादनस्वस्थैः सेवितोत्तीरभूमिकाः ॥ ४७ ॥

न निरुद्ध द्वार यस्य ईदृशम् अन्नसत्रम् (भोजनक्षेत्रम्) उपाश्रितै-र्ब्राह्मणै सेविताऽपरतटा । वापी पुष्करिणीश्च चकारेति पूर्वेण (४१) तम-पद्येनाऽन्वय । सप्तभि कुलकम् ॥ ४७ ॥

अथ स्वनिर्मितोदारनिश्रेणिश्रेणिशोभितम् ।
स राजाऽवभृथं कर्तुं मानसागरमागमत् ॥ ४८ ॥

स्वनिर्मितानाम् उदाराणा (उत्तमानाम्) निश्रेणीना (सोपानपाद-न्यासानाम्) श्रेण्या शोभितम् ॥ ४८ ॥

यज्ञपत्नीचतुष्केन सहितः स हितः सताम् ।
रराज राजशार्दूल ऋत्विङ्मण्डलमण्डितः ॥ ४९ ॥

यथैव रोहिणी-ज्योत्स्ना-राका-कैरविणीपतिः ।
तारकामण्डलोदारशोभाढ्यः शारदः शशी ॥ ५० ॥

हित हितकारक । चतसृभि यज्ञसहचरीभि महिषीभि सहित तारका-मण्डले उदारया शोभया आढ्य यथा रोहिणी-ज्योत्स्नादीना पति शारदः चन्द्र तथा ऋत्विजा मण्डलेन समूहेन शोभित राजशार्दूलो रराज । पत्नीना रोहिणी-ज्योत्स्नादीना च, तथा-ऋत्विङ्मण्डलस्य तारकामण्डलस्य च मिथो बिम्बप्रतिबिम्बभावो बोध्य ॥ ४९-५० ॥

नानातीर्थशतानीतनीरनिक्षेपभासुरे ।
मानसागरतोयेऽस्मिन् चकारावभृथं नृपः ॥ ५१ ॥

नानातीर्थशताद् आनीतस्य नीरस्य निक्षेपेण भासुरे दिव्यप्रभावे ।अवभृथ चकार ॥ ५१ ॥

एवं सदक्षिणाभारं सभूरि ब्रह्मभोजनैः ।
साङ्गं स वाजिमेधानां चक्रे पञ्चोत्तरं शतम् ॥ ५२ ॥

दक्षिणाभारेण अर्थात् प्रभूतदक्षिणाभि सहितम्, बहुतरब्राह्मणभोजनैश्च सहितम् । अतएव साङ्गोपाङ्गम् अश्वमेधाना पञ्चोत्तर शत चकार ॥ ५२ ॥

विस्फूर्जद्वाजपेयाध्वरविशदतरच्छत्रसच्छायशीर्षः
प्रोदञ्चच्चामरश्री रुचिररुचिलसत्तीर्थतोयैः समन्तात् ।
विप्रैर्दत्ताभिषेकः समुचितचतुराम्नायमन्त्रान्यवीरैः
रेजे राजाधिराजो विमलतरतनुर्वाजिमेधाध्वरीणः ॥ ५३ ॥

विजृम्भमाणे अश्वमेधयज्ञे अतिश्वेतच्छत्रेण सच्छाव्य सुन्दरकान्तिशालि शीर्षं यस्य । प्रोदञ्चन्ती (उदयन्ती) चामराणा शोभा यस्य । विप्रै रुचिररुचिभि सुन्दरकान्तिभि लसद्भि तीर्थतोयै (तोयद्वारा) कृताभिषेक । कीदृशैर्विप्रै ? समुचितेषु चतुराम्नाय(वेद)मन्त्रेषु अन्येषु (उपनिषद्धर्मशास्त्रादिषु) च वीरै । वाजिमेधमार्गानुगामी, अश्वमेधकर्तेत्याशय ॥ ५३ ॥

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्गे पञ्चम एपकः ॥

इति श्रीमत्तैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृता-
वीश्वरविलासमहाकाव्ये वाजिमेधारम्भो नाम पचम सर्ग ॥



षष्ठ सर्ग

समन्ततः कल्कहृतिं कलौ युगे विधाय वृद्धिं गमितात्स्वधर्मतः ।
स कल्किनं सत्ययुगागमोत्सवादतिष्ठिपद्विष्टपदिष्टमङ्गलः ॥ १ ॥

सर्वत कल्कस्य (पापस्य) हरण विधाय वृद्धि प्रापितात् स्वधर्मात् कल्किन कल्कीति भुवने प्रसिद्ध (कल्कि-अवतारम्) सत्ययुगस्य पुन आगमन भवेदिति उत्सवात् आनन्दात् (हेतो) अतिष्ठिपत् मन्दिर निर्माय अस्थापयत् ॥ १ ॥

स्वनिर्मितेऽस्मिन्नगरे स मध्यगं तुषारशैलद्युति कल्किमन्दिरम् ।
चकार विस्तारि शिरःसमुच्छ्रितध्वजाञ्चलच्छायपवित्रितप्रजम् ॥२॥

स्वनिर्मिते अस्मिन् (जयपुरनगरे) मध्यग मध्यस्थितम् । विस्तारि महाविशालम् । तुषारशैलो हिमालय तद्वद् द्युतिर्यस्य तत् । शिरसि (शिखरे) समुच्छ्रित य पताकाञ्चलस्तस्य छायया (छायायामागमनमात्रेण) पवित्रिता प्रजा येन तत् । कल्किमन्दिर चकार इति षोडशश्लोकपर्यन्तम् एकान्वय । (कुलकम्) ॥ २ ॥

स्फुरन्महोच्चध्वजदण्डघट्टनासशङ्कचित्तेन शनैरनूरुणा ।
दिवाकरस्यन्दनवाहवाहने सदक्षिणोदग्गति सस्यगीक्षितम् ॥ ३ ॥

स्फुरत महोन्नतस्य ध्वजस्य दण्डेन या घट्टना (आघात) तया सशकचित्तेन गच्छत स्यन्दनस्य दण्डेन सह समाघातो मा भूदिति शकितचित्तेन अनूरुणा (सूर्यसारथिना, अरुणेन) दिवाकर(सूर्य)रथस्य वाहाना (घोटकानाम्) वाहने चलने (यत् मन्दिरम्) सदक्षिणोदग्गति यथा स्यात्तथा वीक्षितम् । कदाचिद् सदक्षिणगति दक्षिणगतिसहितम्, कदाचिच्च सोदग्गति उत्तरदिग्गतिसहित, सस्यग् यथा स्यात्तथा ईक्षितम् । अय भाव —मन्दिरमियदुन्नत यद् यस्य शिखरस्थध्वजेन सह आघातो न भवेदिति सशकचित्त अरुण मध्यभाग परिहृत्य सूर्यस्य घोटकान् कदाचिद्दक्षिणदिशि, कदा चिच्च उत्तरदिशि वाहयति (दक्षिणायन-उत्तरायणभेदेन) । तथा चेद

मन्दिरम् अरुणेन कदाचित्तद्दक्षिणगति कदाचिच्च सोत्तरगति यथा स्यात्तथा उपरितस्तेन वीक्ष्यते ॥ ३ ॥

सप्तर्षिहस्तावचिचीषितस्फुरद्ध्वजांससच्चित्रदुकूलपङ्कजम् ।
अरुन्धतीमूर्द्धनि वेष्टनीभवत्प्रकाशपीताम्बरजध्वजाञ्चलम् ॥ ४ ॥

सप्तर्षीणा हस्ते अवचिचीषितम् (अवचेतुम् इष्टम्) स्फुरतो ध्वजस्य असे (स्कन्धे-मध्यभागे) सत् शोभन (वर्तमान वा) चित्रदुकूलस्य चित्रस्थ पकज (कमल) यस्मिन् । अरुन्धत्या मस्तके वेष्टनायितो भवन् प्रकाशो यस्य, ईदृग पीताम्बरजात ध्वजाञ्चलो यस्य तत् । यस्य मन्दिरस्योपरिभागे ध्वजस्य क्षौमवस्त्र नानाचित्रैरङ्कितम् । तत्र चित्रित पङ्कज दृष्ट्वा साक्षात् पङ्कजमिदमिति भ्रान्त्वा गगने भ्रमन्त सप्तर्षयो निजहस्ताभ्यामवचेतुम् (त्रोटयितुम्) इच्छन्ति किञ्च—यन्मन्दिरस्योपरिभागे पीतपटनिर्मितो ध्वजाञ्चल इयदुच्छ्रितो वर्तते यस्य पीतवर्ण प्रकाश गगने परिक्रमन्त्या भगवत्या अरुन्धत्या मस्तके पीतपटस्य वेष्टनमिव (अवगुण्ठनमिव) शोभते इत्याशय ॥४॥

नभोनदीस्नानमहोच्चकन्धरा मृगाधिपत्रासजसंभ्रमादिव ।
विमानपर्यङ्कतले सुराङ्गनामुखेन्दुभिर्मुक्तकुरङ्गलाञ्छितम् ॥ ५ ॥

नभोनद्या आकाशगङ्गाया स्नानार्थं महोच्चा (अतिउन्नतीकृता) कन्धरा यस्य, ईदृगस्य मृगाधिपस्य त्रासजात् सभ्रमात् (भयात्) इव विमानपर्यङ्कस्य तले सुराङ्गनाना मुखचन्द्र मुक्त दूरीभूत कुरङ्गरूप लाञ्छित लाञ्छनं यस्मिन् ईदृगम् । मन्दिरस्य शिखरे सिहमूर्ति स्थापिताऽस्ति । तस्या कन्धरा उन्नतीकृता अकिता । मन्ये, आकाशगङ्गाया स्नानोत्कण्ठयैव सिहेन ग्रीवा उन्नतीकृता । ततश्च मन्दिरोपरिभागे विमानेन या देवाङ्गना आगच्छन्ति तासां मुखचन्द्रे य कुरङ्ग (कविसमयानुसार चन्द्रस्य मध्ये मृगस्तिष्ठति यं जना कलंक इति कीर्तयन्ति) स मन्ये सिहस्य भयाद् दूर पलायते । अत एव मन्दिरोपरिभागे सुराङ्गनाना देवाङ्गनाना मुखेन्दव त कुरङ्गरूप लाञ्छन त्यजन्ति । एव च मन्दिरमिद निजोपरिभागे निष्कलङ्कै त कुरङ्ग रूप लाञ्छन हृत्यजन्ति । एव च मन्दिरमिद निजोपरिभागे निष्कलङ्कै देवाङ्गनाना मुखैरलङ्कृतम् ॥ ५ ॥

मृगाङ्कमध्यस्थकुरङ्गकेशवत्त्विषा मिलत्पीतपटध्वजाञ्चलम् ।
शिरोग्रराजत्कलशोत्तमत्रयक्षरत्सुधासीकरदेवभाजनम् ॥ ६ ॥

मृगाङ्कस्य (चन्द्रस्य) मध्ये य कुरङ्ग (कलक इति जनै. प्रसेधित) तस्य केशवत् त्विषा किञ्चिद् वभ्रुवर्णया कान्त्या । मिलन् पीतपटशालिध्वजस्य अञ्चलो यस्य तत् । (मन्दिरमियदुन्नतम्-यस्य शिखरस्थस्य ध्वजस्य पीतपटाञ्चल चन्द्रस्यातिसमीपतया चन्द्रस्थितस्य कुरङ्गस्य केशकान्त्या शबलितवर्णो भवति।) शिरोऽग्रे मन्दिरस्य शिखरस्य अग्रभागे कलशोत्तमाना यत् त्रयम् (उत्तमकलशाना त्रयम्) तस्मात् क्षरन्तो ये सुधासीकरा स एव देव मेघ तस्य भाजनम् (मन्दिरम्) । अय भाव —मन्दिरस्योन्नततया चन्द्रस्य सुधा मन्दिरशिखरस्थितेषु त्रिषु कलशेषु निपतति । ततश्च कलशत्रयाद् रात्रौ सुधासीकराणा वर्षा सर्वदा भवति । तादृशवर्षाया भाजनमिद मन्दिरम् ॥ ६ ॥

मन्दाकिनीवारितरङ्गसंगमान्निरन्तरं स्वच्छमहोन्नतध्वजम् ।
नक्षत्रमालामणिवृन्दमाण्डितस्फुरन्महाकेतुजदण्डशोभितम् ॥७॥

मन्दाकिन्या (आकाशगङ्गाया) वारितरङ्गाणा सगमात् स्वच्छ महोन्नतश्च ध्वजो यस्य तत् । यस्य मन्दिरस्य ध्वजाना वस्त्रम् आकाशगङ्गापर्यन्तगामि, अतएव तस्यास्तरङ्गै तत् अतीव स्वच्छ भाति । नक्षत्राणा माला (पङ्क्ति) सैत्र मणिवृन्द(रत्नराशि)तेन मण्डित स्फुरन् महाकेतुजो दण्डो यस्य तेन शोभितम् । यस्य ध्वजस्य दण्डो नक्षत्राणा मध्यपर्यन्त सलग्न । अत एव स मणिजटित इव भृश विभ्राजते ॥ ७ ॥

क्वचिन्महामञ्जुलहीरकावलीप्रकाशविस्फारितचन्द्रचन्द्रिकम् ।
क्वचिन्महामूल्यमहामणिप्रभास्वकाण्डसन्ध्यायितसर्ववासरम् ॥ ८ ॥

कस्मिश्चिद् भागे (यस्मिन् भागे हीरकावलिर्जटिता) महामनोहरा या हीरकावलि तस्या प्रकाशेन विस्फारिता (विस्तार गमिता, अथवा स्वच्छता नीता) चन्द्रस्य चन्द्रिका येन । मन्दिरे जटिताना हीरकाणा प्रकाशेन चन्द्रस्य ज्योत्स्ना द्विगुणं शुभ्रप्रकाशा जायते । कस्मिश्चिद् भागे (यत्र माणिक्यरत्नानि

जटितानि) महामूल्याना माणिक्यमहामणीना प्रभासु कान्तिषु अकाण्डे अनवसरे एव सन्ध्यायित सन्ध्याकालसदृशीकृत सर्वोऽपि वासरो येन तत् । माणिक्यमणीना तादृशोऽरुण प्रकाश पतति येन सपूर्णेऽपि दिने अरुणायमाना सन्ध्येव प्रतिभाति ॥ ८ ॥

क्वचिन्महानीलमणिप्रभाभरैरकालमेघोदयकान्तिमण्डितम्[१] ।
तडिद्विलासाय तदन्तरान्तरा सुवर्णलेपप्रसरैश्चमत्कृतम् ॥ ९ ॥

कस्मिश्चिद् भागे (यत्र इन्द्रनीलमणयो जटिता) महतां नीलमणीना प्रभाभरं अकालमेव मेघोदयस्य कान्त्या मण्डितम् । यत्र अन्तराऽन्तरा (मध्ये मध्ये) तडितो विलासाय विद्युत शोभाप्रदर्शनाय सुवर्णनिर्मितलेपस्य प्रसारै चमत्कारजनकम् । मन्दिरस्य कश्चिद् भागो नीलमणिभिर्विरचित., यस्य मध्ये मध्ये विलापित सुवर्ण प्रलिप्तम् । ततश्च तत्र तथा प्रतीयते यथा सर्वतो नीलो मेघ उदितो भवेत् मध्ये मध्ये च पीता विद्युत् चमत्कृता भवेत् ॥ ९ ॥

चतुर्विधाऽऽतोद्यसमूहसंभवध्वनिप्रतिध्वानगभीरझाङ्कृतम् ।
त्रिसन्ध्यमारार्तिकमङ्गलोत्सवप्रसार्पिगम्भीरसमुद्रगर्जितम् ॥ १० ॥

तत-आनद्ध-सुपिर-घनेति चतुर्विधात् आतोद्य(वाद्य)समूहात् सभवः (उत्पत्ति)यस्य तादृशस्य ध्वनेर्य प्रतिध्वान तस्य गम्भीर झाकृत (झङ्कारशब्द) यस्य तत् । प्रातर्मध्याह्ने सायमिति तिसृषु सन्ध्यासु आरार्तिक(नीराजन)मगलोत्सवे प्रसर्पणशील गम्भीर समुद्रस्येव गर्जित यस्य तत् । त्रिकालम् आरार्तिकसमये यत्र चतुर्विधाना वाद्याना गम्भीरो झाङ्कार समुदेति यो हि समुद्रगर्जनवद् गभीर सर्वदिक्षु प्रसर्पति ॥ १०

परस्परोत्थप्रतिबिम्बशालिना परस्परोन्मालिमयूखमालिना ।
अनेकचित्रोत्करचारुरोचिषा महामणिस्तम्भशतेन शोभितम् ॥११॥

परस्परोत्थ अन्योन्यसमुत्पन्नो य प्रतिबिम्ब तेन शालिना (अस्य स्तम्भस्य प्रतिबिम्ब· तस्मिन् स्तम्भे पतित , तस्य स्तम्भस्य प्रतिबिम्बश्च अस्मिन् स्तम्भे पतित इति), तथा परस्परम् उन्मालिनी (उद्गता माला यस्या)

१ 'वेष्टितम्' इति पाठान्तरम् ।

मयूखमाला (किरणपरम्परा) यस्य तादृशेन (अस्य स्तम्भस्य किरणजाल तस्मिन् स्तम्भे पतित, तस्य किरणजाल चास्मिन्निति) । अनेकेषा चित्रोत्क-राणा (चित्रसमूहानाम्) चारु रोचि (प्रकाशो) यस्य तादृशेन महता मणि-स्तम्भशतेन शोभितम् ॥ ११ ॥

चतुर्दिगारोपितवैष्णवायुधप्रभाविनश्यत्कलिकालवैभवम् ।
सुवर्णजालान्वितरत्नकोष्ठकस्फुरत्सपल्याणतुरङ्गराजितम् ॥ १२ ॥

चतसृपु दिक्षु आरोपितानि यानि शङ्ख–चक्रादीनि वैष्णवायुधानि तेषा प्रभया विनश्यत् कलिकालस्य वैभव (सामर्थ्यम्, सर्वस्वम्) यत्र । सुवर्ण-जालेन अन्वित यत् रत्नकोष्ठकम् (रत्नजटितमन्तर्गृहम्) तस्मिन् स्फुरन् (दीप्यमान) पल्याण (पृष्ठासन) सहितो य तुरग तेन शोभितम् ॥ १२ ॥

प्रतिक्षपं रत्नमयूखमञ्जरीचयैः समाच्छादितमच्छविग्रहम् ।
अनेकदिव्यौषधिभासुरप्रभासमुन्मिलन्मन्दरमेरुमञ्जुलम् ॥ १३ ॥

प्रतिक्षप प्रतिरात्रि (प्रत्येकरात्रौ) रत्नमयूख (मणिकिरण) रूपै मञ्जरीचयै समाच्छादितम्, अतएव स्वच्छशरीरम् । प्रत्येकरात्रौ मन्दिरा-दस्मात् रत्नाना किरणा निस्सरन्ति ये मञ्जर्य इव प्रतीयन्ते, तैरस्य (मन्दि-रस्य) दिव्य शरीर परिवेष्टितमित्याशय । ततश्च-अनेकासा दिव्यानामौप-धीना भासुरा या प्रभा तया समुन्मिलन् (मिलित) मन्दरपर्वत इव, सुमेरु-रिव वा मञ्जुल (मनोहरम्) । रात्रौ रत्नकिरणा ये परित समुच्चरन्ति तै रात्रौ ज्वलन्तीभिर्दिव्यौषधीभिर्भासुरौ मेरु-मन्दरौ पर्वताविव इद मन्दिर मञ्जुल प्रतीयते इत्याशय ॥ १३ ॥

झणज्झणज्झर्झरझल्लरीरवैः सुभैरवैर्दिव्यतरैः शरैरिव ।
सुदूरनिर्वासितभूरिभीतिमच्चतुर्थकालोद्भवकल्मषव्रजम् ॥ १४ ॥

झणत् झणत् इति शब्द कुर्वन्तो ये झर्झरा —(वाद्यविशेषा 'विजय-घण्ट') झल्लर्यं ('झालर') च तासा सुभैरवै (भयकरै) रवै अतिदिव्यै बाणैरिव सुदूर नि सारित भूरिभयशाली चतुर्थकाल (कलि) जात कल्मष-व्रज (पातकसमूह) येन । अतिभीत कलेर्जात पातकव्रातो झल्लर्यादीना शब्दै दूर पलायत इत्याशय ॥ १४ ॥

अनेककारूत्तमचारुचातुरीचमत्कृतश्रीरचनाविचित्रितम् ।
त्रिलोकलक्ष्मीमुखचन्द्रमाधुरीनिरीक्षणाऽऽदर्शतलामलप्रभम् ॥१५॥

अनेकेषां कारूत्तमानां शिल्पिश्रेष्ठानां चातुर्या (चतुरतया) चमत्कृता चमत्कारशालिनी श्री (शोभा) यस्या ईदृश्या रचनया विचित्रप्रभाशालि । त्रिलोकलक्ष्म्या (शोभाया वा) मुखचन्द्रमाधुर्यनिरीक्षणार्थं यत् आदर्शतलम् (दर्पण) तद्वत् निर्मला शोभा यस्य तत् ॥ १५ ॥

विकासिकल्पद्रुमवाटिकामिलन्मरुत्तरङ्गागमसौरभान्वितम् ।
दिवानिशं श्रीजयसिंहभक्तिजप्रसारिधूपोद्भवधूमसौरभम् ॥ १६ ॥

श्रीजयसिंहभक्तिजातात् प्रसारशालिनः धूपादुद्भवो यस्य ईदृशस्य धूमस्य सौरभ यस्मिन् । अत एव विकासिनां (प्रफुल्लानां) कल्पद्रुमाणां या वाटिका (आराम) तस्यां मिलन्त मरुत्तरङ्गा (वायुलहर्य) तेषामागमनेन यत्सौरभ सौगन्ध्यम् तेन अन्वितम् । जयसिंहस्य भक्तिवशात्तत्र अहर्निशं महार्घधूपस्य सौगन्ध्य प्रसर्पति तेन तथा प्रतीयते यथा कल्पद्रुमवाटिकाया वायुलहरीणामागमनेन तत्तादृगमद्भुत सौरभम् आगच्छद् भवेत् ॥ १६ ॥

तस्मिन्सुवर्णाचलभासि मन्दिरे महामहाज्यौतिषिभिर्निरूपिते ।
शुभे मुहूर्ते विनिधाय कल्किनं संपूजयामास स राजपुङ्गवः ॥१७॥

सः (जयसिंह), सुवर्णाचल (सुमेरु) वद् भा कान्तिर्यस्य तत् सुवर्णाचलभा. तस्मिन् मन्दिरे । महामहद्भिर्ज्योतिषिभिर्नियतीकृते शुभे मुहूर्ते कल्किनो भगवत प्रतिष्ठा कृत्वा शास्त्रमर्यादाऽनुसार पूजयामास ॥ १७ ॥

उदञ्चिपञ्चामृतसंचयाञ्चितैः सुवर्णरत्नप्रभवैर्मनोहरैः ।
अभूदनेकैः कलशैः सुकल्पितं रमापतेस्तत्र महाभिषेचनम् ॥ १८ ॥

उदञ्चिना (उज्जृम्भमाणेन) दुग्ध-दध्यादिपञ्चामृतसमूहेन अञ्चितै शोभमानै सुवर्ण-रत्ननिर्मितै मनोहरै अनेकै कलशै. कल्पित (कृतम्) भगवत. रमापते (कल्किन) महाभिषेचनमभवत् ॥ १८ ॥

ततोऽभिषिक्तः शुभवेषभूषितः सुवर्णरत्नोदितदिव्यमण्डनः ।
वराऽभयभ्राजितपाणिरस्फुरत्कृतावतारो भगवान् यथा पुरा ॥ १९ ॥

कृताऽभिषेक शुभेन वस्त्रादीना वेषेण मण्डित, सुवर्णस्य रत्नाना च उदितम् (उत्पन्नम्) मण्डन भूषण यस्य स । वरदानमुद्रया अभयदानमुद्रया च शोभितहस्त स (कल्की) यथा पुरा (अवतारकाले) तथा अस्फुरत् अशोभत ॥ १९ ॥

बभूव तस्मिन् सुमहामहोत्सवे कलिप्रभावैकहरस्य कल्किनः ।
महत्समाजः सुमहान् समन्ततः, समेऽर्चितास्ते पट-रत्न-भूषितैः ॥२०॥

कलिप्रभावस्य एकमात्रहारकस्य भगवत कल्किन सुमहति तस्मिन् महोत्सवे समन्तत सुमहान् समाज (आगताना समारोह) अभूत् । समे सर्वे ते वस्त्र-रत्न-भूषणै सत्कृता अभूवन् ॥ २० ॥

स कल्किदेवः कमनीयदर्शनः स्फुरन्महामन्दिरसंप्रतिष्ठितः ।
विलोकितो यैर्भुवि पुण्यभाजनैस्त एव मुक्ताः कलिकालदोषतः ॥२१॥

कमनीय दर्शन यस्य स । स्फुरति देदीप्यमाने महति मन्दिरे विराजित । सुकृतभाजनैर्यैर्जनैर्विलोकित ते जना एव कलिदोषेभ्य कामक्रोधादिभ्यो मुक्ता ॥ २१ ॥

मुक्तावलीमण्डितरत्ननूपुरप्रभौघचञ्चच्चरणाम्बुजद्वयः ।
पद्मारमानामनरेन्द्रकन्यकाविराजमानोभयपार्श्वभूषितः ॥ २२ ॥

कीदृश कल्किदेव इति २८ तमपद्यपर्यन्तमेकान्वय । तथाहि—मुक्तावली (मौक्तिकपक्ति) मण्डितयो रत्ननूपुरयो प्रभौघेन (कान्तिसमूहेन) चञ्चत् शोभमान चरणकमलद्वय यस्य स । पद्मा-रमानाम्न्यौ ये नरेन्द्र (राज)-कन्यके ताभ्या विराजमानाभ्याम् उभयपार्श्वाभ्याम् (निजस्य वाम-दक्षिण-भागाभ्याम्) भूषित ॥ २२ ॥

शुभाङ्घ्रिरत्नद्वयवेष्टनीभवन्महार्घ्यकौशेयमनोहराम्बरः ।
मनोज्ञकाञ्चीमणिरत्नकिङ्किणीकलापनिक्वाणकुतूहलाञ्चितः ॥ २३ ॥

शुभौ अंघ्री (चरणौ) एव रत्नद्वयम् (अर्थात् रत्नसमकमनीयौ चरणौ), तस्य वेष्टनीभवत् (आवरणता गच्छत्) महामूल्य कौशेय(पट्टवस्त्र)-रूप मनोहरम् अम्बर (वस्त्र) यस्य स । मनोज्ञो य काञ्चीमणि (कटिपरिहिता श्रेष्ठा मेखला), तस्या रत्ननिर्मितकिंकिणीना (क्षुद्रघण्टिकानाम्) य समूह तस्य निक्वाणकौतूहलेन (पुन पुनर्झङ्करणरूपकौतुकेन) अन्वित. शोभित ॥ २३ ॥

लसत्सुवर्णामलसूत्रनिर्मितं सदा शरीरारुणकान्तिरञ्जितम् ।
अङ्गे दधानः परिणाहि कञ्चुकं विभूषणौघद्युतिधोरणीमिव ॥२४॥

लसद्भि सुवर्णस्य अमलै (सुन्दरै.) सूत्रै (कलावत्तू इति ख्यातै) निर्मितम्, शरीरस्य अरुणया कान्त्या रञ्जितम् अतएव विभूषणौघस्य (आभरणसमूहस्य) द्युतिधोरणीमिव कान्तिप्रवाहमिव (स्थितम्) परिणाहि नीचैर्विस्तारशालि कञ्चुक (अगवस्त्रम्) अगे दधान धारयन् ॥२४॥

मनोज्ञहासद्युतिकौमुदीमिलन्मुखेन्दुसंस्राविसुधौघनिर्झरान् ।
जगद्वधूलोचनमीनमोददान् भुजान्तरे हारगणान्बहून् वहन् ॥२५॥

मनोहरहास्यरूपा या कौमुदी (चन्द्रिका) तया मिलन् यो मुखरूपश्चन्द्र तस्मात् सस्राविण (प्रक्षरणशीलान्) अमृतपूरनिर्झरान् (निर्झरस्थानीयान्, अर्थात् वक्षसि धारिता हारा न सन्ति अपितु मुखचन्द्रसकाशात् प्रस्रुता अमृतनिर्झरा सन्ति) । तथा जगद्वधूना (स्त्रीणाम्) लोचनरूपमीनाना कृते मोददायकान् भुजान्तरे (वक्षसि) वहन् मौक्तिकहारगणान् धारयन् ॥ २५ ॥

मुखप्रभापूरसुधाब्धिवीचिकाविहारमज्जन्मकरद्वयाकृतिम् ।
श्रुतिद्वयीलम्बिसुवर्णकुण्डलद्वयीं विभक्तालकदीधितिं दधत् ॥२६॥

मुखप्रभापूररूपो य सुधाब्धि (अमृतसमुद्र) तस्य वीचिविहारे (तरंगमध्ये खेलनक्रीडायाम्) मज्जत (स्नानं कुर्वत) मकरद्वयस्य आकृतिरिव आकृतिर्यस्या ताम् । विभक्ता विभागं प्रापिता अलकानां केशाना दीधितय किरणा यया ताम् (अलकाना श्यामा कान्ति कुण्डलकान्त्या विभक्ता अभिभूता इत्याशय) । श्रुति(कर्ण)द्वये लम्बमाना कुण्डलद्वयी दधत् ॥२६॥

परिस्फुरद्रत्नकिरीटकोटिगप्रकाशमानामलरत्नसंभवाः ।
मयूखमाला मधुरालकावलीविलासभाजः शिरसि प्रकाशयन् ॥२७॥

शिरसि मधुरया अलकावल्या सह क्रीडनशीला (अर्थात् ये रत्नकिरणाना राशयः अलकावल्या सह क्रीडन्ति मिलन्ति) । परिस्फुरत (दीप्यमानस्य) रत्नजटितकिरीटस्य कोटि(अन्त्यभाग)गेभ्य प्रकाशमानेभ्य अमलरत्नेभ्य सभूता मयूखमाला (किरणसमूहान्) प्रकाशयन् ॥ २७ ॥

अशेषपीयूषमयूखमण्डलस्फुरत्सितच्छत्रतले प्रतिष्ठितः ।
उरोऽङ्गरागस्फुटसौरभोत्करैः प्रफुल्लकल्पद्रुम एव निश्चितः ॥ २८ ॥

अशेषम् (पूर्णम्), पीयूषमयूख(चन्द्र)मण्डलमिव दीप्यमान यत् सितच्छत्र तस्य तले विराजमान । उरसि वक्ष स्थले कृतस्य अगरागस्य(विलेपनस्य) सौरभसमूहै (अर्थात् सौगन्ध्यसमूहद्वारा) प्रफुल्ल कश्चित् कल्पवृक्ष एवाऽयमिति दर्शकैर्भक्तैर्निश्चित (स कल्किदेव इति २१ तमपद्येन सहान्वय. अत्र पूर्यते ॥ २८ ॥

यदप्युदीयाद्विधुपूर्णमण्डलोपरि द्वितीयः सकलः कलानिधिः ।
तदप्यदस्तुङ्गशिरःसमीपगस्फुरत्सितच्छत्रतुलां न संस्पृशेत् ॥२९॥

यदपि विधो (चन्द्रस्य) पूर्णमण्डलोपरि द्वितीय सकल (पूर्ण) कलानिधि कदाचित् उदीयात् (सभावनाया लिङ्) । तदपि अमुष्य तुङ्गस्य (उन्नतस्य) शिरस समीपगस्य, स्फुरत सितच्छत्रस्य तुलाम् (उपमा, सादृश्यम्) न सस्पृशेत् । पूर्णचन्द्रोपरि द्वितीय पूर्णचन्द्र कदाचित् सभवेदपि तथापि मुखचन्द्रस्योपरि चन्द्राकारस्य श्वेतच्छत्रस्यास्य शोभां नाऽसौ लभेतेत्याशय ॥ २९ ॥

एवंविधात्यद्भुतरूपभासितः पद्मारमापट्टमहिष्युपासितः ।
श्रीकल्किदेवः प्रकटीकृतः कलौ श्रीमन्महाराजसमाजमौलिना ॥३०॥

एवविधेन अति अद्भुतेन रूपेण (सौन्दर्येण) प्रकाशित पद्मा-रमा इति पट्टमहिषीभ्या परिचरित श्रीकल्किदेव महाराजाना समाजस्य मुकुटायमानेन (जयसिहेन) कलौ प्रकटीकृत ॥ ३० ॥

उत्तुङ्गतन्मन्दिरमस्तकस्फुरन्महाध्वजच्छायनिकेतनस्थितान् ।
जनान्न संस्प्रष्टुमपीहते कलिः श्रीविष्णुभक्तान् श्रुतिधर्मनिष्ठितान्॥३१॥

उत्तुङ्गस्य तत् (कल्कि) मन्दिरस्य मस्तके स्फुरता महाध्वजाना छाया-रूपे निकेते (गृहे) स्थितान् श्रुतिधर्मे (वेदोक्तधर्मे) निष्ठायुक्तान् विष्णु-भक्तान् जनान् कलि (कलिकालस्य प्रभाव) स्प्रष्टुमपि न ईहते वाञ्छति, तत्सीमाया गमनस्यापि सामर्थ्याऽभावात् ॥ ३१ ॥

यः शम्भले विष्णुयशा महामुनिर्देवप्रभा तस्य वधूस्तपस्विनी ।
तस्यां विधिप्रार्थनया रमापतिर्जातः स कल्कीति निगद्यतेतराम्॥३२॥

शभले तन्नामके देशे । तपस्विनी तपस्याप्रभावेण भगवदवतारार्थम् आधारभूता । विधेः ब्रह्मणः प्रार्थनया ॥ ३२ ॥

स कीटकस्थान् जिनबुद्धपक्षगान् कलावधर्मप्रभवे प्रभाविणः ।
ममर्द सर्वानहितान्स्वतेजसा भवे विवस्वानिव तामसव्रजान् ॥३३॥

सः (कल्की) कीटकनामकदेशस्थितान् अधर्मस्य प्रभव (उत्पत्तिस्थान)-भूते कलौ प्रभाविण प्रभुत्वयुक्तान् जिनस्य बुद्धस्य च पक्ष (मत) स्थितान् सर्वान् अहितान् (प्रतिकूलान्) स्वतेजसा विवस्वान् सूर्य तामसव्रजान् अन्धकारसमूहान् इव स्वतेजसा (स्वप्रभावेण) ममर्द नाशयामास ॥ ३३ ॥

जातेऽवतारे जगतीन्दिरापतेर्याते कलौ सत्ययुगे प्रवर्तिते ।
धर्मक्रिया प्रादुरभूत्समन्ततो वेदस्य शाखाः पिहिताश्चकाशिरे॥३४॥

जगति इन्दिरा (लक्ष्मी) पते (विष्णो) अवतारे जाते, कलियुगे याते अपसृते, सत्ययुगे प्रचारिते सति समन्तत धर्मानुष्ठान प्रादुरभूत् प्रकटं बभूव । पिहिता तिरोहिता वेदस्य शाखा चकाशिरे पुन प्रावर्तन्त ॥३४॥

रमेशवक्षःस्थललिप्तविस्फुरद्दिव्याङ्गरागप्रकरोत्थसौरभैः ।
अन्तर्गतैर्घ्राणपथेन सर्वतो मनांसि नृणां विशदानि जज्ञिरे ॥३५॥

घ्राण (नासिका) पथेन अन्त करण गतै रमेशस्य (विष्णो, कल्किन) वक्ष स्थले लिप्तात् विस्फुरत· परित· प्रसरत दिव्याङ्गराग (विलेपन)-

समूहात् उत्थै उत्पन्नै सौरभै नृणा मनुष्याणा मनासि सर्वप्रकारेण विशदानि निर्मलानि जज्ञिरे बभूवु ॥ ३५ ॥

स कल्किदेवः किल चक्रवर्तिना विभूषितः सर्वधरैकवल्लभः ।
संस्थापयिष्यन् शकमात्मनः कलेरन्ते निहन्ता यवनाधिपव्रजान्॥३६॥

चक्रवर्तिना (जयसिहेन) विभूषित विभूषणै प्रसाध्य मन्दिरे सस्थापित सर्वस्या धराया एकमात्रो वल्लभ (प्रिय) कलियुगस्य अन्ते आत्मन शक सवत्सर सस्थापयिष्यन् अग्रे प्रचारयिष्यन् यवनराजाना व्रजान् (समूहान्) निहन्ता निहनिष्यति ॥ ३६ ॥

स देवदत्ताभिध उग्रहिङ्कृतिस्तुरङ्गमस्तार्क्ष्यभिदाविवर्जित
विलम्बिवल्गाकपटेन सर्वदा मुखेन कृष्णाऽहिकुलानि चर्वयन् ॥३७॥

उग्रा हिङ्कृति (हृषारव) यस्य स । विलम्बिनी वल्गा (कविका 'लगाम') कपट मिष यत्र ईदृशेन मुखेन कृष्णसर्पसमूहान् चर्वयन् स देवदत्त-नामक अश्व (मुखे कृष्णा वल्गा नास्ति अपि तु स कृष्णसर्पान् मुखे चर्वयति)। अतएव तार्क्ष्याद् गरुडाद् भिदा(भेद)विवर्जित (अर्थात् कर्मणा वेगेन च गरुडाऽभिन्न) अस्ति ॥ ३७ ॥

आरुह्य तं दिव्यतुरङ्गमोत्तमं क्रीडाङ्गणीभूतमहाभ्रमण्डलम् ।
संकोचितक्ष्मातलविस्तरं बली जिगाय सर्वान् यवनौघनायकान् ॥३८॥

बली (स कल्की) सकोचित सकोच नीत क्ष्मातलस्य (पृथिवीमण्ड-लस्य) विस्तारो येन स (इयद् विस्तृत महावकाश भूमण्डलमपि दिव्य-तुरङ्गमस्य तस्य गतेरग्रे अतिसकुचितमेव प्रतीयते । यतो हि क्षणमात्रेण स कतिचिद् योजनान्यतिक्रामति) ततश्च भूमण्डले उल्लघिते सति—विहरण-क्रीडायै अङ्गणीभूतम् (क्रीडास्थलभूतम्) महदाकाशमण्डल यस्य ईदृश त दिव्यतुरङ्गोत्तम (देवदत्तम्) आरुह्य सर्वान् यवनौघस्य (यवनमण्डलस्य, यवनानामिव आचारो यस्य ईदृशस्य राजमण्डलस्य) नायकान् जिगाय विजि-तवान् ॥ ३८ ॥

करे वामे चर्म प्रसभपरमर्मच्छिदमसिं
ततोऽन्यस्मिन् बिभ्रत्कलिदमनकल्याणकरणः ।
द्विषद्ध्वंसे दक्षः श्रितसुजनपक्षः सुरगणैः
कृतस्तोत्रः पायात्प्रतिदिनमपायात्स भगवान् ॥ ३९ ॥

वामे हस्ते चर्म ('ढाल') तत अन्यस्मिन् द्वितीये करे (दक्षिणे) प्रसभ (बलात्)परेषा शत्रूणा मर्मच्छेदकम् असिं खड्गं बिभ्रत् (धारयन्) कलिकालस्य दमनरूप कल्याण लोकहित करोति तादृश, अथवा कलिकालस्य दमनकारकाणि अतएव लोकमङ्गलानि करणानि (इन्द्रियाणि) यस्य स । अवतारं गृहीतवतो भगवत सर्वाण्येव इन्द्रियाणि कलेर्दमनाय प्रवृत्तानि, अतएव हि लोकमण्डलस्य कल्याणायाऽवतरति भगवान् । द्विषता शत्रूणा (भगवत्प्रवर्तितस्य धर्ममार्गस्य प्रतिकूलानाम्) ध्वसे नाशे दक्ष । तत एव गृहीत सुजनाना पक्ष (रक्षण-पोषणादि) येन स, देवगणै कृतस्तुति स भगवान् प्रतिदिनम् अपायात् हानिकारकात् अहितात् पायात् रक्ष्यात् । भगवत इदमाशिष्यते, इत्याशीर्लिङ ॥ ३९ ॥

जयाऽप्रमेयप्रचुरप्रसादज-प्रसर्पिकल्याणपरम्परानिधे ।
रमापते विष्णुयशःसुत प्रभो त्वमीश्वरः साधुजनैकरक्षिता ॥ ४० ॥

अप्रमेयात् (परिमाण कर्तुमशक्यात्) प्रचुरात् प्रसादात् (अनुग्रहात्) जाताया प्रसर्पिण्या (लोके परितो व्यापनशीलाया) कल्याणपरम्पराया (मङ्गलराशे) निधानभूत ! विष्णुयशस पुत्र हे प्रभो रमापते ! त्वम् ईश्वर (सर्वैश्वर्यसपन्न) साधुजनानाम् एकमात्रो रक्षिताऽसि, अतएव जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व ॥ ४० ॥

जय प्रपन्नद्रुहिणादिदैवतप्रसन्नसंप्रार्थितधर्मरक्षणः ।
तत्कालमाविष्कृतदिव्यविग्रह त्रयीपथस्थापक देव पाहि नः ॥४१॥

प्रपन्नानि शरणमुपगतानि यानि द्रुहिण(ब्रह्मा)आदिदैवतानि (देवा) तेषु प्रसन्न (कृतानुग्रह), अतएव सप्रार्थित (वाञ्छित) धर्मरक्षण यस्मात् स । लोकस्य अव्यवस्थया त्रस्ता ब्रह्मादयो देवा भवन्त शरणमुपगता । भवा-

श्च तेषु प्रसन्नो जात । अतएव देवै धर्मस्य रक्षण भवत सकाशात्प्रार्थित-मित्याशय । यदा देवै सम्प्रार्थित तदा—तत्कालमेव आविष्कृत (प्रकटीकृत) दिव्यो विग्रह (कल्किशरीरम्) येन तत्सबुद्धौ । अवतार गृहीत्वा किं कृतवानसि तदाह—हेत्रयीपथस्थापक ! भवता त्रयी (वेद) मार्गस्य पुन स्थापन यथावद् विहितम् । ततश्च हे भगवन् ! त्व जय । न अस्मान् पाहि रक्ष ॥ ४१ ॥

जय प्रणष्टाखिलधर्मपालनप्रवीण केलीकलिकालकालकः ।
दिव्यं मनोरंहसमश्वमुच्चकैरारुह्य भक्तौघभयानि नाशय ॥ ४२ ॥

प्रणष्टस्य यवनप्रायैर्विकृति गमितस्य अखिलस्यापि धर्मस्य पालने प्रवीण ! त्व केल्यैव क्रीडयैव (अनायासेनेत्यर्थं) कलिकालस्य कालक निष्कालक निर्वासक (असि) । दिव्य मनोरहसम् (मनसो रह वेग इव वेगो यस्य तम्) उच्चकै उन्नतमश्वमारुह्य भक्तौघस्य (भक्तमण्डलस्य) भयानि नाशय ॥ ४२ ॥

जयोद्यदङ्गाऽरुणकान्तिधोरणीविलेपनश्रीकलिताऽष्टदिक्तट ।
म्लेच्छौघरक्तारुणिताऽखिलावने त्वमीदृशो भक्तदयैककारणात् ॥४३॥

उद्यन्ती सर्वत प्रसरन्ती अङ्गाना या अरुणकान्तिधोरणी अरुणाऽऽभा-प्रवाह सैव विलेपनश्री (रक्ताङ्गरागशोभा) तया कलितानि व्याप्तानि अष्टदिक्तटानि (अष्टदिग्भागा) येन तादृश ! हे भगवन् त्व जय । त्वया सर्वतो रक्तप्रभा कुत प्रसारिता, इत्याह—अर्थात् म्लेच्छसमूहस्य यत् शोणित तेन अरुणीकृता अखिला अवनिर्येन तत्सबुद्धौ ! अर्थाद् भवत अङ्गप्रभया अष्टदिक्तटानि न रञ्जितानि अपितु म्लेच्छमण्डलस्य रक्तेन त्वया सेय पृथिवी अरुणीकृता । त्वमीदृशो रक्तप्रवाहक कथ जातस्तदाह—भक्तेषु दयाया एव एककारणात् त्वमेतादृश । भक्तेषु दया कृत्वा तेषां रक्षणाय त्वया म्लेच्छप्रायाणामेषामवसान विहितमिति भाव ॥ ४३ ॥

यैर्दृष्टः सितदेवदत्ततुरगारूढः स्वभावारुणः
शीर्षोद्यद्विशदातपत्ररुचिरः श्रीकल्किदेवो जनैः ।

तेषां न स्फटिकाद्रिमस्तकगतं सन्ध्याघनं विस्फुर-
द्राकाशीतमयूखशोभिशिरसं द्रष्टुं मनाक्कौतुकम् ॥ ४४ ॥

श्वेत देवदत्तनामक तुरगमारूढ, स्वभावादेव रक्तप्रभाविशिष्टशरीर, शीर्षे उद्यता (विजृम्भमाणेन, शोभमानेन) विशदेन श्वेतेन छत्रेण रुचिर (मनोहर)श्रीकल्किदेव यै जनैर्दृष्ट, तेषा जनाना स्फटिकपर्वतस्य मस्तक-स्थित विस्फुरता शोभमानेन राकाया. पूर्णिमाया. शीतमयूखेन (चन्द्रेण) शोभितमस्तक सन्ध्याकालिक घनम् (रक्तमेघमिति यावत्) द्रष्टु न मनाक् कौतूहलम् । तव शोभादर्शनेन स्फटिकशैलमस्तकस्थितस्य घनस्य सा शोभा गतार्था भवतीत्यर्थ । उपमेयसत्तायामुपमानेन न दर्शकाना कौतुकमिति पञ्चम प्रतीपम् । देवदत्ततुरगस्य स्फटिकाद्रेश्च, श्वेतातपत्रस्य पूर्णिमाचन्द्रस्य च, कल्किदेवस्य सन्ध्यामेघस्य च मिथो विम्वप्रतिविम्वभावो वोध्य ॥४४॥

काकालिका-कोलककोलकालिकाकालैः कुलीलैः कलिलाकुले कलौ।
लोके लुलोके कुकलाकलङ्कलूः कल्की किलैकः कलिकालकालकः।४५।

काकालिका काकपक्ति, कोलकं कृष्णमरीचम्, कोल सूकर, कालिका (आद्या भगवती, मसी वा) तद्वत्कालै कृष्णवर्णै कुलीलै. कुत्सितलीला-कारिभि. कुचरित्रै कलिले गहने अतिदुस्तरे, अतएव आकुले आकुलताकारिणि अस्मिन् कलिकाले कुत्सिताना कलाना (चातुर्याणां) कलंकं (तज्जनित-मपवादकालिमानम्) लुनाति अपनयति तादृश, तथा कलिकालस्य कालक निष्कालक (निर्वासयिता) एक एकमात्र. किल भगवान् कल्की एव लोके अस्मिन् भुवने लुलोके ददृशे दृष्ट, । सर्वत कृष्णताकारिभिर्दुश्चरित्रै खलैर्व्याकुलेऽस्मिन् कलौ, दुष्टानामपवाददूरीकारक कलिमलनाशक-श्चैकमात्रो भगवान् कल्की एव लोके दृष्ट इत्याशय । ककार-लकारेति द्व्य-क्षरचित्रम् ॥ ४५ ॥

न कामो न क्रोधो न च मनसि लोभस्तनुभृतां
न मोहो न द्रोहो वहति न च [illegible] ।

प्रसन्नः श्रीकल्की जगति जयसिंहक्षितिभृता
प्रतिष्ठामानीतो निगमगणगीतोदितगुणः ॥ ४६ ॥

तनुभृता देहिना (मनुष्याणाम्) चित्ते काम-क्रोधादय उदय न वहन्ति उदिता (उत्पन्ना) न भवन्ति। जयसिहनरेन्द्रेण प्रतिष्ठामानीत (प्रतिष्ठापित) निगमगणेन वेदसमूहेन गीता (कीर्तिता) उदिता उत्पन्ना गुणा यस्य स, अथवा निगम-गणेन गीतया (तन्नामकग्रन्थेन) च उदिता (वर्णिता) गुणा यस्य ईदृश श्रीकल्की चेत् जगति प्रसन्न (भवति)। कलिकालदमनायैव कल्किनोऽवतार, अतएव स यदि प्रसन्नो भवेत्तर्हि कलिधर्मा मनुष्याणा हृदये कथमुदय लभेरन्निति भाव ॥ ४६ ॥

आरूढो देवदत्ताभिधमतुलहयं प्रौढहेषानिनाद-
प्रध्वस्तम्लेच्छसैन्यं सकलकल-शरच्चन्द्ररोचिःप्रकाशम् ।
दोर्दण्डोद्दण्डचण्डप्रचुररुचितडित्खड्गतीक्ष्णप्रकाशै-
र्मुष्णन्नायुः परेषां जगति विजयतां केशवः कल्किरूपः ॥४७॥

प्रौढेन गभीरेण हेषानिनादेन प्रध्वस्तानि नाशितानि म्लेच्छाना सैन्यानि येन तम्, सकला कला (षोडशभागा) यस्य ईदृशस्य (अर्थात् पूर्णस्य) शरत्कालिकचन्द्रस्य रोचि (कान्ति) प्रकाश इव कान्तिप्रकाशो यस्य एतादृश देवदत्तनामकम् अतुलम् (अनुपमम्) हयम् आरूढ। दोर्दण्डे भुजरूपे दण्डे उद्दण्ड (अदमनीय दुस्सह) प्रचण्डश्च, प्रचुररुचि अतिशयितप्रकाशशाली तडित्सदृशश्च य खड्ग तस्य प्रकाशै परेषा (शत्रूणाम्) आयु जीवितकाल मुष्णन् (हरन्) कल्किरूपधारी केशवो विष्णु जगति विजयता सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् ॥ ४७ ॥

यः काले चक्रवर्ती खलयवनचमूचक्रसंचर्वणोद्यत्-
प्रोदञ्चच्चन्द्रहासप्रचुररुचितडिज्जालमालाकरालः ।
रक्तश्वेताश्वयायी रविरिव रुचिरः प्रेरितः शारदाभ्रे
संस्तुत्यो नारदाद्यैरिह जगदखिलं त्रायतां कल्किदेवः ॥ ४८ ॥

य (कल्किदेव) समये प्राप्ते सति चक्रवर्ती सकलाना राज्ञामपि राजा । खलाना दुष्टाना यवनाना चमूचक्रस्य सैन्यमण्डलस्य सचर्वणाय (नाशाय) उद्यन् (उत्थाप्यमान) प्रोदञ्चन् प्रस्फुरश्च य चन्द्रहास (खड्ग) तस्य प्रचुररुचि (प्रभूतकान्तिशालिनी) या तडिज्जालमाला विद्युत्सदृशप्रकाशपक्ति तया कराल (वैरिणा प्रचण्ड) । रक्तश्वेतेन (किञ्चिद् रक्तेन किञ्चित् श्वेतेन) अश्वेन गमनशील । अतएव शारदाऽभ्रे शरत्कालिकमेघोपरि प्रोदित उदय गत रुचिरो रविरिव सूर्य इव स्थित (श्वेतमेवस्थानीय श्वेतोऽश्व , तदुपरि नवोदयाद् रक्तसूर्यसदृशो रक्तवर्ण कल्किदेव इत्याशय) । नारदाद्यैर्महर्षिभि स्तोतु योग्य श्रीकल्किदेव समग्र जगत् त्रायता रक्षतु ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णभट्टकवितैककलानिधान-
वाग्गुम्फदिव्यकुसुमस्तवकैः स नित्यम् ।
अन्तःस्फुरन्मधुरझांकृतशब्दभृङ्गैः
कल्कीश्वरं किमपि पूजयति स्म नित्यम् ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णभट्ट एव कविताया एकं कलानिधानम् (कलानिधि , चन्द्र) तस्य वाग्गुम्फ(कविताग्रथन)रूपै दिव्यै पुष्पगुच्छकै । कीदृशै स्तवकै ? अन्त स्फुरन्त (अभ्यन्तरे प्रचरन्त) मधुरा झकारशब्दा एव भृङ्गा येषु तादृशै (येषु काव्यगुम्फेषु अनुप्रासादिशब्दालकाराणा झकारो भृङ्गाणा मधुररव इव सहृदयाना मनो हरतीति भाव) । ईदृशै काव्यपुष्पगुच्छकै स (जयसिंह) नित्य कल्कीश्वर पूजयति स्म ॥ ४९ ॥

धर्त्तुं धर्मव्यवस्थां धरणितलमितः शौर्यगाम्भीर्यधैर्या-
द्यक्षामाक्षामभूभृद्गुणनिधिरसुहृच्चक्रवर्ती (समन्तात्) ।
प्रादुर्भूतः प्रकाण्डप्रकटितमहिमा विष्णुकीर्तेर्महर्षे-
र्हर्षोपेते निकेते कलयतु कुशलं कल्किरूपो हरिर्वः ॥ ५० ॥

धर्मस्य व्यवस्थां (मर्यादाम्) धर्तुं स्थिरीकर्तु धरणितलम् इत प्राप्त । शौर्य (शूरता)–गाम्भीर्य (अक्षोभ्यता)–धैर्य (धीरता-अविचलता)

आदीनाम् अक्षामेभ्योऽपि अक्षामानाम् (महामहताम्) भूभृद्गुणाना राजोचितगुणाना निधि (निधानम्) समन्तत असुहृदा शत्रूणा चक्रे मण्डले वर्तमान, विष्णुकीर्ते (विष्णुयशस तन्नामकस्य) महर्षे हर्षसयुक्ते निकेते (भवने) प्रादुर्भूत (उत्पन्न), तत प्रकाण्डम् अत्यन्त यथा स्यात्तथा प्रकटितो महिमा (निजप्रभाव) येन ईदृश कल्किरूपो हरि (विष्णु) व युष्माक कुशल कलयतु करोतु ॥ ५० ॥

मातुर्देवप्रभायाः पितुरपि विदुषो विष्णुनाम्नः सुधाम्नि
प्रादुर्भूय प्रदीव्यत्परमतमरमाराजमानस्वरूपः ।
सद्यः संकल्पमात्रोद्भवकरितुरगस्यन्दनव्रातपत्ति-
प्रत्यग्राक्षौहिणीभिर्यवनबलसमापातुकः पातु कल्किः ॥ ५१ ॥

देवप्रभाया (तन्नामिकाया) मातु जनन्या, विदुष (भगवन्माहात्म्य जानत) विष्णुयशस पितु सुन्दरे धाम्नि गेहे प्रादुर्भूय (जन्म गृहीत्वा), प्रदीव्यन्ती (परितो देदीप्यमाना), परमतमा (अति-उत्कृष्टा) या रमा (लक्ष्मी शोभा) तया राजमान शोभमान स्वरूप यस्य स । सद्य शीघ्रमेव सकल्पमात्रात् विचारमात्रात् उद्भव (उत्पत्ति) येपाम् एवविधाना करि-(हस्ति)तुरग (अश्व) स्यन्दन (रथ) व्राताना समूहाना पत्तीना पदातीना च या प्रत्यग्रा (नवीनोत्पादिता) अक्षौहिण्य सेना ताभि (सह) यवनाना बले सैन्ये समापातुक समापतन् (सहसा समागच्छन्) कल्कि पातु रक्षतु ॥ ५१ ॥

सद्यः पाथोधिमाथोद्भवमधुरसुधालिप्तशीतांशुबिम्ब-
स्फीतांशुं देवदत्ताभिधमतुलहयं विक्रमेणाधिरूढः ।
विद्युद्विद्योतिकालान्तकमुखरसनाकल्पखेलत्कृपाणि-
ज्वालामालावलीढोद्धतयवनबलः कल्किरूपोऽवताद्वः ॥ ५२ ॥

सद्य तत्काल पाथोधे समुद्रस्य माथेन मन्थनेन उद्भवो यस्य ईदृश, मधुरश्च सुधया (अमृतेन) लिप्तश्च य शीताशु (चन्द्र) बिम्ब तद्वत् स्फीताशु विमलप्रकाशम् । देवदत्तनामकम् अनुपम हय पराक्रमेण आरूढ । विद्युद्-

वत् दामिनीवद् विद्योतमाना प्रकाशमाना कालरूपस्य अन्तकमुखस्य या रसना (जिह्वा) तत्कल्पा तत्सदृशी खेलन्ती इतस्ततः प्रस्फुरन्ती या कृपाणिका (खड्ग), तस्या ज्वालामालाभिः अवलीढानि (आस्वादितानि, भक्षितानि) उद्धतयवनानां बलानि सैन्यानि येन ईदृशः कल्किरूपो भगवान् वः (युष्मान्) अवतात् रक्षतु ॥ ५२ ॥

काले क्रीडन्करालः कलिकलुषकलाकालनक्रूरकर्मा
कल्पे कल्पे कलाभिः किल करकमलोत्कृत्तकालान्धकारः ।
कल्पः कल्याणकल्पोदयकलनकरः कोविदानां कवीनां
कल्पद्रुः कल्किरूपः कलयतु करुणां कूटभित्कैटभारिः ॥ ५३ ॥

काले म्लेच्छानां संहारसमये करालः अतिप्रचण्डः क्रीडन् म्लेच्छसंहारक्रीडां कुर्वन्, कलेः कलियुगस्य कलुषकलानां पापचातुर्याणां कालने दूरीकरणे क्रूरकर्मा । कल्पे कल्पे प्रत्येकप्रलयकाले, कलाभिः निजांशैः करकमलेन कृत्तः नाशितः कालजनितः अन्धकारो येन सः । कल्पः समर्थः, कल्याणकल्पस्य कल्याणरूपस्य प्रथमपक्षस्य ('मुख्यः स्यात्प्रथमः कल्पः' अमर) उदयक्रियाकरः । कोविदानां (पण्डितानां) कवीनां च कृते कल्पद्रुम इव कामपूरकः, खलानां कूटं समूहं अथवा कपटं भिनत्ति तादृशः, कल्किरूपः कैटभारिः (विष्णुः) करुणां कलयतु करोतु ॥ ५३ ॥

अङ्गे यस्याङ्गरागः स्फुरति परिलसत्सौरभोद्गारसारः
सद्यः स्वाघ्राणमात्रात्सुकृतपथपरावर्तितप्राणिचित्तः ।
द्वेषाद्यस्याऽश्वहेषारवसमरसमाकर्णनाम्लेच्छसेना
मूर्च्छन्ती नाशमार्च्छत्स भवतु भवतां कामदः कल्किदेवः ॥५४॥

यस्य अङ्गे परिलसन् सौरभोद्गारः (सौगन्ध्यप्रसारः) एव सारो यस्य ईदृशः, शीघ्रमेव स्वस्य आघ्राणमात्रात् सुकृतमार्गं प्रति परावर्तितानि व्यामोटितानि प्राणिनां चित्तानि येन ईदृशः, अङ्गरागः (विलेपनम्) स्फुरति शोभते । द्वेषात् कल्किना सह वैरात् (हेतोः) यस्य (कल्केः) अश्वहेषारवस्य समरे समाकर्णन(श्रवण)मात्रात् मूर्च्छन्ती (मूर्च्छिता भवन्ती)

म्लेच्छानां सेना नाशम् आच्र्छत् प्राप्नोत्, स कल्किदेव. भवता कामपूरको भवतु ॥ ५४ ॥

प्राविर्भूतप्रकोपस्फुरदधरदलः शक्तिमुद्यम्य वेगान्

म्लेच्छानीकानि सद्यः समिति विदलयन् कालकालोग्रकान्तिः ।

उच्चैरङ्गं तुरङ्गं गतिविजितकुरङ्गं जयायाभिरूढ-

श्चन्द्रः श्वेताभ्रखण्डस्थित इव तनुतां मङ्गलं कल्किदेवः ॥५५॥

प्राविर्भूतेन प्रकोपेन स्फुरत् (कम्पमानम्) अधरदल यस्य स । अतएव वेगात् अतिजवात् शक्ति तन्नामक शस्त्रम् उद्यम्य उत्थाप्य समिति युद्धे म्लेच्छानाम् अनीकानि सैन्यानि सद्य' विदलयन् नाशयन् । कालस्यापि अन्तकस्यापि अन्तकवत् उग्रा कान्तिर्यस्य स । गत्या गमनजवेन विजित कुरङ्गो हरिणो येन ईदृशम्, उच्चैरङ्गम् उन्नताङ्गं तुरङ्ग वैरिणा विजयाय अभिरूढ । अतएव श्वेतस्य अभ्रस्य मेघस्य खण्डे स्थित चन्द्र इव (श्वेतोऽश्व श्वेतमेघ, भगवाश्च चन्द्र) कल्किदेव मङ्गल तनोतु करोतु ॥ ५५ ॥

म्लेच्छाक्रान्तं नितान्तं श्रुतमथ विदितं प्रोद्धताऽधर्मतान्तं

दृष्ट्वा स्वान्तं स्वताऽन्तं श्रुतिपथविहितं चापि धर्मं प्रयान्तम् ।

जातोद्दामावतारः सिततुरगसमारूढकामाभिरामः

सामाद्यैर्गीतधामा कलयतु कुशलं कल्किनामा रमेशः ॥ ५६ ॥

श्रुत शास्त्र म्लेच्छै आक्रान्त दृष्ट्वा तथा विदित वेद अधर्मग्रस्त दृष्ट्वा । स्वान्त हृदय स्वताया स्वात्मभावस्य अन्तो यत्र तादृश दृष्ट्वा—अर्थात्-हृदयात् हृदयधर्मस्य अन्तम् अभाव दृष्ट्वा । तथा वेदमार्गेण विहित वेदद्वाराऽनुशिष्ट धर्म प्रयान्त गच्छन्त दृष्ट्वा । जात उद्दामा (दुष्टाना निधनार्थम् उत्कट) अवतारो यस्य स , सित (श्वेतम्) तुरग समारूढश्चासौ कामाभिराम (सुन्दर)च । साम-ऋगादिभिर्वेदैर्गीत धाम स्थान तेजो वा यस्य (वेदाना सामवेदोऽस्मीति गीतोक्त्यनुसार साम्न प्राधान्यम्) ईदृश कल्कि-नामको रमापति (विष्णु) कुशल कलयतु करोतु ॥ ५६ ॥

इदमष्टकमष्टसिद्धिघुष्टम् विलसद्वर्णकदम्बकेन पुष्टम् ।

कुरुतात्कलिकालदोषदुष्टं हृदयं श्रीप्रभुकल्किकीर्तिजुष्टम् ॥ ५७ ॥

अष्टाभिरपि सिद्धिभि (अणिमादिभि) घुष्ट (स्तुतम्, आश्रितमिति यावत्) । विलसता शोभमानेन वर्णसमूहेन पुष्टम् (अपुष्टार्थदोषरहितमिति यावत्) ईदृशमिदमष्टक कलिकालदोषै मिथ्या-प्रतारणादिभिर्दुष्ट हृदय प्रभो कल्के कीर्त्या गुणानुवादेन जुष्ट प्रसन्न कुरुतात् ॥ ५७ ॥

इत्येवमाद्यष्टसुभाषिताष्टकैः श्रीकृष्णकाव्यैककलाध्रकल्पितैः ।
कल्पद्रुपुष्पस्तबकैरिवानिशं कल्याणदं कल्किनमर्चति स्म सः ॥५८॥

स (जयसिह) कलाध्र कलाधर (चन्द्र) , श्रीकृष्णभट्टरूपेण काव्यानामेकमात्रेण कलानिधिना कल्पितै एवमादिभि अष्टभि सुभाषिताष्टकै. कल्पद्रुमस्य पुष्पस्तवकैरिव कल्याणप्रद भगवन्त कल्किनम् अनिश (सर्वदा) पूजयति स्म ॥ ५८ ॥

दोलोत्सवमपि चन्दनयात्रां स्नानमहोत्सवमथ रथयात्राम् ।
हिन्दोलोत्सवजन्मोत्सववत्कृतवानन्नकूटाविधिमेषः ॥ ५९ ॥

एष (जयसिह.) दोलोत्सव (होलिकोपरि जायमान), चन्दनयात्रा (अक्षयतृतीयोपरि) । एव हिन्दोलोत्सव–(श्रावणे)जन्माष्टमीवत् अन्नकूटविधि कृतवान् ॥ ५९ ॥

वृन्दावनेन्दोर्गृह एव तिष्ठतः प्रागूजन्मजातैः सुकृतैः प्रसीदतः ।
गोविन्ददेवस्य चकार सेवनं सोऽर्चासु चान्यासु निविष्टमानसः ॥६०॥

पूर्वजन्मजातै पुण्यै प्रसीदत (प्रसन्नस्य) अत एव निजगृहे एव तिष्ठत (निवसत) श्रीगोविन्ददेवस्य अन्यासु (दोलोत्सवप्रभृतिभ्योपि इतरासु शरत्पूर्णिमादीपावलीप्रभृतिषु) अर्चासु (पूजासु, उत्सवेषु) निविष्टमानस योजितचित्त (स) गोविन्ददेवस्य सेवन चकार ॥ ६० ॥

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृते सर्गः सर्गः षष्ठः प्रतिष्ठित. ॥*

इति श्रीमत्तैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-श्रीकृष्णकविकलानिधिकृताबीश्वर चरितमहाकाव्ये श्रीकल्किदेवस्थापनो नाम षष्ठ सर्ग· ॥

सप्तमः सर्गः

इत्थं पुरं जयपुराभिधमेष कृत्वा
सद्मानि तत्र कमलारमणस्य चक्रे ॥
येषु त्रिसन्ध्यमनुवाद्यति वाद्यवृन्दे
न श्रूयते सविधवर्त्यपि लोकशब्दः ॥ १ ॥

(सप्तमः सर्गः)

एष इत्थ जयपुरनामक पुर कृत्वा तत्र कमलारमणस्य (विष्णो) सद्मानि (देवालयान्) चकार, येषु मन्दिरेषु त्रिसन्ध्यम् (त्रिकालम्) आरार्तिकादिनिमित्त वाद्यसमूहे वाद्यमाने सति समीपे वर्तमानोऽपि लोकाना शब्द न श्रूयते ॥ १ ॥

पुरे चतुर्दिक्षु ममेश्वरस्य निकेतनेषु ध्वजशोभितेषु ।
समन्ततः सत्सु, कलिप्रवेशः केनाऽध्वना स्यादिह मानवेषु ॥ २ ॥

मम पुरे (जयपुरे) चतसृषु अपि दिक्षु ध्वजै शोभितेषु ईश्वरस्य निकेतनेषु (देवमन्दिरेषु) समन्तत वर्तमानेषु इह अस्मिन्नगरे मानवेषु कलियुगस्य प्रवेश केन मार्गेण स्यात् ? देवालयाना ध्वजच्छायाया नावकाश कले प्रवेशस्येति भाव ॥ २ ॥

पृथक्पृथक् तेषु विराजितेषु देवालयेष्वेष नरेन्द्रवर्यः ।
कृत्वाऽन्नवस्त्रादिसमस्तयोगक्षेमं ततोऽभूत्कृतकृत्यचेताः ॥ ३ ॥

एष नरेन्द्र तेषु देवमन्दिरेषु पृथक् पृथक् विराजितेषु अन्नवस्त्रादीना समस्त योगक्षेम प्रात्यहिककार्यनिर्वाह कृत्वा कृतकृत्य चेतो यस्य तादृश अभूत् ॥ ३ ॥

गोविन्ददेव-रघुनायक-कल्किदेव
श्रीराम-गोपवर-नामभिदाभिरेषः ।
नित्योत्सवप्रकृतिराहितपूर्णभक्ति-
र्लक्ष्मीपतिं किमपि लालयति स्म चित्ते ॥ ४ ॥

नित्यम् उत्सवसमानन प्रकृति (स्वभाव)यस्य स गोविन्द-रघुनाथादि-नामभेदै आहिता (भगवति स्थापिता) पूर्णा भक्ति (अनुराग) येन ईदृश एष· (जयसिह) लक्ष्मीपति (विष्णुम्) चित्ते विलासयति स्म ॥ ४ ॥

मधुमाधवमासयोर्महीपः कृतदोलोत्सवभूरिसंविधानः ।
पटवाससमूहरङ्गधूलीपटलैः क्रीडयति स्म कल्किदेम् ॥ ५ ॥

महीप (राजा जयसिह) चैत्रवैशाखमासयो· कृतं दोलोत्सवस्य भूरि (बहु) सविधान समारोहो येन स, पटवाससमूह (चोवा-चन्दनप्रभृति)-रङ्गधूलि(गुलाल)पटलै. (राशिभि), अथवा रङ्गै नानाविधै. रङ्ग-(वर्ण)जलै धूलीपटलैश्च कल्किदेव खेलयति स्म ॥ ५ ॥

भृशमुन्नमतीह रङ्गधूलीपटले सान्ध्यलसद्घनाघनाभे ।
तडिदुज्ज्वलहेमशृङ्गनिर्यद्घुसृणैरेकरसार्द्रता चकाशे ॥ ६ ॥

सन्ध्याकालिक-शोभमान-निविडमेघसदृशे रङ्गधूलीपटले 'गुलाल'-राशौ भृशम् उन्नमति उड्डीयमाने सति। तडिद्वत् (विद्युद्वत्) उज्ज्वलेभ्य चमत्कृतेभ्य हेमशृङ्गेभ्य.(हेमनिर्मितेभ्य शृङ्गाऽऽकारेभ्य पात्रेभ्यो डोलची इत्यादि-ख्यातेभ्य) निर्यद्भिर्निर्गच्छद्भि घुसृणै कुकुमै एकरसेन (कुकु-मादिजनितेन एकमात्ररक्तरङ्गरसेन)आर्द्रता स्तिमितता, वास्तवे तु एकेन अनुराग-रसेन, शृङ्गाररसेन वा आर्द्रता मग्नता चकाशे शुशुभे ॥६॥

प्रसृताभिरनेकरङ्गधूलीपटलीभिर्जनमुष्टिभिः समन्तात् ।
परितः किल कल्किमन्दिरस्य व्यतिभाते हरितां छटा विचित्रा ॥७॥

जनाना मुष्टिद्वारा अनेकरङ्गाणा धूलीपटलीभि समन्तात् प्रसृताभि (विकीर्णाभि) कल्कि-मन्दिरस्य परित समन्तात् हरिता दिशा छटा विचित्रा व्यतिभाते शोभते । नानावर्णैर्गुलालराशिभिर्दिशा शोभा अनिर्वचनीया बभूवेत्याशय ॥ ७ ॥

यत्रोद्यद्भूरिकाश्मीररजरुचिररसाऽऽसारवद्भिः समुद्य-
ड्डुम्फागम्भीरघोषप्रमिलितवनितानूपुराऽऽरावकेकैः ।

रक्ताम्भोदायितं यद्दिशि दिशि चलितैः केलिधूलीसमूहै-
र्लोला सा हेमदोला ललितमकलयत्तत्र विद्युद्विलासम् ॥ ८ ॥

यत्र (दोलोत्सवे) उद्यन् उद्गच्छन् भूरिकाश्मीरजस्य (केसरस्य) रुचिररसस्य (सुन्दरजलस्य) आसार धारासपातो येषु । समुद्यता समुद्गच्छता डफा(डफ)गभीरघोषेण सह प्रमिलिता वनिताना नूपुराऽऽरावा एव केका (मयूरशब्दा) येषु तादृशै । यस्या (दोलाया) दिशि दिशि चलितै. केल्यर्थ प्रक्षिप्तै· धूलीसमूहै (वर्णचूर्णपटलै)रक्तमेघवद् आचरितम् । लोला चञ्चला सा सुवर्णहिन्दोला ललित मनोहर विद्युद्विलास तडिच्छोभाम् अकरोत् । दोलोत्सवेऽस्मिन्—रङ्गधूलीपटल रक्तवर्णो मेघो बभूव, प्रक्षिप्यमाणा केसररसा मेघस्य धारासंपातो बभूव । डफाना गभीरघोषा गर्जना बभूव । नूपुराऽऽरावा केका आसन् । गुलालराशिरूपरक्तमेघाडम्बरेऽस्मिन् सुवर्णमयी सा दोला विद्युत. शोभामकरोत् इत्याशय. ॥ ८ ॥

महोत्सवेऽस्मिन्परमेश्वरस्य लब्धो जनैरुत्सवतः समेतैः ।
पाश्चात्त्यदेशोद्भवपक्वमिष्टफलाढ्यमिष्टान्नमयः प्रसादः ॥ ९ ॥

परमेश्वरस्य महोत्सवेऽस्मिन् उत्सवत हर्षत समेतै सधीभूतैर्जनै । पाश्चात्यदेशोद्भवानि पक्वानि यानि मिष्टानि फलानि (बिलायती दाडिम-सेव-द्राक्षाप्रभृतीनि) तै आढ्य सयुक्त मिष्टान्नमय प्रसादो लब्ध ॥ ९ ॥

अथ चन्दननामचारुयात्रामकरोदर्चयितुं चराचरेशम् ।
हिमशीतलसंविधासमूहे निहिते यत्र हिमर्तुराजगाम ॥ १० ॥

अथ चराचरेश जगत्स्वामिन गोविन्दम् अर्चयितुम् चन्दनयात्रानामक चारुमुत्सवमकरोत् । यत्र हिमवत् शीतले सविधा(सामग्री)समूहे निहिते स्थापिते सति हिमर्तु शिशिर ऋतु आजगाम । ग्रीष्मर्तुजातेऽस्मिन्नुत्सवे शीतला· सामग्र्यस्तथा समकल्प्यन्त यथा प्रत्यक्ष शिशिर ऋतु समाजगाम ॥ १० ॥

जलयन्त्रमिहोच्छलज्जलौघं परितः कल्किनमध्युषीरवेश्म ।
कमलावलिभिः कृतां च शय्यां समये वीक्ष्य तुतोष कल्किदेवः ॥११॥

इह अस्मिन्नुत्सवे अथ्युपीरवेश्म उपीर(खस)निर्मिते वेश्मनि (भवने) अधि (उपीरनिर्मितस्य वेश्मन अभ्यन्तरे, इत्याशय)। कल्किन परित कल्किन समन्तादित्यर्थ । उच्छलन् जलौघ. (जलप्रवाह) यस्मिन् ईदृशं जलयन्त्रम् (फुँहारा) अस्ति। तथा समये उपयुक्ते काले कमलाञ्जलिभि कमलपुष्पसमूहै निर्मिता शय्या (पुष्पशय्याम्) च वीक्ष्य कल्किदेव सतुष्टोऽभवत् ॥ ११ ॥

परितः प्रविसारिपुष्पसारोद्भवसौरभ्यसमूहानित्यतृप्ताः ।
उपकल्किनिकेतनं मिलिन्दाः कलगुञ्जारवगानमाचरन्ति ॥ १२ ॥

परित. समन्तात् प्रविसारिणा (प्रसरणशीलेन) पुष्पसार(इत्र)-समुद्भवेन सौरभ्यसमूहेन नित्यतृप्ता मिलिन्दा (भ्रमरा) कल्किनिकेतनस्य (गृहस्य) उपकण्ठे कल गुञ्जारवरूप गानम् आचरन्ति ॥ १२ ॥

ज्येष्ठाभिषेकसमये श्रियः कान्तमयं नृपः ।
सुवर्णं घर्ममित्यादिमन्त्रौघैरभ्यषेचयत् ॥ १३ ॥

अयं नृप. ज्येष्ठाभिषेकस्य समये (ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमायाम्) 'सुवर्णं घर्मं परिवेद वेन इन्द्रस्यात्मान दशधा चरन्तम्' इत्यादि सुवर्णघर्मानुवाकमन्त्रै श्रियः कान्तम् (कल्किनम्) अभ्यषेचयत् अभिषेचयामास ॥ १३ ॥

जगन्नाथदेवस्य दृष्टा न येन त्रिलोक्यां प्रसिद्धिं गता स्नानयात्रा ।
जनो वीक्षतां सोऽत्र कल्कीश्वरस्य प्रशस्ताभिषेकोत्सवं भक्तियुक्तः॥१४॥

येन जनेन त्रिलोक्या प्रसिद्धि गता जगन्नाथदेवस्य स्नानयात्रा न दृष्टा, स जन अत्र जयपुरे भक्तियुक्त सन् कल्किदेवस्य प्रशस्तम् अभिषेकोत्सव वीक्षताम्। जगदीशस्नानयात्रावत् अत्रापि तादृश एव समारोह समभवदित्याशय. ॥ १४ ॥

अथो चकारैष रथोत्सवं हरेः प्रसङ्गसंप्राप्तसमस्तदैवतम् ।
उदीर्णदीर्घोद्धुरदुन्दुभीरवप्रमुक्तयोगाऽऽगतहृष्टशङ्करम् ॥ १५ ॥

अथ एप (जय०) प्रसङ्गेन (यात्रासमागमप्रसङ्गेन) सप्राप्तानि समस्तानि दैवतानि (देवा) यस्मिन्। उदीर्ण: उत्थित. दीर्घ उद्धुर (उत्कटः)

च यो भेरीरव तेन (त श्रुत्वा) प्रमुक्त (त्यक्त) योग समाधिर्येन ईदृश सन् समागत हृष्ट (प्रसन्न) शकरो यस्मिन् तम्, हरे श्रीकल्किन रथयात्रोत्सव चकार ।। १५ ।।

स हेममाणिक्यगणैर्विनिर्मितः समन्ततोऽनेकरुचिच्छटावृतः ।
मनोहरः सूर्यमयूखचित्रितप्रसर्पिसन्ध्याघनवन्मनोहरः ॥ १६ ॥

हेम्ना (सुवर्णेन) माणिक्यगणैश्च निर्मित , परित अनेकाभि कान्ति-च्छटा-(शोभा)भिर्वृत , सूर्यमयूखै (किरणै) चित्रयुक्त कृत प्रसर्पी (परित प्रसरणशील) च य सन्ध्यामेघ तद्वत् मनोहर ।। १६ ।।

कलक्वणत्कोटिसुवर्णकिङ्किणीस्रजा महत्या परितः परिष्कृतः ।
विचित्रितोत्तुङ्गतुरङ्गपुङ्गवश्रिया समुद्द्योतियुगाग्रपद्धतिः ॥ १७ ॥

कल यथा स्यात्तथा क्वणन्तीना शब्दायमानाना कोटिसख्याना सुवर्ण-निर्मिताना क्षुद्रघण्टिकाना स्रजा मालया महत्या समन्तात् परिष्कृत अल-कृत , विचित्रितौ उत्तुङ्गौ च यौ तुरङ्गपुङ्गवौ (अश्वश्रेष्ठौ) तयो शोभया समुद्द्योतिनी (शोभिता) युगाग्रस्य (युगस्य 'जूडा' इतिख्यातस्य अग्रभागस्य) पद्धति स्थान यस्य स ।। १७ ।।

तडिल्लतापीतदुकूलवल्लरीलसत्पताकावलिभिर्विभूषितः ।
रथस्तमारुह्य पुरन्दरो यथा पयोधरं कल्किहरिर्व्यराजत ॥ १८ ॥

तडिल्लतावत् पीतवर्णा दुकूलवल्लर्य (लताकाराणि कौशेयवस्त्राणि) यासु एतादृशीभि लसन्तीभि पताकावलीभि शोभित । रथ अस्ति । पुर-न्दर (इन्द्र) यथा पयोधरम् (चित्रवर्ण मेघम्) तथा त रथमारुह्य कल्कि-नामको विष्णु व्यराजत अशोभत । इति षोडशश्लोकमारभ्य एकान्वय ।। १८ ।।

समन्ततस्तत्र महोत्सवे हरेरनेकवाद्येषु नदत्सु संततम् ।
तदारवाऽऽकारितवत् प्रमोदतः समाययुः स्वर्गपुरात्सुरेश्वराः ॥१९॥

हरे तत्र (तस्मिन्) महोत्सवे अनेकवाद्येषु निरन्तर नदत्सु (वाद्य-मानेषु), तेषाम् आरवेण (शब्देन) आकारितवत् आहूता इव प्रमोदत अति-हर्षात् सुरेश्वरा श्रेष्ठश्रेष्ठा सुरा स्वर्गरूपात् पुरात् समाजग्मु ।। १९ ।।

इत्थं समस्तेष्वपि मन्दिरेषु महोत्सवान्तेऽखिलमानवौघाः ।
लब्धप्रसादा हरिदर्शनेन तुष्टा ययुः स्वानि निकेतनानि ॥ २० ॥

इत्थ न केवल कल्किमदिरे एव, अपितु समस्तेषु अपि देवमन्दिरेषु महोत्सवस्य अन्ते अखिलमानवाना समूहा हरिदर्शनेन प्रसन्ना. सन्त, लब्धप्रसादाश्च सन्त स्वानि स्वानि भवनानि ययु. ॥ २० ॥

मेघागमे कनकरत्नविचित्रतुङ्ग-
स्तम्भद्वयं कनकदण्डचतुष्टयेन ।
संशोभितं परिलसन्मणिकिङ्किणीभि-
र्युक्तोर्ध्वदेशपरिणाहिसुवर्णदण्डम् ॥ २१ ॥

नानाविधाऽऽस्तरणकल्पितकान्तिरम्यं
रत्नोपधानयुगसंयुतमुन्मयूखम् ।
हिन्दोलमुच्चमधिरोप्य रमासमेतं
कल्कीश्वरं समधिदोलयति स्म राजा ॥ २२ ॥

मेघस्यागमे (वर्षाकाले) कनकस्य रत्नाना च विचित्र तुङ्गम् (उन्नतम्) च स्तम्भद्वय यस्मिन्नीदृशम्, कनकनिर्मितेन दण्डचतुष्टयेन शोभितम्, परिलसन्तीभि. मणिनिर्मितकिङ्किणीभिर्युक्त ऊर्ध्वदेशे परिणाही विशालश्च सुवर्णदण्डो यस्मिन् तम्, नानाविधै आस्तरणै. (आसनै, येषु भगवन्मूर्तिर्विराजिता भवति) कल्पितया (उत्पादितया) कान्त्या रम्यम् । रत्ननिर्मितेन (उभयत.) उपधान(उपबर्ह)युगेन संयुतम्, अतएव उत् उद्गता मयूखा कान्तिकिरणा यस्मात् तादृशम्, उच्चं हिन्दोलम् अधिरोप्य लक्ष्मीसमेत कल्कीश्वर राजा समधिदोलयति स्म हिन्दोलयति स्म ॥२१-२२॥

गुञ्जन्मत्तमिलिन्दपुञ्जकलिते कुञ्जे पयोदागम-
प्रोत्फुल्लामितकेतके तरुलतासंदोहसान्द्रान्तरे ।
विद्युद्द्योतनिवार्यमाणतिमिरे मन्दानिलैः सेविते
हिन्दोलावसरे विलोचनसुखं केषां न कल्की ददौ ॥ २३ ॥

गुञ्जता मत्तमिलिन्दाना (भ्रमराणाम्) पुञ्जेन समूहेन युक्ते । पयोदाना मेघानाम् आगमनेन प्रोत्फुल्ला अपरिमिता (असख्या) केतकवृक्षा. यस्मिन् तादृशे । वृक्षाणा वल्लीना सदोहेन समूहेन निबिडितमध्यभागे विद्युत्प्रकाशेन दूरीक्रियमाण तिमिरम् (अन्धकार) यस्मिन् । मन्दपवन-युक्ते कुञ्जे परमचातुर्येण निर्मिते लतागृहे हिन्दोलाधिष्ठित श्रीकल्की केषा नेत्रसुख न ददौ । अपितु सर्वेषा नेत्रसुख चकार ॥ २३ ॥

जन्मोत्सवे नन्दयशोदयोस्तथा कृष्णस्य मूर्तिं विनिधाय काञ्चनीम् ।
संपूजयामास सुधीर्विधानतश्चक्रे दधिक्रीडनकं महोत्सवम् ॥२४॥

जन्माष्टम्या नन्दयशोदा-श्रीकृष्णाना सुवर्णनिर्मितमूर्ती सस्थाप्य विधानत वैष्णवाना सम्प्रदायानुसार पूजयामास । (द्वितीयदिने) 'दधिकादा' (यत्र हरिद्राक्त दधि भक्तेषु मिथ प्रक्षिप्यते) इति वैष्णवसमाजे प्रथितमुत्सव चकार ॥ २४ ॥

पुरे निबद्धाः प्रतिमन्दिरं ध्वजास्तथा प्रतिद्वारमधारि तोरणम् ।
तदीयपुष्पस्तबकावलीमिलन्मिलिन्दराजी कलगुञ्जितं जगौ ॥२५॥

जन्मोत्सवोपरि—प्रतिविष्णुमन्दिर नवीना ध्वजा निहिता, प्रत्येक-मन्दिरद्वारे हरितपुष्प–पत्रादिनिर्मिता तोरण-वन्दनमालिका अधार्यन्त । तत तोरणसबन्धिपुष्पगुच्छकावलीभि मिलन्ती (पुष्पगुच्छकोपरि पतन्ती) भ्रमरपक्ति कलगुञ्जितरूप गान चकार [भ्रमराणा सा गुञ्जा नास्ति, अपितु मकरन्दपानतुन्दिलाना तेषा सतोषसूचिका यशोगीति साऽस्तीति तात्पर्यम्] ॥ २५ ॥

लब्धानि तत्र मनुजैर्मणिभूषणानि
दिश्यानि दिव्यवसनानि महाधनानि ।
भूयः प्रसादमुपलभ्य रमेश्वरस्य
सर्वे प्रशंसनपराः स्वगृहाणि जग्मुः ॥ २६ ॥

तस्मिन्नुत्सवे मनुजै (मन्दिराणा सबन्धिभि सेवकादिभिर्भक्तजनैश्च) रत्नाभरणानि, दिश्यानि नानादिक्षु भवानि [दूरदूरदेशेभ्य समानीतानि]

महामूल्यानि सुन्दरवस्त्राणि, प्राप्तानि। सर्वे च लक्ष्मीपते प्रसादं प्राप्य संतोषात्प्रगसन्त स्वगृहाणि जग्मु ॥ २६ ॥

अप्यन्नकूटसुमहोत्सवमेष चक्रे
सिंहासनोपरिगतस्य हरेः पुरस्तात् ।
गोवर्द्धनाद्रिशिखरैः सदृशाः समन्ता-
द्यत्राऽन्नराशय उपेतचतुःप्रकाराः ॥ २७ ॥

यत्र सिहासनोगरिस्थापितस्य हरे अग्रे उपेतचतु प्रकारा. प्राप्तचतुर्विधव्यपदेशा [सूपौदन-तेमनादय सखरी 'कच्चीरसोई' पदार्था., मोदक-शष्कुली (जलेबी) गुञ्जिका-मेवाटीप्रभृतीनि पक्वान्नानि, नानाभेदा कलाकन्द -पेटक-वासोवी-प्रभृतयो 'नागरी' (दुग्धनिर्मितपदार्था), नानाफलानि तन्निर्मित'मुरब्बा-बिलसारू' फलपदार्थाश्च] अन्नराशय. भोज्यप्रकारपुञ्जा गोवर्द्धनपर्वतशिखरसदृशोन्नता अभूवन् । गोवर्द्धनपूजाया गोवर्द्धनस्याग्रे चित्रमन्नरागयोऽपि गोवर्द्धनाऽऽकारा. ॥ २७ ॥

दीपावलीनिशमनेकसहस्रदीप-
ज्योतिसमूहविभवेन स पूर्णमासीम् ।
चक्रे चमत्कृतिवशादपि कृष्णपक्षे
ज्योत्स्नाविलासमगमन्कुमुदानि यत्र ॥ २८ ॥

स (जयसिंह) दोपावल्या निश रात्रिम् अनेकसहस्रदीपज्योतिषां (प्रकाशानाम्)समूहवैभवेन पूर्णमासी चकार । महाप्रदीप्ताना पर सहस्रदीपाना तावान् प्रकाशोऽभूत् येन अमावस्याया रात्रिरपि पूर्णतया पूर्णिमाऽभवत् । यस्या रात्रौ कृष्णपक्षेपि तस्मिन् कुमुदानि (ज्योत्स्नाया विकासशीलानि कैरवपुष्पाणि) अपि चमत्कारदर्शनभ्रान्तानि भूत्वा ज्योत्स्नाया विलास (विकसनादिविभ्रमम्) प्राप्नुवन् ॥ २८ ॥

आसप्तद्वीपभूमीवलयतिमिरहृत् प्रातमाब्रह्मलोकं
निःश्रेणीभूय भूमाववतरणकृतां यास्य(ताम्) पूर्वजानाम् ।

भूरन्ध्रैर्नागलोके गतमखिलजगद् व्यानशे जाग्रदेवं
ज्योतिः श्रीमत्सवाईजयपुरनृपतेर्दीपदानप्रभूतम् ॥ २९ ॥

श्रीमत्सवाईजयपुरस्य नृपते दीपावलीनिमित्तकदीपदानात् संभूत जाग्रत् (देदीप्यमान) ज्योति, आ सप्तद्वीपम् महाद्वीपपर्यन्तस्य भूमीवलयस्य तिमिरम् अन्धकारं हरति तादृशम् । भूमौ अवतरणकृताम्, अर्थात् देवलोकेषु यथेच्छ सुखमनुभूय भूमण्डले स्वेच्छया चक्रवर्त्यादिवैभवमनुभवितु भूमौ अवतरण कुर्वता निजपूर्वजाना कृते, तथा भाविनो वशजाता ये अग्रे देवलोक यास्यन्ति तेषा कृते च निश्रेणीभूय सोपानस्थानीय भूत्वा आब्रह्मलोक(ब्रह्मलोकपर्यन्त) प्राप्तम् [दीपदानज ज्योति पृथिवीमारभ्य सर्वोपरिस्थित ब्रह्मलोक यावद्गतम् । तत्र भूमितो ब्रह्मलोकपर्यन्त व्याप्तमिद ज्योति अवतरण कुर्वताम्, अग्रे आरोहण कुर्वता च वशजाना कृते सोपानभूत भूत्वा ब्रह्मलोकपर्यन्त व्याप्तमित्याशय]। तथा भुवश्छिद्रैर्भूत्वा नागलोके पातालादिषु गतम् । ततश्च—एवप्रकारेण जाग्रत् इद ज्योति अखिलजगत् व्यानशे व्याप । पातालादिषु, भूमौ (मध्यमलोके), तथा दिव्यलोकेषु ब्रह्मलोकपर्यन्त च तदिद दीपदानज ज्योतिर्जगाम, इत्यहो कवे सामर्थ्यम् । कृतस्य सुकृतस्य पुण्याऽदृष्ट चतुर्दशभुवनेष्वपि गमनसमर्थमिति को वा दार्शनिको न मन्येतेति नेद केवल कविकल्पनैव ॥ २९ ॥

इत्येवं जयपुरमध्यनिर्मितेषु श्रीविष्णोर्वियति ततेषु मन्दिरेषु ।
नित्यार्चाविविधविधानपूर्वमेवं चक्रेऽसौ प्रतिनियतोत्सवप्रकारान् ॥ ३० ॥

इति एव (पूर्वोक्तप्रकारेण) जयपुरमध्ये निर्मितेषु (अपि) अत्युच्चतया वियति (आकाशपर्यन्तम्) ततेषु व्याप्तेषु श्रीविष्णोर्मन्दिरेषु नित्याऽर्चाया (नित्यपूजाया) विविधविधानपूर्वकम् असौ (जयसिह) प्रतिनियतान् उत्सवप्रकारान् (पूर्ववर्णितरीत्या) चक्रे अनुतष्ठौ । सर्वेष्वपि मन्दिरेषु तत्तत्सप्रदायानुसार नित्यपूजाया विविधविधानानि यथावत् परिचालयन् तदुत्तर नैमित्तिकान् इमान् उत्सवान् सोत्साह चकारेति राज्ञो महत्त्वातिशय ख्याप्यते ॥ ३० ॥

स वाजिमेधप्रभृतीन्पुनः पुनः क्रियाकलापान्कलयन् कलौ युगे ।
अनल्पकल्याणगुणैकभाजनं बभूव भूमीपतिरेष भूरिशः ॥ ३१ ॥

अश्वमेधप्रभृतीन् वैदिकक्रियासमूहान् (चतुर्थसर्गवर्णितप्रकारेण) पुन पुन कुर्वन् स एष (जयसिंह) भूमीपति कलियुगेऽपि भूरिश (बहुश) अनल्पाना (प्रचुराणाम्) कल्याणगुणाना (अर्थात् तादृशे राज्ञि अभिनन्दनीयानाम्) एकमात्र भाजन बभूव ॥ ३१ ॥

स ब्रह्मसूत्रोपनिषद्विचारणाद्वेदान्तसिद्धान्तसुनिश्चिताशयः ।
तीर्त्वाऽपरं ब्रह्म स शब्दसंज्ञकं प्रापत्परं ब्रह्म पुनीतमानसः ॥३२॥

ब्रह्मसूत्राणाम् उपनिषदा च विचारणात् वेदान्तसिद्धान्तेषु दृढीकृतान्त - करण स अपर ब्रह्म तीर्त्वा (पूर्वमीमासावर्णितकर्मकाण्डानुष्ठानदशायाम्) कर्त्तव्यानि समाप्य पवित्राऽन्त करण सन् शब्दाभिधेय पर ब्रह्म प्राप ॥३२॥

सकर्मणि ज्ञानपथे च निष्ठितो भजन्मुकुन्दं नवधा स भक्तितः ।
शुभाय जीवन् जगतो जगत्पतिश्चकार कर्मेह न किं किमद्भुतम् ॥३३॥

स (जय०) सकर्मणि कर्मकाण्डानुसृते ज्ञानकाण्डे निष्ठित (निष्ठायुक्त)श्रवणकीर्तनादिनवप्रकारया भक्त्या भगवन्त भजन्, जगत शुभाय शुभ कर्तु जीवन् (लोकाना कल्याणकरणे एव निजस्य जीवनसाफल्य मन्वान) इह जगति किकिम् अद्भुत कर्म न चकार, अपितु सर्वाण्येव लोकातिशायीनि कर्माणि विदधौ ॥ ३३ ॥

वेदानध्यैष्ट खेदापहरणनिपुणान् सर्वदाऽयष्ट देवान्
ये पूर्वे तानिहाऽतित्रपत स सममंस्तैव बन्धून्सबन्धून् ।
षड्वर्गं च व्यजेष्ट प्रथमसुकृतिभिः पालितेऽसावरंस्त
श्रेयोधर्मेऽधिरोढुं दिवमकृत मखश्रेणिनिःश्रेणिमेषः ॥ ३४ ॥

खेदस्य मानसिकसतापस्य हरणे निपुणान् वेदान् अध्यैष्ट (वेदस्वाध्यायमकरोत्) । देवान् अयष्ट यागादिभिर्देवान् समतोषयत् । ये पूर्वे राजान प्रतापशालिम्मन्या अभवन् तान् अतित्रपत अलज्जत (निजाऽलौकिककार्यैः

तानपि लज्जितानकरोत्) । सबन्धून् बन्धुबान्धवसहितान् बन्धून् निजसवन्धिन सम्प्रमस्त सममानयत् । निजबन्धुबान्धवानामेष तथा समानमकरोत् यथा समृद्धा सन्तस्तेऽपि निजबान्धवादीना संमानमकुर्वन्नित्याशय । कामक्रोधादिकमरिषड्वर्ग विजितवान् । पूर्वं पूर्वजातै सुकृतिभि पालिते अनुवृत्ते श्रेयोधर्मे कल्याणमार्गे अरस्त प्रसन्नचित्तो व्यवाहरत् । एष दिव स्वर्गम् अधिरोढुम् मख (यज्ञ) रूपा श्रेणिनिश्रेणि सोपानपरम्पराम् अकृत चकार । यज्ञकर्ता निश्चित स्वर्ग गच्छति । ततश्च इमे यागा स्वर्गारोहणार्थं सोपानपरम्परा सन्तीत्याशय ॥ ३४ ॥

वृन्दावती(राज्य)मसावकण्टकं निर्माय तीक्ष्णेन निजेन तेजसा।
श्रीमन्महावीरदलेलसिंहसाच्चक्रे समुद्भावितवक्रविक्रमः ॥ ३५ ॥

तीक्ष्णेन (केनापि राज्ञा अनभिभवनीयेन) निजेन तेजसा (क्षात्रेण बलेन) वृन्दावती (बूँदी) राज्यम् अकण्टक शत्रुरहित कृत्वा, समुद्भावित प्रकटीकृत वक्र प्रचण्ड अपूर्व विक्रम पराक्रमो येन तादृश सन् तद्बून्दीराज्य महावीरस्य दलेलसिंहस्याऽधीन चकार ॥ ३५ ॥

[बुन्दीराज्यस्याधिकारिणो रावराजाबुधसिंहस्य विवाहो महाराजजयसिंहस्य भगिन्या अमरकुमार्या (अमरकुँवरी) सह बभूव । बुधसिंह कौलमत (वाममार्ग)-स्यानुयायी आसीत् । इतस्तस्य महिषी कच्छवाही राज्ञी वैष्णवधर्मानुयायिनी समभूत् । अतएव सर्वदैव द्वयोर्मनोवैषम्यमभूत् । बुधसिंहस्याऽऽसीत् चूँडावतराज्ञ्या उपरि प्रगाढ प्रेमा । एषा हि बेगू (मेवाड) राज्याधिकारिणो रावतस्य पुत्री । अतएव कच्छवाही-राज्ञ्यास्तनय बुन्दीराज्याद्वञ्चयितुँ स हि (बुधसिंह) कृत्रिममकथयत् । एतदुपरि समये तस्मिन् सर्वसमर्थो जयसिंहो बुधसिंहहस्तेन तदिदमलेखयद् यत्–"चूडावतराज्ञ्या पुत्रे उत्पन्ने, तमह तत्रभवते (जयसिंहाय) समर्पयिष्यामि । बूदीराज्यस्य च स एवाधिकारी भवेद् य भवान् समन्येत ।"

प्रतिज्ञामिमा नाऽशक्नोत्पालयितु बुधसिंह । चूँडावतराज्ञ्या गर्भजे उम्मेदसिंहे समुत्पन्ने स हि न समार्पयन्महाराजाय जयसिंहाय । अतएव क्रुद्धो जयसिंह करवड-राज्याधिकारिण सवाईसिंहस्य पुत्र दलेलसिंह निजेन तेजसा बूदीराज्यस्योत्तराधिकारिण निर्माय बुधसिंह [१७८६ तमे वैक्रमे वत्सरे, १७२९ तमे ख्रिष्टीयवत्सरे] बुन्दी-राज्यान्निर्वासयामास । न्यक्कृतो बुधसिंहो बेगूराज्यमाश्रयत्, तत्रैव चाऽस्य जीवितावसान बभूव । [वंशभास्करस्य बुधसिंह चरित्रम्, पृ० ३२८५, म० म० गौरीशकरओझा

निर्मितस्य उदयपुरराज्येतिहासस्य द्वितीयो भाग पृ० ६३२–८९४, तथा तल्लिखित "महाराज सवाई जयसिंह" य जीवनचरितम् (बिड्ला कालेज पत्रिका)] ॥३५॥

गोपालसिंहस्य सुतः सपत्नजाद्भयादिह स्वं शरणं समकत(समाययौ)।
संस्थापयामास स राज्यवैभवे विजित्य तद्वैरिण आततायिनः॥३६॥

स्वस्य सपत्न(शत्रु)जाताद् भयात् (हेतो) राजो गोपालसिंहस्य पुत्र. स्व (जयसिहम्) शरण समागच्छत् । स (जयसिह.) आततायिनः (परस्य राज्याऽपहर्तॄन्) तस्य वैरिण. विजित्य त राज्यवैभवे स्थापयामास ॥ ३६ ॥

यः संततं भागवताऽमृताम्बुधि-
श्रीकृष्णलीलावतरङ्गसंगतः ।
जानाति नैव स्म सदा दुरव्यथा
नानाविधा भीमभवाब्धिजा रुजः ॥ ३७ ॥

भागवतरूपस्य अमृतसमुद्रस्य श्रीकृष्णलीलासमूहरूपा ये तरङ्गाः तैः मिलित. य भयकरान् भवसागराज्जाता दुष्टा अव्यया (कठिना:) च नानाविधा रुजा (रोगान्) न जानाति स्म ॥ ३७ ॥

वल्मीकज-व्याससमाधिभाषयोः स भारतादिष्वितिहासराजिषु ।
अङ्गेषु शास्त्रेषु पुराणवर्त्मसु प्रसङ्गतोऽनेहसमत्यवाहयत् ॥ ३८ ॥

वल्मीकजस्य (वाल्मीके) भाषाया (रामायणे), व्यासस्य समाधि-भाषायाम् (श्रीभागवते), भारतादिषु इतिहासराजिषु (समूहेषु), षट्सु वेदाङ्गशास्त्रेषु पुराणमार्गेषु च प्रसङ्गानुसार निजस्य अनेहस (कालम्) अत्यवाहयत् अगमयन् ॥ ३८ ॥

सत्कर्ममीमांसकधर्मतत्परो ब्रह्माद्वयज्ञोपनिषत्प्रमाणवित् ।
श्रीकृष्णभक्त्येकचणः क्षणं क्वचित्कालं वृथा नैष निनाय कोविदः॥३९॥

सत्कर्मसु मीमांसोदितधर्मेषु च तत्पर, ब्रह्मण अद्वैतज्ञ, उपनिषदां न्यायादिप्रमाणशास्त्राणा च वेदिता, श्रीकृष्णभक्त्यामेकनिष्ठ एष कोविद (पण्डित) क्वचिदपि क्षणकालमपि वृथा न निनाय ॥ ३९ ॥

स पूर्वकाण्डोदितकर्मपद्धतिं
ज्ञानेन शुद्धाद्वयवर्त्मयायिना ।
श्रीकृष्णभक्त्या च तदेकनिष्ठया
तां चापि निष्कामतया व्यभूषयत् ॥ ४० ॥

स पूर्वकाण्डोदिता कर्मपद्धति शुद्धाद्वैत(वैष्णव)मार्गगामिना ज्ञानेन विभूषयाञ्चकार । ता (श्रीकृष्णभक्तिम्) निष्कामतया (फललिप्साराहित्येन) व्यभूषयत् ॥ ४० ॥

स श्रौतिनः कर्मकलापकोविदान् बुधांश्च शास्त्रार्थसमूहवेदिनः ।
भक्तान् महाभागवतांश्च भूरिशः समन्ततः संचिनुते स्म संततम् ॥४१॥

स (जय०) कर्मकाण्डपण्डितान् श्रौतिन (वैदिकान्), अङ्गादिशास्त्रार्थसमूहविज्ञान् पण्डितान् च, भगवदेकनिष्ठान् भक्तान् च सर्वत अन्विष्य अन्विष्य निरन्तर सगृह्णाति स्म ॥ ४१ ॥

अरातीनां दुर्गाहरणचणदुर्गाह-रणजिद्
बुधानां दारिद्र्यानलविसरविद्रावणपटुः ।
चिदानन्दस्थानं त्वरितमधिरोढुं शतमखीं
दधानं सोपानं जगति विजयानन्त्यमभजत् ॥ ४२ ॥

अरातीना शत्रूणा दुर्गाणा रक्षास्थानानाम् आहरणचण अपनयनकर, दुर्गाहाणा दु खेन गाहितु शक्यानाम् (अतिकठिनानाम्) रणाना जेता । पण्डिताना दारिद्र्यरूपस्य अग्निसमूहस्य विद्रावणे प्रशमने चतुर । चैतन्यानन्दस्थान (ब्रह्म) अधिरोढुम् (अधिगन्तुम्) सोपान(निश्रेणि)स्थानीया शतमखी (शताना मखाना समाहार ताम्, शतसख्याकान् यज्ञान्) दधान धारयत् जगति विजयस्य आनन्त्यम् अनन्तान् विजयान् प्राप ॥ ४२ ॥

सन्नीतिः स धर्माध्वनीनः परेषामनीकादनीकस्य मानान्विधाय ।
वनीपानपीहाऽवनीपांश्च कृत्वा धनीशानभावं पनीपद्यते स्म ॥४३॥

सनीति नीतिसहित धर्ममार्गगामी परेषा शत्रूणाम् अनीकाद् युद्धाद् अनीकस्य निजसैन्यस्य मानान् सम्मानान् (प्रतिष्ठाम्) विधाय । युद्धे शत्रूणा विजय विधाय निजसैन्यस्य प्रतिष्ठा सर्वस्मिन्नपि ससारे येन निर्भर प्रतिष्ठापितेत्याशय । वनीपान् याचकान् अपि इह समारे अवनीपकान् पृथिवीपालकान् कृत्वा स (जय०) धनिनाम् ईशानभावम् ईश्वरत्व पनीपद्यते अतिशयेन प्रतिपद्यते स्म (प्राप्नोति स्म) । पद्यतेर्यङ । 'नीग् वञ्चुस्रसु०' इति नीगागम । स नीतिज्ञ, धार्मिक, शत्रुसेनाविजयी, निजसेनाया समानप्रदश्चासीत् । तेन धन प्रदाय वनीपा याचका अपि अवनीपका राजानो विहिता । य वनीपक स न (अ)वनीपक कथ स्यात् ? इति विरुद्धम् । किन्तु तेन निजसमीपागता दरिद्रा (ये स्थाने स्थाने याचन कुर्वन्ति ते वनीपा) न वनीपका अर्थात् अवनीपका (अवनी पृथिवी पान्ति ते अवनीपा, अवनीपा एव अवनीपका स्वार्थे क) धरणीपालका राजानो विहिता ॥ ४३ ॥

वनीपकानामवनीपकत्वकृत् स नीतिभृन्नित्यमनीतिभृद्भुवि ।
प्रतापराशिर्जनतापहारको नृणां न केषां हृदि चित्रमातनोत् ॥४४॥

वनीपकानाम् अवनीपकत्वकृत् । ये वनीपका (याचका) ते न वनीपका अवनीपका कथ भवेयु इति विरोध । तेन अवनी (पृथिवी) पालका विहिता इति विरोधपरिहार । य नीतिभृत् स अनीतिभृत् कथ स्यात् ? किन्तु नीति-(नय) पालक स न ईति (उपद्रव) भृत् । नयपालकस्य तस्य सन्निधे नानाविधा: ईतय न कदाचिदपि आयान्तीति तात्पर्यम् । प्रतापस्य प्रकृष्टतापस्य राशि (पुञ्ज) जनाना तापहर्ता कथ भवेदिति विरोध । किन्तु स (जयसिह) प्रतापस्य प्रभावस्य (कोपदण्डजातस्य तेजस) राशि , तथा जनानां (प्रजानाम्) ताप सर्वविधसताप हरति तादृश । अतएव सर्वेपा हृदि विस्मयमुत्पादयामास । विरोधालकार ॥ ४४ ॥

श्रीदीक्षितेन्द्रश्चतुरग्निचायकः पञ्चाधिकश्रेष्ठशताश्वमेधकृत् ।
वर्धस्व सम्राट् त्वमिति द्विजव्रजैश्चक्रे स आशीर्विषयो दिवानिशम् ॥४५॥

चतु सख्याकाना 'चयन' यागाना कर्ता, पञ्चाधिकाना श्रेष्ठाना शत-

संख्याकानामश्वमेधाना कर्ता, दीक्षितेषु इन्द्र श्रेष्ठ· सः "हे सम्राट्! त्वं प्रत्यहं समृद्धियुक्तो भव" इति द्विजसमूहै अहोरात्रम् आशीर्वादानां पात्रं चक्रे । रात्रिन्दिव तस्मै वृद्धेराशीर्वादा दत्ता इत्याशयः ।। ४५ ।।

धारां कलिन्दतनयासलिलस्य शक्रप्रस्थे स्ववेश्मपरिपावनपुण्यशीलाम् ।
ईशं प्रसाद्य निजपूर्वजदुर्लभां यो भागीरथीमिव भगीरथ आनिनाय॥४६॥

य. इन्द्रप्रस्थे (दिल्ली) स्वभवनस्य पवित्रीकरणमेव पुण्यं शीलं यस्याः (निजभवनपावनीम्) कलिन्दतनया(यमुना)सलिलस्य धाराम्, भगीरथः ईश (शिवम्) प्रसन्न कृत्वा निजपूर्वजाना (सगरपुत्राणाम्)कृते दुर्लभां भागीरथीमिव, आनिनाय । भगीरथेन यथा शिव प्रसाद्य गङ्गा आनीता, तथा ईश भारतस्य स्वामिनम् अवरङ्गजीवपुत्रं सम्राज प्रबोध्य निजनिवासभवनपर्यन्तं यमुनाया धारा आनीतेत्याशय । दिल्लीनगरे जयपुरनरेन्द्रैः स्वनिवासाय यत्र राजभवन निर्मापितमासीत् यमुनाया धारा ततः किञ्चिद्विप्रकर्षेऽभूत् । किन्तु महाराजेन सम्राजमनुकूलीकृत्य सा यमुनाया धारा जयपुरभवनपर्यन्तमानीतेति तात्पर्यम् ४६ ।।

श्रीमत्सवाई जयसिंह इत्यसौ नाम त्रिलोकीसदनप्रसिद्धिमत् ।
श्रुत्यैव संग्रामजयैककारणं लेभे नरेन्द्रो नवरङ्गजेबतः ॥ ४७ ॥

असौ नरेन्द्र त्रिलोकीवलये प्रसिद्धियुक्त श्रुत्या श्रवणमात्रेणैव सग्रामजये एकमात्र कारण 'सवाई जयसिह,' इति नाम औरङ्गजेबत. प्राप । सम्राजा औरङ्गजेबेन तस्मै सवाई इति पदवी प्रदत्ता ।। ४७ ।।

[महाराजविष्णुसिंहस्य स्वर्गवास १७५६ तमे वैक्रमे सवत्सरे माघकृष्णसप्तम्या (१ जनवरी १७०० ख्रिष्टवत्सरे) काबुलनगरेऽभवत् । अतएव निजपितुरुत्तराधिकारप्राप्त्यर्थं साम्राज्यनियमानुसार महाराजजयसिंहो बाल्यावस्थायामेव सम्राज समुखे समुपागच्छत् । सम्राडवरङ्गजीव समयेऽस्मिन् मोगलसाम्राज्यस्य मूलभित्ति निजकूटकृत्यैर्जर्जरीकृत्य स्वायुषोऽन्तिमसमय दक्षिणप्रान्ते व्यतिगमयन्नासीत् ।

बाल्यावस्थायामपि नैसर्गिकतेजोदीप्त महाराजमभिमुखमुपस्थित दृष्ट्वा तस्य बुद्धि परीक्षितु सम्राड् महाराजस्योभावपि करौ निजकरे गृहीत्वा सस्मितमपृच्छत्— "इदानी भवान् किं कर्तु शक्नुयात् ?" जन्मजातया स्वाभाविकप्रतिभया जाज्वल्यमानमुखो महाराजस्तत्कालमुत्तरमदात्—"इदानी त्वह सर्वमपि कर्तुं प्रभवेयम् ।

यतो हि लोके स्वामी यदा स्त्रिया एकमेव कर गृह्णाति तदापि तस्यै भूयानधिकारो नियमानुसारमेव सुलभो भवति । इदानीं तु भारतसम्राजा मे द्वावपि हस्तौ गृहीतौ । साम्प्रतमह कि पुरुष सन्नपि अधिकारप्राप्तौ न्यूनो भवेयम् ?"

सम्राड् अनेनोत्तरेण चमत्कृत सुतरा प्रसन्नश्चाऽभवत् । तस्मिन्नेव समये महाराजाय सम्राट् 'सवाई' इति पदक प्रादात् [अर्थात् पूर्वस्मात् 'मिर्जाराजा' जयसिंहादपि सपादमधिक] वीरविनोद १२ प्रकरणम्, कच्छवशमहाकाव्य १० सर्गः, बिडलाकालेजपत्रिकाया 'महाराज सवाई जयसिंह' निबन्धे महामहोपाध्यायगौरीशकरहीराचन्द ओझा) ॥ ४७ ॥

इतः प्रतापाख्यदिनेशदीप्तिमानितो यशश्चन्द्रजचन्द्रिकाञ्चितः ।
अनेकराजोत्तमराशिरद्भुतः स राजते स्म प्रकटः पयोनिधिः ॥४८॥

इत प्रतापरूपेण सूर्येण दीप्तिमान्, इत कीर्तिरूपचन्द्रस्य चन्द्रिकया (प्रकाशेन) मनोहर । तथा अनेकेषा रत्नोत्तमाना (उत्तमरत्नानाम्) अद्भुतो राशि स (जयसिंह) सुस्फुट पयोनिधि (समुद्र) समुद्ररूप. शोभते स्म । समुद्रस्यापि पूर्वदिशि सूर्य, अस्तमनदिशि चन्द्र । तथा स प्रसिद्धाना रत्नानामाकर ॥ ४८ ॥

हृतं सकोपेन स चक्रवर्तिना पुरन्दरप्रस्थपुराधिपेन तत् ।
स्वराज्यमह्नाय समानयत्तमां करालरूपः करवालकेलिभिः ॥ ४९ ॥

सकोपेन दिल्लीपुराधिपेन सम्राजा (बहादुरशाहेन) हृतं तत् स्वस्य राज्यम् (आम्बेरम्) खड्गपरिचालनक्रीडाभि प्रचण्डरूप स (जयसिंह) अह्नाय (झटिति) समाहरत् ॥ ४९ ॥

[उदयपुरराजकुमार्यां जयसिंहस्य विवाह, निजराज्यात् 'खालसा' उत्थापनम्]

''वीरविनोदे' लिखितम्—स० १७६३ फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्याम् अहमदनगरे अवरङ्गजेबस्य मृत्युरभून्। ज्येष्ठपुत्रो मुहम्मदस्तु पूर्वमेव मृतोऽभूत् । इदानीं द्वितीयो मुअज्जमः (य आम्बेरभूमिया विजयसिंहेन सह काबुलेऽभवत्) आत्मानं सम्राज स्थापयामास । तृतीय आजमोऽपि तथैव निज सम्राज प्रासेधयत् । द्वावपि रणाय सज्जौ भूत्वा दिल्ली प्रस्थितौ । मार्गे धवलपुर—आगरानगरयोर्मध्ये जाजऊस्थाने द्वयोर्भयकर युद्धमभूत् । लघुराजम संग्रामे मृत. । ज्येष्ठो मुअज्जमो बहादुरशाहनाम्ना सम्राडभवत् । जयसिंहो

लघोराजमस्य पक्षमगृह्णात् । अतएव वहादुरशाह सम्राड् भूत्वा आम्बेरे सैयदहुसैनखानं साम्राज्यद्वारा प्रेषित प्रवन्धक नियतीकृत्य 'खालसा' प्रवन्धमस्थापयत् ।

१७६४ तमे विक्रमाब्दे फाल्गुनशुक्लद्वादश्या (२१ फरवरी, १७०८) स्वकनीयस कामवख्शस्य दमनाय दक्षिणा दिश प्रयास्यन् वहादुरशाहो मार्गे मेडतानगर प्राप । 'इतिहास राजस्थाने' लिखित यत् समयेऽस्मिन् यथा आम्वेरे तथा जोधपुरेऽपि साम्राज्य-(खालसा)प्रवन्ध कृतवान् वहादुरशाह । अतएव जयपुराधीशो जयसिंह, जोधपुराधीश अजितसिंहश्चेत्युभावपि निजनिजराज्ययो पुनरधिकारप्राप्तये दक्षिणप्रान्त गच्छतो वहादुरशाहस्य चाटुकारविधया प्रसादनाय साभिलापमनुसरणमकुरुताम् । नर्मदा(इन्दौर)पर्यन्त सह गत्वा राज्यप्राप्तेराशामपश्यन्तौ अप्रसन्नहृदयौ अपृष्ट्वैव सम्राज त्यक्त्वा त,परावृत्तौ । मार्गे उदयपुरे समागतो द्वावपि निजाऽऽगमनस्य सूचनामदाता तत्र । मानसिंहप्रतापसिंहयो समयमारभ्य जयपुरोदयपुरयोर्मध्ये मनोमालिन्यमासीत्प्रचलितम् । सप्रति जयपुराधिपतेरागमनस्य सूचना समधिगम्य निजमातुर्मन्त्रणया उदयपुराधिपति (अमरसिंहो द्वितीय) द्वयोर्महत् स्वागत चकार ।

कानिचिद्दिनानि तत्रैव निवास्य जयपुराधिपतये जयसिंहाय निजपुत्रीम्, जोधपुराधिपतये अजितसिंहाय च निजभगिनी प्रादात् । विवाहसमये महाराणा प्रतिज्ञामलेखयद् यत्, 'मदीयपुत्र्या गर्भाद् य पुत्र स्यात् स एव जयपुरराजसिंहासनस्याधिकारी भवेत' । विक्रमसवत्सरे १७६५ तमे आषाढकृष्णद्वितीयायां महाराणा अमरसिंहस्य राजकुमार्या चन्द्रकुमार्या (चन्द्रकुँवरि) सह समवर्तिष्ट जयपुरपतेर्विवाह । द्वयो राज्ययो पारस्परिकमनोमालिन्यनिवर्तनाय, उदयपुरपतेर्गौरवाय वा सेय प्रतिज्ञा तस्मिन्समये जयपुराधिपतिना न विचारिता भवेत् काम, किन्तु तथापि सेय सर्वथाऽनुचिताऽऽसीत्, राजपुत्रप्रान्तस्य कृते च नितरा हानिकर्त्री चाऽसिध्यत् । यतो ह्येतस्या एव कारणेन महाराजजयसिंहस्य स्वर्गवासोत्तर जयपुरोदयपुरयोर्मध्ये सग्राम समवध्यत । येन हि द्वयोरपि राज्ययोर्महती हानि समभवत्, राजपुत्रप्रान्तोपरि महाराष्ट्राणा प्रभावश्चोत्तरोत्तर प्रावर्द्धत ।

उदयपुरनिवाससमये समवेतैस्त्रिभिरपि राज्यस्वामिभि परस्पर मन्त्रणा कृताऽभूत् यत् जयपुरजोधपुरराज्ययो सवन्धे साम्प्रत वहादुरशाहस्य न काचिदपि प्रत्याशा करणीया । साम्प्रत निजनिजबाहुबलेनैव द्वयो राज्ययोरुद्धार कर्तव्य स्यात् । उदयपुराधिपतिरेतस्मिन् विषये जयसिंहादिभ्य सहायताप्रदानार्थ स्वीया सेना द्वयोर्निजाधिकारिणोरध्यक्षताया नियुज्य सवहुमान व्यसर्जयत् । त्रयाणामपि राज्याना समिलितया सेनया सर्वत पूर्व जोधपुरराज्यमाक्रान्तम् । जोधपुरप्रबन्धार्थ नियत सम्राजो दण्डाध्यक्ष कञ्चित्समय (शर्त)कृत्वा ततो नि सृतोभवत् । राज्योपरि यथापूर्वमजितसिंहस्याऽधिकारो भवत् । इदानी समिलिताऽसौ सेना आम्बेरराज्यस्योद्धारार्थं प्रातिष्ठत ।

किन्तु तत पूर्वमेव अमात्यरामचन्द्रेण श्यामसिंहकच्छपघातेन च आम्बेरप्रबन्धकर्ता हुसैं खानो दण्डाध्यक्षो बलादाम्बेरराज्यान्निर्वासितोऽभूत् । सम्मिलितसेनया सह समागतो महाराजो जयसिंह सुखेन निज पैतृक राज्य-सिंहासनमध्यतिष्ठत् । एतद्घटनाया सूचना अजमेरस्थेन साम्राज्याधिकारिणा (सूबेदार) शुजाअतखानेन प्रादीयत सम्राजे बहादुरशाहाय । बहादुरशाहो दक्षिणप्रान्तात् परावृत्य द्वाभ्यामपि राज्याधिकारिभ्यां दण्डप्रदानस्य व्यवस्थामकरोत् । किन्तु तस्मिन्नेव समये पञ्चाम्बुप्रान्तात् सिक्खानां विद्रोहस्य सूचना समुपालभ्यत । अतएव तस्य दमनार्थं प्रयास्यन् सम्राट् जयपुरादिप्रयाण स्थगितमकरोत् । जयपुर-जोधपुराधिकारिणावपि निजसहायकानां मन्त्रणया बहादुर-शाहस्य समीपमगमता, यत्र तयोरपराधोऽयं क्षन्तव्य समभूत् ('उमराय हनूद' पृ० १७८ 'वीरविनोद' प्रकरणम् ११) ।

सांभरोपरि अधिकारः

'वंशावली' ग्रन्थे इदमपि समुपलभ्यते यत् आम्बेर प्रति परावर्तनसमये द्वयोरपि (जयपुर-जोधपुरयो) राज्ञो सेनाभिर्मार्गे समागतस्य साभरस्योपरि निजाऽधिकारः कृतोऽभूत् । सम्राड् बहादुरशाह सुतरामकुप्यत् । किन्तु महाराजजयसिंहादिभिश्चा-तुर्येण प्रत्युत्तरितम्—'वय भवत्सेवायामुपतिष्ठमाना अन्न भवत एव भुञ्ज्महे, तर्हि लवण कस्मादानयाम ?' मोगलसाम्राज्यस्य दुर्बलदशामनुभवन् सम्राट् विवशं प्रसन्नो-ऽभवत् । साभरह्रदोपरि सम्मिलितरूपेण द्वयोरपि राज्ययोरधिकार समभवत् । (अद्यापि द्वयोरेव राज्ययो. शासनाधिकारिणौ नियतविभागानुसार स्व-स्व-द्रव्यसचय कुरुत, द्वयोरेव राज्ययोश्च सम्मिलितोऽधिकार) ॥४९ ॥

भोगाननेकान् भुवनेऽत्र दुर्लभान् भुञ्जान एव क्षितिपाकशासनः ।
स योगशास्त्रामृतसिन्धुपारगो दधार मोक्षेऽपि सुनिश्चितां मतिम्॥५०॥

क्षितौ (भूम्याम्) पाकशासन. (इन्द्र) स भुवने दुर्लभान् अनेकान् राज्यभोगान् भुञ्जान. (अनुभवन्नेव) योगशास्त्ररूपस्य अमृतसमुद्रस्य पारं गत मोक्षेऽपि (निवृत्तिमार्गेऽपि)दृढां मति दधार। राज्यसुख भुञ्जानस्या-ऽपि तस्य गीता—योगशास्त्रादिपरिनिष्ठिततया निवृत्तिमार्गं प्रति स्वाभाविक-माकर्षणं बभूवेत्याशय ॥ ५० ॥

स व्याचख्यौ ब्रह्मसूत्राणि विद्वान् शुद्धब्रह्माद्वैतमार्गानुगामी ।
मायावादं वल्लभाचार्यवर्यव्याख्यारीत्या खण्डयन् भक्तराजः ॥५१॥

अद्वैतवेदान्तिभि (श्रीशंकरप्रभृतिभि) प्रतिपादितं मायावादं (जगदिदं मायारूपेण दृश्यते, असत्यमित्यादिकम्) शुद्धाद्वैतवैष्णवमार्गानुसारेण खण्डयन् विद्वान् भक्तराज स वल्लभाचार्यकृतव्याख्यानुसारेण ब्रह्मसूत्राणां व्याख्या चकार ॥ ५१ ॥

स निर्मितं स्वेन पुरं गुणोद्धुरं महीपतिर्मण्डयितुं समन्ततः ।
तरङ्गिणीं दर्भवतीमदभ्रगां सुदूरतोऽप्यानयताऽखिलक्षमः ॥ ५२ ॥

स महीपति स्वेन निर्मितं गुणै उद्धुरम् (उन्नतम्) पुर (जयपुरम्) सर्वरूपेण मण्डयितुम् अदभ्र (प्रचुरम्, प्रबलम्) गामिनी दर्भवतीम् (नाथावतेतिहासानुसारं 'बाँडी') नदीम् अखिलक्षम सर्वप्रकारैः समर्थः स सुदूरत अपि आनिनाय । 'आनयत,' नयतेरात्मनेपदे लङ ॥ ५५ श्लोकपर्यन्तमेकान्वय । दर्भवतीमित्यस्य विशेषणानि ॥ ५२ ॥

(भारते नवीनेन प्रकारेण सर्वतः प्रथममविवासितमेवंविध नगरं मिष्टजलेन तोषयितु भूषयितु च महाराजो जयसिंहस्त्रीन् प्रयत्नानकरोत्—

१—प्रथम महाराजो 'बाडी' नदीत एका कुल्या (नहर) अखानयत् या हि अनुमानत १६ क्रोशान् दीर्घाऽऽसीत् । एतस्या. समानयनाय 'हरमाडा' ग्राममध्यस्थ पर्वत भित्त्वा, 'चूप,'ग्रामपरिसरे उच्चभित्तियुक्तया एकया सहायककुल्यया सबन्धः प्रकल्पितोऽभूत् । किन्तु यस्मिन् प्रदेशे जयपुरनगरस्य शिलान्यासोऽभूत् स प्राङ्गण अपेक्षया उन्नतोऽभूत् । अतएव यथा विचारितमासीत्तथा जलप्रवाहो नगराभिमुख न यथावद् गन्तुमशक्नोत् ।

२—बालानन्दमन्दिरस्य पृष्ठे अतिविशाल अतिगभीरश्चैको महान् कुण्ड खानितोभूत् यस्योपरि चतुर्दिक्षु उच्चासु भित्तिषु चत्वारि आमुखानि ('ढाने'), चत्वारो ह्रदाश्च ('हौज') निरमीयन्त, येभ्यो नगरगामिनीना नालिकाना सबन्ध पर्यकल्प्यत । किन्तु कुण्डोऽय केवल विशालाया राजहर्म्यमालाया एव कार्यनिर्वाहार्थं पर्याप्त पर्यगण्यत न समस्तस्य नगरस्य कृते ।

३—अमानीशाहनालके ('नला अमानीशाह') पाषाणादिभि सुदृढ एको जलबन्धो निरमीयत यस्य सकाशान्निर्गता एका महाविशाला कुल्या (नहर)निर्मिता, या जयपुरस्य पश्चिमभागात्प्रारभ्य नगरस्य मध्येराजमार्गं भ्रमन्ती नगरस्य पूर्वभागपर्यन्त प्राप्नोत् । एषा हि चूर्ण-पाषाणादिभिर्निर्मिता अतीव विशाला, नगरस्य भूमिगर्भे च खानिताऽऽसीत । यस्या ५-७ अश्वारोहाः युगपत् अन्तरन्तरेव याताऽऽयातं

कर्तु प्राभवन् । मध्ये मध्ये स्थाने स्थाने अनावृतास्तादृशा. कुण्डा अपि निरमीयन्त येभ्यो जनता यथेच्छ स्नान-पानादि कर्तु शक्नुयात् । सेयं कुल्या किमासीत्, नवीनाया राजधान्या. कृते सेयमेका 'गुप्तगङ्गा'सीत् । किन्तु १९०१ नमविक्रमसवत्सरादनन्तरं नगरे सुदृढानि ससरणानि ('सडक') निरमीयन्त, येषा कारणेन सा कुल्या भूमौ अतिनिम्नाऽभवत् । य पक्वो जलवन्धो निर्मितोऽभवत् सोऽपि सहसा भग्नोऽभूत् । इतो नगरे महाराजरामसिंहस्य (द्वितीयस्य) कृपया जल-नलानामपि सुखकर प्रवन्धोऽभूत् ।

[नाथावतानामितिहासान्तर्गतो 'जयपुरेतिहास' हनूमान्शर्मनिर्मित. १६६] ॥ ५२ ॥

विकासिपङ्केरुहकाननोन्मिलन्मिलिन्दमालामधुरस्वरान्विताम् ।
दिवानिशं वादितवल्गुवल्लकीनिनादिपर्यन्तवसुन्धरामिव ॥ ५३ ॥

विकासशील यत्कमलवन तस्मिन् उन्मिलन्ती (संयुज्यमाना) या भ्रमरपङ्क्ति तस्या मधुरै स्वरै अन्विताम् । अतएव अहर्निशं वाद्यमाना या वल्लकी (वीणा) तया निनादिनी नादयुक्ता पर्यन्तभूमि. (इतस्ततो भागस्य भूमि) यस्या. तादृशीमिव स्थिताम् । कमलवने स्थितानां भ्रमराणां शव्दो नास्ति रात्रिन्दिवा वीणैव मन्ये वाद्यते स्म, इत्याशय. ॥५३॥

अनेकसम्पत्समुदायशालिनीं कृषीवलानामतिमात्रमोददाम् ।
सदा निजाम्बुप्रसरप्रभावतो वितन्वतीं देशमदेवमातृकम् ॥ ५४ ॥

अनेकविधानां सपत्तीनां समुदयेन शोभमानाम् । क्षेत्रसेचनकारणात् कृषकाणामत्यन्त मोददायिनीम् । यो देश देवमातृक (वर्षाजलेन कृषिसपन्नो बभूव) तं निजजलप्रवाहस्य प्रभावात् अदेवमातृकं (नदीजल-द्वारा कृषिसपन्नम्) विदधतीम् ॥ ५४ ॥

रथाङ्गकारण्डवहंससारसप्रसारसर्वर्त्तुविलासकारिणीम् ।
तटावनीलग्ननिकुञ्जधोरणीकुतूहलाकूजितमत्तकोकिलाम् ॥ ५५ ॥

रथाङ्ग (चक्रवाक) आदीना विहारेण सर्वेषु ऋतुषु शोभाकारिणीम् । तटभूम्या सलग्ना या निकुञ्जपरम्परा तस्या कौतुकेन आकूजिता (गुञ्जन्त) मत्ता कोकिला यस्याम् ॥ ५५ ॥

ततान तस्याः सरितः प्रभावतः सदा स देशः शिशिरर्तुशीतलः ।
वितीर्णकाश्मीरविलासविभ्रमः कुतूहलं सर्वविलासिनां हृदि ॥५६॥

तस्या नद्या प्रभावात् शिशिरऋतुवत् शीतल स प्रदेश वितीर्ण काश्मीरदेशविहारस्य विभ्रमो विलासो येन तादृश सन् सर्वेषा विलासशीलाना हृदये कौतुक ततान विस्तारयामास ॥ ५६॥

यथा पुरं तद्वदतीव दुर्गमं दुर्गस्थलं स्वर्गपुरीसमीपगम् ।
उच्चैरधिक्षोणिधरं तु तत्क्षणादरीरचद्वीरसमूहवन्दितः ॥ ५७ ॥

यथा पुरम् जयपुर, तद्वत् उच्चताया कारणात् स्वर्गपुर्या समीपगतम्, दुर्गम (दु खेन गन्तु शक्यम्) दुर्गस्थल (जयदुर्गम्) क्षोणिधरे (पर्वते) अधि, (पर्वतोपरि) वीरसमूहै सत्कृत. स शीघ्र निर्मापयामास ॥५७॥

यथा पुरं नाम यथा च दुर्गमं दुर्गस्थलं तेन महीभृता कृतम् ।
तथैव सोल्लाससरोजकाननं सरो जगद्दुःखहरं व्यधायि तत् ॥५८॥

तेन महीभृता (राज्ञा) यथा पुर (जयपुरम्),यथा च दुर्गम दुर्गस्थल विहितम्, तथैव सोल्लास (सशोभम्) कमलवन यस्मिन् तादृश जनताया क्लेशहारक तत् सर (जयसागराख्यम्) व्यधायि कृतम् ॥५८॥

(जयसागराख्य सर —जयपुरनगरस्य राजहर्म्यमालाया, 'ब्रह्मपुर्या'श्च मध्यस्थले महाविशाल पातालतलावगाहनगभीर च तदिद सर पुरा कमलवनादिभिर्युक्तमतीव शोभमानमासीत् । अभूदेतस्य नाम 'जयसागर' इति । ततो महाराजजयसिंहस्य स्वर्गवासोत्तर व्यतिगते भूयसि समये इतिहासप्रसिद्धस्य खत्रीजातीयस्य राजामल्लस्य समभूदेतस्य पूर्वतटे निवास । प्रभावशालिनो ह्येतस्य विशालोऽभूद् गृहसनिवेशपरिसर, यो ह्यधुनाऽपि 'राजामल जी का घेर' नाम्ना नगरे सुप्रसिद्ध । राजामल्लस्य निवासोत्तरम् एतत्परिसरेण सह अतिनिकटसबन्धकारणात् तडागस्याऽस्य राजमल्लपरिसरेण सह सम्बन्धो जनताया प्राचलत् । गच्छति काले तु—शनै शनै विशालसरोवरोऽय 'राजामल्लस्य तडाग,' इति जनताया प्रासिध्यत् । अतएव तदनन्तरलिखितेषु नगरवर्णनपुस्तकेषु तडागस्यास्य राजामल्लनिर्मित इत्येव भ्रामिका प्रसिद्धि प्राचलत् । राजवैद्यवरभट्टश्रीकृष्णराममहोदयैर्निर्मिते 'जयपुरविलासे' पि तडागस्यास्य राजमल्लनाम्नैव संबन्ध सूचित इति स्मरामि । कि बहुना, चौमूनिवासिना प० श्रीहनूमान्

शर्मणा योऽयं नाथावतानामितिहासो लिखितस्तत्रापि राजमल्लनाम्नैव तडागोऽयं लिखित (पृ० १७१)। किन्तु स्पष्टोऽयं भ्रमः। राजकीयहर्म्यनिवेशपरिसरे, प्रत्युत राजहर्म्यमालाया सश्लेषे एव, एवंविधं तडागं राजानं विहाय नान्यः खानयितुं शक्नुयात् इति साधारणबुद्धयापि बोध्योऽयं विषयः।

यस्य चक्षुषोरग्रे जयपुरनगरम् सरश्चेदं निर्मितमभूत् तेन प्रकृतग्रन्थकर्त्रा कविकलानिधिश्रीकृष्णभट्टमहाभागेन तु स्थाने स्थाने अस्य तडागस्य निर्माणवृत्तान्तः, स्थानसन्निवेशश्च अस्मिन्नेव स्थले निर्दिष्टः। यथा—"यत्रात्यन्तसमीपशोभिसुमहाकासारपर्यन्तग—प्रोत्फुल्लाऽमलपुण्डरीकभवनस्याऽन्तःसमुद्भासिनी ॥" (सर्ग २, श्लो० ३६) यत्र—ब्रह्मपुर्याम्। इदानीं विचार्यतां ब्रह्मपुरीसमीपगतः इयद्विस्तृतः अन्यो महाकासारः को वा भवितुमर्हेत् ?

पुनर्दृश्यताम्—"यत्सन्निधौ जयति दीर्घतरस्तडागः—" इत्यादि (सर्ग २ श्लो० ४३-४४-४५)। पुनरालोक्यताम्—,श्रीनरेशोद्युतं पुरं जयपुरं नाम प्रतिष्ठापितम्। कासारं प्रसरत्सरोरुहवनीसौन्दर्यसारान्वितं सोऽप्यर्यं जयसागरो विरचितः कस्तत्समानो जगी ॥ (सर्ग ३, श्लो० ४८)। भूयो निभाल्यताम्—"जयपुर-जयदुर्ग-कृत् सवाई जयनृपतिर्जयसागरं चकार ॥" (सर्ग. ३ श्लो० ५०)। जयपुरनगरसंश्लिष्टो जयसिंहेन खानितश्च कोऽन्यो महाकासारः स्यात् ? इयद्विस्तृतश्च कस्मिन् वा भूमिगर्ते विलुप्तो भवेत् ? किञ्च—राजकीयहर्म्यमालाया पृष्ठे 'बादलमहल' संबद्धो योऽयं राजकीयो महान् निष्कुटः (गृहाराम)अस्ति, स 'जयसागर की पाल का बाग' नाम्ना अद्याऽवध्यपि जयपुरराजकीयहर्म्यमालाया (ड्योढी) लेखनपत्रेषु।

अयं तडागो महाराजरामसिंहदेवस्य (द्वितीयस्य) समयपर्यन्तं भूयः शोभाशाली गभीरतमश्चासीत्। ततः शनैः शनैः राजपुत्रप्रान्ते वर्षाया न्यूनताया सञ्जातायां तडागोऽयं न्यूनीभूतजलः समजनि। तथापि वर्षासु इयती जलवृद्धिरासीत् पङ्क्तीनां लेखकेनैव सदृष्टाऽस्ति यत् नगरं 'हस्तिनख' (खुरा) पर्यन्तं जलप्रवाहः समागात्। तेन च ब्रह्मपुरीगमनमार्गः 'कदलीकूट' (केल की कोठी)सन्निधिवर्त्मना प्रावहत्।

ततः श्रीमाधवसिंहमहाराजसमये अस्य तडागस्य न्यूनजलतां पङ्काधिक्यं चालोक्य प्रधानसचिवस्य श्रीमतः कान्तिचन्द्रमुकर्जीमहोदयस्याऽऽज्ञया सोऽयं तडागो मृत्तिकाभिरपूर्यत। बहूनि वर्षाणि यावत् समग्रस्यापि नगरस्याऽवकरनिकरो नगररक्षकसमित्या (म्यूनिसिपल कमेटी) अत्रैव समपात्यत। पर्वताकाराः मृत्तिकास्तूपा अस्मिन् विलीना बभूवुः। ततो नगरपार्श्वस्थोऽस्य भागो भूमिसमतलोऽभवत्।

एतस्मिन् तडागे कतिपयवर्षाणि यावत् श्रीमतो हरिसिंहमहोदयस्य सेनापतित्वे शिक्षमाणाः सैन्यपदातयः पादचंक्रमणादिकम् (कवायद) अशिक्षन्त। बहुभ्यो वर्षेभ्यस्त-

डागेऽस्मिन् कृषिरपि प्रारब्धा, यस्या द्वारा धनलाभोऽपि राज्यस्याऽभूत् । अस्तु, इयद्यत्ने कृतेऽपि वर्षासु तडागेऽस्मिन् साम्प्रतमपि 'माधव विलास' भित्तिसविधे जल तथा सचित भवति यथा भित्तिसश्लिष्टेन पक्वेन वेलावर्त्मनैव यातायात कुर्वन्ति जना । अहह विचार्यता प्राचीनशिल्पिना जलसचयनचातुर्यमिदम् ।

'माधव विलास' नामा महानारामस्त्वय महाराजसवाईजयसिहतनूजेन श्रीमाधवसिहमहाराजेन (प्रथमेन) निर्मितोऽभूद् यस्य वर्णन वृत्तान्तश्च मदीये, 'जयपुरवैभवे'[1]ऽपि विलोकयितु शक्य । साम्प्रत माधवविलासेऽस्मिन् श्रीश्रीमानसिहमहाराजस्यौदार्येण 'आयुर्वेदिक कालेज' प्रचलति, येन सह 'आतुरालयो'ऽपि सबद्धोऽस्ति) ।

दारिद्र्यदोषादिह के न मोचितास्तेनावनीन्द्रेण कवित्वकारिणः ।
के वा न कारागृहमप्यवापिता दर्पादनम्रीकृतकन्धरा द्विषः ॥५९॥

तेन अवनीन्द्रेण (राज्ञा) के कवित्वकारिण (कवय) निर्धनतारूपाद् दोषान्न मोचिता अपि तु सर्वेऽपि कवयो धनसपदादियुक्ता कृता । दर्पाद् गर्वात् अनम्रीकृता कन्धरा यै ईदृशा के वा द्विष.(वैरिण)अपि कारागार न प्रापिता, अपि तु सर्वेऽपि शत्रवो बन्दीकृता ॥ ५९ ॥

एकादश्यादिनित्यव्रतविधिविमुखाः प्रत्यु (च्यु) ताः श्रौतमार्गा-
द्ये राधावल्लभीयाः कतिचन हरिवंशाख्यवंशात्प्रसूताः ।
तानेतानेष नेता व्यनयत नृपतिर्धर्ममार्गीयशश्व-
न्मर्यादास्थापनार्थं प्रकट इव मनुर्मेदिनीमण्डलेऽस्मिन् ॥६०॥

एकादश्यादयो ये नित्या व्रतविधय (अनुष्ठानानि) तेभ्यो विमुखा, अत एव वैदिकमार्गात् प्रच्युता (भ्रष्टा) हरिवशनामकस्य मूलपुरुषस्य

१—जुबिलीमहोत्सवोपरि जयपुरधराधीशाय समर्पितम्, कवित्तछप्पयदोहाप्रमृतिभिर्हिन्दीछन्दोभिर्निवद्ध जयपुरनगरस्य नवीनेनैव प्रकारेण वैभववर्णनपरमिद पुस्तकम् । नगरस्य, तत्स्थानाना, राजवशस्य, उत्सवानाम् 'त्यौहार', राजसभानाम् (दरबार), उद्यानानाम् प्रसिद्धप्रसिद्धनागरिकादीना च सचित्र वर्णनमेतस्मिन् । अनेकानि चित्रकाव्यानि, प्राचीनराजकवीना व्रजभाषाकविताश्चाऽप्यत्र सगृहीता । सहैव प्रसिद्धपुरुषाणा जीवनचरितानि, स्थानादीनामैतिहासिकवृत्तान्तश्चापि (ऐतिहासिक टिप्पणिया) दत्ता सन्ति । प्राप्तिस्थानम्—"भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, नागरपाडा जयपुरसिटी" अथवा 'मञ्जुनिकुञ्ज' पृथ्वीराजरोड जयपुर, इति ।

वंशे प्रसूता ये केचिद् राधावल्लभीयसम्प्रदायस्था आसन्, अस्मिन् भूमिमण्डले धर्ममार्गीयाणां शाश्वतिकमर्यादानां स्थापनार्थं प्रकटो मनुरिव स्थितः प्रजानां नेता एष नृपतिः तानेतान् (राधावल्लभीयान्) व्यनयत अशात् शासनेन विनीतान्करोत् ॥ ६० ॥

एष क्षोणिपतिः क्षुरप्रविशिखप्रक्षुण्णवक्षःस्थल-
प्रक्षीणप्रतिपक्षपक्ष्मलदृशां लाक्षारसाक्षालनः ।
चक्षुःश्रोत्रकुले तथा क्षितितले किं चाऽन्तरिक्षे पुन-
र्यस्य क्षीरनिधिक्षपाकरहरक्ष्माभृद्वलक्षं यशः ॥ ६१ ॥

क्षुरप्रजातीयैर्बाणैः प्रक्षुण्णं (विपाटितम्) वक्षःस्थलं येषाम्, अतएव प्रक्षीणा नाशमुपगता ये प्रतिपक्षाः शत्रवः तत्सम्बन्धिनीनां पक्ष्मलदृशां (सुन्दरनेत्राणां स्त्रीणाम्) पादलग्नलाक्षारसस्य आ समन्तात् क्षालनः (अपनेता) एष स क्षोणिपतिः (राजा) अस्ति यस्य क्षीरसागर—चन्द्र-हरक्ष्माभृत् (कैलाशवत्) शुभ्रं यशः चक्षुःश्रोत्राणां नागानां कुले (पाताले), भूतले, गगनतले च (अस्ति) ॥ ६१ ॥

राकाशीतकरस्य चेदविकलं क्षिप्त्वा क्वचिल्लाञ्छनं
कर्पूरैरमितैस्तदन्तरमसौ वेधाः पुनः पूरयेत् ।
हन्त क्षैण्यमदैन्यकारणमसौ द्राग् दूरयेदीदृशः
स स्यादेष विधुस्तदीययशसा तुल्यो न दोषाकरः ॥ ६२ ॥

अयं वेधा (विधाता) पूर्णिमाचन्द्रस्य अविकलं (संपूर्णम्) कलङ्कं क्वचित्प्रक्षिप्य तस्य अन्तरं मध्यभागम् अपरिमितैः कर्पूरैः यदि पूरयेत्, तथा असौ विधाता दैन्यं न भवेदिति कारणं (कारणात्) क्षैण्यं कृष्णपक्षे भाविनीं तस्य क्षीणतामपि चेत् झटिति दूरीकुर्यात् तर्हि ईदृशः (शोधितः) स एष विधुः (चन्द्रः) तदीय(जयसिंहीय)यशसा समानः स्यात्। दोषाणाम् आकरः (निलयः) तुल्यः न ॥ ६२ ॥

भूमिं काञ्चनशैलतो जलमपि श्रीमत्सुरस्रोतस-
स्तेजो भास्करतोऽनिलं मलयतः खं चापि सच्चेतसः ।

धात्राऽऽधाय महीप एष रचितः किं नाम, यत्प्रीतिदो

भूयः पापहरस्तमोऽपहतरः सौरभ्यशाली विभुः ॥ ६३ ॥

विधात्रा काञ्चनशैलत (सुमेरो) भूमिम्, श्रीमत्या सुरस्रोतस (गङ्गाया) जलम्, सूर्यात् तेज, मलयपर्वतात् अनिल (पवनम्), सत चित्तात् खम् (आकाशम्) आधाय गृहीत्वा कि नाम एष महीप (जयसिह) रचित ? यत् यस्मात् कारणात् अय प्रीतिद । सुवर्णशैलाज्जात अतएव सर्वेषा प्रीति जनयति । पुन अय पापहर (गङ्गाया सबन्धात्) । अतिशयेन तमोऽपह (अन्धकारनाशक), सूर्यतेज सबन्धात् । अय सौगन्ध्यशाली (यतो मलयादुद्भूत) । एष विभुत्वशाली (यतो मनस सजात) । पृथिवी-अप्-तेज प्रभृतिभ्य पञ्चमहाभूतेभ्य सृष्टिर्भवति । ततश्च अस्य नरेशस्य सृष्टौ पूर्वोक्तविधा पृथिवी-जलादयो गृहीता इति प्रीति-पवित्रतादिभि प्रत्यक्षमनुभूयते इति भाव ॥ ६३ ॥

कृष्टाऽग्रे कलभैर्भुजे तदसुहृद्बाला मृणालाशया

पश्चादप्युरगभ्रमेण शिखिभिर्वेण्यां वने निर्जने ।

इत्थं विक्लवतां गता समुदभूदत्रान्तरे तच्चमू-

शब्दस्तेन च सा व्यमोचि नितरां नैष क भव्यप्रदः ॥६४॥

तदसुहृद्बाला तस्य जयसिहस्य असुहृद शत्रो स्त्री कलभै (करिशावकै) मृणालमिदम् इति बुद्धया भुजे (बाहुभागे) अग्रे आकृष्टा । पश्चाद्भागेऽपि –उरग (सर्प) अयमिति भ्रमेण शिखिभि मयूरै वेण्याम् (वेणीभूतकचेषु) आकृष्टा । इत्थ (सा अबला) विह्वलता गताऽभूत् । किन्तु अस्मिन्नेव समयान्तरे तस्य (जयसिहस्य) सेनाया शब्द समुदभवत्, तेन शब्दकारणेन च सा (वैरिवधू) नितराम् अत्यन्त व्यमोचि विमुक्ताऽभूत् । एष (जयसिह) कुत्र (कस्मिन् स्थले) वा कल्याणप्रदो नास्ति ? अपितु सर्वत्रैव सुखप्रद । तिरश्चामपि नि सशयभ्रान्त्या विपक्षरमण्या सौन्दर्यातिशयो व्यज्यते । तेन च वर्णनीयनायकस्य शौर्य-प्रतापातिशयो ध्वन्यते ॥ ६४ ॥

यत्र क्षीरधिया क्षिपन्ति वदनं हंसा रिरंसान्वितं

शुण्डामभ्रकरी प्रसारयति च स्वर्वाहिनीसंभ्रमात् ।

किं चोत्तानितचञ्चवः प्रतिपदं प्रीत्या चकोरा अपि
क्रीडन्तीन्दुकराशयाऽस्य नृपतेरेतादृशं तद्यशः ॥ ६५ ॥

यत्र (यस्मिन् यशसि) क्षीर (दुग्धम्) इति बुद्ध्या हंसा रमणेच्छा-प्रेरित निजमुख परिचालयन्ति। अभ्रकरी (आकाशहस्ती, दिग्गज) स्वर्गङ्गा-भ्रान्त्या शुण्डा प्रसारयति (प्रवर्तयति)। किञ्च चकोरा अपि उन्नमित-चञ्चव सन्त इन्दो (चन्द्रस्य) किरणा इमे इति आशया प्रतिपदं प्रमोदेन क्रीडन्ति। अस्य नृपते (जयसिंहस्य) तद् यश एतादृशम् ॥ ६५ ॥

अहीनसङ्गो द्विजराजशाली स्फुरद्विभूतिर्विबुधाभिवन्द्यः
श्रीमत्सवाई जयसिंह एष स्वभावतुङ्गाशय ईश एव ॥ ६६ ॥

इति श्रीमत्तैलङ्गकुलजलधिकौस्तुभायमान-श्रीकृष्णकविकलानिधिकृतावीश्वर-चरितमहाकाव्ये श्रीसवाईजयसिंहवर्णन नाम सप्तम सर्ग ॥

स्वभावेन उन्नताशय. एप सवाईजयसिंह. साक्षात् ईश. (शिव) एव। यतो हि शिव अहीना सर्पाणाम् इनस्य स्वामिन (शेषस्य) सङ्गो यस्य तादृश। जयसिंहोऽपि न हीनानाम् (अधमानाम्) सङ्गो यस्य तादृश। शिव द्विज-राज (चन्द्र) शाली, अय द्विजराजै ब्राह्मणपण्डितै शोभमान। शिव स्फुरन् (शोभमान) भस्मक, अयं स्फुरन्ती देदीप्यमाना विभूतिर्वैभव यस्य तादृश। शिव देवै अभिवन्द्य। अय विबुधै. पण्डितै सत्कृत ॥ ६६ ॥

इतिश्रीमञ्जुनाथाऽपरनामदेवर्षिभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्रि-
कविशिरोमणिप्रणीताया मर्मविभासिन्या
विलासिन्या सप्तम सर्ग

इतिहासविकासिन्यां विलासिन्यां समाप्यते।
मञ्जुनाथकृते सर्गः सर्गः सप्तम एषकः ॥*

अष्टमः सर्गः

तस्यानेकविधप्रभूतसुकृतस्तोमैः समाराधितः
संतुष्टः स्वयमीश्वरः स भगवान् दातुं प्रसन्नो वरान् ।
पुत्रीभूय गृहेऽवतारमकरोज्जागर्त्यसौ क्ष्मातले
साक्षादीश्वरसिंह उद्यदतुलप्रौढ़प्रभावप्रभः ॥१॥

इह काव्यकलानिधिप्रणीते ह्यविगीतेशविलासकाव्यरङ्गे ।
वितनोति विलासिनी विलासं भृशमासञ्जितमञ्जुनाथहर्षा ॥ १ ॥

तस्य (जयसिंहस्य) अनेकविधैः प्रचुरैः सुकृतस्तोमैः (पुण्यसमूहैः) समाराधितः (अत एव) संतोषमुपगतः स भगवान् ईश्वरः तस्मै जयसिंहाय वरान् प्रदातुं प्रसन्नः सन् पुत्रो भूत्वा तस्य गृहे अवतरणमकरोत् । ततः एव असौ (ईश्वरसिंहः) क्ष्मा (पृथिवी)-तले उद्यन्ती उद्गच्छन्ती (प्रसरन्ती) प्रौढा प्रभावस्य (ऐश्वर्यस्य) प्रभा (कान्तिः) यस्य तादृशः जागर्ति प्रकाशते ॥१॥

आशाः प्राप्तप्रकाशाः सपदि समभवन्मान्द्यसौगन्ध्यशैत्यै-
र्वाताः सम्यक्प्रवाताः समजनि सुधियां मानसेषु प्रसादः ।
प्रादक्षिण्येन सद्यो जगति हुतभुजो जज्वलुः प्रोज्ज्वलाभा
जाते श्रीमत्सवाईश्वरसुकृतनिधौ भूतले भूरिभाग्यैः ॥२॥

पृथिव्याः भूरिभाग्यैः श्रीमति सवाई-ईश्वरीसिंहरूपे पुण्यनिधौ जाते सति—आशाः (दिशः) प्राप्तप्रकाशाः निर्मलताकारणात् जातप्रकाशाः समभवन् । पवनाः मन्दता-सुगन्धिता-शीततारूपैर्गुणैः सम्यक् प्रवाताः सुखदतया प्रावहन्, शीतलमन्दसुगन्धिवायवः प्राचलन्नित्यर्थः । सज्जनानां चित्तेषु स्वतः एव प्रसन्नता समजायत । उज्ज्वलप्रकाशाः त्रिविधाः हुतभुजः (अग्नयः) प्रादक्षिण्येन जज्वलुः, प्रदक्षिणाः सन्तः प्रजज्वलुरित्यर्थः ॥२॥

उद्धर्ता धरणीभरानिति धिया शेषः, स कर्ता मुहु-
र्मद्वंशस्य रमामिति ग्रहपतिर्धर्ता स यज्ञान् बहून् ।
इत्यानन्दमुपागमत् सुरपती राजाधिराजस्य सत्-
पत्न्यामीश्वरसिंहनाम्नि तनये जाते महातेजसि ॥३॥

राजाधिराजस्य (जयसिंहस्य) प्रधानमहिष्याम् ईश्वरसिंहनामके अतितेजःशालिनि तनये जाते सति । 'अयं पृथिवीभाराणाम् उद्धर्ता धारकः भविष्यति' इति बुद्ध्या पृथ्वीभारधारकः शेषः (वासुकि), 'मम वंशस्य रमायाः (लक्ष्म्याः) कर्ता विस्तारकः' इति धिया ग्रहपतिः (सूर्य), 'बहूनां यज्ञानां कर्ता अयं स्यात्' इति बुद्ध्या यज्ञेषु हविर्भोक्ता सुरपतिः (इन्द्र) आनन्दमुपागमत् । स्वस्वप्रयोजनसिद्ध्या शेषादीनां त्रयाणामानन्दोऽभवदित्यर्थः । धरणीभरान् उद्धर्ता इत्यादिषु 'तृन्' अत एव द्वितीया ॥३॥

सातश्रेणिरिहोदियाय तिमिरव्रातः प्रयातः क्वचित्-
प्रातः पद्मवतीव सज्जनततिः प्रातप्रमोदाऽभवत् ।
ख्यातस्तावदतीव वैदिकपथस्त्रातः कृपातः प्रभो-
र्जातः श्रीजयसिंहसद्मनि निजेच्छातः सतामीश्वरः ॥४॥

सातानां सुखानां श्रेणिः परम्परा उदिताऽभूत् । आनन्दस्य आवरणभूतः अन्धकारव्रातः (समूहः) कुत्रचित् प्रयातः, नष्टोऽभवदित्यर्थः । प्रातःकाले यथा कमलानां वनं तथा सज्जनानां समूहः प्रातः पूरितः प्रमोदः यत्र तादृशः अभवत्, 'प्रा-पूरणे', क्त । जायमानेन कुमारेण त्रातः रक्षितः वैदिकपथः वैदिकसिद्धान्तः प्रभोः कृपातः (दयावशात्) अतीव ख्यातः लोके प्रचरितः अभूत् । यतो हि निजेच्छातः (स्वेच्छया) सज्जनानामीश्वरो भगवान् जयसिंहगृहे जातः ॥४॥

एकस्यैव कुमारकस्य वपुषः कान्त्या स्खलत्तेजसा
तेनैकेन विना दिनाधिपतिना खे येऽखिलाः खेचराः ।
ते चक्रुर्गणितक्रमेण नितरामुच्चालयाऽऽरोहणा-
न्येतज्जन्ममहामहोत्सवसमालोकैककौतूहलात् ॥५॥

स्खलत्तेजसा (स्खलन्ति मन्दीभवन्ति तेजांसि यस्याः सकाशात् ईदृश्या) एकस्यैव अस्य कुमारकस्य शरीरस्य कान्त्या । खे आकाशे ये अखिलाः खेचराः (ग्रहाः) आसन्, ते । तेन एकेन दिनाधिपतिना सूर्येण विना (सूर्यस्तु अस्य वंशस्य प्रवर्तक एवाऽभूत् । अत एव स तु मन्दीभूततेजा नाऽभवत्, प्रत्युत द्विगुणतेजा अभूत्) किन्तु अन्ये ग्रहाः एतज्जन्मनः एतस्य राजकुमारस्य जन्ममहामहोत्सवदर्शनस्य कौतुकादिव गणितक्रमेण गणितानुसारम् उच्चस्थानेषु आरोहणानि चक्रुः । दर्शनकौतुकी उच्चस्थलं यथा आरोहति तथा जन्मकुण्डल्यां सर्वे ग्रहा उच्चस्थानगता अभूवन्नित्याशयः ॥५॥

तेजस्विनो विदलितास्तेजोभिस्तस्य मुक्तौ द्वौ ।
बाडवतया किलौर्वो मित्रतया चित्रभानुरपि ॥६॥

तस्य जायमानस्य कुमारस्य तेजोभिः सर्वेऽपि तेजःशालिनः विदलिता विच्छायीकृताः । केवलं द्वौ मुक्तौ त्यक्तौ (उर्वरितौ) । समुद्रान्तर्गततया और्वः (समुद्रगर्भगतोऽग्निः), मित्रतया (वंशप्रवर्तकोयं सूर्य इति बुद्ध्या) चित्रभानुः सूर्यः । अत्र 'बाडव-मित्र' शब्दशक्त्या—बाडवो ब्राह्मणः अस्मद्वंशपूज्य इति बुद्ध्या क्षत्रियवंशधुर्धरेण राजकुमारेण, समुद्रगोऽग्निः रक्षितः । मित्रम् अर्थात् अस्माकं सुहृत् इति बुद्ध्या सूर्यः मुक्तः । धर्मबुद्ध्या पूज्यं ब्राह्मणम्, वंशप्रवर्तकतया अभ्यर्हणीयं सूर्यं च मुक्त्वा अन्येषां सर्वेषां तेजःशालिनां तेजांसि राजकुमारस्य अस्याऽग्रे मन्दीभूतानि, इति धर्ममर्यादापालकत्वमलौकिकतेजःशालित्वं च कुमारस्याऽस्य ध्वन्यते । 'द्विजात्यग्रजन्म-भूदेवबाडवाः' इत्यमरः ॥६॥

सूर्यस्तेजसि चन्द्रमा निजवपुःश्रीकौमुदीनां भरैः
प्राप्तोऽङ्गारक एष शत्रुविषये सौम्यः सतां यो गुरुः ।
काव्यैकप्रवणः शनैश्चरति यो धर्मस्वरूपं विदन्
द्वेष्यान्नेष्यति राहुकेतुपदवीमेष ग्रहाणां गणः ॥७॥

एकोऽपि एष राजकुमारः सर्वेषां ग्रहाणां गणः समूहभूतः । तथाहि—अयं तेजसि सूर्यः, निजवपुषः (स्वशरीरस्य) श्री(शोभा)रूपकौमुदीनां चन्द्रिकाणां भरैः समूहैः (अर्थात् शरीरकान्तिरूपचन्द्रिकाकारणात्) चन्द्रमा, शत्रूणां विषये (प्रसङ्गे अथवा देशे) एषः अङ्गारकः अरिष्टकर्ता भौमः (शब्दशक्त्या शत्रूणां कृते ज्वलदङ्गारवद् दाहक इत्यर्थोऽपि) । अयं सौम्यः (बुधः, वस्तुतस्तु अयं सौम्यः अनुग्रमूर्तिः), सतां सज्जनानां गुरुः (बृहस्पतिः, वस्तुतस्तु सतां गुरुः अभ्यर्हणीयः), काव्ये (शुक्रे एकप्रवणः अनुकूलः, प्रकृते तु गुणगणशालितया काव्यरचनायां अनुकूलः) । धर्मस्वरूपं जानन् यः शनैश्चरति (शनैश्चर इवाचरति, वस्तुतस्तु धर्मज्ञतया सर्वेषु कार्येषु विवेकवशात् शनैः शनैः प्रवर्तते), एषः द्वेष्यान् शत्रून् राहु-केतुपदवीं नेष्यति इति एक एव नवग्रहस्थानीयः । मुद्राऽलंकारः ॥७॥

पद्मोद्यच्चरणः करस्थितमहापद्मः स कण्ठत्विषा
कम्बुश्रीर्मुखमण्डले हिमकरः सत्पृष्ठसत्कच्छपः ।
मुक्तौघाद्विलसन् मुकुन्दहृदयः कुन्दाभदन् नीलरु-
क्केशः खर्वहसोयमीश्वरहरिः साक्षान्निधीनां निधिः ॥८॥

अयम् ईश्वरसिंहरूपो हरिः विष्णु निधीनां पद्म-शङ्खादिसुप्रसिद्धाना शेवधीना साक्षात् निधि निधानस्थानभूतः। तथा हि कमलवत् उद्यन्तौ उज्जृम्भमाणौ चरणौ यस्य स । पक्षे पद्म तन्नामा निधि.। करे स्थितं सामुद्रिकरेखारूपेण महापद्मचिह्नं तन्नामा निधिश्च यस्य स । कण्ठसवन्धिकान्त्या कम्बो. शङ्खस्येव श्री. (शोभा) यस्य स (कम्बुकण्ठ इत्याशय)। पक्षे-कम्बु शङ्खनामा निधि । मुखमण्डले हिमकरः चन्द्रः अर्थात् चन्द्रवत् आह्लादक, सभङ्गेन श्लेषेण मकर तन्नामा निधिः। सत्पृष्ठे सन् वर्तमान कच्छपो यस्य, कच्छपवत् सुदृढपृष्ठ इत्याशय । अन्यत्र--कच्छपनामा निधिः। मौक्तिकसमूहाद् विलसन् शोभमान.। मुकुन्दो भगवान् हृदये यस्य स, पक्षे मुकुन्दनामा निधि । कुन्दाभा दन्ता यस्य स, तन्नामा निधिश्च। नीला रुक् (कान्ति.) येषां तादृशा केशा यस्य स, पक्षे नीलनामा निधिश्च। खर्वं मन्द हसति इति खर्वहस. (पचाद्यच्)। अत्र "पद्मोऽस्त्रिया महापद्म. शङ्खो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव." इति सुप्रसिद्धनवनिधीना क्रमिकाणां क्रमेण वर्णनात् रत्नावली अलकार । पद्येऽत्र--'निधीना विधि.' इति पाठे निधीना विधाता इत्यर्थ स्थूल एवेति न तथा पाठो मूले धृत ॥८॥

तस्योदारशिरोमणेर्जनिमहोत्साहे शतं कुञ्जरान्
वाजीन्द्रांश्च सहस्रमङ्गसहिता धेनूश्च लक्षोन्मिताः।
संवर्षन्नवनीवनीपकवनीमध्ये धनी तत्पिता
मुक्ताहाटकहीरविद्रुमवहां प्रावर्तयद्वाहिनीम् ॥९॥

उदारशिरोमणे. तस्य (ईश्वरसिंहस्य) जने. जन्मन. महोत्साहे महोत्सवे शतसख्याकान् हस्तिन., सहस्रसख्यकान् अश्वश्रेष्ठान्, अङ्गसहिता. अङ्गैः उपकरणैः सहिता. लक्षपरिमिता धेनू (गा), अवन्या. पृथिव्या. वनीपकाना याचकाना वनीमध्ये (समूहे) सवर्षन् धनशाली तत्पिता (जयसिंह), मुक्ता मौक्तिकानि, हीराः वज्रकाः ('हीरा'), हाटक सुवर्णम् विद्रुमा. प्रवाला एतान् वहति (प्रवाहयति) तादृशी वाहिनी नदी प्रावर्तयत्। अरण्ये यथा इन्द्रो नदी प्रवाहयति तथा पृथ्वीन्द्र जयसिंह. मुक्तादिमयी नदीं प्रावर्तयदित्यर्थ.। वनी याञ्चा पाति इति 'वनीपको याचनको मार्गणः' इत्यमर. ॥९॥

आसन्नीश्वरसिंहजन्मनि गृहारामप्रतोलीपुर-
द्वारो हट्टचतुष्पथाङ्गणविपण्याद्या निषद्यादयः।
ऊर्ध्वाधस्तलमध्यभूमिषु मणीमुक्ताचतुष्कादिभि-
र्माल्यौघध्वजतोरणादिभिरहो सर्वत्र संभूषिताः॥१०॥

ईश्वरीसिंहस्य जन्ममहोत्सवे गृहा. आरामा प्रतोल्य. (रथ्या) पुराणि पुर-द्वारो वा (स्त्री द्वार्, द्वारमिति स्त्रियाम्) हट्टा. आपणा चतुष्पथा. प्राङ्गणा. विपणय पण्यवीथिका एतदादय । निषद्या विक्रयस्थानानि 'स्थली' इति राजस्थानी । एतदादय ऊर्ध्वम् अधस्तलेपु मध्यभूमिपु च, मणिभि मौक्तिकै. चतुष्कै. आलेपनलेख्यै 'चौक' एतदादिभि, माल्यसमूहै. पताकाभि. तोरणै द्वारमण्डनकै एतदादिभिश्च सर्वत अलकृता अभूवन् ॥१०॥

समन्ततः श्रीश्वरसिंहजन्मनि
स्वलंकृता पूर्मणिरत्नतोरणैः ।
नभोऽपि तत्कान्तिगणैः सुपूरितं
विचित्रवर्णाढ्यचतुष्कवद् बभौ ॥११॥

ईश्वरसिंहजन्ममहोत्सवे पू पुरी समन्तत सर्वत मणिभि अश्मजातिभि रत्नै मुक्तादिभिः, तोरणैश्च समन्तत सुष्ठु अलकृताऽभूत् । तेषा मणिरत्नादीना कान्तिगणै सुपूरित नभ आकाशमपि विचित्रवर्णाढ्यानि चतुष्कानि यस्मिन् तादृश (मतुप्) शुशुभे । तोरणस्थिताना मणिरत्नादीना कान्तिजालानि आकाशे तथा आपूरितानि यै पुर्या उपरिभागे नानावर्णाढ्यानि चतुष्कानि 'चौक' कृतानि स्यु एव प्रतीयते स्मेत्याशय ॥११॥

अस्मिन्महोदारशिरोमणौ सुते
संजायमाने जयसिंहसद्मनि ।
अस्यैव दोष्णोरवधार्य भूभरं
निश्चिन्ततामाप भुजङ्गमेश्वरः ॥१२॥

अस्मिन् महा-उदाराणा शिरोमणौ चूडामणिभूते जयसिंहसद्मनि उत्पद्यमाने सति भुजङ्गमेश्वर (शेष) अस्य कुमारस्य दोष्णो (सप्तमी, भुजयोरुपरि) एव धार्यमाणाया भुवो भारम् अवधार्य निश्चिन्तता प्राप । अय मे भार निजभुजयोरुपरि सधारयिष्यतीति निश्चिन्तोऽभवदित्याशय ॥१२॥

नरेन्द्रचूडामणिरश्मिसेवितौ
सुवर्णपीठैकसदाधिरोहिणौ ।
भविष्यतस्तच्चरणाविति स्फुटं
कृतौ समेतौ विधिनोर्ध्वरेखया ॥१३॥

तस्य (ईश्वरसिंहस्य) चरणौ राजश्रेष्ठानां मुकुटमणीनां किरणैः सेवितौ (भूपितौ), सदा सुवर्णपीठे आरोहिणौ च अग्रे भविष्यतः इति विचार्य विधात्रा ऊर्ध्वरेखया सहितौ पूर्वमेव कृतौ ॥१३॥

धर्मागारद्वाररक्षार्गलाभ्यां
दोर्भ्यामेष भ्राजमानो नितान्तम् ।
शुण्डादण्डद्वन्द्वशाखाभिरामं
स्वर्मातङ्गं जेतुकामो विभाति ॥१४॥

धर्मागारस्य द्वाररक्षायाः अर्गलासदृशाभ्यां भुजाभ्यां शोभमान एषः (राजकुमारः) शुण्डादण्डद्वयस्य ये शाखे श्रेण्यौ ताभ्याम् अभिरामं सुन्दरं स्वर्गहस्तिनम् (ऐरावतम्) जेतुकाम इव विभाति । तस्य भुजौ ऐरावतशुण्डादण्डद्वयातिशायिनौ अभूतामित्याशयः ॥ १४ ॥

तं गोपुरभ्राजिकपाटविस्फुर-
द्वक्षस्तटं वीक्ष्य गुणाभिलाषुका ।
वव्रे जयश्रीः प्रथमे ततः परं
स्निग्धो महाराजककन्यकागणः ॥१५॥

पुरद्वारे भ्राजिनी ये कपाटे तद्वत् शोभमानवक्षःस्थलं तम् (ईश्वरम्) वीक्ष्य गुणाभिलाषिणी विजयलक्ष्मीः तं प्रथमं वव्रे वृतवती, तदनन्तरं स्निग्धः अनुरागयुक्तः महाराजानां कुमारिकागणः वव्रे । विवाहात्पूर्वमेव असामान्यबलशाली शत्रुजयसमर्थोऽसौ समभवदित्याशयः ॥ १५ ॥

राजाधिराजस्य कुमारमुच्चकै-
र्यद्वन्महेन्द्रस्य जयन्तमन्वगात् ।
स्वाराज्यलक्ष्मीरिव शुद्धलक्षणा
सा राज्यलक्ष्मीर्भृशमाज्ञया पितुः ॥१६॥

महेन्द्रस्य शक्रस्य कुमारं जयन्तं स्वर्गराज्यस्य लक्ष्मीरिव, शुद्धलक्षणा निर्दोषराज्यचिन्हवती सा जयपुरराज्यस्य लक्ष्मीः पितुः (जयसिंहस्य) आज्ञया राजाधिराजस्य

(जयसिहस्य) उच्चकै· श्रेष्ठ कुमारम् अन्वगात् अनुससार, यौवराज्यलक्ष्मी लेभे। ईश्वरसिंहो युवराजोऽभवदित्याशय. ॥ १६ ॥

मुखे विधुस्तेजसि भास्करो धने(ने)
धनाधिपः शैत्यगुणे जलाधिपः।
जवे मरुज्जम्भरिपुश्च वैभवे
स सर्वदेवात्मक इत्थमीश्वरः ॥१७॥

मुखे विधु चन्द्र (चन्द्रसदृशमुखशालित्वात्), तेजसि सूर्य, धनविषये धनाधिप कुबेर, शैत्यगुणे (सौम्यतायाम्) वरुण·, जवे वेगे मरुत् पवन, वैभवे ऐश्वर्ये जम्भरिपु. इन्द्र, इत्थ स ईश्वर ईश्वरसिंह. सर्वदेवात्मक । ईश्वर. सर्वदेवात्मको यन्निगद्यते तत् अस्मिन् ईश्वरसिंहे पूर्वोक्तेन हेतुना सर्व समञ्जसमित्याशय ॥ १७ ॥

वसुन्धरायाः कमनः क ईश्वरो
द्विषच्चमूनां दमनः क ईश्वरः।
दरिद्रतायाः शमनः क ईश्वरः
कविव्रजैरित्थमुपास्य ईश्वरः ॥१८॥

वसुन्धराया पृथिव्या कमन कान्त क ? इति प्रश्नस्य उत्तरम्—'ईश्वर. ईश्वरसिंह'। एवमग्रेऽपि सर्वत्र। वैरिसैन्याना दमयिता क ? ईश्वर· । दरिद्रताया निर्धनताया. शमनः दूरीकारक क ? ईश्वर ।। इत्थम् ऐश्वर्यशूरतादि-अभिनन्दनीयगुणगणशालितया ईश्वर (ईश्वरसिंह) कविसमूहै उपास्य सेव्य. ॥ १८ ॥

कौमारमारभ्य गुरोरधीतिनं
प्राग्जन्मसंस्कारवशेन संचिताः।
विद्याः समस्तास्तमुपाययुः स्वयं
पूर्वानुरक्ताः प्रियमङ्गना इव ॥१९॥

प्राग्जन्मन संस्कारस्य वशात् सचिता उपार्जिता समस्ता विद्या राजनीत्यादयः पूर्वानुरक्ता. अङ्गना कान्ता प्रियतममिव कुमारावस्थामारभ्य गुरो सकाशात् अधीतिनम् अध्ययनशील तं युवराजम् ईश्वरसिंहम् स्वयम् उपाययु प्रापु । प्राग्जन्मसस्कारवशात् असौ अनायासमेव सर्वा विद्या अधिजगामेत्याशय ॥ १९ ॥

ईहां गुणेष्वेव दधद्दिवानिशं
श्वःश्रेयसैकाश्रयताविभूषितः ।
रम्यस्वभावस्त्रिभिरादिमाक्षरै-
रेकः क्षितावीश्वर इत्युदीरितः ॥ २० ॥

दिवानिशम् अहर्निशम् गुणेषु एव ईहा लालसां वहन्, श्वःश्रेयसस्य कल्याणस्य एकाश्रयतया एकमात्राधारतया विभूषितः, रम्यः अभिनन्दनीयः स्वभावो यस्य सः अयम्, त्रयाणां चरणानां त्रिभिः आदिमैः अक्षरैः ई,श्व, र इत्याकारकैः एकः अद्वितीयः ईश्वर इति पृथिव्याम् उदीरितः कथितः ॥ २० ॥

एको धनुःशक्तिकृपाणकोविदो
गजाश्वपृष्ठोपरि सुस्थिरासनः ।
उत्कूर्दनोल्लङ्घनमल्लकर्मवित्
सोऽनन्यसामान्यगुणो विराजते ॥२१॥

गजपृष्ठोपरि अश्वपृष्ठोपरि च सुस्थिरासनः (दृढबद्धाऽऽसनः) सः धनुषः, शक्तेः (भुशुण्ड्याः 'बरछी'), खड्गस्य च संचालने कोविदः (चतुरः), उत्कूर्दनस्य (उल्लम्फनस्य) मल्लकर्मणश्च वेदिता सः न अन्येन सदृशा गुणा यस्य तादृशः विराजते । सः अद्वितीयो वीरक्षत्रियगुणशाली अभूदित्याशयः ॥ २१ ॥

तेनातिमात्रं बलवीर्यशालिना
समस्तशिक्षैककलाविचक्षणात् ।
अस्त्राणि शस्त्राणि तथा शिशिक्षिरे
रामेण तुष्टादिव कौशिकान्मुनेः ॥२२॥

अत्यर्थं बलवीर्यशोभमानेन तेन (ईश्वर०), संतुष्टात् विश्वामित्रमहर्षेः सकाशात् रामेण इव सर्वविधशिक्षाप्रदानस्य या एकमात्रा कला (प्रावीण्यम्) तत्र विचक्षणात् गुरोः सकाशात् अस्त्राणि क्षेपणीयानि शर-भुशुण्ड्यादीनि, शस्त्राणि खड्गतोमरादीनि च शिशिक्षिरे शिक्षितानि, एतेषां संधान-परिचालनादीनि शिक्षितानीत्याशयः ॥ २२ ॥

रुचा द्विजानामुडुराजिराजितः
समस्तसौन्दर्यकलाकलानिधिः ।
तदीयवक्त्रेन्दुरुदेति मोहयन्
प्रजामनःकैरवकोरकावलिम् ॥२३॥

द्विजाना दन्ताना रुचा कान्त्या उडुराज्या (पङ्क्त्या) राजित (अर्थात् तदीया दन्ता न सन्ति, अपि तु तारकावलि सेय राजते इत्याशय)। एवमेव चन्द्रो यथा षोडशकलाना निधि तथा समस्तस्य सौन्दर्यस्य कलाना चतु षष्टीना च कृते कलानिधि चन्द्र । तथा प्रजाना मनास्येव कैरवाणा रात्रिविकासिकुमुदाना कोरकावलि मुकुलपङ्क्ति ता मोदयन् हर्षाद्विकासयन् तदीय मुखरूप इन्दु उदेति विजृम्भते ॥२३॥

असावदोषाकरतां श्रयन्नपि
प्रसह्य चक्रस्य मुदं दिशन्नपि ।
महाशयश्रीजयसिंहवारिधे-
र्विकासकृत् कोपि नवः कलानिधिः ॥२४॥

चन्द्रस्तु दोषाकरता (रात्रिकारकता दोषाणामाकरता च) श्रयन् । अय तु अदोषाकरताम् अतथाविधता श्रयन् अपि । चन्द्र चक्रस्य चक्रवाकस्य आनन्द न दिशति प्रत्युत वियोगज खेद दिशति । अय तु चक्रस्य राजकीयपरिकरवर्गस्य प्रसह्य बलात् मोद दिशन्नपि महागभीरस्य जयसिहरूपसमुद्रस्य विस्तारकृत् । अत एव पूर्वोक्तविरुद्धगुणशालितया कोऽपि नवीन एव कलानिधि चन्द्र । श्लेषमूलको विरोधालङ्कार ॥२४॥

स मानयन् मानकुलेतिमानतां
समा नयन्काव्यकलाकुतूहलैः ।
समानयन्मानविनोदमेधते
समानयन् स्वेन रवीन्दुपावकान् ॥२५॥

मानस्य मानसिंहस्य कुले अतिमानिता अतिमनस्विता मानयन् अनुसदधन् (स्थापयन्), काव्यस्य, अन्यासा कलाना च विनोदे समा वर्षाणि नयन् गमयन् । स्वेन सह रवि सूर्य, इन्दु चन्द्र, पावक अग्नि एतान् समानयन् निजस्य तेज शालितया समानान् कुर्वन् (समानान् करोतीति तत्करोति तदाचष्टे इति णिजन्तात् शतृ) मानेन मानद्वारा विनोद मन प्रमोद समानयन् प्राप्नुवन् (सम्+आ+नयन्) स (ईश्वर)

एधते प्रत्यहम उज्जृम्भते । चतुर्षु चरणेषु आदिभागे 'समानयन्' इति चतुर्द्धा आवृत्त्या यमकातकार ॥ २५ ॥

तच्चित्रकर्म प्रविधातुमुद्यता
या सिंहलद्वीपनिवासिसुन्दरी ।
ध्यानस्फुरन्मन्मथबाणताडिता
चित्रायिताऽभूत्स्वयमेव तत्र सा ॥२६॥

तस्य सौन्दर्य-शौर्यादीन् श्रुत्वा अनुरक्ता, अत एव तस्य (ईश्वरस्य) चित्रकर्म प्रतिकृतिलेखनरूप विनोदकार्य कर्तुमुद्यता या सिंहलद्वीपनिवासिनी सुन्दरी अभूत् सा ध्यानेन तद्गतचिन्तया स्फुरत. उद्दीप्तस्य मन्मथस्य बाणेन ताडिता सती स्वयमेव चित्रभूताऽभूदिति चित्रमित्याशय । स्तम्भाख्यस्य सात्त्विकभावस्योदय. ॥ २६ ॥

नासत्यरूपो दधदद्वितीयतां,
कन्दर्प एवाद्भुतलब्धविग्रहः ।
ऐलो जुषन् संयुजमेष संततं
कैस्तर्क्यते नो सुमनोभिरीश्वरः ॥२७॥

अद्वितीयताम् अन्यै रूपवद्भि सह असमानता धारयन् अयम् नासत्यरूप· अश्विनीकुमार । प्रसिद्ध कामदेव अनङ्ग, किन्तु अयम् अद्भुत प्राप्तो विग्रह शरीर येन तादृश । सयुज दैवसयोग (सयुक्, क्विप्) जुषन् अयम् ऐल पुरूरवा: (यस्य सौन्दर्ये उर्वशी अनुरक्ताऽभूत्), इति इत्यम् अयम् (ईश्वर) कै· सुमनोभि. सुधीभिः (शब्दशक्त्या-देवैरपि) नो तर्क्यते, अपितु सर्वैरेव ऊह्यते । सदेह उल्लेखो वा ॥ २७ ॥

विद्वन्मनःपद्मवनप्रभाकरः
कीर्त्याक(ख्य)राकारजनीसुधाकरः ।
वनीपकप्रापककल्पभूरुहो
महीभृतां पक्षहरः पुरन्दरः ॥२८॥

विदुषा मनोरूपकमलवनस्य विकासकारी सोय प्रभाकर सूर्य । कीर्तिरूपा या राका (पूर्णिमा) रजनी तस्या परित परिष्कारक. चन्द्र· । वनीपकाना याचकानां वाञ्छितप्रापक कल्पवृक्ष । प्रतिपन्थिमहीभृता (राज्ञाम्) पक्षस्य दलस्य छेदकर अयं

पुरन्दर. (इन्द्र) । प्रसिद्ध इन्द्रो महीभृतां पर्वताना पक्षयोश्छेदकर, अयमीश्वरस्तु महीभृता प्रतीपभूपालाना पक्षस्य (पृष्ठपोषकदलस्य) विभेदकर, इति श्लेषोत्थापितं मालारूपकम् ॥ २८ ॥

द्विषद्विशुष्कद्रुमदावपावकः
सुहृन्मनोबर्हिणवारिदागमः ।
समन्ततोत्थायियशःसुरापगा-
समाश्रयः स्वर्णमयः सुरालयः ॥२६॥

द्विषन्त शत्रव एव विशुष्का द्रुमा तेषा कृते दावाग्नि, सुहृदा मित्राणा मनास्येव बर्हिणा मयूरा तेषा कृते वर्षाकाल । समन्तात् प्रसरणशील यश एव शुभ्रत्वपवित्रत्वादिना सुरापगा (गङ्गा) तस्या समाश्रय आधार । स्वर्णमय सर्वेभ्य. सुवर्णं प्रदिशन् सुरालय सुमेरु । मालारूपकम् ॥ २६ ॥

समुद्गतः श्रीजयसिंहसागरात्
समन्ततः प्राप्तसदामहोदयः ।
सुधांशुकल्पो वसुधां विशोधयं-
श्चिरं जयन् जीव जगन्ति रंजयन् ॥३०॥
इत्याशीर्भिर्ब्राह्मणैः पोष्यमाणः
सोमो राजा यद्वदृत्विक्प्रधानैः ।
धारावाहैराहुतीनां समूहै-
र्वृद्धिं दध्रे सद्यशश्चन्द्रिकाभिः ॥३१॥

"जयसिंहरूपसमुद्रात् उत्पन्न, सर्वत प्राप्त. सदा महान् उदयो येन [प्रसिद्धश्चन्द्रो दिवा, कृष्णपक्षे च सदा उदयशाली न भवति अय तु सदा विशिष्टोदयशालीति व्यतिरेक] । वसुधा विशोधयन् परिष्कुर्वन्, अत एव सुधाशु (चन्द्र) सदृश त्व जगन्ति जयन् रञ्जयन् (आनन्दयँश्च) चिरजीव" [अत्र व्यतिरेकोत्थापितायाः उपमाया जयसिंहसागरादिति रूपकमङ्गम्] ॥ इति ऋत्विक्प्रधानै धाराप्रवाहेण प्रवहद्भि घृताहुतीना समूहै. पोष्यमाण पूर्यमाण यद्वत् सोमो राजा (चन्द्र), तथा ब्राह्मणै आशीर्द्वारा पोष्यमाण सद्यशोरूपाभि चन्द्रिकाभि ज्योत्स्नाभि (उपलक्षित) स वृद्धिं प्राप ॥३०,३१॥

असौ महाराजकुमारतापदं
स्पृशन्प्रतापैः परितः परिस्तृतः ।
स वैजयन्ताधिपतेः पुरः स्थितः
सदा जयन्तो जयतीति तर्कितः ॥३२॥

महाराजकुमारतापद युवराजपदवी मण्डयन् प्रतापै. (प्रभावै.) समन्ततो व्याप्त. वैजयन्तनामकस्य प्रासादस्य अधिपते (इन्द्रस्य) अग्रे स्थित अय जयन्त इन्द्रस्य कुमारो जयतीति स जनै तर्कित उत्प्रेक्षित । "स्यात्प्रासादो वैजयन्तो जयन्त पाकशासनि" इत्यमर. ॥३२॥

सौन्दर्यशैलः प्रथितः किमैलः
किं दर्पकः कायविसर्पिदर्पः ।
नलोऽनलो वापि बलानुजो वा
बलोऽथवा तर्कित ईश्वरोऽसौ ॥३३॥

सौन्दर्यस्य शैलायित. किम् अय पुरूरवा ? कायेन कायप्राप्त्या सर्वतो व्याप्तो दर्पोऽभिमानो यस्य [प्रसिद्धस्य कन्दर्पस्य कायो नास्ति, अय तु शरीर लब्धवानिति] ईदृश. गर्वित कामदेव किम् ? अय नल (नैषध) किम् ? तेजोदीप्त्या अयम् अग्नि किम् ? बलस्य बलभद्रस्य अनुज श्रीकृष्ण. किम् ? अथवा साक्षाद् बल एव बलभद्र एव किम् ? इति ईश्वरसिंहोऽसौ जनै. तर्कित. सदेहविषयीकृत । सदेह ॥३३॥

नृपकुलतिलकोऽसौ राजराजीषु राजन्
रवि-रजनिकराभस्तेजसा चैव कीर्त्या ।
विकसितकविविद्वत्कैरवाम्भोजखण्डो
नयनहृदयजीवंजीवचक्राभिरामः ॥३४॥

राज्ञा राजीषु पक्तिषु शोभमान नृपकुले तिलकायित असौ (ईश्वरसिंह) तेजसा रविसदृश, कीर्त्या रजनिकर (चन्द्र) सदृश. अस्ति । अत एव चन्द्रतया विकासमुपगत कविसमूहरूप कैरव (कुवलय) खण्डो यस्मात्, सूर्यतया विकसित विद्वत्समूहरूप अम्भोजखण्डो यस्मात् ईदृश अस्ति । तथा नयनरूपाणा जीवजीवाना (चकोराणा) कृते हृदयरूपाणा चक्राणा (चक्रवाकानाम) च कृते अभिराम. । 'जीवजीवश्चकोरक' इत्यमर ॥३४॥

चिरं सतर्षौ जयसिंहचक्षुषी
चकोरकौ पुत्रविधुं समीक्षितुम् ।
अमुं कुलक्षीरनिधेः कलानिधिं
विलोक्य तौ जन्मकृतार्थतां गतौ ॥३५॥

पुत्ररूप विधु (चन्द्रम्) निरीक्षितु चिरकालात् सतृष्णौ जयसिहस्य चक्षुषी नेत्ररूपौ चकोरकौ । 'चक्षुपी चकोरकौ' इति व्यस्तरूपकम् । तौ कुलरूपात् सागरात् उत्पन्नम् अमु कलानिधिम् (चतु पष्टिकलाना निधानम् अमुम्, चन्द्र च) विलोक्य जन्मन कृतकृत्यता गतौ ॥३५॥

तस्मिन्महाभाग्यवतां शिरोमणा-
याबाल्यतो लोचनचामरादिभिः ।
प्रसादकान्त्या जितचन्द्ररश्मिभिः
संवीजनं किञ्चन चक्रिरे प्रजाः ॥३६॥

प्रजा —महाभाग्यशालिना शिरोमणौ तस्मिन् (ईश्वर०) बाल्यकालादेव प्रसादस्य प्रसन्नताय। कान्त्या कान्तिवशात् जिता अधरीकृता चन्द्रस्य रश्मय किरणा यै ईदृशै नेत्ररूपै चामरादिभि किञ्चन (किञ्चित् अपूर्वमेव) सवीजन बालव्यजन चक्रु । अन्यस्मिन् राजनि सिंहासनारोहणानन्तर तारुण्ये वालव्यजन कुर्वन्ति जना, अस्मिम्तु बाल्यावस्थामारभ्यैव सवीजनं प्रजाश्चक्रुरिति राजकुमारे प्रजाना स्नेहातिशयेन सह जन्मत एव प्राकृतिकराजोचितसमानाधिकारित्व ध्वन्यते ॥३६॥

तस्मिन् महाभाग्यसमूहसूचकः
पयोनिधिद्वीपचरो विहङ्गमः ।
प्रसार्य पक्षौ कमनीयपक्षति-
स्तस्योपरि च्छत्रतया व्यतिष्ठत ॥३७॥

तस्मिन् (ईश्वरसिंहे) महाभाग्यसमूहस्य सूचक सामुद्रिकद्वीपचर पक्षी कमनीये पक्षती (पक्षौ) यस्य ईदृश. पक्षी ('सुर्खाब' इति पारस्यभाषया ख्यात) निजौ पक्षौ प्रसार्य छत्ररूपेण तस्योपरि अतिष्ठत् ॥३७॥

तस्मिन् क्षणे शाकुनिकाः समन्ततो
राजाधिराजं समुपेत्य सस्पृहाः ।
फलं समस्तं शकुनस्य तस्य ते
निवेदयांचक्रुरवाप्तवैभवाः ॥३८॥

तस्मिन् क्षणे सस्पृहा: सलालसा: शकुनज्ञा: राजाधिराज (जयसिंहम्) समन्तात् समुपेत्य तस्य (मस्तकोपरि पक्षिणश्छत्रतयाऽधिष्ठानस्य) शकुनस्य शुभसूचकनिमित्तस्य समस्त परिणाम निवेदयामासु । जयसिंहसकाशाच्च ते शाकुनिका लब्धभूम्यादिवैभवा अभूवन् ॥३८॥

महामहाराजवरोचितानां
दृष्ट्वा समूहं युगपद् गुणानाम् ।
तस्मै ददौ सद्युवराजभावं
श्रीमत्सवाईजयसिंहदेवः ॥३९॥

महान् यो महाराजेषु वर श्रेष्ठ तदुचितानां गुणानां युगपत् एककालमेव समूह दृष्ट्वा जयसिंहदेव: तस्मै उत्तमां युवराजपदवी ददौ ॥३९॥

स्वस्मिन् स्थितां तां सुचिरेण पद्मजां
तत्रोपसंक्रामयितुं विशेषतः ।
स्वाऽभेदमेवात्मजनौ प्रदर्शयन्
कुमारसेवार्हगुणानशिक्षयत् ॥४०॥

स जयसिंह: स्वस्मिन् (आत्मनि) सुचिरकालात् स्थिता पद्मजा लक्ष्मी तत्र (ईश्वरसिंहे) विशेषरूपेण सक्रामयितु (अवतारयितुम्) आत्मजनौ (आत्मजे पुत्रे) स्वस्य निजस्य अभेदमेव ऐक्यमेव प्रकाशयन् सन् कुमारस्य सेवोचितान् गुणान् (ता राजलक्ष्मीम्) अशिक्षयत् शिक्षयामास ॥४०॥

सा दत्तशिक्षा सुचिरेण सेवितुं
महामहाराजकिरीटमौलिना ।
श्रीमन्महाराजकुमारमन्वगाद्
विशेषविस्तारिगुणाभिलाषिणी ॥४१॥

महतां महाराजाना मुकुटश्रेष्ठेन (तेन जयसिहेन) सुचिर दत्तशिक्षा विशेषतो विस्तारशीलाना गुणानामभिलाषिणी सा राजलक्ष्मी श्रीमन्त महाराजकुमारम् अन्वगात् अनुससार ॥४१॥

तं यौवराज्यैकमहामहोत्सवे
विभूषितं भूरि मणीविभूषणैः।
लक्ष्मीः प्रियेव प्रियमाययौतमां
मदाभिरामद्विपयानशोभिता ॥४२॥

राजलक्ष्मी, यौवराज्यप्राप्ते प्रधाने महामहोत्सवे भूरिभि रत्नविभूषणै विभूपित तम् (ईश्वरसिहम्) प्रिय प्रियतमेव मदाभिरामाणा मदोन्मत्ताना द्विपाना (हस्तिनाम्) यानेन (रथेन) शोभिता सती आजगाम ॥४२॥

मयि स्थिते राज्यधुरां वहत्वसा-
वितिस्पृहावान् जयसिंहभूपतिः।
तं यौवराज्येन तदा महाबलं
संयोज्य भोगान् बुभुजेतरां स्वयम् ॥४३॥

'मयि वर्तमाने सति अयम् राज्यभार धारयतु' इति लालसावान् जयसिह महाबल त युवराजभावेन सयोज्य स्वय राजोचितान् भोगान् नितराम् अनुबभूव ॥४३॥

सा राज्यलक्ष्मीर्निजतेजसाऽञ्चिता
विशेषतः श्रीयुवराजराजिता।
वृद्धिं समासाद्य भृशं समाबभौ
वेलेव सिन्धोः शरदिन्दुसंगमात् ॥४४॥

स्वाभाविकेन निजेन तेजसा पूजिता सा राजलक्ष्मी विशेपतया श्रीयुवराजेन शोभिता सती, शरच्चन्द्रस्य समागमात् सिन्धो समुद्रस्य वेलेव तटमिव वृद्धि प्राप्य अत्यन्त शुशुभे ॥४४॥

रवेरिव श्रीजयसिंहभूपतेः
प्रतापतेजो दधदुग्रतां सदा।
तदेव धृत्वा युवराजचन्द्रमाः
प्रकाशयामास स कीर्तिकौमुदीम् ॥४५॥

सदा उग्रता दधत् श्रीजयसिंहभूपते प्रतापरूपं तेजः सूर्यस्य (तेज इव) अभूत् । तदेव (तेज) धृत्वा युवराजरूप स चन्द्रमा (ईश्वर०) कीर्तिरूपां कौमुदीं प्रकाशयामास । सूर्यस्य उग्रमपि तेज क्रमश समधिगम्य शुक्लपक्षे चन्द्र शीतला चन्द्रिका प्रसारयति इति वैज्ञानिकी लोकप्रसिद्धिः ॥४५॥

तद्यौवराज्योद्भवनीतिनन्दितै-
दैवैर्धरेयं गमिता निरीतिताम् ।
अशोभत क्षेमवती समन्ततो
यथा दिलीपे च रघौ च शासति ॥४६॥

तस्य (ईश्वर०) यौवराज्यादुद्भूतया नीत्या आनन्दितै. दैवै निरीतिता निरुपद्रवता गमिता इय पृथिवी, यथा दिलीपे रघुराजे च शासति सति अशोभत, तथा सर्वत कुशलयुक्ता सती शुशुभे ॥४६॥

यथा दिनेशः सहितः सुधांशुना
यथा जयन्तेन च वैजयन्तराट् ।
अदोमहाराजकुमारसंयुत-
स्तथा विरेजे जयसिंहभूमिपः ॥४७॥

चन्द्रेण सहितो यथा दिनेश. सूर्य. जयन्तेन (तन्नामकपुत्रेण) सहितो यथा वैजयन्ताख्यस्य प्रासादस्य राजा इन्द्र , तथा अमुना महाराजकुमारेण संयुक्त जयसिंह-भूपः शुशुभे ॥४७॥

दीपात्प्रदीपः स यथा प्रवर्तितो
न भेरु(द) लेशं कुरुते निरीक्षताम् ।
तथैव सा राजकुमारराजदृक्
प्रजा न भेदं लभते स्म कञ्चन ॥४८॥

दीपात्प्रज्वालित. प्रदीप निरीक्षमाणाना लोकानां यथा भेदलेशं लेशमात्रतोपि भेद बुद्धौ न कुरुते (न सूचयति) तथैव राजकुमारश्च राजा चेति राजकुमारराजौ, तौ पश्यति इति राजकुमारराजदृक् (क्विप्) (राजयुवराजयोरुभयोर्दर्शिनी) प्रजा तयोर्मध्ये कञ्चिदपि भेद न अनुभवति स्म ॥४८॥

ये शौर्यवीर्याद्भुततादयो गुणाः
श्रीमन्महाराजवराश्रया बभुः ।
त एव तस्मिन्युवराजके दधु-
र्द्वैगुण्यलक्ष्मीप्रतिबिम्बिता इव ॥४९॥

श्रीमति महाराजवरे (जयसिंहे) आश्रिता शूरता-वीरता-आश्चर्यजनकतादयो ये गुणा शुशुभिरे तस्मिन् युवराजे प्रतिच्छायारूपेण सक्रान्ता इव ते गुणा द्विगुणतारूपा शोभा धारयामासु । युवराजो महाराजसदृशैर्गुणै शीघ्रमेव सर्वलोकान् रजयामासेत्याशय ॥४९॥

गन्धर्वेषु गभीरकण्ठनिनदं गायत्सु माधुर्यतः
प्रोद्यत्सु प्रचुरेषु दुन्दुभिरवेष्वानाकनाथालयम् ।
नृत्यत्सु प्रमदागणेषु बहलोत्साहं समालिङ्गितः
श्रीमानीश्वरसिंह एष मुदितः सद्यौवराज्यश्रिया ॥५०॥

गभीर कण्ठनिनादो यथा स्यात्तथा देवगायकेषु माधुर्यसहित गायत्सु सत्सु, नाकनाथस्य (इन्द्रस्य) आलयपर्यन्त (स्वर्गपर्यन्तम्) प्रभूतेषु भेरीरवेषु प्रोद्यत्सु प्रोज्जृम्भमाणेषु सत्सु । गणिकादिसुन्दरीसमूहेषु पूर्णोत्साह नृत्यत्सु सत्सु, सुप्रसन्न एष ईश्वरसिंह उत्तमया यौवराज्यलक्ष्म्या परिरब्धोऽभूत् । यस्मिन् समये अय युवराजपदमलचकार तस्मिन् समये देवानामपि-अग्रे स्वकीयपरिकरस्य सवृद्धिमनुमाय मोदोऽभूत्, किं पुनर्भूमिष्ठप्रजानामिति गन्धर्वादीना गानादिना ध्वन्यते ॥३०॥

इतिहासविकासिन्या विलासिन्या समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृते' सर्गे सर्ग एषोऽष्टमः क्रमात् ॥



नवमः सर्गः

पुरन्दरप्रस्थपुराधिनाथ-
प्रवर्तिताऽऽज्ञावशगोऽथ राजा ।
संप्रेषयामास स दाक्षिणात्यान्
भटान्विजेतुं युवराजमेव ॥ १ ॥

इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) पुरस्य अधिनाथेन (सम्राट् मुहम्मदशाहेन) प्रवर्तिताया आज्ञाया वशात् स राजा (जयसिंह) दाक्षिणात्यान् (विद्रोहिमहाराष्ट्रान्) सैनिकान् विजेतु युवराजमेव प्रेषयामास ॥१॥

स्फुरन्महासेनसमानकान्तिः
सेनां समादाय समेतशक्तिः ।
स तस्य राज्ञः पितुराज्ञयैव
स्वयं विनिश्चित्य जयं प्रतस्थे ॥ २ ॥

देदीप्यमानस्य महासेनस्य (स्वामिकार्तिकस्य) कान्तिरिव कान्तिर्यस्य, अतएव समेतशक्ति. (शक्त्या तन्नामकेन आयुधेन सहित., राजपक्षे सैन्यसामर्थ्येन सहित, सैन्यमादायेत्यर्थ·) स (ईश्वर०) विजय निश्चित कृत्वा पितुराज्ञया प्रस्थान चक्रे ॥२॥

तस्य प्रयाणे मदवारणौघैर्यन्-
महीतलं पङ्किलतां प्रयातम् ।
रिङ्गत्तुरङ्गव्रजटापटङ्कै-
स्तत् क्षोदितं स्वां प्रकृतिं जगाम ॥ ३ ॥

मदं क्षरद्भि कुञ्जरैर्यद्भूतल कर्दमयुक्तमभूत् रिङ्गतः सवेग धावत तुरगसमूहस्य खुररूपै टङ्कै (क्षोदनसाधनै 'टाँकी') क्षोदित विघाटित तत् पुन· प्रकृतिस्थमभूत् ॥३॥

हयैरकारि द्रुतटापटङ्क-
प्रोद्धूतधूलीभरमम्बरं यत् ।
स्तम्बेरमैस्तत् समशोधि शुण्डा-
दण्डप्रसर्पत्क(क)रसीकरौघैः ॥ ४ ॥

यत् आकाशम् अश्वै. वेगवत्-शफरूपटङ्कै प्रसरन् धूलिभरो यस्मिन्नीदृशम् अकारि, तत् (अम्बरम्) गजै शुण्डादण्डा एव प्रसर्पन्त कराः (हस्ता·) तेभ्य प्रक्षिप्तै सीकरसमूहै समशोधि, प्रक्षालितमित्यर्थ· ॥४॥

समन्ततः संततमग्नियन्त्रैः
प्राकारमाकारविशेषघोरम् ।
वितन्वता वर्त्मसु तेन निन्ये
सुदुर्गभावं बलसंनिवेशः ॥ ५ ॥

अग्नियन्त्रै (तोप-बन्दूकादिभि) पर्यन्ततो व्याप्तम् आकारविशेषादेव घोर भयङ्कर प्राकार (वरणम् 'कोट') वितन्वता तेन (ईश्वरसिंहेन) मार्गेष्वपि निजसेनासनिवेश सुदृढ-दुर्गभाव निन्ये नीत । तोभेभ्य. समुत्थितो धूम सैन्य परितस्तथा विस्तृतोऽभूद् येन सेनासनिवेशोसौ विशालदुर्ग इव दृश्यते स्म, इत्याशय. ॥५॥

तस्य प्रयाणे प्रलयाम्बुदौघ-
प्रणादिभिर्दुन्दुभिकोणघातैः ।
दरीषु सुप्ताः प्रययुः प्रबोधं
मदोद्भटा धूतजटा मृगेन्द्राः ॥ ६ ॥

तस्य अभियाने प्रलयकालिका ये अम्बुदौघा मेघसमूहा तद्वद् घोरध्वनिकारकै भेरीणा वादकदण्डाघातै गिरिगुहासु सुप्ता बल-यौवनादिभिर्मत्ता अतएव क्रोधावेशात् प्रकम्पितस्कन्धकेसरा मृगेन्द्रा सिंहा प्रबोध प्राप्ता ॥६॥

श्रीमानसावीश्वरसिंहनाम्ना
रवीन्दुधाम्ना युवराजवर्यः ।
कर्तुं महायुद्धमयीं मृगव्यां
तत्राऽभितोऽवर्तत दाक्षिणात्यान् ॥ ७ ॥

रविवत् इन्दुवच्च धाम तेजो यस्य ईदृश· ईश्वरसिंहयुवराज महायुद्धरूपा मृग-व्याम् (आखेटम्) कर्तु दाक्षिणात्यान् (महाराष्ट्रान्) अभित. परितः अवर्तत प्राप्नोत् ॥७॥

स दाक्षिणात्यान् सुभटान्समीक्ष्य
वीरो यदासीदभिवर्तमानः ।
तदाऽभवन् सैन्यगजाः समन्ताद्-
दानाम्बुभिः प्रावृषिजाः पयोदाः ॥ ८ ॥

स वीरः महाराष्ट्रान् वीरवरान् दृष्ट्वा यदा अभितो वर्तमानः परितः आक्रमन् अभूत् तदा सेनायाः गजाः मदजलस्रवणैः प्रावृषिजा वर्षाकालिका मेघा इव समन्तात् अभवन् ॥८॥

गर्जत्सु निःसानघनेषु मुक्त-
तुरङ्गवल्गेषु महाभटेषु ।
सबृंहितेषु द्विरदेषु तस्य
ध्मातो रणोत्साहरसः स कोपि ॥ ९ ॥

निःसान (भेरी) रूपेषु मेघेषु गर्जत्सु, योद्धृवरेषु युद्धरभसात् मुक्ताः त्यक्ताः अश्वानां वल्गाः खलीनाः यैः तादृशेषु सत्सु, अश्वान् प्रबलवेगेन धावयत्सु सत्सु इत्यर्थः । गजेषु सबृंहितेषु युद्धोत्साहात् चीत्कृतिं कुर्वत्सु सत्सु । तस्य कोपि अनिर्वचनीयः युद्धोत्-साहस्यानन्दः ध्मातः प्रदीप्तोऽभूत् ॥९॥

पूर्वं तदग्रेसर-लोहयन्त्र-
विनिःसरद्गोलकवज्रघातैः ।
निपातिताः सैन्यमुखे रिपूणाम्
उत्तुङ्गमातङ्गमहामहीध्राः ॥१०॥

प्रथमं तस्य अग्रेसराणि सेनायाः अग्रगामीनि यानि लोहयन्त्राणि (तोप) तेभ्यो विनिःसरतां गोलकवज्राणां घातैः प्रतिपक्षसैन्यस्य अग्रभागे वैरिणाम् उत्तुङ्गाः मातङ्गाः (गजाः) एव महामहीध्राः (शैलाः) निपातिताः भूमौ शायिताः । युवराजसैन्यस्य अग्रगाभिः शतघ्नीभिः (तोप) रिपुसैन्यस्य संमुखभागे स्थिताः शैलवदुन्नतमातङ्गा एव पूर्वं विनिपातिता इत्याशयः ॥१०॥

कृशानुवेगप्रचलत्सु चण्ड-

बाणावलीभिर्द्विदलीकृतास्ते ।

असृक् स्रवन्तः समरे विरेजुः

सन्ध्याभ्रसंघा इव वारणेन्द्राः ॥११॥

कृशानोः अग्नेः वेगेन तेषु लोहयन्त्रेषु प्रचलत्सु सत्सु युवराजवीराणां प्रचण्डाभिः बाणपङ्क्तिभिः द्विखण्डीकृताः अतएव असृक् रुधिरं क्षरन्तः ते गजेन्द्राः सन्ध्याकालिकाः मेघसमूहा इव युद्धेऽस्मिन् शुशुभिरे ॥११॥

महाग्नियन्त्रोद्भवधूलि(म)धारा-

धाराधरध्वान्तभरेऽतिसान्द्रे ।

ननर्त नासीरग-वीरहस्त-

स्थिता कृपाणीतडितां ततिः सा ॥१२॥

महान्ति यानि अग्नियन्त्राणि (तोप) तदुद्भवा धूमधारा (धूलिराशिः) एव धाराधरो मेघः तस्य ध्वान्तभरे अन्धकारसमूहे अतिनिबिडे सति, नासीरे अग्रभागे योधिनां वीराणां हस्ते स्थिता कृपाणीतडितां खड्गरूपविद्युतां पङ्क्तिः ननर्त निर्भरमितस्ततो बभ्राम । मेघान्धकारे यथा विद्युच्चञ्चति तथा तोप-धूमान्धकारे वीराणां खड्गाश्चतुर्दिशं चञ्चन्ति स्म ॥१२॥

उन्मुक्तवल्गं द्रुतमेकहस्त-

सम्यग्धृतोष्णीषमुदीर्णनादम् ।

दधाविरे वाहनिषादिवीराः

कोशोद्धृतक्रूरकृपाणिहस्ताः ॥१३॥

वाहे घोटके निषादिनः आरोहिणो वीराः कोशात् निस्सारिता क्रूरा कृपाणी तरवारिका हस्ते येषां तादृशाः सन्तः, उन्मुक्ता घोटकानां वल्गा मुखरज्जुर्यस्मिन्कर्मणि तथा, एकहस्तेन सम्यग्गृहीतम् उष्णीषं (शिरोवेष्टनम्) यत्र तथा, कृतश्च वीरसिंहनादो यथा, तथा शीघ्रं दधाविरे शत्रूणामुपरि आक्रमन्ते स्म ॥१३॥

तां दाक्षिणात्योऽन्कटवीरसेनां
सघर्घरारावनितान्तघोराम् ।
जग्राह धीरो युवराजवर्य-
स्तरङ्गिणीं सिन्धुरिवोत्तरङ्गः ॥१४॥

युवराज घर्घर इति भयङ्करेण आरावेण (शब्देन) अत्यन्तविकटां तां महाराष्ट्राणां विकटवीरसेनाम्, ऊर्ध्वतरङ्ग समुद्रो यथा संमुखादायान्ती नदी, तथा धीर सन् जग्राह युद्धाय स्वीचकार । समुद्रे प्रविशन्ती नदी यथा किंचित्कालमेव दृश्यते पर्यन्ततस्तु विलुप्यते तथा सेयं सेना त्वरित लोपमेष्यतीति वस्तु ध्वन्यते ॥१४॥

पदातयः श्रीयुवराजसेना-
पदातिभिः खड्गनिकृत्तकायाः ।
अकम्पयन्तः पृथिवीं निपेतु-
र्वज्रत्रुटत्पर्वतकूटकल्पाः ॥१५॥

युवराजसेनाया पदातिभि. खड्गेन खण्डितशरीरा शत्रुपदातय इन्द्रस्य वज्रेण त्रुटन्त पर्वतशिखरा इव पृथ्वी कम्पयन्तो नीचैर्निपेतु. ॥१५॥

पदातयस्तत्र पदातिसेनां
रथाधिरूढान् रथिनो निपेतुः ।
तुरङ्गिणो वीक्ष्य तुरङ्गयाना-
गता गजस्थाश्च भटा गजस्थान् ॥१६॥

पदातिसेनां वीक्ष्य पादचारिण, रथारूढान् वीक्ष्य रथस्था, तुरङ्गयुक्तान् वीक्ष्य अश्वरथेन आगता, तथा गजे स्थितान् वीक्ष्य गजारूढा वीरा युद्धाय निपेतु आचक्रमु: ॥१६॥

इत्येवमासीत्तुमुलः प्रहारः
समप्रतिद्वन्द्वकृतस्तदानीम् ।
तत्कौतुकं द्रष्टुमना इवार्क-
स्तस्थौ क्षणं वासरमध्यमेत्य ॥१७॥

इत्येवम् समै· सर्वप्रकारेण समानैः प्रतिद्वन्द्वै· प्रतिपन्थिवीरैः कृत तुमुलो (भयङ्कर:) शस्त्राणा प्रहारोऽभूत्, तदानी सूर्य तत्कौतूहलं द्रष्टुकाम इव दिनमध्यं (मध्याह्नम्) प्राप्य क्षणकाल निपसाद। मध्याह्ने सूर्यं क्षणं गगने तिष्ठतीति स्वाभाविके वस्तुनि युद्धकौतुकदर्शनरूप फलमुत्प्रेक्ष्यते इति फलोत्प्रेक्षा ॥१७॥

अश्रावि केनापि न कस्यचिद्वाक्
तूर्यध्वनौ संयति जायमाने ।
तत्राऽभवंस्तत्परिचायकास्ते
कर्णान्तलग्ना इव बाणवर्णाः ॥१८॥

युद्धे समरवाद्याना ध्वनौ जायमाने सति केनापि वीरेण कस्यचिद् वाणी न श्रुता इत्यत्र कर्णान्ते लग्नानि बाणरूपाणि अक्षराण्येव (वर्णाः) प्रमाणानि अभवन्। कर्णसमीपे पुङ्खध्वनिं 'सूत्' इति वेगध्वनिं वा कुर्वन्तो मिथ शरा एव तदिदं परिचाययन्ति यत् युद्धवाद्याना ध्वनौ जायमाने सति परस्परस्य वाणी न परस्पर श्रूयते, अतएव तु बाणा कर्णसमीपे समागत्य शब्द श्रावयन्तीत्याशय ॥१८॥

रथध्वजच्छत्रकिरीटकेतु-
दण्डेषु कायेषु च पल्लवेषु ।
तत्राक्षराणीव धृतानि बाण-
च्छिद्राण्यवोचन्विजयं परेषाम् ॥१९॥

रथादिषु पताकादण्डेषु शरीरेषु, पल्लवेषु च बाणैः कृतानि छिद्राणि लिखितानि अक्षराणीव समुखस्थितानां वीराणां विजयमकथयन्। रथादिषु बाणैर्ये विवराः कृतास्ते एव वीराक्षराणीव निःशब्द समुखस्थाना विजय कथयन्ति स्मेति भाव ॥१९॥

लयान्विता: स्तूर्यनिनादताले-
युद्धे कबन्धा नितरामनृत्यन् ।
तत्प्रेतनारीगलसंगतानि
शिरांसि रक्तैर्नयनैरपश्यन् ॥२०॥

लयेन वाद्यतालादिसाम्येन युक्ता (लय साम्यमित्यमर) कबन्धाः (शिरोहीना वीराणा काया.) तूर्याणा युद्धवादित्राणा तालै तालानुसार नृत्य चक्रु । सतीभावेन

तस्मिन् काले एव मृताना नारीणाम् (कबन्धायितवीरपत्नीनाम्) कण्ठैः संगतानि तेषा (वीराणा) शिरासि रक्तैः अनुरक्तैः अरुणीभूतैश्च नयनैः तत् नृत्यमपश्यन् । वीरैः सह मृता नार्य पतीना मस्तकानि कण्ठे योजयन्ति, तानि मस्तकानि च तेषामेव वीराणां कबन्धनृत्यम् अनुरागयुक्तैरिव रक्तैर्नयनैः पश्यन्तीति कवेरर्थकल्पनचातुर्यम् । वीराद्भुतयोः सह समावेश ॥२०॥

रथाश्वजन्मा निविडोऽन्धकारः
स पश्यतां दृष्टिपथं रुरोध ।
नोदेति यावद्युवराजबाण-
क्षतारिसैन्यास्तनवार्करोचिः ॥२१॥

रथेभ्य अश्वेभ्यश्च जातो गाढोऽन्धकार पश्यता लोकाना दृष्टिपथं तावत्काल रुरोध यावत्कालं युवराजस्य बाणै क्षतेषु नाशितेषु अरिसैन्येषु अस्त क्षिप्त. नवसूर्यस्य रोचिः प्रकाशः न-उदेति । अयं भावः—रथानामश्वाना च सकुलतया (भीड) रिपुसैन्ये पूर्वं निविडोऽन्धकारोऽभूत् । किन्तु युवराजस्य बाणै शत्रुसैन्यानि नाशितानि । अतएव-प्रकाशनिरोधकानामश्वाना रथानां च विनाशेन नवसूर्यस्य प्रकाशस्तत्र क्षिप्त. । अतएव अन्धकार स विलुप्तः ॥२१॥

रजोन्धकारे नितरां निवृत्ते
गजाश्ववीरक्षतजप्रसारैः ।
विलोक्य सम्यग् युवराजवीरो
जघान वैरिप्रकरं शरौघैः ॥२२॥

शस्त्रक्षताना गजानाम् अश्वानां वीराणां च क्षतजस्य रुधिरस्य प्रवाहैः धूलिकृते अन्धकारे निवृत्तेसति, वीरो युवराज. पदार्थान् सम्यग् विलोक्य निजबाणसमूहै शत्रुसमूह निजघान ॥२२॥

विपक्षसेना युवराजयोध-
बाणानले प्रज्वलिते समन्तात् ।
निदाघशुष्का निविडाटवीव
ननाश निर्धूमरजोन्धकारा ॥२३॥

युवराजस्य योद्धृणा बाणाज्जाते अनले समन्तत प्रज्वलिते सति शत्रुसेना निदाघे (ग्रीष्मकाले) शुष्का निबिडा वनीव, निर्गतो धूलिकृतोऽन्धकार एव धूमो यस्या सकाशात् ईदृशी दग्धा भूत्वा नष्टाऽभवत् ॥२३॥

परस्परं खड्गनिपातघात-
प्रजातरक्तौघपृथुप्रवाहा ।
सरस्वती, श्रीयुवराजकीर्ति-
गङ्गाऽरिदुष्कीर्तिदिनेशकन्ये ॥२४॥

एतत्त्रिवेणीमयसच्छतीर्थं
समाश्रिताः स्वे च परे च वीराः ।
जगज्जयं स्वर्गसुखं च लोके
सुदुर्लभं संयति लब्धवन्तः ॥२५॥

परस्परं खड्गप्रहारेण जनितो य शरीरघात तस्मात् प्रजातो रुधिरसमूहस्य महान् प्रवाहो यस्याम् ईदृशी रक्तवर्णा सरस्वती, युवराजस्य कीर्तिरूपा गङ्गा, वैरिणा दुष्कीर्तिरूपा श्यामा कलिन्दकन्या (यमुना) च एतत् त्रिवेणीमय स्वच्छ तीर्थं समाश्रिता स्वीया. (युवराजीया), शत्रुसम्बन्धिनश्च वीरा लोके अत्यन्तदुर्लभ जगति विजय, स्वर्ग सुख च सगामे प्राप्तवन्त । समुखयुद्धे मृता. स्वर्ग प्राप्नुवन्तीति शास्त्रम् ॥२४-२५॥

हुंकारमात्रेण गजाधिरूढः
प्रवर्तयन् श्रीयुवराट् स्वयोधान् ।
संयोधयामास स दाक्षिणात्यैः
क्रीडावशात्स्वेन निमेषपात्यैः ॥२६॥

गजाधिरूढ युवराज आज्ञासूचकेन 'हुम्' इति इङ्गितेन स्वभटान् युद्धे प्रेरयन् सन् स्वद्वारा निमेषमात्रेण निपातनीयै (हननीयै.) महाराष्ट्रवीरै सह क्रीडावशात् (असभ्रम क्रीडयैव) योधयामास ॥२६॥

प्रवर्तितास्तेन भटाः सचर्म-
खड्गोद्भटाः संयति कूर्दमानाः ।
सप्रावृषेण्याऽभ्रतडित्समूहाः
समीरवेगा इव संनिपेतुः ॥२७॥

तेन प्रेरिता चर्मखड्गाभ्या (ढाल-तरवार) सहिता. अत एव विकटा भटा युद्धे समरवेगेन उत्प्लवमाना. सन्त· प्रावृषेण्येन (वर्षाकालिकेन) मेघ-विद्युत्समूहेन सहिता· पवनवेगा इव सहसा सेनामाक्रमितवन्त· । चर्म-मेघयो विद्युत्खड्गयोश्च मिथो विम्ब-: प्रतिविम्वभाव ॥२७॥

भ्रूसंज्ञयाऽऽज्ञप्ततमाः समन्ता-
द्योधाः पितुः स्वस्य हयाधिरूढाः ।
शक्तिप्रहारैर्द्विषतां वलानि
विपोथयामासुरुदारवीर्याः ॥२८॥

भ्रूकुटेरिङ्गितेन समन्तात्प्रेरिताः पितु. (जयसिंहस्य) स्वस्य च अश्वारूढ प्रशस्तपराक्रमा योधाः शक्ति (वरछी) प्रहारै· वैरिणा सैन्यानि चूर्णयामासु ॥२८॥

संजायमाने तुमुले रणेऽस्मिन्
महासमुत्तुङ्गगजाधिरूढः ।
श्रीमन्महाराजकुमार एष
द्वयोर्विमर्दं वलयोर्विलोक्य ॥२९॥

नवार्करश्मित्रिकरान्किरन्तौ
दृशौ क्षिपन् क्षीवविपक्षसैन्ये ।
दन्तैर्दशन्नोष्ठपुटं विरुद्ध-
वामौष्ठदन्तक्षतरक्तणोच्छुः ॥३०॥

परानभि प्रेरय मे महेभं
काङ्क्षे महायुद्धमहेऽभिगन्तुम् ।
इत्यादिशन् हस्तिपकं प्रभीतं
राजाधिराजस्य वचोभिरुग्रैः ॥३१॥

आकर्णकृष्टायतशार्ङ्गवाण-
वृष्टिं वितन्वन् द्विषतां वलेषु ।
मरुत्वतः पुत्र इव प्रवेगान्-
निरन्तरं दैत्यशतानि मृद्नन् ॥३२॥

भूत्वाऽग्रतः सर्वबलस्य भूयः
पराक्रमं कश्चिदसौ चिकीर्षुः ।
तदेव वीरैः स्वपरैः प्रवृत्त-
मुत्तालमायोधनमाजगाम ॥३३॥ पञ्चभिः कुलकम्

भीषणे समरेऽस्मिन् महोन्नतकुञ्जरारूढ एष युवराज द्वयो सेनयो समर निरीक्ष्य। क्रोध-गर्वयोरारुण्येन नवसूर्यस्येव अरुणान् किरणसमूहान् क्षिपन्त्यौ दृशौ (नेत्रे) मत्ते वैरिणा सैन्ये निपातयन्, वैरिवामाना (स्त्रीणाम्) ओष्ठान् पतिकृतदन्तक्षतेभ्यो रक्षणेच्छु निजम् ओष्ठपुट दन्तैर्दशन्। यदाऽय युवराज क्रोधेन स्वीयमोष्ठ दशति तदा पराक्रमविहता शत्रवो नश्यन्ति। अत एव वैरिणा स्त्रियो विधवा सत्य ओष्ठेषु पतीना दन्तक्षतेभ्यो रक्षिता भवन्ति। निजस्य अधरदशने अन्यस्य अधररक्षण विरुद्धमिति वाच्येन विरोधालंकारेण—स्वाधरदशन-शत्रुव्यापादनयोरेककालरूप--एकधर्मसबन्धेन तुल्ययोगितालंकारो व्यज्यते (अलकारेण अलकारध्वनि) ॥ मम महान्त गज परान् शत्रून् अभि अभिमुख प्रेरय। महायुद्धरूपे अस्मिन्नुत्सवे समुख गन्तु वाञ्छामि। इति भीत राजाधिराजस्य (जयसिंहस्य) हस्तिपक तीव्रैर्वचनै आज्ञापयन् ॥ शत्रूणा सैन्येषु कर्णपर्यन्तम् आकृष्टात् शार्ङ्गात् (चापात्) बाणवर्षा कुर्वन् वेगात् दैत्यशतानि नाशयन् इन्द्रस्य पुत्रो जयत इव स्थित ॥ सर्वस्यापि सैन्यस्य अग्रभागे भूत्वा कञ्चित् अनिर्वचनीय पराक्रम कर्तुमिच्छ (युवराज) स्वीयै परकीयैश्च वीरै प्रवृत्त तदेव उत्ताल विकटम् आयोधन सग्रामम् आययौ ॥२९,३०,३१,३२,३३॥ पञ्चभि. सहान्वितै कुलकम् ॥ ==

अथो अमुं संयति धावमानं
धनुर्धरश्रीयुवराजवर्यम् ।
मन्त्री पितुस्तत्र जगाद राजा-
मल्लेति नाम्ना जगति प्रसिद्धः ॥३४॥

युद्धे धावमान धनुर्धारकम् एत युवराजश्रेष्ठम् मन्त्री जगाद ॥३४॥

मन्त्रिणो राजमल्लस्य ऐतिह्यासिकपरिचयः

== राजनीतिपटू राजमल्ल (राजामल) 'खत्री'जातेर्नररत्नमभूत्। बुद्धिव्यामोहकेषु राजनैतिककार्यसंकटेषु एतस्य बुद्धिरतीव सुतीक्ष्णा दुष्करकार्यसाधिका च सुपरीक्षिताऽभूत्। एष महोदयो निजमनोगतभावाना निगूहने यथा चतुरोभूत्तथा निजसिद्धान्तस्य शत्रोरपि हृदये स्थिरीकरणे सुपटुरासीत्। जयपुरमहाराजाना मन्त्रणासचिवत्वं प्राप्य राज्यरक्षानिमित्तं समुचितविधाननिर्माणे महोदयेनाऽनेन निजबुद्धेर्विलक्षण. परिचय. प्रादायि। उदयपुराधिपतिना महाराणाजगत्सिंहेन (द्वितीयेन) निजराज्यस्य, तथा कोटा-

अहो महाराजकुमारमौले !
　　स्वयं किमेतत्कुरुषेऽतिवेगम् ।
अस्मासु जीवत्सु भृशं निजाज्ञा-
　　वश्येषु योग्यो न तव प्रयासः ॥३५॥

महाराजकुमाराणां मुकुटस्वरूप! अत्यन्तं वेगः शीघ्रता यस्मिन्कर्मणि तथा स्वयं त्वं किं कुरुषे ? आज्ञावशीभूतेषु अस्मासु जीवत्सु तव कष्टकरणं नोचितम् ॥३५॥

प्रावृड्घनासारकृतानुकाराः
　　पतन्त्ययोगोलकबाणधाराः ।
महाग्निवृष्टाविह ते प्रवेश-
　　प्रयोजनं नैव विलोकयामः ॥३६॥

वर्षाकालिकमेघसमूहस्य यथा जलधारा पतन्ति तथा तोभनि सृतलोहगोलकबाणानां धारा निपतन्ति । ईदृश्या महत्याम् अग्निवृष्टौ तव प्रवेशस्य प्रयोजनं न पश्याम. ॥३६॥

दिराज्यानां च सैन्यानि सहाऽऽदाय यदा जयपुरोपरि आक्रमणं कृतं तदा राजमल्लोऽयं नीतिपूर्णैर्वाक्यैरतिमर्मस्पर्शि समुपदिदेश, यच्छ्रुत्वा जगत्सिंहो न किञ्चिदुत्तरं दातुमशकत् । स हि केवलं निजभागिनेयस्य माधवसिंहस्य कृते पञ्चलक्षमुद्रावार्षिकाऽऽयसंपन्नं टोकप्रान्तस्य अधिकारपत्रम् ('पट्टा') राजमल्लात्प्राप्य विमुखः परावृत्ते निजराज्यम् । सचिववरोऽय तस्मिन्नवसरे निजबुद्धिवैभवेन युद्धनिवारणे तादृशानि कारणानि निर्दिदेश येषां प्रत्युत्तरे महामतयोऽमात्या अपि मूका भवन्ति । तानि हि बीकानेरसंस्थानाधिपतिना ठा० नरेन्द्रसिंहेन लिखिते ईश्वरीसिंहचरित्रे' (पृ० ५६) विलोकयितुं शक्यानि ।

अम्बपुर्या माधवविलासोपवनस्य च मध्यतो राजमल्लवंशजानां विस्तृतो निवासपरिसरः (राजामल-का डेर) साम्प्रतमपि प्रसिद्धोऽस्ति । महाराजजयसिंहेन निर्मापितो 'जयसागर'नामा महान् तडागः साधारणलोकानां कृते 'राजमल्लतडाग'नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति । नायावतानामितिहासकारेण प० श्रीहनूमान्शर्मणापि सोऽयं तडागो राजमल्लनाम्नैव लिखित. । किन्तु सोऽयं स्पष्टो भ्रमः । एतद्विषये लिखितवानस्मि पूर्वं विस्तरेण, किमत्र पुनरावृत्त्या ? तडागोऽयं सम्प्रति जयपुरराजकीयप्रबन्धकर्तृभि. नगरस्याऽवकरं मृत्तिका चाऽऽपूर्य स्थलीकृतोऽस्ति, यत्र क्रीडापर्भवति ।

अस्तु, सचिववरस्य राजमल्लस्य तनयो महामतिः केशवदासः (यस्य हि ईश्वरसिंहराज्यकाले राजनैतिकचक्रनादपमृत्युरभूत्), भ्राता च नारायणदासोऽभूत् ।

[पं० श्रीहनूमान्शर्मलिखितो जयपुरेतिहासः पृ० १७६]

राजाधिराजस्य पुरः कथं वा
संदर्शयिष्यामह इत्थमास्यम् ।
पराजिताश्च प्रसभं क्षणेऽस्मिन्
द्विषन्त एतेऽद्य तृणायमानाः ॥३७॥

इत्थम् (कदाचित् शस्त्रादिना तव कष्टे सति) राजाधिराजस्य अग्रे मुख कथं दर्शयिष्याम । अस्मिन् क्षणे तृणवत् न किञ्चिद् गणनीया. ते द्विषत्तरा वैरिण. पूर्णरूपेण पराभूता ॥३७॥

भवान् क्षणं तिष्ठतु पश्यतूच्चै-
रस्मत्करान् संयुगकेलिकर्तॄन् ।
आकर्णय प्रार्थनमेतदस्मत्-
कृतं भवे जीवय नः शरण्यः ॥३८॥

सयुग (युद्ध) रूपाया क्रीडाया कारकान् विशालान् अस्माक हस्तान् विलोकयतु । त्व लोकाना शरणदायक अत एव ससारे न. (अस्मान्) जीवय ॥३८॥

इत्थं वदत्येव वचांसि राज-
मल्ले महामन्त्रिणि वीरवर्ये ।
समाजगामैव स संयुगाग्रं
वीराधिवीरो युवराजसंज्ञः ॥३९॥

महामन्त्रिणि इत्थ वचनानि कथयति सत्येव वीराणाम् अधिवीर स युवराज समरस्य अग्रभाग समाययौ एव ॥३९॥

रथस्थितः संभृततूणयुग्मः
सरागदृक् कुण्डलितोग्रचापः ।
भ्रूभङ्गभीमाद्भुतभालपट्टः
पयोधरध्वानगभीरगर्जः ॥४०॥

स वर्ज्यमानोऽपि निजैर्विजेता
विपक्षसेनाभिमुखं प्रसर्पन् ।
प्रमर्दयामास परान्प्रसह्य
प्रक्ष्वेडनैः क्रीडनवद्वितन्वन् ॥४१॥

बाणै पूर्णीकृत तूण(निषङ्ग)युग्म येन स., सग्रामशौर्येण अरुणनेत्र, शरमोचनाय कुण्डलीकृतधन्वा, भ्रुकुटिभङ्गेन भयकरो दर्शनीयश्च ललाटपट्टो यस्य, मेघवद् गभीरगर्जन ॥ निजै मन्त्रिप्रभृतिभि निरुध्यमानोपि विजय कर्तुमुत्साही शत्रुसैन्यस्याभिमुख प्रवर्द्धमान । प्रक्ष्वेडनै लोहमयबाणै 'प्रक्ष्वेडनास्तु नाराचा' इत्यमर । क्रीडामिव कुर्वन् बलात् शत्रून् चूर्णयामास ॥४०,४१॥

तूणीमुखाद्बाणगणान्विकर्षन्
स संदधत्तत्र धनुर्गुणेन ।
मुञ्चन् विभिन्दंश्च परान्न जज्ञे
निमेषवर्जं ददृशे सुरौघैः ॥४२॥

ललाटशोभिभ्रुकुटीविटङ्कै-
र्दन्ताग्रदष्टात्यरुणाधरोष्ठैः ।
सहुंकृतैः सायककृत्तकण्ठ-
तटात्सवेगं पृथिवीं पतद्भिः ॥४३॥

स्वदृष्टिसंदर्शितशत्रुपक्षैः
कबन्धकेलीषु सहायभूतैः ।
द्विषां शिरोभिर्निमिषान्तराले
समाचिनोदेव भुवं समस्ताम् ॥४४॥ त्रिभि कुलकम्

निषङ्गमुखाद् बाणगणान् आकर्षन्, प्रत्यञ्चया सह सयोजयन्, बाण मुञ्चन् शत्रून् छिन्दन् स शीघ्रतातिशयात् कैरपि न ज्ञात, केवलमनिमिषनयनै देवसमूहै. विलोकित ॥ ललाटे शोभमानो भ्रुकुटिरूपो विटङ्क उन्नतप्रदेश.(अमरमते कपोतपालिका) येषा तै, युद्धामर्षात् दन्ताग्रैर्दष्ट अत एव अतिलोहितवर्ण अधरोष्ठो येषा तै, वीरताहुकारसहितै, युवराजबाणेन छिन्नात् कण्ठात् वेगेन भूमिं प्रति निपतद्भि. ॥ स्वदृष्टिभ्या

नेत्राभ्या विलोकित वैरिदल यै, कबन्धाना (मुण्डरहितवीरकायाना) क्रीडासु सहायकै — इतस्ततो धावता कबन्धाना क्रीडार्थं कन्दुकस्थानीयैरित्याशय । वैरिणा शिरोभि निमेष (पल)मध्ये समरभूमिम् अपूरयत् ।।४२,४३,४४ ।। (त्रिभि कुलकम्)।

मरुत्वता वज्रनिकृत्तपक्षा
महीं महीध्रा इव चालयन्तः ।
प्राणैर्वियुक्ता युवराजबाणै-
र्गजाः सशब्दं परितो निपेतुः ॥४५॥

इन्द्रेण वज्रद्वारा छिन्नपक्षा पर्वता इव निजनिपतनभरेण भूमि कम्पयन्त, युवराजबाणद्वारा (करणै) प्राणै (कर्तृभि) त्यक्ता गजा धम्धम् इति शब्दसहित समन्तात् पतन्ति स्म ।।४५।।

तुरङ्गमाः क्ष्मातललम्बमान-
निषादिवीरार्द्धशरीरयुक्ताः ।
निकृत्तदेहा युवराजबाणैः
संकीर्णतामेत्य ममुर्न भूमौ ॥४६॥

भूमितले लम्बमानेन अश्वारोहिवीराणाम् अर्द्धशरीरेण युक्ता युवराजबाणै स्वयमपि छिन्नशरीरा अश्वा सकुलतया स्वयमपि भूमौ न मान्ति स्म । इयन्तस्तुरगा युवराजबाणैर्निपातिता यै समरे सकुलताऽभवत् । मृतास्ते भूमौ न मान्ति स्मेत्याशय ।।४६।।

समागते श्रीश्वरसिंहनाम्नि
प्रतापधाम्नि प्रसभं रणाग्रे ।
सर्वे भटास्ते विकटासिधारा-
प्रचालनोत्तालकरा बभूवुः ॥४७॥

प्रतापस्याश्रयभूते ईश्वरसिंहे समराभ्यन्तरे बलात् समागते सति स्वे स्वकीया: (युवराजीया) सर्वे प्रचण्डखड्गधारापरिचालने दीर्घहस्ता (शतगुणितोत्साहा) बभूवु ।।४७।।

धनुर्धराः पावकयन्त्रभाजः
कृतासिचर्मोद्वहनप्रयत्नाः ।
अन्ये पुनः शक्तिभृतः प्रवीराः
सर्वे भृशोत्फुल्लभुजा बभूवुः ॥४८॥

पावकयन्त्राणि ('तोपबन्दूक') भजन्ति धारयन्ति ते, कृत असिचर्मणोः (तलवार-ढाल इत्यनयो) धारणस्य प्रयासो यैस्ते । शक्ति ('वरछी') धारिणः वीरा. उत्साहेन प्रोत्फुल्लभुजदण्डा बभूवु. ॥४८॥

मदाढ्यमातङ्गवराधिरूढं
श्रीमन्महाराजकुमारमाजौ ।
आयान्तमालोक्य महोद्भटाः स्वे
सर्वे भटाः कोटिभुजा इवासन् ॥४९॥

मत्तकुञ्जराधिरूढं युवराजम् आजौ समरे समागच्छन्त दृष्ट्वा अतिप्रचण्डाः सर्वे कोटिसख्याकबाहव इव बभूवु. ॥४९॥

ततः परं तिग्मतरप्रहारैः
प्रहर्तृभिः संप्रहिताः क्षणेन ।
कृपाणयो दूत्य इवैनमुत्का-
मानिन्युराकृष्य जयश्रियं ताः ॥५०॥

अतिप्रचण्डप्रहारैः योद्धृभि प्रेरिता ता कृपाणिका (लघुखड्गा.) दूत्य इव वीराश्रयणाय उत्कण्ठिता जयलक्ष्मीम् एन (युवराज) प्रति बलात् अभिकृष्य आनैपु ॥५०॥

श्रीमन्महाराजकुमारवीर-
धनुर्भृतां तिग्मतरैः पृषत्कैः ।
विदारिताः कङ्कटिभिः शरीरै-
र्निपेतुरुर्व्यां परपक्षवीराः ॥५१॥

महाराजकुमारस्य वीरा ये धनुर्धारिण तेषाम् अतितीक्ष्णै. बाणै कृत्ता शत्रुपक्षस्य वीरा. कङ्कटिभि कवचधारिभि. शरीरै (उपलक्षिता) शत्रुपक्षीया भूमौ निपेतु ॥५१॥

पतत्सु वीरेषु नितान्तधीरे-
ष्वधीरतामेत्य बलं परेषाम् ।
पलायनैकान्तपरायणं तद्
बभूव भूयो न निवृत्तिमैच्छत् ॥५२॥

अतिधैर्यशालिषु अपि वीरेषु रणे निपतत्सु सत्सु शत्रूणा बल (सैन्यम्) विह्वलतां प्राप्य पलायनमेव अत्यर्थं परायण (रक्षास्थानम्) यस्य तादृशं बभूव, पुन निवृत्ति परावृत्ति न ऐच्छत् ॥५२॥

इत्येवमुच्चैर्द्विषतां बलानि
तमांसि दीर्घासिकरैर्विधूय ।
भुजोदयाद्रौ युवराजकस्य
प्रतापभानुः सहसोदियाय ॥५३॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण उच्चै (प्रबलानामपि) वैरिणा बलानि (सैन्यरूपाणि अन्धकाराणि) विशालखड्गरूपै किरणै उत्सार्य युवराजस्य प्रतापसूर्य भुजरूपे उदयपर्वते अतर्कितम् उदितोऽभवत् ॥५३॥

द्विषद्बलं नैशतमो निरस्तं
मन्दीकृतोऽन्यक्षितिपोडुपुञ्जः ।
श्रीमत्सवाईजयसिंहकीर्ति-
चन्द्रप्रकाशः समभूत्समन्तात् ॥५४॥

द्विषता वैरिणा सैन्यरूप निशाकालिक तिमिर दूरीकृतम् । अन्ये क्षितिपा राजान एव उडव (नक्षत्राणि) तेषा समूह मन्दप्रभाव कृत । श्रीजयसिंहकीर्तिरूपस्य चन्द्रस्य प्रकाश समन्ततो व्याप्नोति स्म ॥५४॥

तदाऽभिलाषोत्तरला जयश्री-
र्यशोऽवदाताम्बरवेषभूषा ।
श्रीमन्महाराजकुमारमेनं
स्वयं समागादभिसारिकेव ॥५५॥

अभिलाषेण कामेन ('कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' अमर) चञ्चला यश एव शुभ्र वस्त्रं तत्कृता वेशभूषा यस्या सा विजयलक्ष्मी अभिसारिकेव (स्वयमभिसरणकर्त्री नायिकेव) युवराजमेन स्वयमेव समभिससार ॥५५॥

इति स पितुरादेशाद्देशान्तरे द्विषतां बलं
समरविजयी वारं वारं विजित्य निजैर्बलैः ।
उपचितशरच्चन्द्राकारं यशो विशदं दध-
ज्जयपुरपतेः पादद्वन्द्वं ददर्श सदोत्सुकः ॥५६॥

इति श्रीमत्तैलङ्गद्विजवंशवारिधिकलाधर-श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृतौ
श्रीश्वरचरितमहाकाव्ये युवराजयुद्धवर्णनं नाम नवमः सर्ग ।

एवम्—रणस्य विजेता स (ईश्वर.०) जनकस्य आज्ञया वैरिणा सैन्य निजै सैन्यै वारं वार विजित्य, पूर्णीभूतस्य शरत्कालिकचन्द्रस्येव आकार. (शुभ्रतासनिवेश) यस्य तादृश विशद यशो वहन् उत्कण्ठित. सन् जयपुराधीशस्य (जयसिंहस्य) चरणयुगल विलोकयामास ॥५६॥

इतिहासविकासिन्या विलासिन्या समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एषोऽष्टमोत्तरः ॥ ❀



दशमः सर्गः

यावन्तो राजभोगाः सकलवसुमतीचक्रसाम्राज्ययोग्या-
स्तावन्तस्ते समस्ताः सहजमुपनताः श्रीलराजाधिराजम् ।
पानात्सोमस्य नानाक्रतुषु निरवधि प्राप चैवामृतत्वं
ज्ञानाद्वेदान्तमानान्मनुजपतिरभूदेष जीवन्विमुक्तः ॥ १ ॥

सकलभूमण्डलचक्रवर्तित्वोचिता यावन्तो राजभोग्यसुखभोगा आसन् ते समस्ताः श्रीमन्त राजाधिराजम् (सकलभारतीयनृपाणामधिराज जयसिंहम्) अनायासमेव उपनता. प्राप्ता । नानाविधेषु अग्निचिद्राजसूयवाजिमेधादियज्ञेषु सोमस्य पानात् मुक्ति निर्वाण प्राप । शास्त्राणा ज्ञानाद् वेदान्तस्य मननाच्च एष नरपति जीवन्मुक्तोऽभवत् ॥१॥

गोविन्ददेवस्य मुखारविन्दं
निरन्तरम् प्रेमभरेण पश्यन् ।
आनन्दमाधुर्यमरन्दपान-
मिलिन्दभूतो नितरां ननन्द ॥ २ ॥

निःसीमो रूपमाधुरीरूप पुष्परस. तस्य पानार्थं भ्रमरभूतोऽसौ नित्यमानन्दितवान् ॥२॥

शृण्वन् गुणांस्तस्य, तदीयभक्तान्
स्पृशंस्तदास्यार्पितदृक्चकोरः ।
तन्नाम गृह्णंस्तुलसीं तदङ्घ्रे-
र्जिघ्रंस्तदेकात्मतयाऽवतस्थे ॥ ३ ॥

तस्य (गोविन्ददेवस्य) भक्तान् स्पृशन् सकुले भक्तसमाजे प्रेम्णा अन्तर्भवन्नित्यर्थः । तस्य गोविन्ददेवस्य आस्ये (मुखे) योजितदृष्टिचकोर, नेत्रयोश्चकोरत्वकथनात् मुखस्य चन्द्रत्व व्यङ्ग्यम् । तदङ्घ्रे गोविन्ददेवचरणस्य प्रसादतुलसीम् आजिघ्रत् । गोविन्ददेवात्मक. सन् तस्थौ ॥३॥

कर्माणि चक्रे श्रुतिबोधितानि
ज्ञानं दधारोपनिषत्प्रमाणम् ।
भेजे मुकुन्दं नवधैव भक्त्या
प्रेमाऽवहत्तत्परिपाकतोऽस्मिन् ॥ ४ ॥

श्रुतिबोधितानि वेदाज्ञप्तानि । उपनिषद प्रमाणानि यत्र तद् वेदान्तिकं ज्ञान स्वीचकार । श्रवण-कीर्तनादिकया नवधा भक्त्या गोविन्दं सिषेवे । तत्परिपाकतः भक्ते परिपुष्टतया अस्मिन् (गोविन्दे) ऐकान्तिकी प्रीतिमधारयत् ॥४॥

धुरन्धरे राज्यधुरां समस्तां
पुत्रे निधायेश्वरसिंहनाम्नि ।
क्रमान्निवृत्ताखिलभोगतृष्णः
कृष्णाद्वयप्रेमभरं बभार ॥ ५ ॥

राज्यभारधारणसमर्थे ईश्वरसिंहाख्ये सुते राज्यभारं निधाय क्रमेण दूरीभूता सांसारिकभोगानामपि लालसा यस्य ईदृश सन् श्रीकृष्णे एकात्मतारूपा प्रीतिं दधार ॥५॥

विधाय सम्यक् सुकृतात्मकानि
कार्याणि विज्ञातपरात्मतत्त्वः ।
गोविन्ददेवस्य पदारविन्दे
प्रेमाणमेकान्तमनन्यमूहे ॥ ६ ॥

सुकृतात्मकानि कार्याणि पुण्यकार्याणि । विज्ञात परमात्मनः (ब्रह्मण.) तत्त्व (परमार्थ) येन स । एकान्तं सुदृढम् । अनन्य तन्मयतारूपम् । प्रेमाणम् ऊहे, अवहत् धारयामास ॥६॥

तस्याखिले पण्डितराजचक्रे
मान्यो गुरुभ्रातृसुतोऽतिविद्वान् ।
श्रीपौण्डरीकाध्वरयाजकोऽभू-
न्नित्यं समीपे व्रजनाथशर्मा ॥ ७ ॥

पण्डित० पण्डितश्रेष्ठाना मण्डले । गुरो· रत्नाकरमहोदयस्य यो भ्राता प्रभाकरः तस्य सुत । स. नित्य समीपे अभूत् अवर्तत ॥७॥

ऋग्वेदिविप्रप्रवरावतंसो
रत्नाकरो नाम गुरुर्नृपस्य ।
प्रभाकरो नाम बभूव तस्य
भ्राता सदा यो मथुरैकवासी ॥ ८ ॥

ऋग्वेदिनां ब्राह्मणप्रवराणा श्रेष्ठः ॥८॥

तदात्मजः श्रीव्रजनाथनामा
तथाऽपरो गोकुलनाथ उक्तः ।
तौ भ्रातरौ संनिहितौ नृपस्य
निरन्तरं शास्त्रकथां दधाते ॥ ९ ॥

तस्य प्रभाकरस्य आतमज । अपर. तस्यैव द्वितीय पुत्रः । जयसिंहस्य समीपगतौ तौ शास्त्रचर्चां चक्राते ॥९॥

प्राज्ञोत्तमश्रीव्रजनाथवक्त्र-
विनिर्गतां शास्त्रकथामजस्त्रम् ।
शृण्वन्स विद्वत्समुदायमध्ये
धर्मेण कालं सकलं निनाय ॥१०॥

विद्वच्छ्रेष्ठस्य व्रजनाथस्य मुखोद्गता शास्त्रचर्चां निरन्तर शृण्वन्, विद्वत्समाज-मध्ये स्थित सकलमायु काल व्यतिगमितवान् ॥१०॥

वर्षे सोऽष्टादशशततमे विक्रमार्कस्य शाके
मासे चैवाश्विननिगदिते शुक्लभूतादिने च ।
प्रातःकाले हृदयकमलाऽऽनीतगोविन्ददेवो
देवो देवोपमगतिरसून्प्रोज्झ्य तस्मिन्विलिल्ये ॥११॥

१८०० तमे विक्रमवत्सरे । आश्विनशुक्लचतुर्दशीदिने शुक्ला या भूता (चतुर्दशी) तद्दिने (वीरविनोदस्य द्वादश प्रकरणम् ।कच्छमहाकाव्यस्य एकादशे सर्गे ।) हृदये आनीतो गोविन्ददेवो येन ईदृश देवः (जयसिंहदेव) देवोपमा देवसदृशी अन्तिमगतिर्यस्य, प्राणान् प्रोज्झ्य (त्यक्त्वा) तस्मिन् गोविन्दे लीनोऽभवत् ॥११॥

तिस्रः प्रचेलुस्तदनु प्रवीणाः
पत्युः प्रियाः पट्टमहामहिष्यः ।
सत्त्वान्विताः स्वस्वसखीसमूह-
समन्विताः प्रेमभरेण मत्ताः ॥१२॥

सत्त्वेन सतीत्वरूपेण आत्मबलेन युक्ता प्रचेलु सतीत्वाय अग्रेबभूवु ॥१२॥

ता गीतवादित्रविलासयुक्ताः
श्रीकृष्णनामग्रहणैकनिष्ठाः ।
हुताशने देहहवींषि हुत्वा
कल्पान्तकालं पतिलोकमापुः ॥१३॥

गीतवाद्याना विलासेन शोभया युक्ता । देहहवींषि देहरूपाणि हवनीयद्रव्याणि। प्रलयकाल यावत्, पतिलोक यस्मिन् लोके पतिर्जगाम त लोकम्, पत्यु सालोक्य प्रापुरित्यर्थ ॥१३॥

तदा कुमारः किल राजसूयं
पित्राज्ञया धर्मपरोऽनुतिष्ठन् ।
प्रबोधितो विप्रवरैर्नृपस्य
ज्ञात्वाऽवसानं द्रुतमाजगाम ॥१४॥

पितु. आज्ञया राजसूययागम् अनुतिष्ठन् । अवसान देहसमाप्ति ज्ञात्वा, विप्रवरै· दत्तोपदेश पितु समीपे आययौ ॥१४॥

[जयसिंहमहाराजस्य चतुर्विंशतिसंख्या राज्ञ्य समभवन् यासु तिस्रः सहगामिन्योऽभूवन् । पुत्राश्च त्रयोऽभवन्—येषा प्रथमः पुत्रः शिवसिंहः असमय एव स्वर्गमगमत् । द्वितीयः पुत्र· ईश्वरीसिंहो राज्यसिंहासनमारुरोह । तदनन्तरमुदयपुराधिपतेर्महाराणाजगत्सिंहस्य (द्वितीयस्य), कोटाधिपतेः, अन्यान्येषा च जयपुरप्रतीपनरपालाना साहाय्येन तृतीयः पुत्रो माधवसिंह प्रथम निरस्य जयपुरनरपालः समभवत्, (हनूमान्शर्मलिखितो जयपुरेतिहासः पृ० १७०)] [रक्तविकारेण महाराजस्य देहान्तोऽभवदिति वीर-विनोद १२ प्रकरणम्, कच्छवशमहाकाव्यस्य एकादशः सर्गः—अयमुल्लेखः म० म० प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझामहाभागेन 'महाराजसवाईजयसिंहस्य' जीवनचरितेऽपि कृतः]

निर्मथ्य तत्राऽरणिकाष्ठमग्निं
चक्रुर्महानन्दमुखा द्विजाग्र्याः ।
सम्राड् महादीक्षितवर्य एष
तेनाग्निनान्त्येष्टिमवापितोऽभूत् ॥१५॥

महानन्दाद्या द्विजाग्र्या विप्रवरा· । अरणिकाष्ठ निर्मथ्य द्वयो. काष्ठयोर्घर्षणेन अग्निमुत्पादयामासु । तेन अग्निना अन्तिमामिष्टि देहावसानिकयागविधि प्रापितोऽभूत् । दीक्षितस्य एतादृशे एवाऽग्नौ शरीरसमाधि. शास्त्रविहित इत्याशय ॥१५॥

महाराजजयसिंहस्य जीवनचरितसारः

महाराजो जयसिंहो वीरो बुद्धिमान् चतुरो विद्याना समुन्नतिदायकश्चासीत् । एष विदुषा गुणपरीक्षकः, राजनीतेः परममार्मिकः, निजविचाराणा दृढः, सिद्धान्तस्य परमः पालकश्चासीत् । एष सामदान-दण्डादिभिरुपायैः कार्यसाधनपटुस्त्वासीदेव, पर भेदनीत्याऽपि निजप्रयोजनसाधने सोय सर्वदा सावधानः समभूत् । नगरनिर्माणस्य शिल्पकलायाश्चासौ पूर्णो ज्ञाताऽऽसीत् यस्य प्रत्यक्ष प्रमाणमस्ति तेन निर्मापित सुन्दरं जयपुर नगरम् । यस्य जगद्विख्याता शिल्पकलामभिनन्दन्ति मार्मिका विज्ञानमये अस्मिन् समयेऽपि । अष्टादशशताब्द्या परस्परं घातप्रतिघातमये राज्यविप्लवस्य समयेऽपि सोय सर्वविद्यानामेव असामान्यामुन्नति संपादयामास यस्य साक्षिण्यस्तन्निर्मापिताः पञ्च ज्यौतिषवेधशालाः, तत्समये निर्मिताः समुपयोगिनो ग्रन्थाश्च सन्ति । वास्तवे स राजपुत्रप्रान्तस्य निजसमयभवश्चाणक्य आसीद् यः किल महामहान्ति दुष्करकार्याण्यपि सहज साधयामास । स हि सामाजिकपरिष्कारस्य (समाजसुधार) अपि प्रबलः पक्षपाती बभूव । जयसिंहस्य समयपर्यन्त ब्राह्मणवर्णे अनेका उपजातयः पृथक् पृथक् नियमिता अभूवन् यासु मिथो भोजनादिव्यवहारोऽपि नासीत् । किन्तु सेय सुप्रसिद्धिरस्ति यन्महाराजो वाजपेययज्ञस्यावसरे ब्राह्मणानां तामेता सकीर्णता परिहर्तु पूर्णमुद्योगमकार्षीत् । सोऽयमुद्यमः सर्वरूपेण पूर्णः कदाचिन्न भवेत् किन्तु पण्णा जातीना ब्राह्मणाः सह भोजन तदा स्वीचक्रुः ये 'छन्यात' नाम्ना अद्यपर्यन्तमपि प्रसिद्धाः सन्ति । सोय व्यवहारस्तेषु वर्तमानसमयपर्यन्तमपि प्रचलितोऽस्ति । राजपुत्राणा (क्षत्रियाणाम्) विवाहाद्यवसरेषु अपरिमितद्रव्यव्ययसम्बन्धेऽपि सोय नियमान् निर्ममौ किन्तु क्षत्रियाणा पारस्परिकवैमनस्येन तेषा यथावत्प्रचारो नाभवत् । विरागिणः साधवो गृहस्थत्वाभावात् समये समये दुराचरणेषु प्रवृत्ता अभूवन् । तत एव मथुराया वैरागपुरा'ऽधिवासनेन तेषा तत्र निवास नियमयामास ।

महाराजाधिराजो जयपुरस्य नाणकाना[२] परिमाणेऽपि परिवृत्ति विधाय नवीनतया तेषा परिमाण स्थिरीचकार । महाराज प्रजाना दु'खकथामशृणोत्, तासा न्याय चाऽकरोत् । जयसिंहमहाराजः आततायिभ्यः सर्वदा कठिन दण्डमदात् । दीन दुःखिताना पीडानिवारणे स सर्वदैव बद्धपरिकरोऽभूत् । एष महानुदारः परमो धर्मात्मा चाऽऽसीत् । एष बहूनि सुवर्णस्य तुलादानानि चक्रे । त्रिंशत्कोटिमुद्रामितं[३]

१—'कविराजा वाँकीदासस्य' 'ऐतिहासिक बातें' स० ६५५ । २—सिक्के ।

३—'इलियट् हिस्ट्रीऑफ् इण्डिया' जि० ८ पृ० ३४३ ।

द्रव्यं धार्मिककार्येषु, पुरस्कारे च महाराजोऽयं व्ययीचकार। महाराजमूर्धन्योऽयं स्थाने स्थाने कूपान्, दीर्घिका: धर्मशालाश्च निर्मापयामास। तीर्थस्थानेषु स्थाने स्थाने अन्नसत्राणि (सदावर्त) सोऽयं स्थापयामास।

जयपुरस्य इयद्विशालं यत् सद्राज्यमस्मिन् समये विलोक्यते तत् अस्यैव महाराजस्य बुद्धिमत्तायाः फलम्। राज्ञो भारमल्लस्य समयात्पूर्वम् आम्बेरराज्यमिदमासील्लघु। राजानं भगवन्तदासमारभ्य विष्णुसिंह-पर्यन्तमत्रत्या राजानो मोगलसम्राजां कृपयैव महामहत्तीर्भूमिसम्पत्ती:, प्रान्तीयशासनानि (सूबेदारियाँ) च प्रापुः परं राजपुत्रप्रान्ते इयद्विशालस्य राज्यस्य संस्थापनजन्यं श्रेयस्तु श्रीमता जयसिंहमहीभृता एव समधिगतम्।

राजपुत्राणामितिहासे स्वार्थवशात् पितुः पुत्रस्य भ्रातुः सहोदरस्य च निर्दयहत्यायाः प्राप्यन्ते बहून्युदाहरणानि। एवमेव अयमपि महाराजो निजपुत्रं शिवसिंहं विषद्वारा घातयामास।[1]

स्थानेऽस्मिन् महाराजाधिराजस्य जयसिंहस्य जीवनसम्बन्धिनीनां कतिपयघटनानां तथा कार्याणामेव अतिसंक्षेपेण स्वल्पः परिचयो दत्तोऽस्ति। यदि महाराजस्य सुविस्तृत इतिहासो विलिख्येत तर्हि स्वतन्त्र एको ग्रन्थः संपद्येत [बिडलाकालेजपत्रिकायां म० म० पं० श्रीगौरीशङ्करहीरानन्दओझालिखितो 'महाराजासवाईजयसिंह' निबन्धः पृ० १२–१३]।

महाराजस्य विद्यानुरागः

भारतेऽस्मिन् समये समये अनेके विद्वांसश्च वीराश्च राजानोऽभूवन् येषु परमारवंशीयो भोजः, महाराणा कुम्भकर्णः (कुम्भा) एतत्प्रभृतयो भूमण्डले प्रसिद्धाः। महाराजः सवाईजयसिंहोऽपि विषय-द्वयार्थं लोके सुप्रसिद्धः। स हि संस्कृतपारस्यभाषयोर्विचारशीलो विद्वानासीत्। एतदतिरिक्तं सिद्धान्त-ज्यौतिषस्य हि सोऽयमसाधारणो विज्ञाताऽऽसीत्। सूर्याचन्द्रयोरुपरागे, ग्रहाणामुदयाऽस्तयोश्च सञ्जायमान-मन्तरं दृष्ट्वा गणितमिदं दृक्तुल्यं कर्तुमैच्छत्। स खे तत्कृते अनेकान् संस्कृतविदुषो ज्यौतिषिकांश्च सर्वदा समीपे समास्थापयत्। पुरातन-यावनज्यौतिषिकाणां मध्ये-उलुगबेग-नासिरुद्दीनतूसी-जमशेदादीनां ग्रन्थाः सारणयश्चापि समगृह्यन्त। पाश्चात्त्यज्यौतिषिकाणां मध्ये फ्रांसदेशीयस्य डी० ला० हीरे (P. De La Hire) इत्यस्य खगोलसंबन्धिन्यः सारण्यः, जानफ्लेमस्टीडस्य (Historia Coelistis Britannica) ग्रन्थोऽप्यवालोक्यत किन्तु तेषां द्वाराऽपि ग्रहणादीनां तदिदमन्तरं न न्यवर्तत। अत एव शुद्धताऽपेक्षं महाराजस्य हृदयं न पर्यतुष्यत्। जयसिंहो निजसमयपर्यन्तं ग्रहादिषु निपततं तदिदमन्तरं सर्वथा परिशोध्य शुद्धं ग्रहगणितं निर्मातुं स्थिरीचकार। पादरेमैन्युअलो (Padro Mannnel) महाराजस्याग्रे निवेदयामास यत्पुर्तगालदेशे ज्यौतिषस्य भूयसी उन्नतिरस्ति। तदा महाराजो मैन्युअलेन सह कतिपयान् विदुषः पुर्तगाले प्रेषयामास। चन्द्रनगरादपि फ्रांसदेशीयौ द्वौ धर्मयाजकौ (पादरी), यौ हि ज्यौतिषस्य विद्वांसावास्ताम्, आह्वयत्। जर्मनदेशात् फादरऐंड्रीज्म् (Father Andreas) तथा अन्यमेकं ज्यौतिषिकं समाह्वयत्।

१—राजपुत्रप्रान्ते एतद्विषयकं दोहापद्यं सुप्रसिद्धमस्ति यद्धि तत्समयभवेन करणीदानेन प्रोक्तम्—'जयपुर और जोधाणपति, दोनो ही थाप उथाप।
कूरम मारचो डींकरो, कमधज मारचो बाप ॥१॥
(मलसीसरठाकुरभूरसिंहसंगृहीते विविधसंग्रहे पृ० १३७), कच्छवंशमहाकाव्यस्य कर्तापि वार्तामिमां स्वीचक्रे –'दापयित्वा विषं हन्त पित्रा जयपुरे हतः"।

एव किल नानादेशेभ्यो नानाविदुष· समाहूय तेषा संमतिं जग्राह। नानाभाषाणा ज्यौतिषविषयकान् ग्रन्थान् पर्यशीलयत्। तदनन्तरं सर्वान् ग्रन्थान् विचार्य, निजबुद्धया च सर्वं समीकृत्य दिल्ली-मथुरा-उज्जयिनी-जयपुर-काशीस्थानाना भौगोलिकीं स्थितिं मर्मतो निश्चित्य पूर्वोक्तेषु स्थानेषु वेधशाला निरमापयत्, यासु ज्यौतिषसम्बन्धिनामनेकेषा यन्त्राणां रचना समभवत्।

समरकन्दस्य ज्यौतिषी मिर्जाउलगबेग १४३७–३८ खिष्टसवत्सरे ग्रहनक्षत्राणा सम्बन्धे एका सारणीं निर्ममौ। किन्तु तन्निर्माणानन्तरं व्यतीयुः २९७ वत्सराः। अत एव तत्रापि गणिते समागच्छदन्तरम्। महाराजो विशतिविज्ञाना कतिपयविदुषाम्, निजनिर्मापितनवीनयन्त्राणा च साहाय्येन तदन्तर दूरीकृत्य १७२५–२६ तमखिष्टवर्षपर्यन्तम्, अर्थात् सम्राजो मुहम्मदशाहस्य राज्यादष्टमवर्षपर्यन्त सारणीमिमा सज्जीचकार। सम्राजः प्रसादनार्थं मुहम्मदशाहस्य नाम तत्र संयोज्य 'जीज मुहम्मदशाही' ति तन्नाम पर्यकल्पयत्। तस्या सारण्याः प्रतिलिपिः पारस्यभाषाया नागरीलिप्या चाऽक्रियत। महाराजो जयसिंहो भारते तत्कार्य समपादयत् यद्धि पोपग्रेगरी (त्रयोदशः) यूरोपे समपीपदत्। [के० ऑस्ट्रोनोमिकल-ऑब्ज़रवेटरी ऑव् जयसिंह, पृ० २–१५, ४१–६८। वेब, करसीज ऑव् द हिन्दू स्टेट्स् ऑव् राजपूताना, पृ० ७२ टिप्पणी २]

महाराजो यन्त्रराजरचनायाः प्रकारस्य, उपयोगस्य चोपरि 'जयसिंहकारिका'नामकं ग्रन्थं व्यरचयत् यो लघुकायोऽपि स्वविषये सर्वाङ्गपूर्णः। महाराजस्य गुणग्राहकतावशीभूता अनेके विद्वासस्तत्सनिधिं *न परित्यजन्ति स्म। एतैर्हि अनेके उपयोगिनो ग्रन्था निर्मिता येषु निम्नलिखिता ग्रन्थाः साम्प्रतमपि उपलभ्यन्ते—

सम्राड्जगन्नाथेन यूक्लिडस्य सपूर्णं रेखागणितमारब्यभाषातः सस्कृतभाषायामनूदितम्। Claudius Ptolemy इत्यस्य 'अलमजेस्ति' (Almagest) ग्रन्थस्य आरब्यभाषानुवादाधारेण सिद्धान्तकौस्तुभो व्यरच्यत। तृतीयोऽस्य ग्रन्थ· 'सम्राट्सिद्धान्तः'।

महाराजस्य समयपर्यन्त लॉगेरिद्म (Logarithms) गणितस्य नवीनविधेः प्रचारो नाऽभवद्भारते। पर भारतीयज्यौतिषे तस्योपयोगितामालक्ष्य केवलरामज्यौतिषरायेण लागेरिथमस्य फ्रैञ्चसारण्याः भूयासमंश संस्कृतेऽनूद्य तस्य नाम 'विभागसारणी' इत्यस्थाप्यत। तस्यैव विधेरनुसार ज्याचापगणितस्यार्थे

---

* 'विलासिनी' टीकाया एतस्या निर्मातु पूर्वजः, प्रकृतग्रन्थस्य निर्माता, सर्वशास्त्रनिष्णात, सस्कृत-प्राकृत-व्रजभाषाणा देशमानितो महाकवि. 'कविकलानिधि' देवर्षिश्रीकृष्णभट्टमहाभाग. ससमादर महाराजाधिराजेनैव आम्बेरनगरे समानीत। एतस्य समानयने महाराजो जयसिंहो निजाधीनान्नरपते याचनालाघवमपि स्वीचकार। कविप्रवरदेवर्षिभट्टवासुदेवनिर्मितस्य राधारूपचन्द्रिकाग्रन्थस्य प्रारम्भे प्रोक्तम्—

"बुन्दीपति बुधसिंहसो, लाये मुखसौ जाचि।
रहे आइ आम्बेरमें प्रीतिरीति बहुभाँति ॥"

किं बहुना, जयसिंहमहाराजेनैव श्रीकृष्णभट्टमहाभागाय 'कविकलानिधि' इति बिरुदमदायि। देवर्षिकविप्रवरमण्डननिर्मितस्य 'रावलचरित्रस्य' प्रारम्भे प्रोक्तम्

'विद्वत्कुलके मुकुटमणि, 'काव्यकलानिधि' दच्छ।
दिय खिताब जयसाहनें, सब भुविमें परतच्छ ॥'

फ्रैंचग्रन्थस्याधारेण तेन (केवलरामेण) 'मिथ्या जीवाछायां सारणी' रचिता । 'डी० ला० हीरे' इत्यस्य ग्रहगणितसारण्या आधारेण जयपुरस्य रेखांशोपरि संस्कृते 'दृक्पक्षसारणी' 'दृक्पक्षग्रन्थ' श्चेति पुस्तकद्वयं निरमीयत । उलगबेगनिर्मितग्रन्थस्य तारागणितांशस्य कालान्तरसंस्कारं कृत्वा संस्कृतेऽनुवादो विहितो यस्य नाम 'तारासारणी' ति । पञ्चाङ्गनिर्माणे सौकर्यार्थं 'जयविनोदसारणी' तेन रचिता । ग्रहगणितसम्बन्धे 'जयसिंहकल्पद्रुमो' नाम ग्रन्थस्तेन विलेखितु प्रारब्धः किन्तु तस्य हस्तेन तस्य पूर्णता नाऽभूत् शक्या ।

नयनसुखोपाध्यायेन बतूलमयूसनिर्मितस्य आरब्यभाषाग्रन्थस्य 'ऊकर' स्य संस्कृते तन्नाम्नैवाऽनुवादो विहितः, यस्मिन् रेखागणितसम्बन्धिनस्त्रयोऽध्यायाः । जयसिंहमहाराजस्यैव सौर्यं प्रतापो यत् येन समानित-विदुषा हस्तेन आरब्ययुरोपदेशयोर्ज्यौतिपसम्बन्धिगवेषणायाः परिचयो भारतीयविदुषामपि कारितः । अन्यथा एतत्संबन्धे भारतीया अपरिचिता एवाऽभविष्यन् ।

पौण्डरीकरत्नाकरेण व्रत-तिथीना निर्णयविषये 'जयसिंहकल्पद्रुमो' नाम महाविशालो ग्रन्थो विरचितः[१] । श्रूयते, जयसिंहमहाराजस्य समये राज्ञा वंशवर्णनाय 'राजतरङ्गिणी' नामको ग्रन्थोऽपि निरमीयत यो हि कर्नलटाडेन विलोकितः, किन्तु नासौ साम्प्रतमुपलभ्यते । टाडेन विलिखितं यत् महाराज-जयसिंहे १०८ गुणा विशिष्टाः आसन्, परमेतत्संबन्धे किञ्चन पुस्तकं नोपलब्धम् । इदमपि श्रूयते यत् कालिदासस्य 'रघुवंश' वत् 'जयवंश' काव्यमपि तत्समये व्यलिख्यत यद्धि स्वर्गत पं० चन्द्रधरगुलेरी-महाभागेन नेत्राभ्यां विलोकितम्[२] । एतदतिरिक्ता अन्येऽपि बहवो ग्रन्था जयसिंहसमये निरमीयन्त, येषां वर्णनस्य नाऽयमवसरः [विडलाकालेजपत्रिकायां म० म० पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझामहोदयः] ।

बहूनां ग्रन्थानामनुसंधानमन्वेषकमहोदयाना ग्रन्थलेखकाना चाद्यावधि ज्ञातमपि नासीत् । यतो हि राजस्थानीयराज्यानां संरक्षणनीते कारणात् बहिः स्थेभ्यस्तत्प्रकटीकरणमपि सम्भूतं नाभवत् । महाराज-सवाईजयसिंहस्याज्ञया 'वृत्तमुक्तावली'नामकश्छन्दःशास्त्रस्य महान् ग्रन्थः 'ईश्वरविलास'निर्मात्रा श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिमहाभागेनैव निर्मितो यः पुण्यपत्तनस्थ'भाण्डारकर ओरिएण्टलरिसर्च इन्स्टिट्यूट' स्य सकाशात् अस्य पङ्क्तीनां लेखकेन साम्प्रतमेव समानायितः । एवमेव-सुन्दरीस्तवराजः (त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिरूप.) 'पद्यमुक्तावलि' प्रभृतयः संस्कृतग्रन्थाः, तथा महाराजस्याऽऽज्ञयैव अलंकारकला-निधि-मधुकरकलानिधि-प्रभृतयो व्रजभाषामया ग्रन्था अपि निरमीयन्त । महाराजस्य प्रमोदाय 'रामरासा' नामको नवीनो ग्रन्थोऽप्येको निर्मितो यस्योपरि सतुष्टेन महाराजेन कविकलानिधिमहाभागाय 'रामरासा-चार्य' इत्युपाधिरेव प्रदत्तः । वृत्तान्तोऽस्य मन्निर्मितस्य 'साहित्यवैभवस्य' वंशवर्णने, 'जयपुरवैभवस्य' उपोद्घाते, प्रकृतग्रन्थस्य च भूमिकायां विशदतया विलोकनीयः ।

महाराजस्य स्मारकाणि

महाराजस्य स्मारकेषु जयपुर नगर सर्वतः प्रथममुपतिष्ठते । १७८४ तमे वैक्रमे संवत्सरे मार्गकृष्ण ५ बुधवासरे [म० म० पं० गौरीशङ्करओझामहोदयस्य मतानुसार पौष कृ० ८म्या शनिवासरे] जयपुर-नगरस्य शिलान्यासोऽभवत् । एतन्नगरस्य निर्माणे न केवल भारतस्यैव, अपि तु भारतात्सुदूरवर्तिना-

---

१—ना० प्र० पत्रिका (नवीनसंस्करणम्) भाग ३, पृ० ४०५, ६ ।

२—हर्षस्याऽवसरोऽस्ति यत् श्रीसीतारामशास्त्रिपर्वणीकरकृत तदिदं काव्य 'राजस्थान विश्वविद्यालय' प्रत्यवेक्षणे श्रीपट्टाभिरामशास्त्रि मीमांसाकेसरिमहोदयद्वारा संपादितं सम्पूर्णमेव प्रकाशितम्, विलोक्यतैव सहृदयैः ।

मन्यान्यदेशानामपि सुचतुरान्कलाविदः समाहूय तेषां स्वस्वमत्या पूर्वं नगरस्य मानचित्राणि निरमापयत्। ततस्तेषु एकं सर्वसम्मत्या स्थिरीकृत्य तदनुसारेण नगरनिर्माणं प्रारभत।

राजमार्गा अतिविशाला अक्रियन्त। गृहाणां सन्निधतो विशिखाः (गली) स्थापिता येन वायुसञ्चारस्य प्रतिरोधो न भवेत्। राजमार्गाणामुभयपार्श्वे पङ्क्तिबद्धानि प्रायः समानाकाराणि विशालभवनान्यावासितानि। राजमार्गाणां मध्यतश्च चतुष्पथा निर्मिता येषु जलधारायन्त्राणां समावेशः सम्भवेत्। राजमार्गाणां समुचितस्थानेषु विशालानि देवमन्दिराणि तथा नगरस्य मध्यतः सन्तोऽपि नगरात्पृथग्भूता इव महाविशाला राजप्रासादा निरमीयन्त। एतस्य नगरस्य निवेशने राजकोषतो बहुकोटिमुद्राणां व्ययोऽभवत्। नगरनिवेशक्रमे त्रीन् वाराश्च परिवर्तनान्यभूवन्।

एतन्महाकार्यस्य सम्पादनार्थं महाराजेनैका समितिरेव (कमेटी) निरमीयत। महाराजस्य सचिवेष्वेको वङ्गदेशीयो विद्वानासीत्। तस्य लघुभ्राता विद्याधरनामकोऽभवद्, यस्य परिचयो ग्रन्थेऽस्मिन्नग्रे स्वयमेव भवेत्। विद्याधरोऽयमस्या मण्डल्याः प्रमुखोऽभूत्। किन्तु सर्वतोऽप्युपरि महाराजस्य विलक्षणा प्रतिभैव कार्यं चकार। महाराजस्य निर्माणसम्बन्धि अद्भुतं ज्ञानं सर्वेऽपि दूरदेश्याः शिल्पिनो मुक्तकण्ठं प्रशंसन्ति। ज्ञानस्यास्य प्रत्यक्षं प्रमाणमिदं नगरमेवास्ति, किं वचनेन ?

"भारतवर्षे एतत्समानं सुन्दरं नगरं नान्यदस्ति। नगरनिवासकलाविद्भिः सुबहु समीक्ष्य नगरमिदं तादृशे भूभागे वासितं यत्र ह्यारोग्यरक्षायाः प्रत्येकविधानानि प्रत्येकऋतुषु सर्वतः संघटन्ते। आपत्तिजनकानि प्रकृतेराक्रमणानि नास्मिन् स्थले सम्भवन्ति। नगरस्यास्य सोऽयं विशेषः सर्वसुप्रसिद्धोऽस्ति यद् समसूत्रं समानाकारं च निर्मितेषु एतस्या रथ्यासु विशिखासु चतुष्पथेषु च कीदृशोऽपि विभ्रान्तमार्गः पुरुषो गच्छेत्, सहजमेवासौ निजमार्गमासादयति।

[मम 'जयपुरवैभवम्'※ पृ. ३३, म. म. प. गौरीशङ्करओझामहोदयश्च]

राजप्रासादाः, यन्त्राणि च

जयपुरनगरस्याभ्यन्तरे अश्वशाला (आतिश), 'तालकटोरा', गोविन्दभवनम्, 'चन्द्रमहलम्' इत्यादीनि राजहर्म्याणि, तथा दिल्ली-काशी-मथुरा-उज्जयिनी-जयपुरेषु निर्मापिता ज्यौतिषयन्त्रशालाश्चेत्यादीनि महाराजस्य स्थापत्यकलाविज्ञानं चिराय स्मारयिष्यन्ति।

आश्चर्यघटना

"टाडराजस्थाने" (द्वितीयखण्डस्य पृ० १३६) टिप्पण्यामेका आश्चर्यघटना समुल्लिखिता— एकदा सम्राड् निजाभिर्हिन्दूमहिषीभिः (बेगम) सह कुरुक्षेत्रमगात्। तत्र भीष्मकुण्डसमीपे परिकरसन्निवेशोऽभूत्। अन्तःपुरस्य संरक्षणप्रबन्धे महाराजजयसिंहप्रमुखा नियमिता आसन्। उपकार्याणां (टैण्ट, पटमण्डप) समीपे एव अतिपुरातनो महान् विशाल एको वटवृक्ष आसीत् यस्य प्रलम्बाभिः शाखाभिर्भीष्मकुण्डमिदमाच्छन्नप्रायमभूत्। एकस्मिन् दिने विशालकाय एकः पक्षी वटविटपे विषण्णो महता अट्टहासेन समवोचन्मनुष्यवाचा—"हन्त दैवस्य विचित्रा लीला। यस्मिन्दिने कौरवपाण्डवानां युद्धे वीरस्यैकस्य विच्छिन्नमेकं हस्तं चञ्च्वा बलात्समानीय यदाऽस्मिन् वटवृक्षे निषण्णो भोक्तुं प्रारभे तदा हस्तोऽसौ कुण्डे न्यपतत्। अद्य च सामान्यं मे भोजनमपि मे मुखान्निपतितम्।" बहवस्तु वाणीमिमामबुध्यन्तैव नो।

※ जयपुरनगर-राजवंश-स्थान-उद्यान-उत्सव-प्रसिद्धपुरुष-राजसभा (दरबार)दीनां वर्णनपरं कवित्त-सवैयादिभाषाछन्दोभिर्निबद्धं सचित्रमिदं ७०० पृष्ठात्मकं सुनिबद्धसुन्दरं पुस्तकम्, तद्द्वितीयो भागः 'साहित्यवैभव' च "भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, मञ्जु निकुञ्ज, पृथ्वीराजरोड जयपुर" इति स्थानात् प्राप्यम्।

जातस्ततो नृपतिरीश्वरसिंहनामा
संशोभिराजतिलकाक्षतयुक्तभालः ।
सिंहासनोपरि गतश्चमरद्वयेन
संवीजितः शिरसि चारुसितातपत्रः ॥१६।

संशोभिनि राजतिलके अक्षतैर्युक्त भाल (ललाटपट्ट) यस्य स । चामरयुगलेन उभयत. संवीजित । चारु (सुन्दरम्) श्वेतवर्णम् आतपत्र (छत्र) यस्य स. ॥१६॥

विप्रोत्तमैः पठितवेदचतुष्टयोत्थ-
मन्त्रैः कृतप्रचुरतीर्थजलाभिषेकः ।
शाणोपरि क्रमणतः कमनीयकान्ति-
र्दिव्याकरोद्भव इवैष मणिश्चकाशे ॥१७॥

ब्राह्मणश्रेष्ठाना द्वारा पठितै वेदचतुष्टयसम्बन्धिभिः मन्त्रैः कृतः प्रचुरै. तीर्थ-जलै राज्याभिषेको यस्य ईदृश एष. (ईश्वर०)। शाणपट्टोपरि क्रमणतः घर्षणात संजातदिव्यद्युति, उत्कृष्टादाकरात् उद्भूतो मणिरिव चकाशे दिदीपे ॥१७॥

अन्ये शब्दैरेभिर्भयभीता इवाऽभूवन्। परं जयसिंहमहाराजो जलतरणचतुरान् निजस्य भृत्यान् समवतार्य हस्तिमिमं कुण्डाद् बहिर्निरसारयत्। तस्मिन् प्रस्थपाद (पाव) परिमाणे त्रयोदशरत्नैर्ज टतमेकं केयूरमासीत्। सम्राट् तन्मध्याद् रत्नद्वयं महाराजाय, एकमजितसिंहाय (जोधपुर) दत्वा, शेषान्निजपार्श्वे समस्थापयत्। श्रूयते— राजस्थानयोरनयोः रत्नत्रितयमिदं साम्प्रतमपि देववत्पूज्यते। घटनायामस्या किं वा वास्तवं रहस्यमिति न स्थूलतया प्रतीयते।

यज्ञविषयिका दन्तकथाः

यज्ञविषये द्वे तावत्प्रसिद्धे—श्रूयते यन्मारवाड़प्रदेशस्य 'श्यामपाँडे' इति प्रथितो मान्त्रिकोऽप्येकः समायासीद् येन निजमन्त्रबलाद् वासुकिवंशजो बृहत्काय एक ईदृशः सर्पराजोऽप्यावाहितोऽभूद् यो हि हरितवर्णः, तथा यस्य हि शरीरस्य दीर्घता ५२ हस्तमिता तस्य दर्शने न केषाचिद् भयमुद्भवत्', प्रत्युत पुनः पुनर्दर्शनस्य लालसा समुद्भूत्। स हि यज्ञारम्भमारभ्य समाप्तिपर्यन्त स्वीये नियते आसने निश्चलभावेन समतिष्ठत। यज्ञान्ते अवभृथस्नानसमाप्तौ स हि स्वयमेवाऽन्तर्हितोऽभवत्।

द्वितीया कथा—एकस्या कुमारिकाया अस्ति। यया हि अद्भुता भविष्यद्वाणी—अतीतानामनेकेषा सम्राजा पूर्वावस्थाया दिग्दर्शनं चाऽक्रियत। सा हि पूर्णाहुतेः समये सुपूजिता सती एकासनेन निश्चलमतिष्ठत्। तस्मिन् समये कयाचिद्देवतया आविष्टेव सा तादृशीः कथा समजल्पद् यादृशीः किल परलोकविद्याया ज्ञातारः कृतावेशस्य पुरुषस्य द्वारा सलापयन्ति। सा हि प्राचीनमितिहासं प्रजल्प्य भविष्यत्-काले के सम्राजो भविष्यन्तीति विस्मापकतरमघोषयत् [चौमूनगरवासिपं०हनूमानशर्मणा प्रणीतो जयपुरेतिहासः पृ० १६६]

मुक्ताक्षतप्रकरशोभितकुङ्कुमाति-
संरक्तराजतिलकाञ्चितभालपट्टः ।
भाग्याकरे शशिनि भूमिसुतं भजन्ति
तारा इतीव स जनैः सहसा व्यतर्कि ॥१८॥

मौक्तिककृतै अक्षतप्रकरै शोभितेन कुकुमात्यन्तरक्तेन राजतिलकेन अञ्चित-(चर्चित)भालपट्ट स (ईश्वर०), भाग्याधिपे चन्द्रे सगत भौम तारा भजन्ति इतीव पश्यद्भिर्जनै स तर्कित । ईश्वरसिहस्य मुख चन्द्र, तल्ललाटपट्टे रक्त राजतिलक भौम, तिलकगतानि मौक्तिकाक्षतानि तारा, इत्येव तर्कनाया आशय । उत्प्रेक्षा ॥१८॥

श्रीसूक्तमन्त्रं पठता पुरोधसा
विनिर्मितं श्रीतिलकं स कौङ्कुमम् ।
भाग्यालये भालतले शुभान्वितं
बभार मूर्तं किमु राज्यलक्षणम् ॥१९॥

लक्ष्मीसूक्त पठता राजपुरोहितेन कृत कुकुमस्य राजतिलक, भाग्यस्थाने ललाटपट्टे मङ्गलदायक मूर्तिमत् किं नु राज्यचिह्नमस्ति इति उत्प्रेक्षित (तिलक) बभार । उत्प्रेक्षा ॥१९॥

नवार्करश्मिप्रकरारुणच्छवि-
स्तस्यालिकस्थस्तिलकः सः कौङ्कुमः ।
रराज मुक्तामयमङ्गलाक्षतैः
रजोगुणः सत्त्वसमन्वितो यथा ॥२०॥

सत्वगुणेन युक्तो यथा रजोगुण, तथा नवोदितसूर्यस्य किरणसमूहवत् अरुण-कान्ति तस्य (ईश्वर०) ललाटस्थित कुकुमकृत तिलक मौक्तिकरूपैर्मङ्गलाक्षतै शुशुभे । अरुणवर्ण कुकुमतिलको रजोगुण, मौक्तिकाक्षतानि च सत्वगुण । अत एव सत्त्वगुणसहितो रजोगुण —इत्युपमासघटनम् ॥२०॥

भालस्थले मङ्गलकुंकुमोदितां
मुक्ताफलाढ्यां तिलकोर्जितां श्रियम् ।
दधौ स मूर्तामिव राजसान्वितां
यशोङ्किताङ्गीमिव राज्यसंपदम् ॥२१॥

स (ईश्वरसिंह) ललाटदेशे मङ्गलकुंकुमादुत्पन्नाम् अक्षतरूपैर्मौक्तिकफलैश्च युक्ता तिलकक्कृतामदम्यशोभाम्, रजोगुणेन अन्विता यशसा अङ्कितशरीरा मूर्तिमती राज्यसपत्तिमिव धारयामास । कुकुमो रजोगुण तदुपरि मौक्तिकानि श्वेत यश इत्युत्प्रेक्षाशरीरम् ॥२१॥

नरेश्वरः सौभगसुन्दरेश्वरो
धनेश्वरः सर्वधुरन्धरेश्वरः ।
न रूढितः श्रीश्वरसिंहभूपति-
र्बिभर्ति योगादपि नाम तादृशम् ॥२२॥

ईश्वरसिंहो भूपति प्रजाजनानामीश्वर सुभगतया सुन्दरलोकानां स्वामी, धनस्य अधिपति, सर्वेषां राज्यभारधारकाणा सामन्तनरपतीनामीश्वर. इति केवलं रूढित. (यादृच्छिकसज्ञावशादेव) ईश्वरसिंहो न, अपि तु धातुप्रत्ययशब्दसामर्थ्यादपि ईश्वरसिंह इति नाम धारयति ॥२२॥

तस्यास्य राजतिलकोत्सवजातहर्षाः
पौरा जनाः प्रतिगृहं नवतोरणाद्यैः ।
द्वाराणि रञ्जितचतुष्करुचाऽजिराणि
चित्रध्वजैरलमकुर्वत चोर्द्ध्वदेशान् ॥२३॥

तस्य ईश्वरसिंहस्य राजतिलकमहोत्सवे जातप्रमोदा. पुरवासिन. प्रत्येकगृहे नवीनतोरणादिभि द्वारप्रदेशान्, नानारङ्गाणा चतुष्काणा 'चौक' कान्त्या अङ्गणानि, चित्रविचित्रपताकाभिश्च गृहाणामूर्द्ध्वप्रदेशान् अमण्डयन् ॥२३॥

मत्तद्विपैश्च तुरगैश्च रथैश्च लोकैः
कार्याय संततगतागतशालिभिस्तैः ।
जातः स राजतिलकोत्सवजः समाजः
सर्वत्र राजपथमाकुलयांचकार ॥२४॥

सपन्न स राजतिलकमहोत्सवसवन्धी समारोह कार्यार्थं निरन्तर यातायातकारिभि मत्तद्विपादिभि राजपथ सकुल चकार। राजतिलकोत्सवे इतस्ततो यातायात कुर्वद्भिर्गजतुरगनरादिभिर्विशालेऽपि राजमार्गे निरन्तर सकुलताभूदित्याशय ॥२४॥

तस्योपदाविरचनाय समागतेन
राज्ञां जनेन समकारि तथा समाजः ।
आसीद्यथा जयपुरं सुमहत्प्रमाणं
संकीर्णमेव तदपि विप्रगताऽवकाशम् ॥२५॥

तस्य (ईश्वर०) उपायनकरणाय समागतेन राजस्थानीयाना राज्ञा लोकेन (अधिकारिगणेन) तथा समूहो व्यधायि यथा तदपि सुप्रसिद्ध महाविशालमपि जयपुर प्रगताऽवकाश निरवकाश सत् सकीर्णं (सकुल) प्रतीयते स्म ॥२५॥

राजाधिराजसुत ईश्वरसिंहनामा
सजातराजतिलकोत्सवराजमानः ।
तं सेवितुं नृपतयः सरसोपदाभिः
साकं समाययुरुपेन्द्रमिवाऽमरेशाः ॥२६॥

ईश्वरसिह सजातेन राजतिलकमहोत्सवेन शोभमान अभूत्। अमरेशा देवश्रेष्ठा विष्णुमिव तम् (ईश्वर०) सेवितु महामूल्यैरुपायनै साक समाजग्मु ॥२६॥

तस्यैकलिङ्गनृपतिः प्रजिघाय मत्त-
मातङ्गतुङ्गतुरगाम्बररत्नभूषाः ।
सप्रेमपत्रमतिमात्रमिहोपलभ्य
संतोषसागरमसौ मनसा जगाहे ॥२७॥

एकलिङ्गनृपति मेवाडनरेश्वर.। प्रजिघाय प्रेषयामास। असौ (ईश्वर०)

प्रेमपत्रेण सहित तदिद मत्तमातङ्गादिक प्राप्य मनोद्वारा सतोषसमुद्र जगाहे, अतितमा प्रसन्नोऽभूदित्यर्थ ॥२७॥

वृन्दावतीनरपतिः स दलेलसिंहो
राजाधिराजबलविक्रमलब्धराज्यः ।
संप्रेष्य तस्य महतीमुपदामजस्र-
माज्ञापरोऽस्म्यहमिति प्रजिघाय पत्रम् ॥२८॥

जयसिहस्य बलपराक्रमाभ्यामेव प्राप्तराज्य 'बुन्दी'नरेश्वर. महान्तमुपायनं सप्रेष्य, निरन्तरम् आज्ञावशीभूतोऽस्मीति पत्र प्रेषयामास ॥२८॥

कोटाधिपः किल तदीयमहाप्रभाव-
भीतो महान्तमुपढौकनरत्नराशिम् ।
संप्रेष्य तस्य पदयोः करुणाकटाक्ष-
पात्रत्वमात्मनि निरन्तरमाचकाङ्क्ष ॥२९॥

तदीय (जयसिहीय) महाप्रतापाद् भीत· महान्तम् उपढौकनस्य उपायनस्य रत्नराशि संप्रेष्य तस्य चरणयो सविधे आत्मनि करुणाकटाक्षस्य पात्रतामैच्छत् । ममोपरि सर्वदा ते कृपाकटाक्षो भवेदिति प्रार्थयामास ॥२९॥

['बुन्दी' नरपतेः रावराजा बुधसिंहस्य विवाहो महाराजजयसिंहस्य भगिन्या अमरकुमार्या (अमर-कुंवरि) सहाऽभवत् । बुधसिंहः कौलमताऽनुयायी आसीत् किन्तु तस्य 'कच्छवाही' पत्नी वैष्णवधर्मानु-यायिनी बभूव । अतो द्वयोर्मध्ये नासीन्मन प्रीति । बुधसिंहः चूंडावतराज्ञ्या उपरि, या हि वेगूराज्या-धिपतेः रावतस्य पुत्री आसीत् विशेषेण आसक्तोऽभूत् । अतएव कच्छवाहीराज्ञ्या गर्भोद्भूत पुत्र बुन्दी-राज्याधिकाराद् वञ्चयितु कृत्रिम प्रासेधयत् । अतः प्रभावशाली 'महाराजो जयसिंहो बुधसिंहहस्तात् प्रतिज्ञालेखमलेखयत् यत् 'चूंडावतराज्ञ्या पुत्रे उत्पन्ने अहं भवदधीन त विधास्यामि । बुन्दीसिंहा-सनस्याधिकारी मनाऽनन्तरं स एव भवेत् यं भवाननुमन्येत" । एतं समयं बुधसिंहो न पर्यपालयत् । चूंडावतराज्ञ्या गर्भात् उम्मेदसिंहे समुत्पन्नेऽपि न त जयसिंहाय समर्पयामास । अत एव महाराजो जयसिंह कुपितो भूत्वा करवडाधिपते सवाईसिंहस्य पुत्रं दलेलसिंह बुधसिंहस्योत्तराधिकारिणं विधाय बुधसिंहं १७८६ तमे विक्रमसवत्सरे (ई० १७२९) बुन्दीतो निर्वासयामास । वराको बुधसिंहः श्वशुरस्य वेगूराज्यं समाश्रयत् । तत्रैव च तस्य मृत्युरभूत् । दलेलसिंहस्तु बुन्दीराज्याधिकारी बभूव]

[कोटाधिपेन अनेन बुन्दीराज्यमपहृतमभूत् । किन्तु महाराजो जयसिंहो बलात्तदिद राज्य दलेलसिंहाय दापयामास, इति जयसिंहस्य प्रभावादसौ बिभेतिस्म]

गोपाल इत्युदितनित्यमनोज्ञनामा
भूमीपतिर्यदुकुलाम्बुधिचारुचन्द्रः ।
सोऽनन्तरत्नहयकुञ्जरवस्त्रभूषा-
राशिं तदीयपदयोरुपदां दधार ॥३०॥

यादवकुलसमुद्रस्य चन्द्रो गोपालसिंह भूषाराशि भूषणसमूहम् । उपदा दधार उपायन चकार ॥३०॥

संप्रेष्य कामवनभूमिपतिः स जैत्र-
सिंहाह्वयः सुमहतीमुपदाममुष्य ।
राजाधिराज इव नस्त्वमवेहि भृत्या-
नित्याह सप्रणयकल्पितपत्रलेखः ॥३१॥

अमुष्य अमुष्मै (ईश्वर०) उपदाम् उपायनम् । सम्प्रदानस्य शेषत्वविवक्षया षष्ठी । राजाधिकारो जयसिंह इव त्व न अस्मान् भृत्यान् सेवकान् जानीहि इति सप्रणय कृतपत्रलेख. आह । पत्रद्वारा सूचयामासेत्यर्थ ॥३१॥

जट्टाधिपो वदनसिंह इति प्रसिद्ध-
श्चक्रे व्रजैकनृपतिः किल यः प्रतिष्ठाम् ।
संप्रेषितः सपदि तेन मदद्विपेन्द्रः
साकं महार्घ्यमणिहेममयोपदाभिः ॥३२॥

जाटानामधिप व्रजमण्डलस्य एकमात्रो भूपति य प्रतिष्ठा सर्वदा तस्य समान चक्रे । तेन महार्घ्यरत्न-हेममयीभि उपदाभि (उपायनै) सह महान् कुञ्जरेन्द्र. प्रेषित. ॥३२॥

दिल्लीश्वरः किल महम्मदसाहनामा
वामाश्वपञ्चकयुतं मदवारणेन्द्रम् ।
नानामहार्घपटभूषणरत्नखड्गान्
संप्रेष्य तस्य विससर्ज निदेशपत्रम् ॥३३॥

वामं सुन्दर यत् अश्वपञ्चक तेन युत मत्तगजेन्द्रम् । निदेशपत्र श्रीजयसिंह-महाराजस्योत्तराधिकारपत्र तस्मै प्रेषयामास ॥३३॥

तत्रैव राज्यतिलकोत्सव एष राजा
श्रीकृष्णभट्टकवये कुरु काव्यमेकम् ।
अस्मत्कुलक्रमकथाकथनाभिराम-
मित्याज्ञया सह ददौ सुमहाप्रसादम् ॥३४॥

"कुलक्रमस्य वंशपरम्पराया य इतिहासस्तद्वर्णनेन मनोहरम् एकं काव्यं कुरु" इति आज्ञया सह सुमहत् पारितोषिकं ददौ ॥३४॥

काव्यं स ईश्वरविलासमनोहराख्यं
श्राव्यं समस्तविबुधालिसुधासमानम् ।
सानन्दसर्वरसिकं पटुतानिदानं
नव्यं विरच्य नवराजसमाजमागात् ॥३५॥

विबुधाऽऽल्या पण्डितसमाजस्य कृते अमृततुल्यम् । सानन्दा सर्वे रसज्ञा यस्मात्तादृशम् । पटुता काव्यनिर्माणचातुर्यं कारणं यस्य तत् । आगात् आजगाम ॥३५॥

तस्मै ददौ नृपतिरेष निधिं धनानां
नानान्नपानसुखसंपदुपेतमुच्चैः ।
ग्रामं हिरण्यपुरसंनिधिवर्तिनं य-
च्छ्रीकृष्णभट्टसुकवेर्वसुधैकराज्यम् ॥३६॥

धनानां निधानम्, नानाविधानां गोधूमाद्यन्नानां मधुर-पाचकादिजलानां च सुखसंपत्तिभिरुपेतम् । हिरण्यपुरम् (हिन्डौन) तत्समीपवर्तमानं कर्मपुर (करमपुरा) ग्रामम् तन्मण्डलान्तर्गतमेव (अर्थात् 'परगना हिन्डौन') । श्रीकृष्णभट्टकवेः कृते यत् पृथिव्याः एकराज्यं साम्राज्यम् ॥३६॥

❀ ससंमानं निजराजधानीमानीताय कविकलानिधिमहाभागाय यद्यपि महाराजजयसिंहसमये एव ग्रामोऽयं नियतीकृतोऽभूत् । दैवसयोगात्तस्मिन् समये फाल्गुनशुक्लपूर्णिमायां चन्द्रोपरागस्य पर्वाऽपि समायासीत् । अतएव उपरागपर्वैव निमित्तीकृत्य ग्रामस्याऽस्याऽनुशासनपत्रं ('पट्टा' 'परवाना') महाराजजयसिंहस्य खड्गचिह्नसहकृतं तदाज्ञया फा० शु० पूर्णिमादिने १७७८ तमे वैक्रमे वत्सरे अलिख्यत । किन्तु महाराजे जयसिंहे देवलोकमुपगते महाराजस्येश्वरसिंहस्याज्ञया कर्मपुरग्रामस्याऽस्याऽनुशासनपत्रं तात्कालिकराजनीतिचक्रानुसारं पुनः प्रतिकल्पनीयमेवाऽभूत् । अतएव महाराजस्य सिंहासनाधिरोहमहोत्सवस्य शोभाविशेषार्थं राजसभा ('दरबार') मध्ये एव कलानिधिमहाभागाय कर्मपुरग्रामप्रदानस्य मङ्गलमनु-

जग्राह कर्णकलशद्वितयेन सर्वं
काव्यामृतं विबुधलोकसुखैकदायि ।
भृत्वा गभीरनिजचित्तमयैकगर्ते
भर्तेश्वरोऽखिलभुवः सततं मुमोद ॥३७॥

विबुधलोकानां (पण्डितानां देवाना च) एकमात्रं सुखदायकम् । कर्णौ एव कलशौ तयोर्युगलेन । कर्णद्वारा गृहीतम् (आत्त, बुद्धिविषयीकृत च) तत् गम्भीरे निजचित्तरूपे गर्ते आशये भृत्वा अखिलभूमेर्भर्ता (धारक) ईश्वरसिंह अत्यन्त मुमुदे । मुमोद इति अनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्य अनित्यतया ॥३७॥

वङ्गालयप्रवरवैदिकगौडविप्रः
क्षिप्रप्रसादसुलभः सुमुखः कलावान् ।
विद्याधरो जयति मन्त्रिवरो नृपस्य
राजाधिराजपरिपूजितशुद्धबुद्धिः ॥३८॥

वङ्गदेशस्य प्रवरवैदिको यो गौडब्राह्मण । क्षिप्रं शीघ्रमेव यस्य प्रसन्नता भवति अतएव सुलभ । सुमुख मधुरभाषी । स्थापत्यादिकलाना विशेषज्ञ । राजाधिराजेन जयसिंहेन सर्वत सत्कृता प्रौढा बुद्धिर्यस्य, पितृकालादागत पारम्परिक ॥३८॥

यद्बुद्धिवैभवबलेन नृपः सवाई-
राजाधिराजजयसिंह इति प्रसिद्धः ।
चक्रे पुरं जयपुरं रमणीयमेत-
च्चेतः प्रसादजननं त्रिजगज्जनानाम् ॥३९॥

शासनमश्राव्यत । एतस्यानुशासनपत्रं तु १८०७ तमस्य वैक्रमवत्सरस्य चैत्रशुक्लचतुर्दशीदिने अकल्प्यत । किन्तु राजनीतेश्चक्रानुसारं महाराज ईश्वरसिंहः कतिपयवर्षैरेव देवलोकमगात् । ततश्च तात्कालिकनीतेरनुसार महाराजमाधवसिंहस्य समये संवत् १८०६–७ मध्ये ग्रामस्यास्य अनुशासनपत्रं सम्पादितमभूत् । महाराजमाधवसिंहस्य राज्यशासनकाले विक्रमसंवत् १८३२ पर्यन्त कविकलानिधिमहाभागः कर्मपुरग्रामस्य स्वच्छन्द भोगमकरोत् । एतदनन्तरं महाराजे माधवसिंहे देवलोकमुपगते तदुत्तराधिकारिणो महाराजप्रतापसिंहस्य समये १८३४ तमे वैक्रमसवत्सरे कलानिधिमहाभागस्य तनयाय ग्रामस्यास्य नवीनमनुशासनपत्रमदीयत । सोयं कर्मपुरग्राम. कविकलानिधिवशे प्रमुखपदाधिरूढस्य ('टोकाई') एतट्टीकाकर्तुः अन्यान्येषा च दायभागाधिकारिणामधिकारे साम्प्रत पर्यन्तमस्ति ।

यस्य (विद्याधरस्य) वुद्धिमाहात्म्यात् । त्रिजगज्जनानामपि मनः प्रमोदकरम् । जयसिंहसेविता देवताद्या अपि जयपुरप्रतिष्ठापनेन प्रचुरा प्रीतिं प्रापुरिति त्रिजगत्पदेन ध्वन्यते ॥३९॥

राजा स मन्त्रिवरमीश्वरसिंहनाम्ने
पुत्राय राजपदवैभवभाजनाय ।
श्रीराजमल्लमुखमन्त्रिषु मुख्यमेनं
विद्याधरं किल समर्पितवान् स्वरुच्या ॥४०॥

राजा (जय०) राजपदव्या, तदुचितस्यैश्वर्यस्य च पात्राय पुत्राय । राजमल्लो मुख्यो येषा तादृशेषु मन्त्रिषु श्रेष्ठमेन विद्याधर निजस्य रुच्या दत्तवान् । पुत्राय इति अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य· । ततश्च 'यस्य हितमकार्यशतं कृत्वापि करणीयं तादृशाय हितनात्सल्यभाजनाय' इत्यर्थ· । एव च समर्प्यमाणस्य सुनिश्चितहितविधायकत्व व्यज्यते । 'स्वरुच्या' इत्यनेन–अन्येषामनुरोधेन कदाचित् अपरीक्षितस्यापि समर्पणसभव, किन्तु स्वेच्छया समर्पणेन शतग· परीक्षितस्यैव तस्य प्रदानमित्यतिशयो ध्वन्यते । मन्त्रिषु मुख्यमित्यनेन सर्वेभ्योपि अतिशयितमतिशालित्वमभिव्यज्यते। राजा समर्पितवान् इत्यनेन परम्परागततया मौलत्वमभिसूच्यते । मन्त्रिवरमित्यनेन–ईश्वरसिंहशासनेऽपि यस्य सर्वामात्येषु प्राधान्यं ध्वन्यते ॥४०॥

अस्त्वेकतः सकलभूतलराज्यलक्ष्मी-
रस्त्वेकतो जनपदः पुरदुर्गसंपत् ।
सन्त्येकतोऽखिलजनाः परमेकतोऽसौ
विद्याधरो गुरुगभीरगुणैकसिन्धुः ॥४१॥

जनपदो भारतराष्ट्र राजपुत्रप्रान्तो वा । पुराणा दृढाना दुर्गाणा च संपत्तिरपि एकतोऽस्तु । गुरुगौरवेण अविचल । गुणानामेकमात्रो गभीर सिन्धु ॥४१॥

धीरो निजान्तसमयं निकषा सवाई-
राजाधिराजजयसिंहनृपोऽखिलज्ञः ।
श्रीराजमल्लमुखमन्त्रिसमन्वितार्य-
विद्याधराङ्कतलगं कृतवान्कुमारम् ॥४२॥

धीर मोगलसाम्राज्ये नानाविधोत्थान-पतनादीना द्रष्टा। निजान्तसमयस्य समीपे। निकषायोगे द्वितीया। अनेन समग्रपुरुषायुषस्य सर्वदा विजयशाली अनुभव सूच्यते। राजमल्लमुख्यै. मन्त्रिभिः समन्वितस्य आर्यविद्याधरस्य उत्सङ्गगत कुमार कृतवान्। सर्वेषा मन्त्रिणा मध्ये अयमेव प्रधानामात्य कृत इति सूच्यते। 'अकतलगम्' इत्यनेन कुमारावस्थापन्न सोय वयो-विद्या-विवेकादिवृद्धस्य भवत एव पोष्यतया सरक्षणीय इति ध्वन्यते ॥४२॥

ते मन्त्रिणो मितगिरः किल राजमल्ल-
विद्याधरप्रभृतयो धिषणाधिवासाः ।
राजाधिराजजयसिंहनिदेशवश्या
भेजुर्विशालभुजमीश्वरसिंहभूपम् ॥४३॥

धिषणाया बुद्धेः अधिकृतगृहभूता । मितगिर — असाधारणबुद्धिशालित्वेऽपि निजमुखत. स्वल्पमात्र वदन्तीति मन्त्रिणामसाधारणो गुण सूच्यते। निदेशवश्या इत्यनेन जयसिंहाद् गृहीतस्य अधिकारस्य प्रतिक्षण स्मरण सूच्यते। विशालभुजमित्यनेन— क्षत्रियस्यास्य बाहुदण्डयो सामर्थ्य करयो कर्तव्यशक्तिश्च ईश्वरनामोचितैवेति शब्दैरभिव्यज्यते। भेजुरित्यनेन समर्था अपि मन्त्रिणोऽमी राजभक्त्या कार्यं सर्वमकुर्वन्निति सूच्यते ॥४३॥

तैरन्वितः स्वपितृसंचितराज्यसंपत्-
संपूरितो रथमतङ्गतुरङ्गसंघैः ।
पत्तिव्रजैश्च विदधद्भुवि भूरिभारं
जेतुं परानतिसमृद्धबलः प्रतस्थे ॥४४॥

तैः मन्त्रिभियुक्त। स्वपित्रा सचिता या राज्योचिता सपद ताभिः सम्यक्तया पूरित। अनेन कोषबलस्य अगाधत्व ध्वन्यते। पत्तिव्रजैः पदातिसमूहैश्च भुवि भार कुर्वन्। अतएव अपेक्षितैः सर्वैर्बलैः अतिसमृद्धिशाली। परान् (शत्रून्) जेतु प्रस्थान चकार ॥४४॥

तस्य द्विपाः सरभसस्रुतदानधारा-
संपूरिताधिकविसारिसरित्प्रवाहाः ।
ते प्रावृषेण्यजलभृत्पटलैरनूनां
गर्जारवैर्घनघटाघटनामवापुः ॥४५॥

सवेगं प्रस्रुता· निर्झरिता याः मदधारा ताभि. सपूरिताः अत्यन्त प्रसरणशीला. सरिता प्रवाहाः यै ते (द्विपा), प्रावृट्(वर्षा) कालिका ये जलभृत्पटलाः मेघसमूहा. तेभ्य अनूनाम् अन्यूना मेघघटाया (समूहस्य) इव घटना सादृश्य गर्जारवै. प्रापु । जल वर्षन्त , श्याम-विशालशरीराश्च ते गर्जनेनापि मेघघटासादृश्य प्रापुरित्यर्थ. ।।५४।।

उत्कूर्दमानतुरगोद्धुरटापटङ्क-
क्षुण्णाऽखिलक्षितितलात्प्रकटोऽत्र न स्याम् ।
इत्याकुलः किल भयेन भुजङ्गराजः
पातालमेव भजतेऽखिलतोऽप्यधस्तात् ॥४६॥

उत् उच्चै कूर्दमानाना तुरगाणा विकटै खुररूपै टकै क्षोदनोपकरणै. निखा-तात् पृथ्वीतलात् 'अह सर्वप्रकाश्यो न भवेयम्' इति भयव्याकुलो नागराज शेष· सर्वतोऽपि अधस्तल पातालमेव आश्रयति । भूमेरधस्तात् अतल-वितल-सुतल-रसातलादि-षट्तलेभ्योऽधस्तात् सर्वतोऽपि नीचैस्तल पातालमस्ति, यत्र किल पृथ्वीधारिण शेषस्य निवास पौराणिकैर्वर्ण्यते । तत्र प्रकृतिजातोपि शेपस्य पातालनिवासः घोटकटापटकै-निखाताद्भूतलात् प्रकटताऽभावहेतुक· परिकल्प्यते इति हेतूत्प्रेक्षा ।।४६।।

पत्तिव्रजाः पवनवत्परिधावमाना-
श्चर्माऽसिभीषणकराः कटिबद्धतूणाः ।
स्कन्धेषु कार्मुकधराः किल केऽपि वह्नि-
यन्त्रान्विताः प्रलयवारिधिवत्प्रसस्रुः ॥४७॥

चर्म(ढाल)खड्गाभ्या भयकरौ करौ येषा ते, कार्मुकधरा धनुर्धारकाः, वह्नि-यन्त्राणि (बन्दूक) तै अन्विताश्च पत्तिव्रजा पदातिसमूहा· प्रलयकालिकसमुद्रवत् सर्वत. प्रसरन्तिस्म । समुद्रोपमया शीघ्रप्रसारित्वम्,—आत्मनि निमज्जकत्वम्, अप्रति-कार्यत्व चाभिव्यज्यते ।।४७।।

प्रोद्यद्विद्युत्पताकावलिवलितमहामत्तमातङ्गमेघै-
र्दर्पप्रोत्सर्पिवेगोद्धुरतुरगबलप्रोच्चलत्पूर्ववातैः ।
प्रोद्यन्निःसानधीरध्वनिबहलतरोद्भूतगर्जारवैश्च
श्रीमानारूढ उच्चैर्जगति जनमनो मोदयन्नीश्वरेन्द्रः ॥४८॥

उदीयमानया विद्युत्सदृशपताकावल्या वेष्टितै. महागजरूपैर्मेघै गर्वेण धावन्तः वेगेन विकटाश्च ये तुरगाःतेषा सैन्यैरेव उच्चलद्भि· पूर्ववातै (पूर्वदिक्पवनै) प्रोच्चरन्तो

ये नि.सानाना (दुन्दुभीना) धीर-ध्वनय: त एव प्रबलतराऽऽविर्भूता गर्जनशब्दा तै । जगति वर्तमानाना जनाना मन प्रमोदयन् सन् ईश्वररूप इन्द्र' आरूढ, दिग्विजययात्रा-समारोहे मगलयानमारूढ 'सवारी' कृतवान् ।।४८।।

श्रीमत्यारूढमात्रे पवनजवजयभ्राजिनं वाजिवर्यं
कोणाघातैर्गभीरध्वनिभिरविरतं दुन्दुभौ वाद्यमाने ।
नागिन्यो नागराजं प्रसभमुपदिशन्त्यद्य सम्यग् धरेयं
धार्या, कार्याय कस्मैचन चलति जयोद्योगवानीश्वरेन्द्रः ।।४६।।

श्रीमति (ईश्वरसिंहे) पवनवत् जवशालिन, जयेन भ्राजिन शोभमानम् आरूढे एव सति । गभीरध्वनिशालिभि कोणानाम् (वाद्यदण्डानाम्) आघातै निरन्तर विजय-दुन्दुभौ वाद्यमाने सति । शेषस्य पत्न्य पृथ्वीधारक नागेन्द्र सतर्कमुपदिशन्ति–"अद्य भूमि अवधानेन धार्या, अद्य किंचित्कार्यार्थं जयोद्यमशाली ईश्वरेन्द्रो विजयप्रस्थान कुरुते । अनवधाने सति सैन्यभरेण धरेय विचलिता स्यादिति ।।४६।।

दन्ता, नेयं बलाकावलिरलिकगतस्वर्णपट्टा न विद्युद्,
दानाम्भो नाऽम्बुधारा, विलसति वपुषां मण्डनं, नेन्द्रचापः ।
नादो यः शृङ्खलानां स भवति न रुतं चातकैरीश्वरेन्द्र-
प्रस्थाने वारणेन्द्रान्कलय विरहिणि प्रावृषेण्यान्न मेघान् ।।५०।।

इमे श्वेता गजेन्द्राणा दन्ता, न बलाकाना पक्ति । इमे हस्तिनाम् अलिक-(ललाट)गता. स्वर्णपट्टा ('सिरी'), न विद्युत् । हस्तिनामिद मदजल, न वारिधारा । नानावर्णै रत्नैर्भ्राजमानमिद हस्तिना शरीरस्य भूषण, न इन्द्रचाप । अय कण्ठादिषु बद्धाना स्वर्णशृङ्खलाना नाद, न चातकद्वारा शब्द (कि वा चातकैर्न शब्दायितम्)। अतएव हे विरहिणि ईश्वरप्रस्थाने समुखदृश्यमानान् इमान् गजेन्द्रान् जानीहि, न वर्षा-कालिकमेघान् । भ्रान्तापह्नुति, भ्रान्तिवारकस्य तत्त्वाख्यानस्य सत्त्वात् ।।५०।।

गर्जन्त्येते मृगेन्द्राः किमचलशिखरे किं नदन्त्यम्बुवाहाः
किं वा संस्मृत्य रामं रचयति परितः सिंहनादं हनूमान् ।
रे पान्था ब्रूत सत्यं तदखिलमटवीचारिणो रे मनुष्याः
श्रोतव्यः श्रीश्वरस्य क्षितिपकुलमणेरेष निस्सानदः ।।५१।।

'पर्वतशिखरे किं मृगेन्द्रा (सिंहा) गर्जन्ति ?' इत्यादिररण्यचारिणा सदेह इति तत्सदेहनिराकरणार्थं पान्थान् प्रति प्रश्न । 'अटवीचारिणो रे मनुष्या' इत्यादि आरण्यकान् सबोध्य पान्थानामुत्तरम 'भूपतिवशभूषणस्य ईश्वरस्य (ईश्वरसिंहस्य) एषः नि सान (दुन्दुभि) नाद श्रोतव्य' इति । ततश्च मृगेन्द्राणां गर्जनादयो नैते भवन्तीति प्रवक्तॄणा तात्पर्यम्। प्रश्नकर्तॄणामरण्यनिवासित्वात् भयङ्करभेरीनादेऽपि स्वपरिचिताना सिंहनादादिपदार्थानामेव सदेहविषयतेति कवे. सघटनापाटवम् । सदेहालकारोपि पान्थानामारण्यकाना च मिथ प्रश्नोत्तराभ्यामाभ्यामभ्याविष्क्रियते इति साहित्यविच्छित्ति. ॥५१॥

उत्तुङ्गप्रचलत्तुरङ्गमखुरक्षिप्रक्षतायां क्षिता-
वुद्यत्तुङ्गमदान्धकुञ्जरघटाटोपोत्कटायां दिवि ।
शेषश्च त्रिदशेश्वरश्च भुवनव्याभङ्गभीव्याकुलौ
वर्तेते चकितावमुष्य नृपतेर्दिग्जैत्रयात्रादिने ॥५२॥

अमुष्य (अस्य) भूपते दिग्विजययात्रादिने उत्तुङ्गानाम् (उन्नतानाम्) प्रचलता च तुरगाणा खुरै. क्षिप्रम् (द्रुतम्) क्षुण्णाया भूमौ शेष', उदीयमानाना तुङ्गाना मत्तकुञ्जराणा घटाया (समूहस्य) आडम्बरेण आतङ्केन वा विकटायां दिवि (आकाशे) देवेन्द्र., इति उभौ अपि भुवनस्य (लोकस्य) भङ्गभयेन व्याकुलौ, अत एव सभ्रान्तौ वर्तेते (विद्यमानौ) स्त । खुरक्षतैः क्षितिक्षयस्याऽऽशङ्का पूर्वकविप्रसिद्धैव, किन्तु गजानां शैलवदत्युन्नतत्वात् आकाशचारिणामपि मनसि भङ्गभीतिरभ्युदेतीति प्रकृतकवे. प्रतिभापाटवम् । उदात्तालंकारेणानेन वर्णनीयस्य राज्ञ. प्रभावातिशयो व्यङ्ग्य' ॥५२॥

दूरादेव विपक्षपत्तनसमुद्वासैकवीराधिपो
दिग्दन्तावलगण्डपालिमदभूमालिन्यसंमार्जनः ।
भूयोऽम्भोनिधिघर्घरारवभवत्संवादजैत्रोऽभवत्
प्रस्थाने खलु तस्य दुन्दुभिलसद्धूङ्कारधारध्वनिः ॥५३॥

तस्य (ईश्वर०) दिग्विजययात्राया दूरत एव श्रूयमाणो वैरिनगराणाम् उद्वासने (विसर्जने, शून्यीकरणे) एकमात्रो वीरश्रेष्ठ । दुन्दुभि श्रुत्वैव पूर्वत प्रज्ञातयश क्रमा शत्रवो भयान्नगराणि परित्यजन्तीति तात्पर्यम् । दिग्गजाना गण्डपाले (गण्डस्थलस्य) मदभू. (मदजातम्) यन्मालिन्य तस्य प्रक्षालक । दुन्दुभिध्वनिं श्रुत्वा दिग्गजानामपि मदो भयात् शुष्यतीति तात्पर्यम् । समुद्रस्य घर्घरारवेण सह भवन् य. संवादः (द्वयो' साम्यम्) तस्य विजेता, दुन्दुभीनां लसन् धूङ्कारधाराणां ध्वनिः अभवत् ॥५३॥

इत्थं समग्रसमुदञ्चितसर्वसैन्यः
　　श्रीमानसौ नृपतिरीश्वरसिंहनामा ।
निःसाननादपरिपूरितसर्वलोको
　　यात्रां चकार सजवोऽखिलदिग्जयाय ॥५४॥

समग्र (पूर्णरूपेण) उत्थापितानि (सह नीतानि) सर्वसैन्यानि येन स, दुन्दुभिध्वनिना व्यापितसर्वलोक असौ श्रीमान् ईश्वरसिंह सजव (सवेग) सन् दिग्विजयाय यात्रा चकार ॥५४॥

इतिहासविकासिन्या विलासिन्या समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एष नवोत्तरः ।❀

यस्य '❀वैभवचतुष्टयं' तथा 'पारिजात-सरला-कनीनिकाः' ।
'गाथया'ऽथ 'चषकं' 'ललन्तिका', मञ्जुनाथसुकृती स वन्दते ॥१॥

इतिश्रीमत्तैलङ्गान्वयमङ्गलमहाब्धिसुधाकर-देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृतावीश्वर-
चरितमहाकाव्ये राजतिलकयात्राया दशमः सर्गः



❀ 'साहित्यवैभवम्' 'जयपुरवैभवम्' 'गोविन्दवैभवम्' 'भारतवैभवम्' इति चतुष्कम्, अमुद्रितो 'धातुप्रयोगपारिजात.', संस्कृतभाषाशिक्षाया प्रारम्भिकपुस्तक 'संस्कृतसुबोधिनी' (भागद्वयम्), 'गाथारत्नसमुच्चय ' इति "भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, मजुनिकुञ्ज, पृथ्वीराजरोड जयपुर" इति स्थानात् । रसगङ्गाधरटीका 'सरला', व्यङ्ग्यसर्वकषया टीकया सहिता 'संस्कृतगाथासप्तशती', ध्वन्यालोकटीका 'कनीनिका' (अमुद्रिता), कादम्बर्या लघुटीका 'चषकम्', शिलालेखललन्तिका' चेति यन्निर्मितग्रन्थाः 'निर्णयसागरप्रैस-कोलभाटलेन, बम्बई' इति स्थानाच्च प्राप्तु शक्या इति सर्वस्याशयः ।

एकादशः सर्गः

श्रीमानीश्वरसिंह एष बलवान् श्रीशौर्यवीर्यादिभि-
श्चन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रमित्रमरुतामैश्वर्यमुल्लासयन् ।
दुष्टोद्यद्द्विषदोघदर्पहतये प्रीत्यै सुहृद्भूभृतां
कीर्त्यै स्वस्य दिशां जयाय च वृतः सैन्यैः प्रतस्थे ततः ॥१॥

इतिहासविकासनातिरेकाद् भृशमेकादशसर्गलास्यरंगे ।
सरला विमला विलासिनीयं रचनीयं वितनोति संविलासम् ॥

श्रिया (शोभया) चन्द्रस्य, शौर्येण उपेन्द्रस्य (विष्णोः), वीर्येण वीरतया महेन्द्रस्य शक्रस्य, (तेजो-वेगादिभिश्च) सूर्य-वाय्वादीना वैभवम् उल्लासयन् प्रकाशयन् । दुष्टस्य उज्जृम्भमाणस्य च द्विषदोघस्य शत्रुसमूहस्य गर्वदूरीकरणाय मित्रभूपालाना प्रीतिवर्द्धनाय च सैन्यै परिवृतः प्रतस्थे दिग्विजययात्रा चकार ॥ १ ॥

शुभानुकूलानिलकेलिसंचलद्-
ध्वजाग्रहस्तैरिव तर्जयद्रिपून् ।
नितान्तकोणाहतिधीरनिर्ध्वनद्-
गभीरनिस्सानिनादभीषणम् ॥२॥

दिवाकरद्योतभृशोज्ज्वलज्ज्वल-
ज्झलज्झलोल्लासितभल्लशक्तिभिः ।
तुरंगमोत्कीर्णधरारजोघटा-
घनाघनोल्लासितडिल्लताशतम् ॥३॥

मदोदकस्राविमहामतङ्गजैः
समुन्नमद्भिर्निबिडैः पयोधरैः ।
नितान्तमासिन्धुतटं समन्ततो
महीतलं पङ्किलतां भृशं नयत् ॥४॥

तदेव भूयः सजवानिलोच्चल-
तुरङ्गमैर्धूलिभरत्वमापितम् ।
नभोगतं घोरघनाघनौघतां
वियोगिनां चेतसि भीतये नयत् ॥५॥

जवोत्पतत्सायुधपत्तिधोरणी-
तरङ्गमालापरितः समाकुलम् ।
अतिप्रचण्डप्रलयानिलोच्छलत्-
पयोधिपूरप्रतिमानमुद्धुरम् ॥६॥

बलं बलारेर्बहलं बलादिव
प्रसर्पदम्भोदघटातडिद्युतम् ।
मदोग्रमातङ्गनिषादिशक्तिभृद्-
भटोद्भटं श्रीश्वरसिंहभूपतेः ॥७॥

प्रयाणजोत्साहमहामहोत्सवे
रराज चञ्चच्चतुरङ्गसंगतम् ।
प्रतापदीप्त्या प्रतिभूपतीनलं
विषादयन्मित्रमनश्च मोदयत् ॥८॥

शुभस्य, यात्रायामनुकूलस्य च वायो क्रीडया सचलन्तो ध्वजा एव अग्रहस्ता (हस्ताऽग्रभागा) तै रिपून् भर्त्सयदिव । निरन्तर दुन्दुभिवादनदण्डानामाघातै गभीर शब्दायमानस्य प्रौढदुन्दुभे निनादेन भयङ्करम् ('ईश्वरसिंहभूपतेर्बल रराज' इत्यग्रिमेण अन्वय । सप्तभि कुलकम्)॥

अत्यन्तोज्ज्वल (अतिनिर्मल यथा स्यात्तथा) ज्वलन्तीभि दीप्यमानाभि, 'झल्झल्' इति प्रदीप्ताभि —भल्लै (कुन्तै.) शक्तिभि. (भुशुण्डीभि)च । तुरङ्गमैः उत्कीर्णा (क्षुण्णा) या भूमिरजस. (पृथिवीधूले.) घटा (समूह), स एव घनाघन निबिडमेघ तस्मिन् उल्लासि प्रकाशनशील तडिल्लतानाम् (विद्युद्रूपवल्लीनाम्) शत यस्मिन् । तुरगक्षोदितरजोरूपमेघे सूर्यप्रकाशेन झलझलायिता भल्लभुशुण्ड्य. यत्र तडिल्लताशतमिव भासते, तादृक् सैन्यमिति तात्पर्यम् ॥

मदजल क्षरद्भि महागजै (तद्रूपैः) उन्नतसान्द्रै. मेघै (गजरूपैर्मेघैरिति व्यस्तरूपकम्) समुद्रतटपर्यन्त भूतल सर्वत. कर्दमयुक्तता प्रापयत् ॥

सजव सवेगम् अनिलवत् (वायुवत्) उच्चलद्भिस्तुरगै तदेव (पङ्किलतां नीतमेव) भूतल धूलिरूपत्व प्रापितम्। पूर्वमार्द्रमपि भूतल तुरगखुरक्षोदनधूलिभि. पुनर्धूलिव्याप्तमभूदित्यर्थ । ततश्च--धूलिभररूप तद् भूतलम् आकाशगत कृत्वा वियोगिना चित्ते भयजननाय निबिडमेघता प्रापयत्। धूलिभरो गगने उड्डीय निबिडमेघता प्राप्नोति, तेन च मेघाभ्रान्त्या विरहिणा वियोगभीतिर्भवतीति तात्पर्यम् ॥

जवेन उत्पतन्ती सवेग चलन्ती या पत्तिधोरणी पदातिपङ्क्ति. सैव तरङ्गमाला (वीचिराजि) तया समन्ततो व्याप्तम्। अतएव अतिप्रचण्डेन प्रलयपवनेन उत्प्लवमानो य. समुद्रौघ तत्प्रतिमान तत्सदृशम्, उद्धुर प्रचण्डम् (बलम्) ॥

मदोग्रेषु मातङ्गेषु (गजेषु) निषादिभि. (निषण्णै, स्थितै.,) शक्ति-(भुशुण्डी) धारकै भटैः योधै उद्भटं प्रचण्डम्। अत एव बलात् प्रसर्पन्तीभिः अम्भोदघटाभि. (मेघसमूहै) तडिद्भिश्च युक्त बलारे. इन्द्रस्य बलमिव सैन्यमिव स्थितम् ईश्वरसिंहभूपते बहल निबिड बलं (सैन्यम्)। मत्तमातङ्गा मेघा इव, तदुपरि स्थिताना भटाना शक्तयश्च चमत्कृतया विद्युत इव इति इन्द्रसैन्येन साम्यमित्याशय ॥

प्रतापस्य (प्रभावस्य) दीप्त्या तेजसा प्रतीपभूपालान् अत्यन्त विषादयत् (विषण्णान् कुर्वत्), मित्राणा मन प्रमोदयच्च। चञ्चद्भि चतुरंगै (चतुर्भि. गज-तुरग-रथ-पदातिरूपै अगैः) संगतम् (ईश्वरसिंहभूपतेः बलम्)। प्रस्थानजातस्य उत्साहस्य महामहनि उत्सवे आनन्दे रराज शुशुभे ॥ २-३-४-५-६-७-८ ॥

मदच्युतिस्नातगजेन्द्रपातितै-
महीधरैश्चापि महीरुहैर्मही।
समन्ततश्चारुसमीकृताऽभवत्
प्रयाणतः श्रीश्वरसिंहभूपतेः ॥९॥

ईश्वरसिंहभूपालस्य युद्धयात्राप्रस्थानात्—मदप्रस्रवणेन स्नातै. (अर्थात् मत्तै) गजेन्द्रै निपातितै पर्वतै तथा वृक्षैश्च सर्वत मही उच्चावचताशून्या, अत एव रुचिरा अभवत्। अस्य प्रस्थाने मत्तकुञ्जराणा तथा समारोहो भवति यथा पर्वतै वृक्षैश्च या भूमेरुच्चावचता भवति सा एतस्य कुञ्जरद्वारा पर्वताना वृक्षाणा च भङ्गाद् विनिवृत्ता भूत्वा भूमि समीकरोति। सेनाया अतिविशङ्कटता, तद्द्वारा भूपतेरैश्वर्यातिशयो ध्वन्यते ॥ ९ ॥

महीयसी सा बहुयोजनान्तर-
प्रदेशविस्तारिनिवेशशालिनी ।
चमूरुदश्वचतुरङ्गशोभिता
जगर्ज गम्भीरपयोधिसंनिभा ॥१०॥

बहुयोजनान्तरस्य प्रदेशे (स्थले) विस्तारशालिना निवेशेन शोभमाना, चतुर्भि अगै शोभिता सा महती सेना गम्भीरसमुद्रवत् ननाद ॥१०॥

सुवर्णराजत्कुथशोभयान्विताः
सुवर्णघराटाघनघोषशालिनः ।
सुवर्णरत्नाभरणा मदद्विपाः
सुवर्णचित्रप्रचिता विरेजिरे ॥११॥

सुन्दरवर्णेन (रागेण)राजमानाना कुथाना (पृष्ठवस्त्राणा 'झूल')शोभया युक्ता, सौवर्णघण्टानादेन शोभिता', सुन्दरवर्णै· चित्रैः आलेख्यैः चर्चिताः (येषा शुण्डादिषु नानारङ्गाणा चित्राणि शोभन्ते स्म) ईदृशा मत्तकुञ्जराः शुशुभिरे ॥११॥

शक्रेणाऽकृत्तपक्षाः क्वचन विधिवशात्संस्थितास्ते गिरीन्द्राः
शत्रूणां वासदानादविरतमधुना भूरिजातापराधाः ।
ते बद्ध्वा शृङ्खलाभिः प्रसभमतिबलैः स्थापिता द्वारदेशे
भ्राजन्ते कुञ्जरेन्द्राः पृथुलकुथभृतः श्रीश्वरक्षोणिभर्तुः ॥१२॥

कुत्रचन सुरक्षितराजसस्थानादिषु स्थिताः, अत एव इन्द्रेण अच्छिन्नपक्षाः केचन पर्वताः शत्रुभ्यो निवासदानात् तथा अविरत मधुना (क्षौद्रेण मद्येन च)कृतापराधाः [अर्थात् एभिः पर्वतै शत्रुभ्यो निवासो दत्त, यतो हि वैरिणः पलाय्य पर्वतकन्दरेषु निवसन्तीति एकोऽपराधः। तथा मधुशब्दश्लेषात् एभिर्निरन्तर मद्यसेवन कृतमिति द्वितीयोऽपराधः। अत एव एते द्विविधापराधिनः सवृत्ताः] ततश्च अतिबलशालिभि राजपुरुषैर्बलात् श्रृङ्खलाभिर्बद्ध्वा दण्डनीयबुद्धया द्वारदेशे स्थापिता', ते एव एते उभय-पार्श्वे पक्षसदृशबृहत्कुथ(पृष्ठासन)धारिणः ईश्वरसिंहभूपालस्य महागजेन्द्राः राजन्ते । एते हस्तिनो न सन्ति अपि तु पक्षधारिण पर्वताः सन्ति, ये पूर्वोक्ताऽपराधवशाद् बद्ध्वा द्वारदेशे स्थापिताः। एतेषा कुथो न, किन्तु उभयपार्श्वे इमौ पक्षौ स्त, इति हस्तिना प्रशस्तिद्वारा वर्ण्यस्य राज्ञो वैभवातिशयो ध्वन्यते ॥१२॥

शुण्डादण्डोग्रगण्डस्थलबहलमिलद्भूरिदानद्रवार्द्राः
कुन्देन्दुद्योतिदन्तद्वयदलितबलोद्यद्द्विषद्दन्तिदन्ताः ।
भान्ति प्रोत्तुङ्गकुम्भान्तिकचटुलचलत्पुष्करा दुष्कराऽजि-
भ्राजिष्णूद्दामवीर्यातिशयविजयिनः कुञ्जराः श्रीश्वरस्य ॥१३॥

शुण्डादण्डे तथा प्रचण्डे गण्डस्थले च बहलम् (अत्यन्तम्) मिलता भूरिणा दानद्रवेण (मदप्रवाहेण) आर्द्रा । कुन्दवत् चन्द्रवत् च द्योतिना (दीप्यमानेन) दन्तद्वयेन दलितानि (चूर्णितानि) शत्रूणा सैन्य च, उद्यताम् (उज्जृम्भमाणानाम्) शत्रुकुजराणा दन्ताश्च यैस्ते । प्रोत्तुङ्गस्य कुम्भस्थलस्य समीपभागे चञ्चल यथा तथा भ्रमत् पुष्कर (शुण्डाग्रभाग.) येषा ते, अनवरत शुण्डाग्रभागं गण्डस्थलसमीपे भ्रामयन्त इत्यर्थः । 'पुष्कर करिहस्ताग्रे' इत्यमर । दुष्करे (भयङ्करे) आजौ (युद्धे) भ्राजिष्णवः राजमाना, तथा उद्दाम्ना (प्रचण्डेन) वीर्याधिक्येन विजयशालिन । ईश्वरसिंहस्य कुञ्जरा भान्ति ॥१३॥

उद्दण्डोद्दण्डशुण्डाप्रसरणरभसोद्भीतवैमानिकौघाः
प्रोन्मीलद्व्योमगङ्गासलिलकमलिनीमण्डलान् खण्डयन्तः ।
तारालीतारहारावलिमतिललितां गण्डयोर्मण्डयन्तः
शोभन्ते वारणेन्द्राः सलिलभृत इव श्रीश्वरेन्द्रस्य वश्याः ॥१४॥

उद्दण्डोद्दण्डाया (अतिप्रचण्डाया)शुण्डाया प्रसरणरभसेन (उच्छालनवेगेन) अतिभीता विमानचारिणा (देवानाम्) समूहा. येभ्य. ईदृशा । अत एव प्रोन्मीलत (विकसत.) आकाशगङ्गासलिलस्य कमलिनीसमूहान् खण्डयन्त । इयदुन्नता. सन्ति यत् शुण्डादण्डं प्रसार्य व्योमगङ्गाया विकसत कमलखण्डान् खण्डयन्तीत्याशय । 'मण्डल त्रिपु' इति वचनात्पुस्त्वम् । तारापक्तिरूपाम् अतिललिता (तारा विशालाम्) हार-पक्तिम् उभयतो गण्डस्थलयोरुपरि भूपयन्त. । जलदा इव स्थिता ईश्वरेन्द्रस्य वशीभूता. गजेन्द्रा. शोभन्ते ॥१४॥

चिरादधस्ताद् विनिधाय दुष्टं
द्विजिह्वजालं परिरक्षतीयम् ।
इतीव रोषेण खुरैः खनन्ति
क्षणं क्षणं क्षोणितलं तदश्वाः ॥१५॥

चिरकालात् निजस्य अधस्तात् (अधोभागे) स्थापयित्वा दुष्ट द्विजिह्वजाल सर्पसमूहम् इय क्षोणिः पृथ्वी परिरक्षति [अग्रे किंचित्, परोक्षे च किंचित् एवंविध-द्विविधवचनशालिन कुटिलम्, प्रकृते च पातालस्थ सर्पसमूह भूमि परिरक्षतीति]। तस्य (ईश्वरसिंहस्य) अश्वा । खुरैर्भूमिखनन तुरङ्गाणा स्वाभाविकमपि द्विजिह्वरक्षणा-पराधहेतुक कल्पितमिति हेतूत्प्रेक्षा । अधरस्तात् इति त्वपपाठ एव ॥१५॥

सलज्जवीरव्रजसज्जसैन्ये
संप्रस्थिते श्रीश्वरसिंहदेवे ।
निरुद्यमानामपि मानवानाम्
अभून्महानुद्यमलोभयोगः ॥१६॥

सलज्जै वीरव्रजै सज्ज (उद्यत सावधान वा) सैन्य यस्य तादृशे ईश्वरसिंह-देवे कृतप्रस्थाने सति उद्योगरहितानामपि मनुष्याणाम् उद्यमो लोभश्च सजात । ईश्वरसदृशस्य वीरगुणग्राहकस्य सेनाया साम्प्रत सैनिकानामेव समादरो द्रव्यलाभश्चेति विदित्वा सैनिकव्यवसायाद्ये तटस्था आसन् तेऽपि सेनासनिवेशस्योद्यम कृतवन्त इति भाव. । सलज्जेति विशेषणेन--साधारणयुद्धादिषु अहभावदर्शने तेषा लज्जेव भवतीति भटाना वीरतातिशयो ध्वन्यते ॥१६॥

एको गुणग्राहक एष राजा
लब्ध्वाऽधुना राज्यपदं नवीनम् ।
अपोषयद्यो गुणिनोऽत्र लोके
श्रिया निरस्तानपि तान्समस्तान् ॥१७॥

श्रिया धनेन हीनानपि गुणिनो लोकान् य प्रभूत-दान-समानादिभिरपालयत्, अतः एकमात्रो गुणग्राहक ॥१७॥

संख्यावतः काव्यकलाविदग्धान्
ज्योतिर्विदः शाकुनिकांश्च सम्यक् ।
भिषग्वरानश्वगजादिशास्त्र-
विचक्षणान् रत्नपरीक्षकांश्च ॥१८॥

वीणाप्रवीणानपि गानदक्षान्
सुशिक्षितान्नाट्यकलाकलापे ।
महोद्भटांश्चापि भटानजस्रम्-
अन्वग्रहीदेष कृपाकटाक्षैः ॥१९॥

सख्यावत शास्त्रपण्डितान् । शाकुनिकान् शुभाऽशुभनिमित्तं शकुनं (तच्छास्त्र) जानन्ति तान् । नाट्यकलासमूहे कृताभ्यासान् नाट्यशास्त्रविचक्षणानित्यर्थः, महोद्भटान् अतिप्रबलान् भटान् योधान् कृपादृष्ट्या अजस्रम् (निरन्तरम्) अन्वग्रहीत् अनुग्रहं चकार ॥१८-१९॥

कांश्चित्सुदृष्ट्याऽऽत्तऽऽसुधौघवृष्ट्या
कांश्चित्स्मितेनातितरां सितेन ।
कांश्चिद् गिरा प्राञ्जलवर्णवत्या
कांश्चित्करेणातिसरोरुहेण ॥२०॥

कांश्चिन्नमद्भ्रू विटसंज्ञयैव
कांश्चिच्च नत्या विनयेन मूर्ध्नः ।
कांश्चिन्मुहुः संनिधिदानमात्रा-
दमोदयत् स्वस्वसमाजलोकान् ॥२१॥

आत्ता स्वीकृता अमृतप्रवाहस्य वृष्टिर्यया ईदृश्या। कृपादृष्ट्या । सितेन श्वेतेन मन्दहास्येन । काश्चित् प्राजल (स्फुटार्थ)वर्णयुक्तया वाण्या । अतिसरोरुहेण कमलमप्यतिक्रान्तेन कमलादप्यधिकसौन्दर्ययुक्तेन। उत्थापन-अभयप्रदानादिकया हस्तस्य चेष्टया, इत्याशयः । नमत नीचीभवतः भ्रुकुटिरूपस्य विटस्य (सूचकस्य) सञ्ज्ञया इङ्गितेन । काश्चित् मस्तकस्य विनयेन ईषन्नम्रतया। काश्चित् मुहुः (वारंवारम्) स्वसमीपागमनस्य अवसरप्रदानमात्रात् । एवं स्वपरिकरस्य लोकान् अमोदयत् प्रसन्नान् अकरोत् ॥२०-२१॥

सैन्यं तदीयं शुभसंनिवेश-
विशेषशालिप्रचलत्पुरं तत् ।
तस्थौतरामध्वनि यत्र यत्र
शोभाऽभवत्काचन तत्र तत्र ॥२२॥

शुभेन सनिवेशविशेषेण (विशिष्टप्रकारेण) स्कन्धावारस्थापनेन शोभते तच्छीलम्, अतएव प्रचलत् चलनविशिष्ट नगरम् ईदृश तस्य सैन्य तस्थौतराम् अतिशयिता स्थिति चकार ॥२२॥

ते पर्वतास्ते विपिनप्रदेशा-
स्ते भूरुहास्ते सरितां तटाश्च ।
ते क्षोणिभागाः सुतरां विरेजु-
र्विभूषिताः श्रीश्वरसिंहसैन्यैः ॥२३॥

भूरुहाः वृक्षाः । ईश्वरसिंहस्य सैन्यैर्मण्डिताः क्षोणिभागा भूप्रदेशाः ॥२३॥

सुदुर्गमं मर्त्यगणैररण्यं
शिवारुतस्थानमशोभनं यत् ।
तदीश्वरेणैव कृतं मनोज्ञं
मृदङ्गतालोत्सवगीतनृत्यैः ॥२४॥

मनुष्यगणैर्गन्तुमशक्यम् । शिवाना जम्बुकीना शब्दस्य स्थानम् । मृदङ्गवाद्येन, सहर्षो य तालोत्सव. तेन, गीतैर्नृत्यैश्च ॥२४॥

निस्सानन्नादेन पलायितेषु
प्रभग्नदर्पेषु मृगाधिपेषु ।
गर्जन्ति वीराः किल तत्र तत्र
भूयो भुजास्फोटनमाचरन्तः ॥२५॥

निस्सान (दुन्दुभि) नादेन वीराणा वीरतया च भग्नीभूतगर्वेषु सिंहेषु पलायितेषु सत्सु, भूय (मुहु) भुजाऽऽस्फोटन वाहुदण्डयोरास्फालन कुर्वन्त. । वीराणा सिंहाना च बिम्बप्रतिबिम्बभाव सूच्यते । तेन तेषामीशस्य ईश्वरस्य ऐश्वर्यातिशयो ध्वन्यते ॥२५॥

व्यालैः करालैरपि कोलजालै-
विमर्दितान्यद्रिवनानि यानि ।
सद्यो निरस्ताखिलकण्टकेषु
क्रीडन्ति तेष्वेव नराश्च नार्यः ॥२६॥

व्यालै. मत्तहस्तिभि., भुजङ्गमैश्च । कोलजालै सूकरसमूहैः। अद्रयः (पर्वताः) वनानि च । विमर्दितानि नि.शङ्कक्रीडया क्षुण्णानि। निरस्ता० दूरीभूतकण्टकेषु । सेनाया नारीणामपि सहभावस्तस्या महान्त विस्तारम्, सेनाधिनायकस्य नरेशस्य युद्धाभियोगादिष्वपि नि.सम्भ्रमतया विनोदवृद्धि सूचयति ॥२६॥

अनेकदुर्जीवनिवासदाना-
ज्जातापराधानि वनानि यानि ।
तानि क्षणात्तीक्ष्णकुठारपातै-
रुच्चैरभेद्यन्त धृतेश्वराज्ञैः ॥२७॥

सिंह-सूकर-सर्पादिदुर्जीवेभ्यो निवासदानात् जनिताऽपराधानि । धृता ईश्वरसिंहस्य आज्ञा यै ईदृशै कर्मकरै , तीक्ष्णकुठारघातद्वारा अच्छेद्यन्त । किञ्च-दुर्जीवेभ्यो निवासदानेन ईश्वरसृष्टेरेव अपराधो जात , अत एव जातापराधेभ्यो वनेभ्य ईश्वरेणैव कुठारैर्विच्छेदरूपो दण्डो दत्त । यतो हि तदिच्छयैव ईश्वरसिंहस्य अत्राभियानं जातमित्यपि सूच्यते ॥२७॥

आरोपितानां पटमण्डपानां
समन्ततो याः पटभित्तयस्ताः ।
महोन्नतानां परितो घनानां
सिताभ्ररेखा इव संविरेजुः ॥२८॥

पटभित्तय पटनिर्मिता भित्तय., ता नानावर्णाना महामेघाना समन्तात् श्वेतानाम् अभ्राणाम् (मेघाना) रेखा इव शुशुभिरे ॥२८॥

सुनिर्जने मत्तमृगेन्द्रगर्जै-
रगान्मदो यत्र मतङ्गजानाम् ।
तस्मिन्वने श्रीश्वरसिंहवाक्या-
दारोपिते सांप्रतमुच्चकेतौ ॥२९॥

प्रसारितेषु द्रुतमापणेषु
वणिग्भिरत्रातिरां समृद्धैः ।
अनर्घ्यवस्त्राभरणान्वितेषु
(विक्रेतृ) लोकेषु च संचरत्सु ॥३०॥

संजायमाने च चमूविमर्दे
कोलाहले जाग्रति मानवानाम् ।
निरन्तरं वाद्यति रम्यघोषे
तौर्यत्रिके चेतसि चात्तहर्षे ॥३१॥

जनेषु सर्वेषु च नृत्यगीत-
वाद्योत्सवैकान्तपरायणेषु ।
रराज संपूरितसर्वसंपत्
पुरेण तुल्यं बलमीश्वरस्य ॥३२॥

सुनिर्जने यत्र वने मत्ताना मृगेन्द्राणा (सिहानाम्) गर्जै (गर्जन गर्जः, घञ्) मतङ्गजाना (हस्तिनाम्) मद अगात् अलुप्यत तस्मिन् वने उन्नते केतौ सूर्यवशीयाना पचरङ्गध्वजे स्थापिते सति ॥ समृद्धियुक्तै वणिग्भि आपणेषु (विक्रय-स्थानेषु) प्रसारितेपु उन्मुक्तेषु । वहुमूल्यै वस्त्रै आभूपणैश्च युक्तेषु विक्रेतृ(वणिग्) जनेषु विक्रयणार्थं भ्राम्यत्सु सत्सु ॥ चमूविमर्दे सेनाया. सघर्षे जायमाने सति, कोलाहले उज्जृम्भमाणे सति । मनोहरशब्दशालिनि नृत्यगीतवादित्रैतित्रिविधसगीते प्रवृत्ते सति । अत एव मनसि स्वीकृतप्रसन्नताभावे सति ॥ जनेपु नृत्यगीतवाद्योत्सवेषु एकचित्ततया सलग्नेषु सत्सु । सपूरिता अन्नपान-विहार-गीतवाद्यादीना सर्वा सपद सामग्र्यो यस्मिन् ईदृशम् ईश्वरस्य बल सैन्य नगरेण समान शुशुभे ॥२९-३०-३१-३२ (चतुर्णामेकोऽन्वय)।

न यत्र पादौ निदधुर्मनुष्याः
कान्तारदेशे वहुहिंस्रजुष्टे ।
पटालयैस्तत्र सुखं विजह्रुः
स हीश्वरस्यैव महान्प्रभावः ॥३३॥

वहुभि हिंसकजन्तुभिर्युक्ते यस्मिन् कान्तारे दुर्गममार्गे, 'कान्तारं वर्त्म दुर्गमम्' इति कोप । पटालयै. वस्त्रनिर्मितगृहैं सुखपूर्वक विहार चक्रु । ईश्वरसिंहस्य सोय महान् प्रभाव । शून्यप्रदेशस्याऽपि कदाचित् सुदिनपरिवृत्त्या विहारभूमित्व भवतीति सोयमीश्वरस्य (जगन्नियन्तु) सामर्थ्यमित्यपि अप्रकृतार्थ- ध्वनि ॥३३॥

तत्सैन्यं त्यक्तदैन्यं परमतरमहोदारताशालि शश्वन्
मातङ्गस्यन्दनौघस्फुटतुरगघटापत्तिसंघैः परीतम् ।
वेलावातोत्तरङ्गं जलधिमिव विधुर्वर्द्धयन्नीश्वरोसौ
मीलद्विद्वेषिचक्रः प्रचुरकुवलयप्रीतिदः पर्युदीते ॥३४॥

त्यक्तदैन्य दूरीकृतदारिद्रयम्, उत्साहशालि वा । अतिशयितया महत्या उदारतया शोभते तादृगम् । स्यन्दनौघ. रथसमूह तथा तुरगसमूहश्च, पत्तीना पदातीना सघाश्च एभि परिवृतम् । तत्सैन्यं-वेलावातेन तटपवनेन उत्तुङ्गतरङ्ग समुद्रम् इव वर्द्धयन्, मीलन्त शोकेन संकुचन्त. विद्वेपशालिन चक्रा चक्रवाका येन, तथा प्रचुरकुवलयेभ्य (रात्रिविकासिकमलेभ्य) प्रीतिदायक. विधु (चन्द्रः) इव असौ ईश्वर अभ्युदय प्राप्नोति (उज्जृम्भते) ईश्वरसिंहोऽपि मीलत् निष्प्रभता प्राप्नुवत् विद्वेषिणा चक्रं मण्डल यस्मात् तादृश, तथा प्रचुर यथा स्यात्तथा कु(भूमि)वलयाय प्रीतिदायक । श्लेषोत्थापिता पूर्णोपमा ॥३४॥

उत्तालोत्तालचञ्चत्तुरगवरसमारूढ एष प्रतापी
दिग्जैत्रोद्दामसैन्यप्रकरपरिवृतः शोभते स्म प्रयाणे ।
प्रोद्यत्प्रावृषेण्यप्रघनघनघटाघोरसङ्घट्टनेता
मध्ये नृत्यन्तमुच्चैःश्रवसमधिगतः किं नु साक्षान्महेन्द्रः ॥३५॥

उत्तालोत्तालम् उन्नतोन्नत यथा स्यात्तथा चञ्चन्तं (चञ्चलम्) तुरगवर समारूढ, तथा दिशा जेत्रा प्रचण्डेन सैन्यप्रकरेण सहित प्रतापवान् एप. (ईश्वर),

प्रोदञ्चन्तीनां मुहुर्मुहुरुदीयमानाना वर्षाकालिकीना निबिडमेघघटाना सघट्टस्य (समवायस्य) नेता नायकः, मेघसमूहमध्ये चटुलतया नृत्यमिव कुर्वन्तम् उच्चैःश्रवसम् अश्वमारूढ किमयं साक्षात् महेन्द्र (शक्र) इत्येव प्रयाणे (सेनाप्रस्थाने) शोभते स्म ॥३५॥

दिग्जैत्रोद्दामयात्रोद्धुरतुरगखुरक्षोदितक्ष्मातलोद्य-
　च्छूलीधारौघधाराधरसमयतमःस्तोमसान्द्रासु दिक्षु ।
उच्चैरुद्यत्तदाज्ञासमुदयिसुभटोद्दण्डदोर्दण्डलग्ना
　दृश्यन्ते दामिनीवत् परहरणमुहुःशक्तयः शक्तयस्ताः ॥३६॥

दिशा जेतारः, उद्दामान (उत्कटा), तथा यात्रायाम् उद्धुरा प्रचण्डाश्च ये तुरगा तेषां खुरैः क्षोदितात् (विदारितात्) भूतलात् उद्यन् उत्तिष्ठन् य धूलिधारा-(प्रवाह)समूह स एव धाराधरसमयस्य (वर्षाकालस्य) तम स्तोम अन्धकारराशि तेन सान्द्रासु निबिडासु (निरन्तराऽन्धकारव्याप्तासु) दिशासु । उच्चैर्यथा स्यात्तथा उदीयमानया (प्रबलतया जायमानया) तस्य (ईश्वरसिंहस्य) आज्ञया समुदयिन. सम्यक् उत्थानशालिन (एककालम् उत्थिता इत्यर्थ) ये सुभटानाम् उद्दण्डाः दोर्दण्डाः (भुजदण्डा) तेषु लग्ना (गृहीता) परेषा (शत्रूणाम्) वारवार सहारे शक्तिः सामर्थ्यं यासाम् ईदृश्य. ता शक्तय. ('वरछी') तडिद्वत् दृश्यन्ते । तुरगखुरोत्थितधूलिमेघान्धकारे चमत्कुर्वत्य शक्तय तडित इव विलोक्यन्ते स्म, इत्याशय ॥३६॥

तुरगखुरपुटोत्थैर्धूलिधाराप्रसारैः
　करिभिरथ घनाभैर्दाननीरं क्षरद्भिः ।
क्षितितलसदृशाभं श्रीश्वरो व्योम चक्रे
　क्षितितलमपि सम्यग् व्योमचक्रेण तुल्यम् ॥३७॥

श्रीमान् ईश्वरसिंह तुरगखुरपुटसमुत्थितैः धूलिप्रवाहस्य प्रसरणैः आकाश भूतलसदृशशोभ चकार तथा दान(मद)जल प्रस्रवद्भि, अत एव कर्म-वर्णसास्यात् मेघसदृशैः हस्तिभि क्षितितलम् आकाशमण्डलेन तुल्यं चकार । परस्परोपमा ॥३७॥

आघातैर्दुन्दुभीनां वचनविरचनैः किं च बन्दिव्रजानां
　घण्टाघोषैर्गजानां क्षितितलनिपतट्टापटङ्कैर्हयानाम् ।
विप्राणां वेदघोषैः प्रतिपदविहिताशीर्वचःसंविधानैः
　पूर्यन्तेऽन्तर्दिशोऽष्टौ प्रचलति शिबिरादीश्वरक्षोणिनाथे ॥३८॥

ईश्वरसिंहनरेन्द्रे निजसेनासनिवेशात् चलति सति । आघातै नादै । वन्दि-समूहाना स्तुतिवचनै । भूतले निपतद्भि हयाना टाप(खुर)रूपै. टङ्कै क्षोदनसाधनै (टाकी) । प्रतिपद प्रतिचरणस्थापन विहितानि यानि आशीर्वचनानि तेपु सावधानै. ब्राह्मणाना वेदघोपै । अष्टौ दिश अन्त (सर्वस्मिन् मध्यभागे) पूर्यन्ते भरिता भवन्ति ॥३८॥

माद्यद्दन्तिघटा सुशिक्षितनटाकारोत्कटाश्वच्छटा
शौर्योद्यत्सुभटाधिपौघविकटा लोहाग्नियन्त्रोद्भटा ।
संछन्नाष्टहरित्तटा कृतरिपुक्ष्मासंकटा दुर्घटा
विक्रान्तिप्रकटात्तराजनिकटा चास्योज्जटा सा चमूः ॥३९॥

माद्यन्ती (मत्ता भवन्ती) दन्तिना घटा (समूह) यत्र । सुशिक्षितनटवत् आकारो येषाम् ईदृशाश्च ये उत्कटा अश्वा तेषां छटा (शोभा) यस्याम् । यत्र चञ्चला अश्वा नृत्यमिव कुर्वन्तीत्यर्थ । शौर्याय उद्यन् (उद्यत) य सुभटाधिपतीना समूह. तेन प्रचण्डा । लोहनिर्मितानि यानि अग्नियन्त्राणि (तोप, बन्दूक) तै प्रचण्डा दुर्जया । आच्छन्नानि अष्टाना हरिता (दिशाम्) तटानि यया सा सर्वदिग्व्याप्ता । कृत रिपुक्ष्माया (शत्रुभूमे) सकट महद्दु.ख यया । दुर्घटा दुःखेन घटयितुम् उल्लङ्घयितु शक्या । विक्रान्त्या (विक्रमेण, पराक्रमेण) प्रकटा विख्याता । आत्त स्वीकृत राजनिकट राजसामीप्यं यया । च, असिभि. खड्गै. आउत् (उन्नत) जटायुक्ता । सुभटै. स्कन्धेपु धृता खड्गा एवास्या. ऊर्ध्वीकृता जटा इत्याशयः । ऽऽवास्योज्जटा, इति पाठे तु आवास्याभि. (पटमण्डपै) उज्जटा उन्नतजटायुक्तेत्यर्थ । सा ईश्वरस्य चमूः सेना ॥३९॥

तामालोक्य स एकलिङ्गविषयक्षोणीनृपालो भया-
दालोलप्रविशीर्यमाणहृदयोऽप्यालोच्य कालोचितम् ।
चक्रे तस्य महान्तमादरमुरीचक्रे न चक्रेशतां
वक्रेणापि हृदा ननाम चरणौ शक्रेण तुल्योऽप्यसौ ॥४०॥

ता सेनामालोक्य । एकलिङ्गाधिष्ठितविषय(देश)स्य य क्षोणीपाल (राजा)। भयेन चञ्चल प्रविशीर्यमाण भज्यमानं च हृदयं यस्य ईदृशोपि स. कालोचित समयप्राप्तं विचार्य । तस्य (ईश्वरसिंहस्य) महान्तम् आदरं चक्रे । अह चक्रस्य मेवाड-मण्डलस्य ईश. (स्वामी) अस्मीति मण्डलेशताऽभिमान न चकार । इन्द्रसदृशोऽप्यसौ,

वक्रेण विरुद्धेनाऽपि हृदयेन तस्य चरणौ प्रणतवान् । हृदये विरोध वहन्नपि कालोचित विचार्य तस्य समुखे नम्रता स्वीचकारेत्याशय· ॥४०॥

राजाधिराजनृपतौ त्रिदिवं प्रयाते
　　पश्चात्तनीं व्यवहृतिं स विधाय पूर्वम् ।
यातः स्वसद्मनि स ईश्वरसिंहधैर्य-
　　गाम्भीर्यवीर्यविनयादि हृदा प्रशंसन् ॥४१॥

किं तत् कालोचितमित्याह—राजाधिराजनृपतौ (जयसिंहे) स्वर्ग प्रयाते सति, पश्चाद्भवा व्यवहृतिम् (स्वर्गप्रयाणोत्तर प्रदर्शनीय शोकप्रदर्शनव्यवहारम्) कृत्वा । हृदा प्रशसन् हृदयेन ईश्वरस्य धीरतागम्भीरतावीरतादि श्लाघमानः स्वगृह यात ॥४१॥

अहो अस्य गाम्भीर्यमम्भोधितुल्यं
　　न धत्ते धराऽप्यस्य धैर्यस्य लेशम् ।
करोत्यस्य वीर्ये किरीटी न साम्यं
　　द्वितीयोस्ति राजाधिराजोऽयमीशः ॥४२॥

धरा (पृथिवी) अस्य (ईश्वरस्य) धैर्यस्य लेशमपि न धारयति । वीर्ये वीरताया किरीटी अर्जुनोऽपि अस्य सदृशता न करोति । अय द्वितीय राजाधिराज. (जयसिंह) ॥४२॥

तनूमात्मना नूनमेनामनूनां
　　तया कीर्तिनाम्नीं तनुं तामिहान्याम् ।
निधायेव राजाधिराजः प्रवीण-
　　स्तिरोभूत्स तार्तीयमात्मीयतन्वम् ॥४३॥

आत्मना अनूनाम् अन्यूनाम् (आत्मसदृशीमित्यर्थ) । एनाम् ईश्वरनाम्नीम् अन्या तनू (शरीरम्), तया (स्वतन्वा) कीर्तिनाम्नी ताम् अन्या तनू (शरीरम्) सस्थाप्येव प्रवीण स राजाधिराजः (जयसिंहः) तिरोऽभूत् परलोकगामितया दृष्टे-स्तिरोहितोऽभवत् । एकया तन्वा तनुद्वयस्थापन, तत्रापि अमराया (कीर्तेः) स्थापन-मिति निपुणतेत्याशय ॥४३॥

अहो अस्य वंशस्य कश्चिद्विशेषः
स सर्वैरपि क्षत्रवंशैरलभ्यः ।
पुरो जायते यः स पश्चात्तनानां
यशोभावकः स्वीयशोभावकश्च ॥४४॥

समग्रैरपि क्षत्रवशै. क्षत्रियकुलैः अप्राप्य. । क. स विशेप इत्याह—यः पुर· अग्रे जायते स पश्चाद्भवाना (पूर्वजानाम्) यशसः भावक. उत्पादकः (यशःप्रसारयिता इत्यर्थः) । तथा स्वीयाया· शोभायाः (कान्तेः कीर्तेः) आवकः रक्षकश्च भवति । अवतेर्ण्वुल् । यशोभावकः यशोभावक इति यमकः ॥४४॥

दुराधर्षतेजास्ततानेकविद्यः
पुराजन्मचीर्णैस्तपोभिः समेतः ।
गुरौ नम्रमूर्द्धा हरौ भक्तियुक्तो
भविष्यत्यसौ सर्वदिक्चक्रजैत्रः ॥४५॥

दुराधर्पम् अदमनीय तेजो यस्य स । तता परितो विस्तारिता अनेका विद्या येन स । पुरा (पूर्व) जन्मकृतै. तपोभि सहित, एवंविधतेजो-विद्यादिलाभ पूर्वजन्मकृततपस्याभिरेव भवतीति भाव । सर्वदिशा चक्रस्य (मण्डलस्य) जैत्र, सर्वदिग्विजयी इत्यर्थ ॥४५॥

इत्येकलिङ्गविषयाधिपतिः प्रशंसन्
भूयः स मानकुलसिंहभयात्सशङ्कः ।
राजाधिराजतनयेन नयेन मैत्रीं
कर्तुं समैहत न येन समोऽत्र कश्चित् ॥४६॥

इति मेवाडदेशाधिपति प्रशसन्नपि भूय पुन मानकुले सिंहो य. (ईश्वर) तस्य भयात् शङ्कायुक्त. । अत एव राजाधिराजस्य (जय०) पुत्रेण सह नयेन नीत्यनुसारं मित्रता कर्तुं चेष्टामकरोत्, येन समानः अत्र (राजपुत्रप्रान्ते) कश्चिदपि न । नयेन इति त्रियमकम् ॥४६॥

ततोऽन्यस्मिन् धन्येऽहनि सकलसैन्येन सहितः
सुगम्भीरं गर्जन्मदगजघटातर्जितरिपुः ।
गतोऽसावानाकप्रथितगुणगानाऽऽकर इव
स्वयं राणाकस्य स्फुरदरुणताशालि शिबिरम् ॥४७॥

धन्ये (मङ्गले) अहनि दिने । सुगम्भीर गर्जता मत्तगजाना घटया (समूहेन) तर्जिता भर्त्सिता शत्रवो येन स. । अत एव आनाक स्वर्गपर्यन्त प्रथिताना (प्रसिद्धानाम्) वीरताधीरतादिगुणाना गानस्य प्रशसनस्य आकरस्थान विश्रामस्थानमिव स्थित असौ (ईश्वर) राणाकस्य (उदयपुरेशितु जगत्सिहस्य) सैनिकानामरुणवर्णवस्त्रच्छटया अरुणता (रक्तता) युक्त शिबिर (स्कन्धावार) गत. प्राप्त. ॥४७॥

मतङ्गजास्तस्य विचित्रधातु-
प्रकारिशृङ्गारितशीर्षशुण्डाः ।
सन्ध्यांऽशुकिर्मीरितभूरिवर्णा
बभुः पयोदा इव वासवस्य ॥४८॥

विचित्रा धातूना (गैरिक-मन शिलादीना) प्रकारा वर्णविन्यासा यस्मिन् तथा स्वर्णरत्नादिभूषणै शृङ्गारित भूषित च शीर्षशुण्डम् (शीर्ष च शुण्डा च अनयो. समाहार.) येषा तादृशा तस्य मतङ्गजा (गजा) सन्ध्याकालिकसूर्यकिरणै किर्मीरिता चित्रिता अत एव भूरिरङ्गा इन्द्रस्य पयोदा (मेघा) इव भान्ति स्म । 'चित्र किर्मीर-कल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमर ॥४८॥

मनःशिलागैरिकधातुरागैः
समन्वितास्ते कुथकम्बलाढ्याः ।
समुद्धृताः संप्रति सिन्धुमध्या-
द्बभुः सपक्षा इव भूधरेन्द्राः ॥४९॥

मन·शिलादिधातुजनितवर्णैः चित्रिता, कुथरूपेण कम्बलेन (पृष्ठाच्छादन-वस्त्रेण) युक्ता ते (गजा) समुद्रमध्यात् समुद्धृता (नि सारिता) अत एव पक्षसहिताः पर्वतश्रेष्ठा इव बभु । हस्तिना मस्तक-शुण्डादयो नानारङ्गाः एव पर्वतानामपि शिखरा नानारङ्गा । हस्तिना पृष्ठे वस्त्राणि, तथा पर्वतानापक्षा इति द्वयो साम्यम् । समुद्धृता इत्युक्त्या तत्कालाऽऽगतत्वेन हस्तिना नवयौवन--उज्ज्वलतादयो गुणा ध्वन्यन्ते ॥४९॥

सुवर्णघण्टोद्घटनादजुष्टाः
कुहूनिशासान्द्रतमिस्रवर्णाः ।
चमत्कृताश्चातकचारुशब्दै-
स्ते प्रावृषेण्या इव वारिवाहाः ॥५०॥

सुवर्णघण्टानाम् उद्घटेन दीर्घेण नादेन युक्ताः, चन्द्रकलारहित-अमारात्रिवत् गाढ़श्यामवर्णाः ते (गजाः) चातकाना चारुशब्दैः चमत्कारयुक्ताः निविडश्यामाः वर्षाकालिकमेघा इव (शोभन्ते स्म) ॥५०॥

महोद्धुरैरायसशृङ्खलैस्ते
नियन्त्रिता भूमिपुरन्दरेण ।
कृपावशाद्रक्षितलक्ष्यपक्षाः
कुथावृतास्ते करिणो विरेजुः ॥५१॥

भूमेः इन्द्रेण (ईश्वरसिंहेन) उत्कटैः लोहशृङ्खलैर्निबद्धाः ते (गजाः) नियंत्रणस्य को लाभ इत्याह—कृपावशात् रक्षिताः लक्ष्याणा (आक्रमणस्य लक्ष्यीभूतानां शत्रूणां) पक्षाः सहाया येभ्यः तादृशाः कुथधारिणस्ते (गजाः) शुशुभिरे । यदि शृङ्खलाभिर्नियन्त्रिता नाऽभविष्यन् तर्हि शत्रुपक्षीयाणा रक्षा कथमिवाऽभविष्यत् ? कुथेन (पृष्ठवस्त्रेण) आवृताः अतएव कृपावशात् (पर्वतानामुपरि दयावशात्) रक्षिताः अतएव लक्ष्या. (लक्षयितु द्रष्टु शक्या.) पक्षाः (गरुतः) येषां तादृशा. (पर्वता इवेत्यर्थः) ते विरेजु. इति केचित् । कुथास्ते पर्वतसदृशा इत्याशयः ॥५१॥

अथास्य नासीरगता गजेन्द्राः
सपञ्चवर्णध्वजवस्त्रयुक्ताः ।
ततेन्द्रचापद्युतिरोचमानाः
पयोधरा एव पुरन्दरस्य ॥५२॥

नासीरे (सेनाग्रभागे) गता. पञ्चभिर्वर्णैः सहितानि सपञ्चवर्णानि यानि ध्वजवस्त्राणि तैर्युक्ताः गजेन्द्रा , जयपुरनरेन्द्राणा 'पंचरङ्गध्वज'वाहिन इत्यर्थः । ततया इतस्ततो विस्तृतया इन्द्रचापद्युत्या रोचमाना. (शोभमाना.) इन्द्रस्य पयोधराः मेघा एव ॥५२॥

वर्मावृताः श्यामतमा गजेन्द्राः
　　सेनाग्रभागं स्म विभूषयन्ति ।
प्रावृड्घनच्छन्नतमोर्द्ध्वदेशा
　　विन्ध्याद्रिभागा इव संचरन्तः ॥५३॥

वर्मभि कवचैः आवृताः अतिश्यामवर्णा गजेन्द्रा प्रावृड्घनेन छन्नतमः (अतितमाम् आच्छादितः) ऊर्ध्वप्रदेशो येषा तादृशा सचरन्तः चलनशक्तियुक्ताः विन्ध्यपर्वतस्य भागाः शिखरा इव सेनाग्रभागं शोभयन्ति स्म । हस्तिना मस्तके स्थित कवचं प्रावृड्घन इव, तथा ते गजा विन्ध्यपर्वतशिखरा इवेत्याशयः ॥५३॥

तुरङ्गमाः काञ्चनरत्नमुक्ता-
　　संयुक्तपल्याणधराः सुकल्पाः ।
नृत्यन्त उच्चैश्चतुरङ्गमध्ये
　　मूर्ताः किमेते मरुतो विरेजुः ॥५४॥

पल्याणस्य पृष्ठासनस्य धरा धारकाः सुकल्पा सुसमर्था तुरङ्गाः सेनायाः चतुर्णामङ्गाना (हस्त्यश्वादीनाम्) मध्ये नृत्यन्तः मूर्तिधारिणः किमेते मरुतः पवनाः शोभन्ते स्म ? ॥५४॥

आजानेयाः पारसीका वनायु-
　　नाम्ना देशस्तद्भवा ये तुरङ्गाः ।
येभ्यो ह्रीणाः सप्तयः सप्तसप्ते-
　　स्तेऽमी सज्जाः श्रीश्वरस्य प्रयाणे ॥५५॥

'आजानेयाः कुलीनाः स्युः' इत्यमरः । येभ्यः सप्तसप्तेः (सप्तसख्याकाः सप्तयः अश्वा यस्य तस्य, सूर्यस्य) सप्तयः अश्वाः ह्रीणाः लज्जिता, ते अमी तुरङ्गा ईश्वरस्य प्रस्थाने सज्जाः यात्रार्थमुद्यताः ॥५५॥

वल्गद्वल्गाचर्वणैकस्वभावा-
　　स्तेजोयुक्तैर्वर्ष्मभिः प्रोच्छलन्तः ।
साहंकारा भक्षयन्तोऽहिभोगान्
　　राजन्तेऽश्वाः पन्नगारेः सखायः ॥५६॥

वलगन्त्याः चलन्त्याः (चञ्चलायाः) वलगायाः (मुखरज्ज्वाः 'लगाम') चर्वणमेव एकः स्वभावो येषां तादृशाः । तेजोयुक्तत्वात् चमत्कुर्वद्भिः वर्ष्मभिः शरीरैः उच्छलन्तः । 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः । शीघ्रगमने अहङ्कारसहिता अहीनां सर्पाणां भोगान् शरीराणि भक्षयन्तः गरुडस्य सखायः (सुहृदः) गरुडसदृशा इत्यर्थः अश्वा शोभन्ते । 'अहेः शरीरं भोगः स्यात्' अमरः । गरुडस्तेजोयुक्तशरीरः तथा सर्पशरीरं मुखे भक्षयति, तथा अश्वा अपि चमत्कुर्वच्छरीरयुक्ताः मुखे सर्पसदृशीं दीर्घां वलगां चर्वयन्तीत्युभयोः साम्यम् ॥५६॥

समुद्धतश्रीश्वरसिंहसेना-
समुद्रमध्ये तरलास्तरङ्गाः ।
अतुच्छमुत्पुच्छतयोच्छलन्तः
सज्जास्तदानीं प्रययुस्तुरङ्गाः ॥५७॥

समुद्धतस्य क्षुब्धस्य (प्रचलत्तरङ्गस्य) ईश्वरसिंहसेनारूपसमुद्रस्य मध्ये चचलाः तरङ्गाः (तरङ्गसदृशाश्चचलाः), अतुच्छं सुन्दरं यथा स्यात्तथा उत् उन्नतीकृतं पुच्छं यैस्तादृशतया उच्छलन्तः उत्प्लवमानाः तुरङ्गाः तदानीं प्रययुः ॥५७॥

मुक्तामणीहेममया मनोज्ञा
विचित्रदिश्याद्भुतकम्बलाढ्याः ।
रथा यथा व्योमपथाधिरूढा
बभुर्विमाना विबुधोत्तमानाम् ॥५८॥

चित्रवर्णैः दिश्यैः (नानादिग्भ्य आगतैः, 'दिश्यं तु त्रिषु दिग्भवे' अमरः) अद्भुतैः कम्बलैः आवरणवस्त्रैः आढ्याः रथाः, यथा आकाशपथमारूढाः देवश्रेष्ठानां विमानाः तथा बभुः ॥५८॥

मरूद्भवैर्गुर्जरदेशजातै-
स्ततोऽपरैर्दक्षिणदिक्प्रसूतैः ।
सुगोबलीवर्दवरैः समेता
रथाः प्रचेलुर्मणिभिर्विचित्राः ॥५९॥

सुन्दरा ये गोबलीवर्दाः (गोजात्या बलीवर्दा वृषभाः पुङ्गवा इति यावत्) तैः समेता ॥५९॥

परे मदोन्मत्तमहोष्ट्रवाह्या-
स्तथा परे जात्यतुरङ्गयुक्ताः ।
मतङ्गजैश्चापि युतास्तथाऽन्ये
रथाश्चमूं तस्य विभूषयन्ति ॥६०॥

परे (रथाः) मदोन्मत्तैः महद्भिः उष्ट्रैः वाह्याः । जात्यैः उन्नतजात्युद्भवैः तुरङ्गैः युक्ताः । तथा अन्ये (रथाः) मतङ्गजैः (गजैः) युताः । तस्य (ईश्वर०) सेनां शोभयन्ति ॥६०॥

कलक्वणत्काञ्चनकिङ्किणीस्रक्-
समावृतास्ते मधुरं ध्वनन्तः ।
उत्कन्धरैर्बर्हिभिरुत्सुकत्वा-
द्विलोकितास्तस्य रथा विरेजुः ॥६१॥

कलं (मधुरं) क्वणन्तीनां शब्दायमानानां काञ्चनकिङ्किणीनां स्रग्भिः मालाभिः वेष्टिताः । अत एव मधुरध्वनिं कुर्वन्तः तस्य (ईश्वर०) ते रथाः उत्कण्ठितत्वात् उन्नतीकृतग्रीवैः मयूरैः विलोकिताः शुशुभिरे । मयूराणां सोत्कण्ठविलोकनाद् रथानां शब्दो मेघगम्भीरो ध्वन्यते ॥६१॥

बाणावलीपूर्णतमैर्निषङ्गैः
कटिप्रबद्धैर्नितरां स्फुरन्तः ।
उच्चैरधिस्कन्धतटाऽऽहितानि
धनूंषि सज्यानि भृशं दधानाः ॥६२॥
करालकालानललोलजिह्वाः
कालानलज्वालसमानशीलाः ।
कोशावृताङ्गीः करवालधाराः
सपल्लवा बिभ्रत उग्रवीराः ॥६३॥
सेनौघगम्भीरसमुद्रपूर-
प्रसारनृत्यज्जलवीचितुल्याः ।
शौर्योष्मवेगेन समुच्छलन्तः
सधैर्यसाहङ्कृतिचण्डचित्ताः ॥६४॥

झञ्झानिलौघा इव धावमाना

चलेन पूर्णाः पृतनाग्रभाजः ।

जवान्विता जाङ्घिकतासमेताः

पदातयस्तस्य पुरः प्रचेलुः ॥६५॥

वाणपुञ्जपूरितैः कटिदेशे निवद्धैः निषङ्गैः (तूणीरैः वाणगृहैः) भृश शोभमानाः अधिस्कन्धतट स्कन्धदेशस्य मध्ये आहितानि स्थापितानि प्रत्यञ्चासहितानि धनूंषि (चापान्) धारयन्तः ॥

करालस्य कालाग्नेः चञ्चलजिह्वारूपाः (जिह्वा यथा सर्वं ग्रसति तथा ताः), कालानलस्य ज्वालया (शिखया) समानस्वभावा (सा यथा समीपागतमेव भस्मसात् कुरुते तथा इमा इत्यर्थः) । कोशे (पिधाने, आवरणगृहे) आवृतशरीराः पल्लवेन तत्-परिसरेण ('परतला') सहिता. खड्गधाराः धारयन्त. प्रचण्डयोधा. ॥

सेनासमूह एव गम्भीरसमुद्रप्रवाह तस्य प्रसरणे नृत्यन्तीना जलवीचीना सदृशाः, पराक्रमस्य य ऊष्मवेग उष्णताविक्यं तेन उत्प्लवमानाः, धैर्येण अहकारेण च सहितं प्रचण्ड (सुदृढ) चित्त येषा ते ॥

झञ्झा (समेघ) पवनसमूहा इव इतस्ततश्चलन्तः, सैन्याग्रभागे स्थिता, जाङ्घिकतया (अतिवेगशालितया) सहिताः तस्य पदातय अग्रभागे चलन्ति स्म ॥६२-६३-६४-६५ ॥(एकान्वय)

ईदृक्सेनासंनिवेशं स तस्य

श्रुत्वा बिभ्यत् स्वोपमर्दात्सशङ्कः ।

चक्रे पृच्छामेकलिङ्गस्य राजा

क्वेयं सेनासज्जता श्रीश्वरस्य ॥६६॥

स्वस्य उपमर्दात् आस्कन्दनात् (आक्रमणात्) शङ्कितचित्तः एकलिङ्गस्य मेवाड-देशस्य राजा तस्य (ईश्वरस्य) ईदृश सैन्यसमारोह श्रुत्वा बिभ्यत् भय प्राप्नुवन्— "ईश्वरस्य इय सेनाया सज्जता समारोह. क्व ?" 'केयम्' इति पाठे तु का किमुद्देश्या इत्यर्थ । इति लोकान पप्रच्छ ॥६६॥

तं भीतभीतमिह केपि जनास्तदीयाः
　　शीघ्रं समेत्य जगदुर्न बिभीहि राजन् ।
स्वाभाविकोऽयममुना कलितः स्वसेना-
　　संदोहसज्जनविधिर्विकृतिर्न बोध्या ॥६७॥

तदीया (राणासबन्धिन) केऽपि लोका ऊचु —'राजन् न भय कुरु, अमुना (ईश्वरसिंहेन) स्वकीयसेनासमूहस्य सज्जता (समारोह) स्वभावत एव कृत, युद्धेच्छादिरूपा विकृति (विकार) न बोध्या ॥३७॥

इत्याश्वस्ततमः समाहितमनास्तत्रैकलिङ्गेश्वरो
　　देवश्रीश्वरसिंहनामनृपतेरभ्यागमाद् व्याकुलः ।
उच्चैरास्तरणानि संसदि महार्घाणीह कृत्वा स्वयं
　　तत्र स्वीयसभास्महोन्नतजनानत्यर्थमाकारयत् ॥६८॥

इति जनाना कथनेन लब्धविश्रम्भ अत एव सावधानचित्त किन्तु ईश्वरसिंहस्य आगमनात् व्याकुलचित्त मेदपाटेश्वर ससदि सभाया महामूल्यानि, उन्नतानि आस्तरणानि (स्तरान् 'बिछायत') कृत्वा स्वीयान् सभाया उत्कृष्टान् लोकान् (सामन्तसचिवादीन्) स्वयम् आह्वयत्, सभा चकारेत्यर्थ ॥६८॥

इतिहासविकासिन्या विलासिन्या समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एकादशाभिध ॥

इति श्रीतैलङ्गवंशावतंसदिवाकर-श्रीश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृता-
वीश्वरसिंहचरित्रे राणाकस्य मिलनं नामैकादशः सर्गः ।

द्वादशः सर्गः

कोटाधिपः कुटिलताकलितस्तदानीं
राजाधिराजपरलोकगतिप्रहृष्टः ।
तस्यैकलिङ्गनृपतेः सविधे समेत्य
कार्यं चिरान्निजचिकीर्षितमाचचक्षे ॥ १ ॥

जयपुरनरपतिवंशे दुर्मतिदंशेन यच्चरित्रमभूत् ।
तदुदन्तभासिनीयं विलासिनी विवरणं वहते ॥

कुटिलतया (मन कालुष्येण) कलितो युक्त कोटाराज्याधिपति राजाधिराजस्य (जयसिंहस्य) परलोकगमनेन प्रसन्न । एकलिङ्गनृपते मेवाडदेशाधिपते (जगत्सिंहस्य, द्वितीयस्य) समीपे आगत्य चिरकालात् कर्तुमभिलषित कार्यं कथयामास ॥१॥

भो एकलिङ्गशिवराज्यभरप्रधान
हिन्दूपते भृशमिदं मनसाऽवधेहि ।
वृन्दावतीपुरपरिव्रढिमाऽन्यदीयो-
ऽन्यस्मै बलात् स जयसिंहनृपेण दत्तः ॥ २ ॥

एकलिङ्गाख्यस्य शिवस्य राज्यभरे राज्यमण्डले (मेवाडे) प्रधान ! मनसा भृशम् अत्यन्तम् अवधानं देहि । अन्यदीय अन्यस्य स्वामित्वयोग्य 'वुन्दी'नगरस्य परिव्रढिमा (परिवृढता, स्वामित्वम्) अन्यस्मै (दलेलसिंहाय) दत्त ॥२॥

[दशमसर्गस्य २८ तमश्लोकस्य टिप्पणी द्रष्टव्या]

[जोबनेरसंस्थानाधिपतिरावबहादुर डा० नरेन्द्रसिंहमहोदयेन लिखिते 'महाराजसवाईईश्वरीसिंहस्येतिहासे' एवं वर्णितम्— 'महाराजे जयसिंहे परलोकमुपगते एव कोटाधिपतिर्महाराजो हाडादुर्जनसालो बुन्दी हस्तगतां कर्तुं निजराजनीतिप्रयोगमारभत । स हि हाडाबुधसिंहतनयात् उम्मेदसिंहात् सैन्यव्ययार्थं लक्षमुद्राणामाभूषणानि गृहीत्वा तस्य साहाय्यं कर्तुं निजखड्गं सज्जीचकार ।' स हि उदयपुराधिपतिं महाराणामहोदयमस्मिन् षड्यन्त्रे सम्मिलितं कर्तुमुदयपुरं प्रातिष्ठत । मध्ये श्रीनाथदर्शनाय स्वयं नाथद्वारमगात् । तस्मात् स्थानात् 'नाहरमगरा' स्थानमुपजगाम । तत्र महाराणाजगत्सिंहमहोदयेन सह मन्त्रणामकरोत्— अहं भवद्भागिनेयाय माधवसिंहाय, एवमेव बुन्दीराज्याधिकारिणे उम्मेदसिंहायाऽपि आवयोर्द्वयोः सम्मिलितशक्तिसाहाय्येन राज्यसिंहासनं दापयितुमिच्छामि । अत साम्प्रतमेतस्या देशकालयोरनुकूलताया (अर्थात् जयसिंहमहाराजस्य परलोकगमने सवृत्ते), विलम्बकरणमनुचितम्' ... इत्यादि ।] (सन् १९३९ मुद्रिते चतुर्थसंस्करणे पृ० ३३ ।)

प्राप्नोतु तं तव बलेन धनी तदीयः
स्थानान्तरं पुनरुपैतु दलेलसिंहः ।
एवं कृते भवति भाविकमन्यथा तु
भाव्यं रणेन बहुवीरनरक्षयेण ॥ ३ ॥

तव बलेन पराक्रमेण तदीयो धनी (तस्य स्वामी) त (वृन्दावतीपरिवृढिमानम्) प्राप्नोतु । स्थानान्तर निज स्थान करवडाराज्य पुन उपैतु गच्छतु । एव कृते सति भाविक कल्याण भवति । अन्यथा तु बहूना वीरनराणा क्षयो यस्मात्तादृशेन रणेन भवितव्यम् ।।३।।

आयोधनं स्वपरसंक्षयकारि तावत्
कर्तव्यमत्र विषये न दुराग्रहेण ।
युष्माकमावसथमागत एष बोध्यः
श्रीमान्महासुमतिरीश्वरसिंहदेवः ॥ ४ ॥

आयोधन युद्ध स्वस्य परस्य च सक्षयकारि (अस्ति) । अत्र विपये दुराग्रहेण (दुष्टेन हठेन) न कार्यम् (प्रयोजनम्) । एपः (ईश्वरसिंहः) युष्माकम् आवसथम् (आवास, गृहम्) आगतो ज्ञातव्य , अतिशीघ्रमायास्यतीति तात्पर्यम् ।।४।।

यातस्ततः सहजसौष्ठवसज्जितेन
द्राघीयसा परमभीममनोहरेण ।
सिन्धूपमां कलयता महता बलेन
राकासुधांशुरुचिरीश्वरसिंहभूपः ॥ ५ ॥

तत तदनन्तर राकासुधाशुरुचि पूर्णिमाचन्द्रकान्ति ईश्वरभूप सहजसौन्दर्यपूर्वक सज्जीकृतेन परम भयकरेण तथापि सुन्दरेण द्राघीयसा अतिदीर्घेण अत एव समुद्रोपमा धारयता महता सैन्येन सहित तत्र यात मेवाडाधिपते समीप प्राप्त ।।५।।

तेनैकलिङ्गनृपतेः शिबिरोपकण्ठं
माद्यन्मतङ्गजघटामदवारिवृष्ट्या ।
उद्गाढपङ्कमभवत्त्वरितं तदेव
शुष्कं तुरङ्गमखुरैः प्रकृतिं दधौ स्वाम् ॥ ६ ॥

तेन (तस्याऽऽगमनेन) मेवाडाधिपतेः शिबिरोपकण्ठ (सेनावासस्य समीपदेशः) मत्तस्य कुञ्जरसमूहस्य मदजलवृष्ट्या गाढकर्दममभवत् । किन्तु शीघ्रमेव घोटकानां खुरैः शुष्कं सत् तदेव (पङ्किलमेव-उपकण्ठम्) स्वां प्रकृति स्वभाव धारयामास, शुष्कमभूदित्यर्थ ॥६॥

राणाकस्य तदा व्यभूषि शिबिरद्वाराङ्गणं संगतै-
स्तुङ्गैरीश्वरसिंहभूपतिमदस्तम्बेरमैः सध्वजैः ।
यद्वद् व्योम पुरन्दरेण नितरामुद्भावितैर्वारिदै-
र्वर्षद्भिर्वरवारिविन्दुविसरं विद्योतितेन्द्रायुधैः ॥ ७ ॥

यथा पुरन्दरेण (इन्द्रेण) प्रकटीकृतै., सुन्दर जलविन्दुसमूह वर्षद्भि विद्योतित दीपितम् इन्द्रायुधम् (इन्द्रधनु) यै. तादृशै वारिदैर्मेघैः यथा व्योम (आकाशम्) विभूष्यते तथा सगतै समूहीभूतै उन्नतै पञ्चरङ्गध्वजसहितै ईश्वरसिहभूपतेः मदयुक्तै हस्तिभिः राणामहोदयस्य स्कन्धावारस्य द्वारदेशः व्यभूपि । मदविन्दूना वरिविन्दूना च, पञ्चरङ्गध्वजानाम् इन्द्रधनुपा च, हस्तिना मेघानां च, ईश्वरसिंहस्य इन्द्रस्य च मिथो विम्वप्रतिविम्वभाव. । शिविराङ्गणस्य व्योम्नश्चोपमेयोपमानभावो वोध्यः ॥७॥

राणाकस्य गृहाङ्गणं वहुविधैर्वर्णैर्मनोहारिभिः
श्रीशालीश्वरसिंहभूपतुरगैरुच्यद्भिराभूषितम् ।
यद्वत्कीरमयूरकोकिलमुखैः कान्त्या विचित्रैः खगैः
शोभाशालि महानदस्य शरदि स्वच्छं महत्सैकतम् ॥ ८ ॥

कान्त्या (वर्णच्छटया) विलक्षणैः खगैः पक्षिभि' शोभाशालि यथा महानदस्य विशाल सैकत (पुलिनम), तथा नानाविधरङ्गैर्मनोरमै उच्छलद्भिः ईश्वरसिंहस्य अश्वैः राणाकस्य गृहाङ्गण विभूपितम् ॥८॥

चञ्चन्मौलिकरत्नकाञ्चनमयैर्माणिक्यमुक्ताञ्चित-
प्रोद्यत्कुथकम्वलावृतमहामातङ्गसंयोजितैः ।
आरूढेश्वरसिंहभूपतिकृपापात्रैकतत्तज्जनै
राणाकस्य तदा रराज शिबिरद्वाराजिरं स्यन्दनैः ॥ ९ ॥

माणिक्यमौक्तिकसशोभितैः भासमानेन पृष्ठास्तरणेन सवेष्टितैः महागजै संयुक्तैः, येषु ईश्वरसिंहभूपस्य कृपापात्राणि ते जना आरूढाः एतादृशैः स्यन्दनैः (रथैः) राणाकस्य स्कन्धावारद्वाराङ्गण शुशुभे ॥९॥

पूर्वं पत्तिभिरुद्भटैरसिलताचर्मोद्धुरैः कैश्चन
स्कन्धारोपितकार्मुकैः कटितटप्रोद्बद्धतूणैः परैः ।
अन्यैरुद्धृतशक्तिभिः सुभटतासंपन्नधीराशयै-
राकीर्णं द्रुतमेकलिङ्गनृपतेर्द्वाराङ्गणक्ष्मातलम् ॥१०॥

पूर्व खड्गचर्म(ढाल)भिः प्रचण्डैः कैश्चित् पदातिभि, स्कन्धस्थापितधनुष्कैः कटिभागवद्धनिषङ्गैः परै (अन्यैर्योद्धृभि), सुभटतया सपन्नः धीर आशयः (हृदयम्) येषामीदृशैः स्कन्धस्थापितभुशुण्डी('बरछी')कैश्च अन्यैः योद्धृभिः मेवाडभूपतेः द्वाराङ्गणभूतलम् आकीर्णं व्याप्तम् ॥१०॥

तत्पश्चाद्धृतपञ्चरङ्गरुचिरप्रोद्यत्पताकापटै-
र्मातङ्गैर्मदनीरनिर्भरधरैः प्रावृट्पयोदोपमैः ।
अश्वैस्ताननु भृत्यहस्तकलितस्वर्णस्फुरद्दामभिः
प्रोद्बद्धैः पृतनाग्रयायिभिरभिव्याप्तं समन्तादभूत् ॥११॥

तदनन्तर धृताः पञ्चभिर्वर्णैः सुन्दरा प्रस्फुरन्त ध्वजपटा यैः, तै नीरनिर्भरण-वर्णादिभि वर्षाकालिकमेघसदृशैः गजैः । तान् (मातङ्गान्) अनु (पश्चात्) भृत्यहस्ते गृहीता स्वर्णनिर्मितशृङ्खला येषा तादृशैः सेनायामग्रगामिभि अश्वैः भूतल व्याप्त--मभूत् ॥११॥

अथ मुखभणितप्रतापशब्दैः
सुललितवेत्रलतासनाथहस्तैः ।
सपदि परिवृतः पदातिलोकै-
र्नरपतिरीश्वरसिंह आजगाम ॥१२॥

मुखेन उच्चारिता. राज्ञः प्रतापसूचकाः शब्दा यैः तादृशैः, वेत्रधारिभिः पदातिजनैः परिवृतः ईश्वरसिहः आजगाम ॥१२॥

महान्तं मातङ्गं कनकमणिभिर्मण्डिततनुं
समारूढश्चञ्चच्चमरयुगसंवीजिततमः ।
स्वपश्चादारूढप्रवरसचिवेनान्वित इतः
प्रयातो राजेन्द्रः शिरसि विशदच्छत्रसुभगः॥१३॥

ईश्वरसिंहस्य विजययात्रास्वरूपमाह—सुवर्णेन मणिभिश्च भूपितशरीर महा-गजम् आरूढ चामरद्वयेन उभयतो वीजित, स्वस्य पश्चात् (पृष्ठभागे) गजमारूढेन श्रेष्ठेन सचिवेन युक्त, शिरसि विशदेन (धवलस्वच्छेन) छत्रेण सुन्दर राजेन्द्रः (ईश्वरसिंह) प्रयात. ॥१३॥

तदैकलिङ्गक्षितिपो निजासनाद्
द्रुतं समुत्थाय समेतबान्धवः ।
समाजसंस्थैरनुचारिभिर्युतः
समाययौ श्रीश्वरसिंहसंमुखम् ॥१४॥

समेता. सगताः बान्धवा येन तादृशः, बन्धु-बान्धवसहित इत्यर्थ । सभासस्थितैः निजानुचरै युक्त समुख समाययौ ॥१४॥

स सपदि पटभित्तिं मेयाय यत्र
स्वयमवनिपतीनां तिष्ठति द्वारपालः ।
समुचितविनयाढ्यस्तत्प्रदेशस्थ एष
द्रुतमवनिपतीन्द्रेणाऽमुना संगतोऽभूत् ॥१५॥

स (मेवाडेश्वरः) द्वारम् एयाय आजगाम, यत्र भूपतीना द्वारपाल. तिष्ठति । तत्प्रदेशस्थितः विनयसहित. एतेन भूपतिश्रेष्ठेन सगत समिलित अभूत् ॥१५॥

दृग्भ्यां दृशौ समुपगम्य परस्परं तौ
संयोज्य भूय उपनीय करौ हृदन्तः ।
दोर्भ्यां च दोर्युगलमेलमुभौ विधाय
प्रेमावलोकनमलं खलु चक्रतुस्तौ ॥१६॥

समुपगम्य समीप प्राप्य, मिथ· नेत्राभ्या नेत्रे सयोज्य, हृदयोपरि करौ सस्थाप्य, तौ बाहुभ्या बाहुयुगलस्य मेलन विधाय, मिथ प्रेमपूर्वकमवलोकनम् अल यथा स्यात्तथा चक्रतु ॥१६॥

आत्माग्रतस्तदनु भूरितरादरेण
कृत्वैकलिङ्गनृप ईश्वरसिंहभूपम् ।
प्रोत्तुङ्गशोणपटमण्डपमध्यमेत्य
राजासनं सपदि तौ समधिष्ठितौ द्वौ ॥१७॥

तदनु मेवाडेश्वर आत्मनः अग्रत अत्यादरेण ईश्वरसिंहभूप कृत्वा विशाल रक्तवर्ण पटमण्डप प्राप्य द्वावपि तौ राजोचित सिंहासनम् अधिष्ठितौ ॥१७॥

परस्परं संसदि जायमाने
तयोः शुभालापवचःकलापे ।
तदन्तरे दुर्जनशल्यवाक्यं
तमेकलिङ्गाधिपतिर्जगाद ॥१८॥

ससदि सभायाम् । शोभने आलापे (मिथ सलापे) ·वचसा कलापे (समूहे) जायमाने सति । दुर्जनाना कृते शल्यभूत वाक्य मेवाडेश्वरो जगाद ॥१८॥

एकान्ते किमपि निवेदनीयमस्ति
श्रीमत्सु क्षितिपतिमण्डलाग्रणीषु ।
तेनान्तश्चलतु महामहीमहेन्द्रो
यत्र स्यात्समुचित आवयोर्विचारः ॥१९॥

क्षितिपतीना मण्डलस्य अग्रगण्येपु श्रीमत्सु । महान् महीमहेन्द्र राजा । अन्त: अभ्यन्तरे ॥१९॥

इत्युक्त्वा नरपतिरेकलिङ्गनाथः
प्रोत्थातुं सदसि स यावदिच्छति द्राक् ।
तावत्तत्क्षणमयमीश्वरेण राज्ञा
प्रत्युक्तस्तदखिलहार्दवेदनेन ॥२०॥

द्राक् झटिति यावत् प्रोत्थातुमिच्छति तावत् अथ (राणाक.) अखिलं हार्द हृद्गत विचार वेत्ति तादृशेन ईश्वरेण राज्ञा प्रत्युक्त. ॥२०॥

उक्तं किं वा श्रीमता नोक्तमुच्चै-
रन्यत्सर्वं यन्मयाङ्गीकृतं तत् ।
यन्मे पित्रा सम्यगेकस्य दत्तं
बुन्दीराज्यं तत्किलैकं विहाय ॥२१॥

किं वा वक्तव्य श्रीमता नोक्तम् ? सर्वमेव उक्तमित्यर्थः । मम पित्रा एकस्य यद् बुन्दीराज्य दत्तम्, एक तद् विहाय तत्सर्वं मया भवदुक्तम् अङ्गीकृतम् । एकस्मै इति सम्प्रदानस्थाने एकस्य इति संबन्धषष्ठीकथनेन—तत्सबन्धि बुन्दीराज्य मया साम्प्रतमङ्गीकृतम्, सर्वथा तु न दत्तम् । यदाऽहं वाञ्छामि तदा आच्छेत्तुमपि मे सामर्थ्यमिति निजस्य प्रमुखत्वं व्यज्यते ॥२१॥

दिल्लीपतिः किल महम्मदसाहनामा
जागर्ति संप्रति जगद्वलयेऽस्य राज्यम् ।
तस्यैव तावदधिगम्य निदेशपत्रं
बुन्दीं प्रशास्ति सुखमेव दलेलसिंहः ॥२२॥

मुहम्मदशाहनामा दिल्लीपतिरस्ति । भारतजगन्मण्डले अस्य स्वामित्वम् उज्जृम्भते । दलेलसिह तस्यैव आज्ञापत्रं प्राप्य बुन्दी सुख शास्ति [निजभारमन्यस्मिन्नारोप्य विपन्निवारणनीतिः सेयम्] ॥२२॥

श्रीसार्वभौमस्य निदेशपत्रं
तत्कोऽन्यथा कर्तुमिहास्ति शक्तः ।
आस्तां तदप्येतदिहान्यराज्य-
मस्माभिरात्मीयबलाद् गृहीतम् ॥२३॥

एवं तदन्योपि किलास्मदीय-
हस्तात्प्रगृह्णातु बलेन तावत् ।
खुरैर्हयानामसिधारया च
वीरेण भोग्यां भुवमामनन्ति ॥२४॥

तदेतत् अपि आस्ताम् (अर्थात् अस्माभिरेव अन्यस्य राज्य गृहीतम् इत्येव अभ्युपगच्छामः), अन्यस्य राज्यम् अस्माभि· आत्मनो बलाद् गृहीतम्, एवम् अन्योऽपि अस्मदीयहस्तात् बलेन गृह्णातु ॥ खुरैर्हयानामिति० यस्य सैन्यबलम्, निजभुजबल चास्ति स एव भूमिं भुङ्क्ते इत्याशयः ॥२३-२४॥

बलेन शक्तो यदि दुर्जनोऽद्य
तदा स गृह्णातु सुखेन बुन्दीम् ।
अस्मासु सामर्थ्ययुतस्य तस्य
प्रश्नः किमर्थोऽयमिदं न विद्मः । ॥२५॥

यदि दुर्जनसिंहः (कोटाधिपतिः) बलेन बुन्दी ग्रहीतु शक्तः तदा सुख गृह्णातु । अस्माक मध्ये सामर्थ्यशालिन तस्य सोय प्रश्न किंप्रयोजन, इद न विद्म· ॥२५॥

त्वमेकलिङ्गक्षितिपालराज्य-
प्रधान तामाद्रियसे नु वार्ताम् ?
या केनचित् क्षुल्लकदुर्जनेन
मौढ्यात्प्रयुक्ता विदुषामयोग्या ॥२६॥

मेवाडभूमीन्द्रेपु प्रधान ! त्वमपि किं ता वार्तां वहु मन्यसे या केनचित् क्षुद्रेण दुर्जनेन प्रचारिता ? एपा विवेकिनामयोग्या ॥२६॥

तदा गतोऽभूत्किल दुर्जनः क्व
क्षणाद्यदा विन्दुमती गृहीता ।
आस्माकवीरैः शिर एतदर्थ-
मुप्तं क्षितौ बीजमिवाऽत्यमोघम् ॥२७॥

अस्मदीयसैनिकवीरैः एतदर्थम् अतिअमोघम् सफलताबीजमिव भूमौ निजशिर· उप्तम् ॥२७॥

इत्याकर्ण्य क्षितिपरिवृढान्वायचूडामणेस्त-
च्छौर्यावेशप्रभवमनघं भाषितं श्रीश्वरेन्दोः ।
राणाकस्य स्वकथितवचोमानहानेर्नितान्तं
तूष्णींभावो वदनकमले तत्क्षणं संबभूव ॥२८॥

क्षितिपरिवृढा० राजश्रेष्ठाना वशे चूडामणिभूतस्य ईश्वरसिंहस्य शौर्यविशात्प्रकटीभूतम् अत एव निर्दोष वचनम् आकर्ण्य । स्वकथितवचस अपमानवशात् लज्जया तूष्णीभावो वभूव ॥२८॥

ततः स वार्तान्तरचालनच्छलात्
　　पुरोक्तवृत्तस्य तदैव विस्मृतिम् ।
प्रदर्शयामास मनस्तु तापितं
　　स्वमानहानेः सुचिरं न शाम्यति ॥२९॥

स (मेवाडेश्वरः) अन्यवार्ताप्रसङ्गोत्थापनव्याजात् पूर्वोक्तवृत्तस्य (दुर्जनसिंहवृत्तस्य)विस्मरण नाटयामास। स्वमानहानिवशात् सतापित मनस्तु न शान्तं भवति ॥२९॥

हृदि विप्रतिपत्तिमुद्गतां ता-
　　मिह नाऽज्ञापयदेकलिङ्गराजः ।
स्मितमञ्जुलमालपंस्तदानीं
　　मधुरेणैव समापयत्तमां सः ॥३०॥

हृदये उत्पन्नाम् विप्रतिपत्ति (विरोधभावम्) न अज्ञापयत् असूचयत् । स्मितेन मधुर यथा स्यात्तथा सलपन् स अनुकूलेनैव प्रसङ्गेन सलाप समापयामास ॥३०॥

ततोऽन्योन्यं भूयः प्रणयमधुरैर्वाक्यरचनै-
　　रुभौ तौ चक्राते सुचिरमुचिताऽऽलापघटनाम् ।
स्वयं राणाकेन द्विपतुरगमाणिक्यनिवहः
　　कृतो यस्तद्दृष्टौ स तु तदुररीकारमकरोत् ॥३१॥

प्रीतिमधुरैं वाक्यै चिरकाल यावत् उचितमालाप चक्रतु । राणाकेन गजादिसमूह य तस्य (ईश्वरसिंहस्य) दृष्टौ कृतः ['नजर किया' इत्यस्यानुवाद.] स तस्य उररीकार स्वीकारमकरोत् ॥३१॥

इत्येवमन्योन्यमुभौ मिलित्वा
　　प्रकाशयन्तौ मनसः प्रसादम् ।
समुत्थितां विप्रतिपत्तिमेतां
　　न व्यञ्जयामासतुरन्तरस्थाम् ॥३२॥

उपरित. मनसः प्रसन्नता प्रकटयन्तौ तौ अभ्यन्तरस्थिता विप्रतिपत्तिम् (विरुद्ध-भावम्) न प्रकटयामासतु ॥३२॥

हस्त्यादिवस्तुप्रकरो महार्घ-
स्तस्याग्रतस्तेन कृतस्तमेनम् ॥
दृगुदानमात्रादनुगृह्य सर्वं
समाददौ श्रीश्वरसिंहभूपः ॥३३॥

गजादिवस्तुसमूह तस्य अग्रे यः कृतः तत्सर्वं दृष्टिदानमात्रेण अनुग्रहं कृत्वा ईश्वर स्वीचकार ॥३३॥

सुवर्णमुक्तामणिरत्ननिर्मितं
मनोज्ञहंसाकृति चित्तमोहनम् ।
विचित्रताम्बूलनिधानभाजनं
स्वयं न्यधादीश्वरभूपतेः पुरः ॥३४॥

हसस्य आकार इव आकारो यस्य ईदृश ताम्बूलभाजनं स्वय स्वहस्तेन राणाकः ईश्वरसिहस्य अग्रतः स्थापयामास ॥३४॥

स एकलिङ्गक्षितिपेन तत्क्षणे
स्वयं पुरस्तान्निहितादमत्रतः ।
उपात्तताम्बूलजवीटिकाद्वय-
स्ततस्तमामन्त्र्य गृहात्समागमत् ॥३५॥

मेवाडाधिपतिना स्वयम् अग्रे स्थापितात् अमत्रत· पात्रात् गृहीतं ताम्बूलवीटि-काद्वयं येन स (ईश्वरः) आमन्त्र्य गमनकालोचित वार्तालाप कृत्वा गृहान् आजगाम ॥ ३५ ॥

राणाद्वयस्तेन महीभृता समं
संगम्य सोऽत्यन्तविचित्रिताशयः ।
सामर्षसंतोषभयप्रसादरुट्-
सावेगसंक्षोभपरम्परां दधौ ॥३६॥

गाम्भीर्यादिगुणान् दृष्ट्वा अत्यन्तं विचित्रितः विस्मित आशयः अन्त करणं यस्य स । 'मम समुखे एव मद्विरुद्धं भापते' इति असहनता अमर्पः । 'एवं प्रतापशाली अपि स्वय मत्समीपमुपगत.' इति सतोपः । 'कोटाधिपादिविरुद्धजनसहवासात् न जाने किं मया सह व्यवहरेत्' इति भयम् । 'एवमुन्नताशयोऽपि मया सह विनयेन व्यवहरतीति' प्रसन्नता । 'कारणोक्तावपि मद्विरुद्ध प्रत्यक्ष चेष्टते' इति रोप । 'अग्रे किमयं करिष्यतीति' सम्भ्रमात् आवेग. । 'अग्रे कथ मे निर्वाहः इति' हृदयविचलनात्संक्षोभ., एतेषा परम्पराम् एकस्मादुत्तरम् अन्यभावस्याभ्युदयपक्तिम् ॥३६॥

प्रसादवत्तामुपरि प्रदर्शयन्
अमर्षमन्तःकरणे विवर्द्धयन् ।
स एकलिङ्गक्षितिपोऽभवत्तदा
विचित्रभावाद्भुतरूपदर्शनः ॥३७॥

उपरि प्रसन्नता हृदये तु असहनतां संवर्धयन् अतएव मियोविरुद्धभावद्वयगोपनात् विचित्रेण भावेन अद्भुत रूप दर्शयति तादृश ॥३७॥

कदाचिदीशक्षितिपाकशासनः
स षष्टिसाहस्रतुरङ्गसादिभिः ।
समुच्चलद्भूरिबलावलोद्धतः
स्वलोकसन्मन्त्ररहस्यरक्षणः ॥३८॥

खलस्य कोटाधिपतेर्दुरात्मतां
विलोक्य कौटिल्यविशेषसंयुताम् ।
अहो असौ लावकशावकः कथं
गरुत्मतः साम्यमवाप्तुमिच्छति ॥३९॥

स आत्मना जम्बुकमात्र एव सन्
मृगाधिपानाक्रमितुं किमिच्छति ।
पदोन्मदिष्णुः शशपोतकः स्पृशन्
मतङ्गमौलिं नितरां बिभेति नो ॥४०॥

इति स्वचित्ते सुचिरं विचार्य स
क्षणात्तदन्तं प्रविधातुमुद्यतः।
विपक्षवाक्यानि विसोढुमक्षमः
क्षमः क्षणेनैव विपक्षतक्षणे ॥४१॥

निगूढमेव स्वबलं ततोऽखिलं
स सज्जयामास, नितान्तभीषणाः।
हयाश्च नागाश्च भटाश्च तत्क्षणात्
समे शरीरैः कवचावृतैर्बभुः ॥४२॥

ईश्वररूप. क्षितेः पृथिव्याः पाकशामन इन्द्रः षष्टिसहस्रसख्यैः अश्वारोहिभिः (सहितः) 'अश्वारोहास्तु सादिनः' अमरः। समुच्चलत् बहु बल (सैन्य) यस्य, एवं बलेन (शारीरिकबलेन) उग्रः, स्वकीयजनस्य, निजमन्त्रणायाः, रहस्यवृत्तस्य च सरक्षणतत्परः ॥

अतिकुटिलतायुक्ता कोटाधिपतेर्दुष्टतां विलोक्य। गरुत्मतः गरुडस्य ॥

आत्मना स्वस्वरूपेण शृगालमात्रः स सिंहान् आक्रमितु किमिति इच्छति ? उन्मदिष्णु. (उन्मत्तः) शशशावकः पदा चरणेन गजस्य मौलि मस्तक स्पृशन् न बिभेति ? ॥

क्षणात् तदन्त तस्य कोटाधिपतेः समाप्ति बुद्धित बुद्धिद्वारा प्रविधार्य निश्चित्य विपक्षस्य विरुद्धस्य (शत्रोः) वाक्यानि सोढुम् अक्षमः अशक्त । क्षणकालेनैव विपक्षस्य शत्रोः तक्षणे नाशने क्षमः ॥

सज्जयामास सनद्ध चकार। नागा गजाः। समे सर्वे। कवचाच्छादितैः शरीरै. शुशुभिरे ॥ ३८-३९-४०-४१-४२ ॥

प्रभातकाले भविताऽद्य कन्दुक-
प्रचालनक्रीडनमश्वसादिभिः।
इति स्वसैन्ये समघोषयत्तमा-
मसौ नृपः सर्वबलाधिरोहणम् ॥४३॥

अश्वसादिभिः अश्वारोहद्वारा प्रभातकाले कन्दुकप्रचालनक्रीडा (वर्तमानकाले 'पोलो' नाम्ना प्रथिता) भविता भविष्यति । इति असौ नृपः सर्वस्य बलस्य (सैन्यस्य) अधिरोहणं समारोहं (सज्जीभावम्) समघोषयत्तमाम् प्रकाशयाज्ञां प्रचारयामास ॥४३॥

निशावशेषेऽद्य निगूढमुत्थितै-
रितः समारुह्य महोद्भटैर्भटैः ।
विपक्षसेनोपरि वज्रकङ्कट-
च्छन्नैरकस्मात्पतिता किलास्म्यहम् ॥४४॥

उदन्त एष प्रसरत्वितो बहि-
र्न जातु षट्कर्णतया न भिद्यताम् ।
प्रकारमेनं समुपाश्रिता नृपा
जयन्ति शत्रून्वशयन्ति मेदिनीम् ॥४५॥

इति स्वकीयेषु कृपास्पदेष्वलं
सुहृत्सु वीरेषु नरेषु सर्वशः ।
स बोधयित्वा स्वचिकीर्षितं नृपो
निगूढसज्जं स्वबलं निशि व्यधात् ॥४६॥

निशाऽवशेषे अतिप्रभातकालात्पूर्वमेव । निगूढम् गुप्तम् जागृतैः । वज्रकङ्कट-च्छन्नै अतिदृढकवचाऽऽच्छन्नैः, 'उरश्छदः कङ्कटक' इत्यमर । महोद्भटै अत्युग्रैः वीरैः सह समारुह्य (सन्नाहं कृत्वा) विपक्षसेनाया उपरि अकस्मात् पतिता अस्मि पतिष्यामि आक्रमणं करिष्यामि ॥

एष वृत्तान्तः इतः अस्मात् स्थानात् बहिः न प्रसरतु । 'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः' एतदनुसारम् अन्यत्र न भिद्यतां प्रकाश्यताम् । एनं मन्त्ररक्षणरूपं प्रकारम् आश्रिताः नृपाः पृथिवीं वशयन्ति वशीभूतां कुर्वन्ति ॥

इति सः निजकृपापात्रेषु वीरनरेषु स्वचिकीर्षितं बोधयित्वा स्वस्य बलं सैन्यं निगूढमेव सज्जं सन्नद्धं व्यधात् ॥४४-४५-४६॥

रथतुरगगजानामुद्भटानां भटानां
सधनुरिषुकृपाणीचर्मवर्मोद्धुराणाम् ।
अखिलनिशि निगूढं सज्जतां युद्धयोगं
कथमयतु न शब्दः शृण्वतां कर्णदेशम् ॥४७॥

धनुर्भिः सहिता ये इषवः बाणाः, कृपाणीचर्मणी ('तलवार ढाल'), चर्म कवचम् एभिः उद्धुराणाम् उग्राणाम् उद्भटाना प्रचण्डानाम् अखिलरात्रौ गुप्तं यथा स्यात्तथा युद्धस्य समायोग सज्जीकुर्वता भटाना शब्दः (शस्त्र-वस्त्रादिध्वनिः) शृण्वता जनाना कर्णदेशं कथ न अयतु गच्छतु ? अपि तु गच्छेदेव ॥४७॥

एतत्कर्णाकर्णिकामेत्य वृत्तं
राज्ञो राणाकस्य सैन्यं जगाम ।
श्रुत्वा दूतादेकलिङ्गक्षितीशो
भूयो भूयश्चित्तभीत्या चकम्पे ॥४८॥

कर्णाकर्णिका एकस्य कर्णाद् द्वितीयस्य कर्णमिति कर्णपरम्पराम् एत्य । दूतात् श्रुत्वा चित्तागतया भीत्या कम्पते स्म ॥४८॥

ततः परं प्रातरवेक्ष्य सम्यक्
सुसज्जितं श्रीश्वरसिंहसैन्यम् ।
स्वयं स तत्संनिधिमाजगाम
तं दुर्जनं घ्नन्तमवर्जयच्च ॥४९॥

ईश्वरसिंहस्य सैन्य सज्जीभूत विलोक्य स (मेदपाटेश्वरः) तस्य ईश्वरसिंहस्य सनिधिम् (समीपम्) स्वयम् आजगाम । घ्नन्त युद्ध कुर्वन्तम् अवर्जयत् निवारयामास ॥४९॥

तयोर्द्वयोः संप्रति सेनयोः स
भूत्वाऽन्तरे दुर्जनमेवमाह ।
अरे व्रजेतो द्रुतमीश्वरेण
त्वमाशु नूनं निहतोऽद्य न स्याः ॥५०॥

दुर्जनं दुजर्नसिंह (कोटाधिपम्)। इतः व्रज दूरे गच्छ। त्वम् अद्य नूनम् ईश्वरेण नहत न भवेः, त्वम् ईश्वरद्वारा मारितो भविष्यसीति संभावना ॥५०॥

इत्येवमीश्वरनरेन्द्रमृगेन्द्रभीते-
निःसार्य दुर्जनमपि स्वकृपैकपात्रम्।
भूयः स तं नृपघटामुकुटैकरत्नं
पृष्ट्वैकलिङ्गनृपतिः स्वपुरं जगाम ॥५१॥

इति श्रीमदीश्वरविलासे महाकाव्ये श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृतौ
राणाकृष्य मिलनं नाम द्वादशः सर्गः।

ईश्वरसिंहनरेन्द्ररूपस्य मृगेन्द्रस्य सिंहस्य भयात् दुर्जनसिंहं निःसार्य दूरे कृत्वा। अपिना 'स्वभावात् स दुर्जन (दुष्टः) तथापि निजकृपायाः एकमात्रं पात्रमिति हेतोः न सार्य' इति व्यन्यते। नृपसमूहस्य मुकुटानाम् एकरत्नं राजसु श्रेष्ठमित्यर्थः ॥५१॥

इतिहासविकाशिन्यां विलासिन्या समाप्यते।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्गं एकादशोत्तर ॥१॥

गाथा येन हि संस्कृते विरचिताः, क्लृप्ताऽथ टीका, ततः
कादम्बर्यपि टिप्पणेन विवृता, व्याख्यायि गङ्गाधरः।
विद्या येन निबन्धनाय जनिता, संकीर्तिता भारती,
नानावैभवघोरणीरचयिता सोयं हि टीकां व्यधात् ॥२॥

सातवाहनकृता गाथासप्तशती 'संस्कृतगाथासप्तशती' नाम्ना गुम्फिता 'व्यङ्ग्य-सर्वङ्कषा' टीका च निर्मिता। कादम्बर्या उपरि 'चषक' नामकटिप्पणी, विस्तृता भूमिका च रचिता। जगन्नाथ-पण्डितराजविरचित 'रसगङ्गाधरस्य' मुद्रणपरिष्कारः, सरला टीका, विस्तृता भूमिका च व्यधायि। उत्तरपरीक्षोपयोगिना निबन्धाना शिक्षणाय 'निबन्धविद्या' विरचिता। 'सुरभारतीमहत्त्वम्' इत्यादि-शीर्षकैः संस्कृतभाषाया इतिहासो महत्त्वं विशेषतादयश्च प्रकाशिता। 'जयपुरवैभवम्, साहित्यवैभवम्, गोविन्दवैभवम्, भारतवैभवम्, इत्यादिका नानावैभवपङ्क्ति नवीनया छन्दश्छटया निबद्धा ॥२॥

त्रयोदशः सर्गः

अथ राष्ट्रभृतामधीश्वरो
मरुदेशावनिमण्डलेश्वरः ।
अभयाख्य इयेष मित्रतां
मिलनादीश्वरसिंहभूभृता ॥ १ ॥

भृश'मीशविलास'लास्यरङ्गे गुणसंगेन चमत्कृतिं दधाना ।
इतिहासविभासिनी विचित्रं सुचरित्रं वहते विलासिनीयम् ॥१॥

राष्ट्रभृता राज्यपालकानामधिप मरुदेशस्य यत् अवनि (भू) मण्डलं तस्य ईश्वरः । अभयसिंहनामा, ईश्वरसिंहभूपालकेन सह मेलनात् मित्रताम् इयेष वाञ्छितवान् ॥१॥

ततः समागात्परमानुरागात्
स तस्य भावः सरसस्वभावः ।
तयोर्द्वयोः संगतयोस्तदाभूत्
सहस्रभित्तं यवनस्य चित्तम् ॥ २ ॥

स' तस्य (ईश्वरसिंहस्य) भाव भगिनीपतिः परमादनुरागात् समागात् समागच्छत् । तयोर्द्वयोः नरेशयो सगतयो. सतो । भारतीयभूपालेषु परस्पर भेदभाववशात् भूतिमभीप्सतो यवनस्य (सम्राजः अहमदशाहस्य) चित्त सहस्रभित्त सहस्रसख्यानि भित्तानि खण्डानि यस्य तादृशमभूत् । 'भित्त शकलखण्डे वा' इत्यमर· । सहस्रधा अभिद्यतेत्यर्थ. ॥२॥

उभौ नृपौ हैन्दवसृष्टिमुख्यौ
तौ पुष्पवन्ताविव दीप्तिमन्तौ ।
यदा समेतौ भुवने भवेतां
तदा क्व तिष्ठेद्यवनान्धकारः ॥ ३ ॥

हैन्दवसृष्टौ (हिन्दुसमाजे) मुख्यौ, पुष्पवन्तौ सूर्याचन्द्रौ इव दीप्तिमन्तौ तौ द्वावपि राजानौ यदा समिलितौ भवेता तदा यवनरूप अन्धकार भुवने क्व तिष्ठेत् ?

अपि तु सर्वतो नश्येत् इत्यर्थ । एक एव सूर्यश्चन्द्रो वा अन्धकारनाशे पर्याप्त', किं पुनर्द्वयोरेवानयो: अन्धकारनाशे सनद्धयो: सतो ? द्वयोरेकत्र समागमे अमावास्यारूपस्य महान्धकारस्य शङ्का तु न । एककक्ष्यायाम् अभिन्नस्थानाऽवस्थितया सत्यामेव तथा सभवात् ॥३॥

अहो अयं हैन्दवदेश एत्य
पाश्चात्त्यदेशाद्यवनैर्गृहीतः ।
परस्परं विप्रतियद्भिरन्यः
स हैन्दवैरेव जनैरकारि ॥ ४ ॥

अय हिन्दूना देश. पाश्चात्त्य(अरबादिपश्चिमभव)देशात् आगत्य यवनै' (म्लेच्छै) स्वायत्तीकृत । परस्परं विप्रतियद्भि' विपरीतं गच्छद्भि. (वि-प्रति-उपसर्गाभ्याम् इण्‌धातो शतृ), मिथो विप्रतिपत्ति(भेद)युक्तै: हैन्दवैरेव लोकै स देश: अन्य' परकीय अस्वतन्त्र. अकारि कृत. ॥४॥

परस्परं संमिलने तदेषां
भवेत्तरां हैन्दवसृष्टिवृद्धिः ।
श्रुतिस्मृतिख्यातिकरश्च धर्मो
मुहुः प्रवृद्धेषु सुखाय लोके ॥ ५ ॥

तत् एपा (हैन्दव-जनानाम्) मिथ. सम्मेलने हैन्दवसर्गस्य अभिवृद्धि' भवेत्तराम् अत्यन्त भवेत् । तेपु हिन्दुपु मुहु प्रवृद्धेपु (वृद्धि गतेपु) सत्सु श्रुतीना स्मृतीनां च कीर्तिकर: सनातनधर्म लोकेषु सुखाय कल्याणाय भवेत् ॥५॥

इति स्वचित्ते प्रविचार्य तौ द्वौ
परस्परं संमिलितौ नरेन्द्रौ ।
अभूदुपेन्द्रेण समं महेन्द्रे
संमेलनं प्राप्तवतीव सा श्रीः ॥ ६ ॥

इति तौ द्वौ नरेन्द्रौ राजानौ स्वमनसि विचार्य मिथः समिलितौ (अभूताम्) । सा श्री: (लक्ष्मी: शोभा वा) उपेन्द्रेण (विष्णुना) सह महेन्द्रे समागम प्राप्तवती इव अभूत् । विष्णु-शक्रयो मिथ. समागमे या लक्ष्मी. सा तयो. समेलने अभूदित्याशय' ।

पूर्वत्र 'मिलनम्' इति तु 'गाङ् कुटादिभ्य -' इति सूत्रे कुटस्य आदि कुटादिरिति समासाश्रयणात् 'मिल' धातोरपि कुटादिषु सङ्ग्रहेण ङित्त्वाद् गुणाऽभावे बोद्धचः ॥६॥

अनुजः किल तस्य भूभृतः
कलयन्पूर्वविरोधसंस्मृतिम् ।
बखताख्य उपागतः खलः
कलिकौटिल्यकलङ्किताशयः ॥ ७ ॥

तस्य अभयसिंहस्य भूभृतः राज्ञः लघुभ्राता वखतसिंहः पूर्वस्य विरोधस्य संस्मृति कलयन् जागरयन्, अत एव खलः (दुष्ट) कलिकालकृतेन कौटिल्येन कलङ्कितमानसः सन् उपयातः ॥७॥

[पूर्वविरोधस्य स्मृतिं जागृता कुर्वन् इति—'पूर्वम् अयमभयसिंहः भवत्पितुर्जयसिंहदेवस्य मतिविरुद्ध बीकानेरनगरमाक्रमन् जयसिंहदेवेन पराजितः। जामाता सन्नपि जोधपुरनगरे आक्रान्त'। अत एव पितुर्विरोधिना सह कथं सुमिलसि, रहस्यानि च प्रकाशयसि' इत्यादिपूर्वविरोध स्मारयन्, इत्याशयः। वृत्तान्तोऽय ठा० नरेन्द्रसिंहमहोदयलिखिते 'महाराजस्येश्वरीसिंहस्येतिहासे' पृ० १८-२१ सूचितो द्रष्टव्यः। अत्र श्लोके 'कलिकौटिल्यकलङ्किताशय' इति प्रचुरनिन्दासूचनेऽपि पुन 'खल.' इति कुत्सासूचकं विशेषण दत्तम्। एवम्, अस्यैव सर्गस्य १०, २०, २३, २४ तमेषु पद्येष्वपि खलत्वविशेषण पुन पुनरदायि। 'रास'क्रीडादिषु प्रतिनायकस्य कंसादेर्निन्दासूचकमुपहासादि यथा जनैः क्रियते तथा नेद मन्तव्यम्। नापीदं तथा बोद्धव्यं यथा तत्तत्काव्येषु कविभिः प्रतिनायकस्य रावण-कंस-शिशुपालादेर्निन्दा स्थाने स्थाने सूच्यते तथैवेदमपीति। एतस्य तथ्य कारणमस्ति यत् इतिहासे वखतसिंहस्य चरित्रमतिकुटिलता'जघन्यतापूर्णं चित्रितम्। अथ वार वारं योधपुरराज्यलाभलोभेन भ्रात्रा अभयसिंहेन अकाण्डे युयुधे। आर्यविद्रोहिणा दिल्लीपतिं स्वजेष्ठभ्रातुर्विरोधे सोय दिल्लीतः समानेतु चेष्टा चक्रे। एतदाद्येव न, अथ वखतसिंहः स्वपितरमपि निर्दयो जघान। ठा० नरेन्द्रसिंहमहोदयेन 'महाराज सवाई ईश्वरीसिंहस्येतिहासे' एतद्विषये लिखितमस्ति यत्—"यदा महाराजोऽभयसिंहो वृत्तमिदमशृणोत्, निजपितृघातकस्य लघुभ्रातुर्वखतसिंहस्य विद्रोहितायाश्चिह्नानि चाऽपश्यत् तदा बीकानेरनगरस्य प्रत्यवस्कन्दनं ('घेरा') त्यक्त्वा तत्कालमेव निजनगर जोधपुर प्रत्यावर्तत। आसीत्तस्मिन्दिने होलिकामहोत्सव। होलिकापूजन, प्रज्वालन च विना तस्मिन् दिने प्रस्थान जनैरशुभमपि सूचित किन्तु समयस्य सर्कर्णता, प्रबलशत्रोराक्रमणस्य भयानकं भयं च ससूच्य स हि होलिकादण्ड शकटेष्वेव संस्थाप्य स्वराजधानीं प्रति प्राचलत्। मनसि निरधारयद् यत् मार्गे यत्र रात्रिर्भविष्यति तत्रैव होलिकादहनं करिष्यामीति। अनेन शत्रोराक्रमणस्य कीदृग् भयमासीदिति बहुतरमनुमातु शक्यते [ठा० नरेन्द्रसिंहमहोदयलिखितस्य पूर्वोक्तेतिहासस्य २१ पृष्ठम्]

यः श्रीसवाईजयसिंहदेवैः
पराजितो राष्ट्रभृतां समाजः ।
स एव तल्लाञ्छनलोपनार्थं
सुतेऽस्य शौर्यं प्रकटीकरोतु ॥ ८ ॥

विलुण्ठिता यन्मरुदेशलक्ष्मीः
पूर्वं विचित्रा भवदीयपित्रा ।
सा नः समस्ता तनयेन तस्य
प्रदीयते श्रीश्वर न त्वया किम् ॥ ९ ॥

इति मध्यगतेन मानवेन
प्रसभं पूर्वविरोधितानुबन्धी ।
खलताख्यलतातरुस्तदानीं
बखताख्यः कथयांबभूव वाक्यम् ॥१०॥

राष्ट्रभृतां राज्याधिकारिणा यः समाजः पूर्वं जयसिंहदेवेन विजितः पराजित. स राजवर्ग जयसिंहस्य सुते (अर्थात् भवति) पूर्वपराजयरूपस्य तस्य लाञ्छनस्य अपमानस्य प्रक्षालनार्थं निजस्य शूरता प्रकाशयतु । अर्थात् अयम् अवसरं प्राप्य पूर्वस्य पराभवस्य प्रतीकाराय युद्धायाऽपि सज्जो भवेत्, इति मिथो भेदं जनयितुं विरुद्धं सूच्यते ॥

भवदीयपित्रा (जयसिंहदेवेन) विचित्रा-अद्भुता, यादृशी पूर्वं न केनचित् विलुण्ठिता, हे ईश्वर ! सा लक्ष्मी. तस्य तनयेन त्वया (भवता) नः अस्मभ्यं किमिति न दीयते ? पूर्वविलुण्ठिताया लक्ष्म्या. प्रतिदानस्य सोयमवसर इति वारं वारमनुस्मार्यमिति गूढम् उपजाप सूच्यते ॥

इति मध्यस्थमनुष्यद्वारा पूर्वविरोधिताम् अनुबध्नाति सबध्नाति (मुहुर्मुहुः सूचयति) तादृश । खलताख्या दुष्टतानाम्नी या लता (वल्ली) तस्या आश्रयरूप. तरु वृक्ष, अत्यन्त खल इत्याशयः । ईदृश बखतसिंहः श्लोकद्वये प्रोक्तं वाक्यं कथयामास ॥८-९-१०॥

तदुत्तरं दातुमितः प्रहितः प्रहितो जनः ।
श्रीमत्कुशलसिंहस्य सचिवो रुचिराकृतिः ॥११॥

तस्य वखतसिंहवाक्यस्य उत्तर दातुम् प्रकर्षेण हितो जनः । श्रीमत. कुशलस्य रुचिराकृति सचिव अमात्य इत प्रहित प्रेषितः ॥११॥

[अयं कुशलसिंहो मरुदेशान्तर्गतस्य 'आवा' सस्थानस्याऽधिपति, चापावत इति क्षत्रियशाखाऽवटङ्क, ज्येष्ठभ्रातुरभयसिंहस्य प्रायश. पक्षगतः । अयमभयसिंहस्य मृत्युशय्याया शयानस्य मरुदेशरक्षाविषये सुदृढा सहायता प्रतिजज्ञे] (ठा० नरेन्द्रसिंहमहोदयलिखितस्येतिहासस्य पृ० ८१-८७) ॥११॥

स उक्तिदक्षः कलितस्वपक्ष-
स्तत्राऽवदद्भावविदीश्वरस्य ।
'कियद्गतं वो बलशालिनां तत्
धनं समग्रं वयमद्य दद्मः ॥१२॥

किं त्वेकमत्यद्भुतमच्छवस्तु
शुभं यशो नाम धनं महार्घम् ।
नीतं तदानीं जयसिंहवीरैः
शक्यं तदस्माभिरहो न दातुम् ॥१३॥

तुङ्गा मतङ्गास्तरलास्तुरङ्गा
रथाः सनानागजवाहयानाः ।
महार्घमुक्तामणिरत्नयुक्ता
लक्ष्मीः समस्ता निहिता पुरो वः ॥१४॥

या वः सहस्रायुतलक्षकोटि-
पारंगता नाम गतास्ति लक्ष्मीः ।
सा वः समस्तैव पुनः समेता
मा शोचत स्वे नयत श्रियं ताम् ॥१५॥

वचने चतुर. समर्थितस्वपक्षः ईश्वरसिंहस्य अभिप्रायवेदी सः (फकीरदास) अवदत्—"यूय तु आत्मान बलशालिन जानीथ, तत् तादृशाना युष्माक धन कियद् गतम् ? तत् समस्त वय दद्मः । किन्तु एकम् अत्यद्भुत स्वच्छं (शुभ्रम्) वस्तु कीर्ति-

नामक महामूल्य धनम्। यद्धि जयसिंहमहाराजस्य सुभटैरर्जितं तत् अस्माभिर्दातु न शक्यम् ॥

नानाविधैः गजवाहैः (हस्तिद्वारा चालनीयै) यानैः (शकटै.) सहिता रथा । महामूल्यै मौक्तिकमणिरत्नैः युता (मणयः खनिजाता, रत्नानि सर्वविशानि) समस्तापि लक्ष्मी. युष्माक पुर' (अग्रतः) स्थापिता ॥

लक्ष-कोटितोपि अधिका या युष्माक लक्ष्मीर्गता सा समस्तैव पुन. समेता सप्राप्ता। शोचन मा कुरुत । यूय स्वे स्वकीया, अत ता श्रिय नयत । 'स्वेन गताम्' इति पाठे तु स्वतो गता ता श्रिय मा शोचत, यत्ने कृतेऽपि दैवेच्छया स्थानान्तरिता लक्ष्मी मा शोचत इत्याशय ॥ राजाधिराजेन तु बलशालिम्मन्याना यशो नीतं यद्धि क्षत्रियाणा शोभायै । यूय तु मरुदेशस्य चरधनमितस्ततो दस्युवत् लुण्ठितु लालसा, इति व्यग्य-विधया आक्षेपो ध्वन्यते ॥१२-१३-१४-१५॥

इत्युक्तिसंनामितशत्रुशीर्षः
स्वस्वामिपक्षप्रथितप्रकर्षः ।
आदौ फकारेण युतः स कीर-
दासाह्वयः श्रीकुशलेशमन्त्री ॥१६॥

इति सव्यग्यया उक्त्या लज्जासपादनान्नीचीकृतमस्तक निजस्वामिपक्षस्य विस्तारितः उत्कर्षो येन—फकीरदासनामकः ॥१६॥

श्रीमत्सवाईजयसिंहदेवै-
र्युद्धं यशोर्थे कृतमुत्तमं तत्।
कार्ये धनार्थे त्वधमं भवद्भि-
र्मा कारि तत्तावदितीदमुक्त्वा ॥१७॥

धियां निवासः सुधियां निरासः
फकीरदासः फलवद्विलासः ।
द्विषत्परासप्रसभप्रहासः
पुनः समायात्सफलप्रयासः ॥१८॥

"धनम् अर्थः (प्रयोजनम्) यस्य ईदृशे कार्ये भवद्भिः अधम युद्ध मा कारि न कर्तव्यं तावत् (माङ्योगे लङ्)" इति इदम् उक्त्वा ॥

बुद्धीना निवास , सुधिया (पण्डिताना) निरासः पराजेता, सफल: विलास: (चेष्टित) यस्य । द्विषता वैरिणा परासन (परास्तीकरणम्) प्रसभम् एकान्त प्रहास क्रीडा यस्य स. । सफलप्रयत्न सन् पुन समागच्छत् ॥१७-१८॥

ततः परं षष्टिसहस्रसंमितैः
सकञ्चुकैर्वर्मपिनद्धवाहनैः ।
महोद्भटैरश्वनिषादिभिर्भटै-
र्जगर्ज सिन्धूपममैश्वरं बलम् ॥१९॥

सकञ्चुकैः सकवचै , वर्मभि (कवचै) आच्छादितानि वाहनानि येषा तैः । अत्यन्तम् उद्भटै विकटै । भटैः योधै सिन्धूपमम् गर्जन-विस्तारादिभि समुद्रसदृशम् ऐश्वरम् ईश्वरसिंहस्वामिक सैन्यम् अगर्जत् ॥१९॥

स तादृशेन स्वबलेन भीषयन्
विरोधिनं तं बखताह्वयं खलम् ।
तदात्मभावेन बभूव संगतो
मरुक्षमेशाऽभयसिंहवर्मणा ॥२०॥

तादृशेन पूर्ववर्णितप्रचण्डाऽनुभावेन स्वसैन्येन विरुद्ध त कुटिल वखतसिंह भीषयन् सन् तदा आत्मन स्वस्य भावेन भगिनीभर्त्रा मरुक्षमाया (धराया) ईशेन अभयसिंहवर्मणा सह सगत (समिलित) अभूत् ॥ ईदृश प्रचण्डसैन्यशाली यदा अभयसिंहाय साहाय्य ददाति तदा किं मे सामर्थ्यमस्य विरोध कर्तुमिति निजसगमेन वखतसिंहस्य भयमुत्पादयामासेत्याशय. ॥२०॥

अनुव्रतास्तं कतिचिन्महीभृतो
भजन्ति भट्टाधिपयादवादयः ।
निदेशतः श्रीश्वरसिंहभूपते-
स्त उद्धुराः प्रापुरलं प्रमर्दितुम् ॥२१॥

अनुगता ये भट्टाधिप ('भाटी') 'जादो' प्रभृतय महीभृतः (राजान.) तम् (ईश्वरसिंहम्) भजन्ति सेवन्ते, उद्धरा ते ईश्वरसिंहभूपतेः निदेशात (आज्ञात) त (वखतसिंहम्) अल (पूर्णतया) पराभवितु प्राप्ता ॥२१॥

अमुष्य भावोपि तमर्द्धराज्य-
विभागिनं नागपुराधिपालकम् ।
स शङ्कते भ्रातरमुग्रमात्मन-
स्तमोग्रहं भानुरिव ग्रहाधिपः ॥२२॥

अमुष्य (ईश्वरसिंहस्य) भाव भगिनीपतिः स. अभयसिंह. अपि अर्द्धराज्यविभाजक नागपुर(नागोर)शासकम् उग्रम् आत्मनः भ्रातरम्, ग्रहाणामधिप. भानुः सूर्यः तमोग्रहं (राहुम्) इव शङ्कते । ग्रहाधिपोऽपि सूर्यो यथा उग्राद् राहो· शङ्कां करोति तथा अभयोऽपि अर्द्धराज्यविभाजकाद् बखतसिंहात् सर्वदा शङ्कां वहतीत्याशय ॥२२॥

[नागोराधिपतिरनुजो भ्राता बखतसिंहो ज्येष्ठभ्रातुरभयसिंहस्य सकाशाद् जोधपुरस्य राज्यमपहर्तुं बहून् वारान् चेष्टां चक्रे । स हि दिल्लीपतिमहम्मदशाह नानाविधरहस्यानि संसूच्य सहायता कर्तुं प्रार्थयामास । मरुभूमेर्लब्धश्रीं लुण्ठितुमुत्कण्ठित सोऽपि सज्जो बभूव । अतएव सम्राजः साहाय्यं प्राप्य बखतसिंहो मरुभूमेरुपर्याक्रमणमकरोत् । इत अभयसिंहोऽपि बुन्दीस्थितस्य महाराष्ट्रस्य होल्करस्य सविधे पत्रं प्रेषयामास यत्—'पूर्वं यथा प्रार्थितमासीत्, तदनुसार ममोपरि महत्सङ्कटमुपस्थितम् । अनुजो यवनाना साहाय्यं प्राप्य मरुलक्ष्मीं लुण्ठितु कृताक्रमणोऽस्ति । अत एव बुन्दीपति सह कृत्वा शीघ्रमुपतिष्ठतु भवान् ।' त्वरितमेव हाडासैन्येन सहितो होल्करो मरुदेशाभिमुखोऽभवत् । माधवसिंहोऽपि रामपुरातो निजसेनामादाय अभयसिंहस्य साहाय्याय प्रतस्थे । सम्मिलितं महत्सैन्यमिदं 'साँभर' समीपे बखतसिंहस्य सेना संरुरोध । किन्तु होल्करो मध्यस्थो भूत्वा द्वयोर्भ्रात्रोर्मध्ये सन्धि कारयामास । अतएव युद्धात्पूर्वमेव सर्वेषामपि सहायकाना सेना यथागत प्रतिजगाम] । (महाराजस्येश्वरीसिंहस्य चरित्रं पृ० ७६—८०) ।

[मरुधराधीश अभयसिंहो मरणात्पूर्वं मतिदुःखितो भूत्वा निजसामन्तानुवाच—"मम मरणोत्तर विपरीतो ममाऽनुजो बखतसिंहो निश्चित मरुभूमिमिमामपहरेत् । मम कुपुत्रश्चायं रामसिंहो न तस्य प्रतिकर्तुं प्रभवेत् ।" एतदुपरि ठा० शेरसिंहो मेड़तिया, आवाऽधिपतिः कुशलसिंहश्चाँपावतश्चापि यावज्जीव मरुभूमेः कृते प्राणसमर्पण प्रतिजज्ञे । एतदनुसारम् अभयसिंहे दिवं गते दुर्बलहृदयो रामसिंहो दुर्व्यसननिपतितः सहायकान् आवाधिपति-कुशलसिंहचाँपावतप्रभृतीन् कोपयामास । ते रामसिंहस्य पक्षं त्यक्त्वा बखतसिंहमाश्रयन् । अतएव सहायकैः प्रपुष्टो बखतसिंह अहमदशाहस्य दिल्लीपतेश्चापि साहाय्य प्राप्य जोधपुरोपरि आक्रमण कर्तुं पूर्णां सज्जां चकार । इदानीमसहायो मरुदेशाधिपती रामसिंहो दीनभावेन निज श्वशुरं महाराजमीश्वरसिंह जयपुराधिपतिं रक्षायै प्रार्थयाचक्रे । महाराज ईश्वरसिंहः सेनया सहितः पुष्करतीर्थे मरुदेशाधिपतिना सगतोऽभूत् । किन्तु अन्ते राजोग सदया अजमेरे समागत्य बखतसिंह नागोराधिपतिं सर्वप्रकारैरभर्त्सयत् । आक्रमण कर्तुं न्यवारयत् । महाराजस्येश्वरसिंहस्य मन्त्रिणं केशवदासखत्रिन(खत्री)मपि जयपुरस्य सेना परावर्तयितुं प्रार्थयाचक्रे । अतएव प्रचण्डोऽसौ युद्धाऽग्निस्तत्रैव शम ययौ] (महाराजस्येश्वरीसिंहस्येतिहासः पृ० ८१-८६) [अयमभयसिंहो महाराजाधिराजजयसिंहस्य जामाता आसीत् । यौवने अयमपि राज्यलिप्सया प्रतिवेशिनः पीडयामास । किन्तु न्यायप्रियो महाराजो जयसिंहः स्वकीयस्यापि सम्बन्धिनो दुर्नीतिं नाऽभिननन्द । तथा हि अभयसिंहो जयसिंहा-

अभूदिति श्रीश्वरसिंहसंगतो
　　मरुत्तमेशोऽभयसिंहभूपतिः ।
तदा स एकाकितयाऽत्यधीरतां
　　दधार सद्यो बखताह्वयः किल ॥२३॥

दीना साहाय्यमवाप्य दिल्लीसम्राजो निदेशेन विद्रोहिणम् अहमदाबादाधिपतिं नवाबसरबलन्दखानं सर्वतो विजिग्ये, जघान च। ततोसौ अहमदाबादम्, गुर्जरप्रदेशं च हस्तगतं चकार। अनेन विजयेन प्रवृद्धसाहसोऽसौ बीकानेरराज्योपरि अभियानमकरोत्।

बीकानेरराज्यम् आकस्मिकमाक्रमणं सोढुं नाऽभवत्समर्थम्। अतएव बीकानेराधिपतिर्महाराजो गजसिंहः पर्यन्ततोऽभिभूतः सन् विचारयामास—"एवंविधात्प्रबलात् शत्रोः संरक्षायै कं शरणं व्रजेयम्। भारते साम्प्रतं महाराजो जयसिंह एव सर्वतः समर्थः। किन्तु जामातुः प्रातिकूल्ये स मां कथं संरक्षेत् ?"। अन्ते महाराजस्य न्यायप्रियता शरणागतवत्सलता च विचार्य सहि—

'अभोग्राह बीकाणगज मारूसमद अथाह।
गरुड छाडि गोविन्द ज्यों सहाय करो जयशाह।

इति दोहापद्यं विलिख्य प्रेषयामास। महाराजः करुणया द्रुतचित्तो निजं जामातरं सूचयामास यत्—'बीकानेरं कृष्णगढं च मरुदेशरूपस्य पक्षिणः पक्षौ जानामि। अतएव श्रीमतस्तदिदमेव समुचितं यद् भवान् बीकानेराक्रमणान्निजं सैन्यं परावर्तयतु। अधिकप्रश्नोत्तरयोर्नायं समयः। अत एवाऽऽग्रहात् सूचयामि—यदि भवानस्मिन्विषये मत्कथनस्याऽवहेलां कुर्यात्तर्हि स्मरणीयं यन्मम नाम जयसिंह इति'। किन्तु विजयदृप्तः अभयसिंहस्तदुत्तरेऽलिखत्—'बीकानेरं मम कुटुम्बिनाम्। अत एवास्मिन् विषये श्रीमत्कृतं भर्त्सनमिदं सुतरामनुचितम्। यदि श्रीमतो नाम जयसिंहस्तर्हि ममापि नाम अभयसिंहः'। एतदुत्तरं श्रुत्वा सत्यक्षत्रियो जयसिंहस्तत्कालमेव [विक्रमसंवत्सरे १७६७ तमे] प्रबलसैन्यमाज्ञापयामास। मन्त्रिणां सामन्तानां च सम्मतिरासीद् यद् बीकानेरं गत्वा अभयसिंहस्य पराजयः कर्तव्यः। किन्तु अवसरनीतिज्ञो महाराजो बीकानेरे न गत्वा जोधपुरोपरि प्रबलमाक्रमणं चकार। बीकानेराक्रमणे लग्नः अभयसिंहो यथैव संवादमिममशृणोत्, इतो लघुभ्रातुर्बखतसिंहस्य विद्रोहाचरणं चाऽऽकर्णयत्, तस्मिन्नेव समये तद्दिनकर्तव्यं होलिकादहनमप्यकृत्वा बीकानेरं परित्यज्य जोधपुराभिमुखोऽभवत्।

अभयसिंहश्छद्मवेषेण यथाकथंचिद् जोधपुरदुर्गं प्राविशत्। किन्तु महाराजजयसिंहस्याग्रे जोधपुरसंरक्षणमसंभवं ज्ञात्वा पर्यन्ते विनीतः सन् सन्धिं प्रार्थयाचक्रे। किन्तु नीतिज्ञः क्षत्रियमर्यादाभिमानी च जयसिंहो विंशतिलक्षरूप्यकाणि सैन्यव्ययं गृहीत्वा अभयसिंहं मुमोच। किन्तु इतिहासज्ञैः स्मरणीयं स्याद् यत् तदिदं जामातुर्द्रव्यं महाराजजयसिंहस्य स्वर्गवासोत्तरमीश्वरीसिंहो निजभगिनीपतये परावर्तयामास। परं क्षत्रियाणां नीतिदृश्यता यत् समये प्राप्ते जोधपुराधिपतिरभयसिंह, नागोराधिपतिः कनीयान् बखतसिंहश्चेत्युभावपि संगत्य जयपुरोपरि प्रबलमाक्रमणमकुरुताम्। किन्तु भारतैकवीरेण जयसिंहेन अजमेरस्य निकटे 'गगवाणा' स्थाने अग्रतः समागतस्य बखतसिंहस्य तथा पूजा प्रतिष्ठा च कृता यथा संमिलितापि सेयं मरुसेना रणक्षेत्रं परित्यज्य यथागतं जगाम] ।

(महाराजस्येश्वरीसिंहस्येतिहासः पृ० १८-२२) ॥ श्लो० २२

इति इत्थं मरुधराधीशः अभयसिंहभूपः ईश्वरसिंहेन संगतः अभूत् । तदा तु खलः वखतसिंहः एकाकित्वेन अत्यन्तम् अधीरताम् (विह्वलताम्) दधार ॥२३॥

परस्परं योधपुरस्य भूपतिः
स नागवन्नागपुराधिपः खलः ।
यदा सशङ्कौ भवतः परस्परं
तदा परेषां ननु सिद्धमीप्सितम् ॥२४॥

योधपुरस्य भूपः (अभय०), नागवत् कुटिलः स नागोराधिपश्चेति उभावपि यदा परस्परं सशङ्कौ भवतः तदा अन्येषां राज्ञामभीष्टं सिद्धमेव । सहसन्धिसापेक्षौ द्वौ भ्रातरावपि परस्परं यदा भेदमापन्नौ अत एव च राज्यापहारशङ्कां धारयतस्तदा निर्भीकाः अन्ये राजानः तत्सकाशादात्मनः समभीप्सितं साधयेयुरेवेत्याशयः ॥२४॥

यदैव ढुंढाहरभूमिवल्लभो
मरुत्क्षमानायकसंगतोऽभवत् ।
जगाम नाशं वखताह्वयस्तदा
तमोभरः पुष्पवतोर्भयादिव ॥२५॥

ढुंढाहरभूपतिः ईश्वरसिंहः मरुधरानायकेन अभयेन यदा संमिलितोऽभवत् तदा पुष्पवतोः सूर्याचन्द्रमसोर्भयात् तमोभरः राहुग्रह इव, अथवा अन्धकार इव वखतसिंहः नाशं जगाम ॥२५॥

स तद्बलं श्रीश्वरसिंहभूपतेः
प्रतापविस्तारविशेषभासुरम् ।
तदा न सेहेऽतितरां निरीक्षितुं
यथाऽन्धकारस्तपनांशुमण्डलम् ॥२६॥

यथा अन्धकारः सूर्यस्य अंशुजालं निरीक्षितुं न सहते तथा सः (वखतः) प्रभावस्य विस्तारेण (परितो व्यापनेन) विशेषतो भासुरं (तेजःशालि) ईश्वरसिंहस्य तद् सैन्यं द्रष्टुं न सेहे शशाक ॥२६॥

उभौ नृपौ संमिलितौ परस्परं
किमाचरेतां मयि तद्द्वयद्विषि ।
इति प्रपन्नः परमामधीरतां
पलाय्य यातो बखताह्वयः पुरम् ॥२७॥

उभावपि ढुढाहर-मरुधराधीशौ यदा मिथो मिलितौ तदा तयोर्द्वयोर्द्वेषकारिणि मयि न जाने किमाचरेताम्, इति अत्यन्तमधीरता प्राप्तः बखतसिंह विद्रुतो भूत्वा निजपुर गत ॥२७॥

उच्चैर्गर्जद्गजेन्द्रोन्नतजलदघटाडम्बरैरम्बरं क्ष्मा-
मध्यं संव्याप्य बद्धोद्धुरधनुषि तडित्खड्गदुर्धर्षरूपे ।
आरूढे श्रीश्वराख्ये मघवति पृतनाप्रावृषेण्याऽभ्रसंघैः
को वा सद्यस्तदाज्ञां वहति न शिरसा जीवनेच्छुर्जनेषु ॥२८॥

उच्चैः अतितीव्रम् गर्जन्तः गजेन्द्रा एव जलदाः तेषा घटाडम्बरैः समूहविस्तारैः आकाश क्ष्मा (धरा) मध्य च व्याप्य बद्ध सज्जीकृतम् उग्र धनुः (उभयत्र समानम्) येन तादृशे, तडित्सदृशो यः खड्गः तेन दुर्धर्षरूपे ईश्वरसिंहनामके इन्द्रे पृतना (सेना) रूपैः वर्षाकालिकैः अभ्रसमूहैः सह आरूढे कृताक्रमणे गगनमारूढे सति जनेषु जनाना मध्ये जीवनस्य(जीवितस्य, पक्षे जलस्य) इच्छु को वा तदाज्ञा शिरसा न वहति ? अपि तु सर्वेऽपि मस्तकोपरि तत्प्रभाव धारयन्ति ॥२८॥

गर्जत्सु द्विरदेषु नूतनरवान्नृत्यत्सु वाजिव्रजे-
ष्वाजिभ्यो विजयोद्धतेषु सुभटेष्वास्फोटयत्सु स्फुटम् ।
दोर्दण्डानविषह्यमीश्वरनृपस्यालोक्य पूर्णं बलं
संभीतो बखताह्वयः सरभसं यातः पलाय्याऽऽलयम् ॥२९॥

नवीनाना लोकाना नवीनात् शब्दात् हस्तिषु गर्जत्सु सत्सु अश्वसमूहेषु इतस्ततश्चलत्सु, तथा आजिभ्यः युद्धेभ्यः विजयोद्धतेषु युद्धसकाशाद् विजय प्राप्य प्रमत्तेषु योद्धृषु दोर्दण्डान् भुजदण्डान् आस्फोटयत्सु आस्फालयत्सु सत्सु ईश्वरसिंहभूपस्य अदम्य पूर्ण पराक्रम दृष्ट्वा भीतो बखतसिंहो धावित्वा सत्वर निजगृह गत ॥२९॥

इति राष्ट्रभृतां मध्ये जैत्रपत्रपितेव सः ।
अर्जयित्वा यशः शुभ्रं गापयामास भूपतीन् ॥३०॥

इत्थ राष्ट्रपालकाना मध्ये जैत्राणि विजयशालीनि पत्राणि वाहनानि यस्य तादृश· पिता (जयसिंहराजाधिराज) इव धवल यश सचित्य अन्यानपि भूपालान् तद्यश गापयामास । अन्येपि नरपालाः तस्य शौर्यश्लाघा चक्रुरित्याशय ॥३०॥

हलीव स बली वीरः सलीलमवलीर्द्विषाम् ।
अदलीन्मदलीनानां मलीमसयशोभृताम् ॥३१॥

बलभद्र इव पराक्रमशाली स वीर (ईश्वर०) मदोन्मत्तानाम् अतएव कलङ्कि-तयशोधारकाणा द्विपाम् (वैरिणाम्) अवलीः पक्तीः सलीलम् (लीलया कौतुकेनैव, न तु परिश्रमेण) अदलीत् नाशयामास ॥३१॥

ईश्वरः पृथिवीशानामीश्वरः पृथिवीश्वरः ।
निग्रहानुग्रहौ कर्तुं स साक्षादीश्वरः स्वयम् ॥३२॥

ईश्वरः (ईश्वरसिंह) पृथिवीश्वर (भूपति) पृथिवीशाना भूपतीनामीश्वर. स्वामी (समर्थ)। अत एव तेषामुपरि दमनं दया च कर्तुं स्वय साक्षात् ईश्वरः परमे-श्वर । जगदीश्वर इव तेषामुपरि विपत्सपदौ आनेतु स समर्थ इत्याशयः ॥३२॥

शेषादादिवराहाच्च महीं दध्रे बलाधिकः ।
इत्यसौ सत्यमेवेह कूर्मवंशो निगद्यते ॥३३॥

महीधारकात् शेषनागात् आदिवराहाच्च पराक्रमे अधिकः सन् स (कच्छवश) पृथिवी धारयामास । अत एव तत्क्रियाकारित्वात् अय वश कूर्मवश इति कीर्त्यते ॥३३॥

जयसिंहमहाराजतनयः सनयः सदा ।
मानयन् ज्ञानसंपत्त्या स्थविरान् स विराजते ॥३४॥

सनयः नीत्या सहित. । तनय. पुत्र. निजज्ञानवैभवेन वृद्धान् समानयन् शोभते । तनय. सनय, स्थविरा सविरा इति अन्तानुप्रास: ॥३४॥

नृपतिरीश्वरसिंह इति स्फुटं
निगदितो रमणीयगुणोत्करः ।
विजयते जयसिंहमहीपतेर्धृत-
नयस्तनयस्तनयन् परान् ॥३५॥

रमणीयः गुणोत्करः शौर्यादिगुणसमूहो यस्य, तथा ईश्वरीसिंह इति जनैः कीर्तितः नृपतिः, धृतः अनुवर्तितः नयः (राजनीतिः) येन सः अत एव परान् (शत्रून्) तनयन् तनून् दुर्बलान् कुर्वन् (तत्करोति तदाचष्टे इति णिजन्तात् शतृ) जयसिंहमहीपतेः तनयः (पुत्रः) स विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥३५॥

समुदितो मुदितो निखिलैर्गुणैः
प्रकृतितः कृतितश्च मनोहरः ।
लसितया सितया सुयशःश्रिया
भृशरणी शरणीकृतदोर्युगः ॥३६॥

सर्वैर्गुणैः समुदितः सहितः, अतएव मुदितः प्रसन्नः, स्वभावात् कृतितः (कार्य-द्वारा च) मनोहरः सर्वेषां प्रियः । सर्वत्र प्रशस्तया सितया निर्मलश्वेतया यशःश्रिया यशोलक्ष्म्या (युक्तः) शौर्योत्साहवशाद् भृशं बाढं रणाः संग्रामाः यस्य (णिनि), तेषु रणेषु च सैन्य-सहायकादीन् अकिञ्चिद् गणयित्वा शरणीकृतं (रक्षकीकृतम्) दोर्युगं बाहुयुगलं येन सः । निजभुजदण्डाभ्यामेव संपूर्णरणविजेता इत्याशयः ॥३६॥

नरमणी रमणीरमणीयभाः
परमया रमया रमयान्वितः ।
अनलभा नलभानलभाकृति-
र्वसुहितः सुहितः सुहितव्रजैः ॥३७॥

नरेषु मणिः रत्नं (श्रेष्ठः), रमणीनां कृते रमणीया (मनोहारिणी) भा कान्ति-र्यस्य, सौन्दर्यशालीत्यर्थः । नरमणिः रमणी-इत्यत्र रलोपदीर्घौ । परमया उत्कृष्टया रमया रमणकारिण्या (भोगभाजनया) रमया (लक्ष्म्या) अन्वितो युक्तः । अनलवत् (अग्निवत्) भा दीप्तिर्यस्याः, तथा नलनृपतिवत् भा शोभा यस्याः तादृशी, नलभा न लब्धुं शक्या दुर्लभा आकृतिः (आकारः) यस्य तादृशः । नलभा इति नैकधेतिवत् नशब्देन समासः ।

अद्भुततेज–सौन्दर्यशालीत्यर्थ । वसुभिः द्रव्यै· हित· लोकाना हितकारक· । सुहितव्रजैः शोभनाना हितानां हितकारकाणा (मित्राणाम्) व्रजै समूहै सुहित· तृप्त, पूर्ण इत्यर्थ ॥३७॥

भवदयावदयावनदः सदोत्सव-
दयावदयान्वितलालितः ।
वितरणे तरणे(ष्व)धिकः क्रतु-
प्रचरणे चरणे च विचक्षणः ॥३८॥

भवस्य शम्भोर्दयावता (दयायुक्तेन) ईश्वरदयालब्धेनेत्यर्थः । ईदृशेन अयेन शुभकार्येण लोकेभ्य अवन रक्षण ददाति तादृश· । ईश्वरानुग्रहसपादितै· नानाविधैः इष्टापूर्तादिकार्यैं लोकरक्षाकारक इत्याशयः । सदा उत्सवान् आनन्दान् ददति इति सदोत्सवदा, सदोत्सवदाश्च ते यावदया· (यावन्तः सपूर्णा अया शुभावहविधय) तै· अन्विता· शुभकार्यकारिणो भाग्यवन्त पुरुपा, तैर्लालित सेवित । तव सेवका एव लोकानन्ददायिना शुभकार्याणा कारका, तत्स्वामिनस्तव का किल प्रशसा कर्तव्या इति सौभाग्यातिशय· सूच्यते । वितरणे दाने तरणे जलसतरणेपु च अधिकः अतिशयशाली । क्रतूना (यज्ञाना) मध्ये प्रचरणे (रक्तोष्णीपा ऋत्विज· प्रचरन्तीत्यादिके) तथा रणे सग्रामे च विचक्षण कुशल ॥३८॥

प्रियतमाऽऽयतमाननिरासनः
सुरुचिरो रुचिरोचितविग्रहः ।
छविकलाविकलाऽऽकृतिहृच्छयः
सकमलः कमलद्युतिपच्छयः ॥३९॥

प्रियतमाना प्रेयसीनाम् आयतस्य दीर्घस्य मानस्य प्रणयरोषस्य निरासक· दूरीकर्ता । सुरुचिरः सुन्दर, रुच्या कान्त्या रोचितः शोभाशाली विग्रह शरीरं यस्य । अथवा–रुचिराणा सुन्दराणा कृते उचित अनुरूप· विग्रहो यस्य, सर्वाङ्गसुन्दर इत्याशय । छवि शोभा, कलाः चतुःपष्टिकलाः (चातुर्यम्) ताभि· अविकला पूर्णा आकृतिर्यस्य ईदृश हृच्छयः कामदेवः । सौन्दर्य-चातुर्यपूर्णं कामवन्मनोहराकृतिरित्याशय· । सकमल कमलया लक्ष्म्या सहित, लक्ष्मीवानित्यर्थ । कमलवद् द्युतिशालि पच्छय (पादौ शयौ (करौ) चेति समाहारद्वन्द्व) यस्य सः, कमलसदृशहस्त-पदशोभित इत्यर्थः । 'पंचशाख· शय· पाणि' इत्यमरः ॥३९॥

लसदयः सदयः सदयः करः
परचमूरुचमूरुचमूनयन् ।
न कलितः कलितः कलितः क्षतो-
ऽविनतमानतमानतमानदः ॥४०॥

लसन् शोभमानः अयः शुभविधिर्यस्मिन्--शुभकार्यकर्ता इत्यर्थः । सदय सत्सु सज्जनेषु अयः गमन यस्य, सज्जनान् प्रति दानादिषु प्रसरणशील इति यावत् । तथा सदयः दयया सहितः करः हस्तः (यस्य ईश्वरस्य)। पर(शत्रु) रूपाणा चमूरूणा मृगाणा या चम्व सेना तासा रुच कान्ति (शोभाम्) ऊनयन् न्यूना कुर्वन् (तत्करोतीति णिच्)। यस्य हस्त मृगवद्दुर्बलाना शत्रूणा सेनाया शोभा परितो विध्वसनेन तत्काल न्यूना करोतीत्यर्थः । अविनत न नम्रीभूतः (शिथिलीभूत) मानः समान येषा ते अविनतमानाः (मानिन), अतिशयेन अविनतमाना अविनतमानतमाः (अतिशये तमप्), अविनतमान-तमाश्च ते आनताश्च, अर्थात् अत्यन्त मानिनः सन्तोऽपि ये प्रभावातिशयात् आनताः नम्रीभूताः (कुलीना महापुरुषाः) तेभ्यो मान सम्मान ददाति तादृशो यस्य करः कलितः कलि-कालेन सह (तृतीयार्थे सार्वविभक्तिकस्तसि) कलित अर्थात् युद्धात् (पञ्चम्यर्थे तसिल्) क्षतः (क्षतिशाली) न कलितः न दृष्ट । वर्तमानकाले प्राप्तेन कलियुगेन सह यदीयहस्तस्य युद्धम् अर्थात् साम्मुख्य भवति, किन्तु कलिकालस्तस्य काञ्चिदपि क्षति कर्तु न शशाक । कलिकालविजयी पुण्यकृद् यस्य कर इत्याशय ॥४०॥

नृपतिमानितमानितमानित-
द्विजवरो जवरोजवरोषणः ।
सदसितोदसितोदसितोद्धतः
प्रधनयोधनयोधनयोजनः ॥४१॥

नृपतिभि. समानिता , अत एव मानितमा (अत्यन्त मनस्विन , तमप्) आनिता जीवकादिदानेन सजीविताः (अन-प्राणने, णिजन्तात् क्त) द्विजवरा येन । जवर जव वेग राति स्वीकरोतीति जवर वेगशाली । एवम् अजवम् अनधिक रुष्यति [कारणे सति स्वल्प क्रोध करोतीत्यर्थ । सन् उत्कृष्ट (अतिप्रचण्ड) असिना खड्गेन तोद घातः (प्रहारजनिता व्यथा) यस्य । अत एव सितोद इव (सित श्वेतम् उदक यस्य, क्षीर-सागर इव) सितः (कीर्त्या श्वेतः) उद्धत उद्वेलश्च (पूर्णश्च) । युद्धेषु असिना समा-पितशत्रु , अत एव लोकव्याप्तया श्वेतकीर्त्या पूर्ण इत्याशयः । प्रधाने सग्रामे योधनाय

युद्धाय योधनाना भटानाम् (युद्ध्यन्ते ते योधनाः, कर्तरि ल्यु); योजन सयोजनकर्ता (युनक्तीति योजनः ल्यु॰) ॥४१॥

अतिमतान्तिमतान्तिमतां द्विषां
प्रहरणो हरणो ह रणोद्धतः ।
पृतनयातनयातनया परा-
जितरणास्तरणास्तरणाहितः ॥४२॥

अतिमता॰ लोके अतिशयेन समानिताः (उन्नतकोटिकाः), अन्तिमतान्तिमन्तः (यत्-कृतवीरतया युद्धे अत्यन्तपरिश्रान्ताश्च) ये द्विषः (शत्रव)तेषाम् । प्रहरणः प्रहार-कर्ता, हरणः अवसरे सति स्थानान्तरप्रक्षेपकर्ता (उभयत्र नन्द्यादित्वात् कर्तरि ल्यु), ह (निश्चये, पादपूरणे वा) रणे सग्रामे उद्धतः प्रचण्ड॰ । अतनयातनया अतन (चलन)-मात्रेणैव यातना पीडा यस्याः सकाशात् ईदृश्या पृतनया सेनया । पराजिता॰ (विजिताः अभिभूताः), मरणोत्तर रणः संग्रामक्षेत्रमेव आस्तरणं येषा ते पराजितरणास्तरणाः । अत एव अस्तः रणः वीरनादादिकशब्दो येषाम्, एवंविधाः अहिता शत्रवो यस्य स [पराजितरणाऽऽस्तरणाऽस्तरणाऽहित] । चलनमात्रेणैव शत्रून् पीडितवत्या सेनया पराजिता (महाराजस्य ईश्वरस्य) शत्रव॰ रणक्षेत्रे तूष्णीभूताः पतिता॰ शेरते इत्या-शय. ॥४२॥

धनदतां नदतां च दधत्क्रतून्
भुवि बुधान्विबुधान्दिवि वर्द्धयन् ।
अवनिभावनिभाधिकदोर्बलः
सविजयो विजयोपमविक्रमः ॥४३॥

य (ईश्वरसिंह) धनदता (दानविषये कुवेरताम्), नदता (धनपूरप्रवाहित्वात् महानदीभाव) च क्रतौ यज्ञविषये दधत् धारयन् । केचित्तु धनदा इवाऽऽचरन्ति धनदन्ति । धनदन्तीति धनदन्त॰ (आचारक्विबन्तात् शतृ) तेषाम् । एवम् नदा इवाऽऽ चरन्तो नदन्त॰ तेषाम् । दानविषये कुवेरा इव, नदा इव च आचरता दानशीलाना (मध्ये) क्रतून् यज्ञान् दधत् अनुतिष्ठन् । भुवि भूमौ बुधान् पण्डितान्, दिवि स्वर्गे च विबुधान् देवान् वर्द्धयन् । अवनेः भावः पुत्र अवनिभावः (भौम॰, मङ्गलः) तन्निभ (लक्षणया तद्बलसदृशम्) अधिक मनुष्यातिशयित भुजयोः बल यस्य सः । अवनिभाव-निभाऽधिकदोर्बल 'भाव. सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इत्यमरः' । विजयेन (शत्रुकर्मकदमनेन) सहितः । विजयोपमः अर्जुनसदृश. विक्रम. पराक्रमो यस्य तादृशः

[नृपतिरीश्वरसिंह इति निगदितो विजयते इति प्रथमपद्येनाऽन्वय.। नवाना पद्यानामेकान्वय.। कुलकम्] ॥३५-४३॥

गुणानीश्वरसिंहस्थानाकर्ण्य निपुणाननात्।
सुरत्राणपतेरासीन्मनः संदर्शनोत्सुकम् ॥४४॥

ईश्वरसिंहस्थितान् (तत्सबद्धान्) गुणान्। निपुणाना प्रामाणिककुशलपुरुषाणाम् आननात् मुखात्। सुरत्राणाः ('सुलतान') तेषा पति. श्रेष्ठ सुलतान इत्याशय ॥४४॥

जयसिंह उभौ लोकावलंचक्रे महायशाः।
दिवं किलात्मनैकेन द्वितीयेनात्मना भुवम् ॥४५॥

महद् यशो यस्य ईदृशो जयसिंहः—एकेन किल आत्मना (स्वेन) दिव स्वर्गम्, द्वितीयेन आत्मना (ईश्वरसिंहाख्यपुत्ररूपेण आत्मना) भुव पृथिवी शोभयामास ॥४५॥

संख्यावतामसंख्येषु सद्नेषु भृताः श्रियः।
यदा सदा स्वयं साक्षात्प्रसन्नः श्रीमदीश्वरः ॥४६॥

यदा हि सदा (सर्वदा) साक्षात् ईश्वरः ईश्वरसिंहः स्वय प्रसन्नः तदा सख्यावता पण्डितानाम् असख्येपु गणनातीतेपु बहुषु गृहेपु श्रिय. सपदः सभृताः। ईश्वरसिहस्य प्रसन्नताया जाताया पण्डिताना गृहाः असख्या अपि धनसपत्तिभिः परिपूर्णा भवन्तीत्याशयः। 'सख्यावान् पण्डितः कवि' इत्यमरः ॥४६॥

कृताः सुमनसः स्वस्थाः सदानन्दनवासिनः।
ईश्वरेणैव ते हस्तैः समुद्यद्दानवारयः ॥४७॥

ईश्वरेणैव ते सुमनसः विद्वासः हस्तै समुद्यन्ति समुद्गच्छन्ति धनादिदानार्थं सकल्पवारीणि (जलानि) येषा ते, सदानन्दपूर्वक निवासिनः अत एव स्वस्थचित्ताः सपादिता। ईश्वरसिंहेन पण्डिताः सर्वविधसपत्तिदानेन तथा सपन्ना. कृता यथा ते स्वय निजहस्तेन भूम्यादीना दानसकल्पान् कुर्वन्ति, सदा स्वस्थचित्ताः प्रमुदिताश्च निवसन्तीत्याशयः। सुमन.शब्दश्लेपेण—ईश्वरेण परमात्मना सुमनसो देवा नन्दन (तन्नामक उपवन) निवासिन हस्तैः समुद्यन्तः समुत्पद्यमाना दानवानाम् अरय शत्रवः (दैत्यविनाशका देवाः) येपाम्, तथा स्व स्थाः स्वर्गस्थाश्च विनिर्मिता इत्यपरोर्थो ध्वन्यते। ईश्वरसिंहेन नन्दन (लन्दन-तन्नामकपाश्चात्यदेश) निवासिन हस्तद्वारा निर्गच्छन्ति नानाविधवितरणानि यन्त्रजलानि च येषा तथाविधा स्वस्थचित्ता सपादिताः। पाश्चात्यदेशवासिनः आङ्गला अपि ईश्वरसिंहेन प्रसन्नाः नानाविधाविष्कारसमर्थाश्च सपादिता इति केचिदर्थं ध्वनयन्ति ॥४७॥

विभ्यति क्ष्माभृतो यस्मादनुजो यस्य माधवः ।
शतकोटिदतां बिभ्रत् स इन्द्रः स्वयमीश्वरः ॥४८॥

सः ईश्वरसिंहः स्वयम् (साक्षात्) इन्द्रः—यस्मात् क्ष्माभृतः (पृथिवीपालकाः राजानः) विभ्यति, यस्य माधवसिंहः अनुजः । य शतकोटीः (शतकोटिपरिमितस्वर्ण-रूप्यादिमुद्रा) ददातीति शतकोटिद· तत्ता बिभ्रत् धारयन् (अस्ति) । इन्द्रपक्षे यस्मात् क्ष्माभृत भूधराः (पर्वताः) विभ्यति (पक्षौ अयं छिन्नवान्, न जाने अग्रे किं कुर्यादिति) । यस्य माधवो विष्णुः अनुजः लघुभ्राता (इन्द्रावरज·), शतकोटिना वज्रेण द्यति छिनत्ति इति शतकोटिद (छेदनार्थक 'दा' धातोः कः) । तत्ता तद्भावं बिभ्रत् । 'शतकोटि स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इत्यमरः ॥४८॥

एतावानेव भेदोऽयमीश्वरस्येश्वरस्य च ।
माधवोऽस्याऽनुजो जातः स इन्द्रस्यानुजः स्वयम् ॥४९॥

ईश्वरस्य ईश्वरसिंहस्य, ईश्वरस्य (परमेश्वरस्य) च इयानेव भेदः, यत् अस्य (ईश्वरसिंहस्य) माधवसिंहः अनुजो लघुभ्राता जातः । सः परमेश्वरः स्वयम् इन्द्रस्याऽनुजो लघुभ्राता । 'उपेन्द्र इन्द्रावरजः' इत्यमरः ॥४९॥

विद्वद्वृन्दविनोदहेतुविलसद्विद्याऽनवद्याशयः
सद्योऽर्कद्युतिमत्-प्रतापनिकरप्रद्योतितक्ष्मातलः ।
चञ्चच्चञ्चलचन्द्रहासनिचयोदञ्चद्द्विषच्चक्रभाः
साक्षादीश्वरसिंह एष विबुधाशीर्भिश्चिरं जीवतु ॥५०॥

इति श्रीमत्तैलङ्गकुलकौस्तुभायमानश्रीश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृता-
वीश्वरविलासमहाकाव्ये दिग्विजयाख्यानं नाम त्रयोदशः सर्गः ।

सर्गान्ते आशीर्वादमाह—विद्वत्समूहानां मन प्रमोदस्य हेतुभूता विलसन्ती (शोभमाना, प्रशस्ता) या विद्या तया निर्मलान्तःकरणः । अर्कस्य सूर्यस्य (द्युतिः कान्तिः इव) कान्तिः यस्य तादृशः । तथा प्रतापनिकरेण (स्वप्रभावसमूहेन) विभासित प्रकाशित भूतलं येन स । अथवा यः ईश्वरसिंहः शास्त्र-काव्यसंकथादीना चर्चया विद्वत्-समूहस्य स्वय विनोदहेतुः । चञ्चन्तः चमत्कुर्वन्तः चञ्चला ये चन्द्रहासाः (खड्गाः) तेषा समूहेन उदञ्चन्ती निर्गच्छन्ती द्विषच्चक्रस्य (वैरिवृन्दस्य) भाः कान्तिर्यस्य सः । स एष ईश्वरसिंहः पण्डितानामाशीर्वादैश्चिरकालं जीवतात् ॥५०॥

इतिहासविभासिन्या विलासिन्या समाप्यते ।
मञ्जुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एष त्रयोदशः ॥१॥

सुरभारतीमहत्त्व कवितातत्त्व निबन्धनिपुणत्वम् ।
धातुप्रयोगविस्त्वं संस्कृतसाहित्यसारवत्त्वं च ॥
संस्कृतसुबोधकत्वं विलहणरचनाचमत्कृतेस्तत्त्वम् ।
प्राकाशि येन तत्तद्ग्रन्थैः स चकार मञ्जुनाथ इमाम् ॥२-३॥

वसुगगनगगननयनप्रमिते विक्रममहीपतेर्वर्षे ।
'ईश्वरविलासे' रङ्गे 'विलासिनी' सेयमवतीर्णा ॥४॥

कवितातत्त्व कविताकला–रचनापारिजातादि । निबन्ध० 'निबन्धविद्या' । धातु० धातुप्रयोगपारिजातः । संस्कृतसाहि० साहित्यवैभव-सरला-कनीनिकादि । संस्कृतसुबोधकत्वम् संस्कृतसुबोधिनीनामकं प्रारम्भिकशिक्षापुस्तक भागद्वयात्मकम् । विह्लण० विक्रमाङ्कदेवचरितटीका काश्मीरकमहाकविबिह्लणस्तद्रचना चेति । वसुगगन०, २००८ तमे विक्रमवत्सरे ।



चतुर्दशः सर्गः

दिल्लीनाथस्याऽथ यावन्निदेशात्

कोटाग्रामं जेतुकामो मनीषी ।

गच्छेत्साकं मन्त्रिपुत्रैश्चतुर्भि-

स्तावत्सज्जोऽभूज्जगत्सिंहराणः ॥ १ ॥

चिरचारुचतुर्दशेऽत्र सर्गे स्वनिसर्गेण चमत्कृतिं दधाना ।

अनुवर्णितविस्फुरत्समीका[1] पटुटीकाऽऽद्रियतां विलासिनीयम् ॥

दिल्लीनाथस्य (बादशाहस्य) निदेशात् (आज्ञावशात्) कोटानगर जेतुमिच्छन् मनीषाशाली (राजनीतिचतुर) ईश्वरसिंह चतुर्भि. मन्त्रिपुत्रै. (बादशाहप्रेषितै तस्य अमात्यपुत्रै·) सह कोटानगर प्रति यावद् गच्छेद् युद्धप्रयाण कुर्यात् तावत् राणा जगत्सिंह· ईश्वरसिंहस्य निरोधाय युद्धार्थं सनद्ध· अभूत् । 'कोटाग्राम'मित्युक्तिस्तु तस्मिन् काले सुतरा विशिष्टस्य जयपुरनगरस्याऽग्रे कोटापुरस्य निकर्षं सूचयितुमेव ॥१॥

पैतृष्वस्त्रीयं निजं माधवाख्यं

सङ्गे कृत्वा षष्टिसाहस्रसैन्यैः ।

सोऽभूद्युद्धायोद्धुरः सोयमस्य

स्वस्यापत्तौ दुर्जनस्यैव मन्त्रः ॥ २ ॥

निजाया पितृष्वसु पुत्र माधवसिंह सह नीत्वा षष्टिसहस्रसख्यकसैन्यै सह सः (जगत्सिंह) युद्धाय उद्धुर (उत्कट, संनद्ध·) अभूत् । स्वस्य (राणाकस्य, दुर्जनसिंहस्य वा) आपत्तौ विपत्प्राप्तिविषये सोय दुर्जनस्य (कोटापते) एव मन्त्र. मन्त्रणा । अग्रे युद्धादिषु यत्कष्टम् अपमानो वा जात, सेयमापत्तिर्दुर्जनस्य दुर्मन्त्रणावशादेव प्राप्तेत्याशयः ॥२॥

अग्रे सैन्यं यत्स्थितं श्रीश्वरस्य

श्रुत्वा तस्यास्कन्दनं राजमल्लः ।

शीघ्रं गत्वा संगतो दाक्षिणात्यै-

स्तानेवैतद्भञ्जनायाऽऽनिनाय ॥ ३ ॥

१—अनुवर्णितः विस्फुरन् (उज्जृम्भमाण) । समीकः सग्रामो यस्याम् ।

अग्रे, दूरे अग्रमार्गे ईश्वरसिंहस्य या सेना अवस्थिता आसीत् तस्याः आस्कन्दनम् आक्रमण (परसैन्यद्वारा अभिभवम्) श्रुत्वा राजमल्लः (जयसिंहस्य मन्त्री) दाक्षिणात्यैः (मराठा) सह सम्मिलितः अभूत्। तानेव एतस्य (राणाकस्य) भञ्जनाय पराभवाय आनिनाय ॥३॥

चत्वारो ये भूरिभोगैकशीलाः

पृथ्वीशेन प्रेषिता मन्त्रिपुत्राः।

तानेतानागच्छतः स्वैरवृत्त्या

मार्गेऽत्याक्षीदीश्वरः शीघ्रकार्यः ॥ ४ ॥

पृथ्वीशेन (दिल्लीपतिना बादशाहेन) भोगविलासिस्वभावा [अत एव मार्गे यथेच्छानन्देन विलम्बसभवः] ये चत्वारः मन्त्रिपुत्राः प्रेषिता, स्वच्छन्दव्यवहारेण शनैः शनैः आगच्छत तान् एतान् (मन्त्रिपुत्रान्) ईश्वरसिंह मार्गे एव अत्याक्षीत्। अग्रे युद्धादिषु शीघ्रताया एव कार्यमित्यभिचिन्त्य, तान् मार्गे एव त्यक्त्वा, स्वयम् अग्रगामी अभूदित्यर्थ ॥४॥

पृथ्वीभर्तुः शासनावेत्रयष्टि-

स्पष्टीकारास्ते विभीषैकहेतोः।

यूयं सङ्गेऽस्माभिरुच्चैर्गृहीता-

स्तत् स्वच्छन्दं मन्दमागम्यतां भोः ॥ ५ ॥

त्यागसमये किमुक्तमित्याह—"पृथ्वीभर्तुं (दिल्लीनाथस्य) शासनावेत्रयष्टे ('छडी' इति ख्याताया) स्पष्टीकारा अर्थात् शासनावेत्रयष्टे प्रभाव सर्वेषामग्रे स्पष्ट कुर्वन्ति ते [सुवर्णदण्डग्राहिणस्तथा लोकान् प्रभाव दर्शयन्ति यथा शासनायष्टे, पुरतो नम्रीभूतास्ते सम्राजोऽनुगता भवन्तीत्याशय]। ते यूय विभीषाया भीषयितुमिच्छाया एव एककारणात् अर्थात् लोकाना भयोत्पादनार्थमेव उच्चै सर्वप्रकाश सह नीता.। तदिद प्रयोजन सिद्धम्। अत एव सप्रति युष्माभि मन्द शनै शनै आगम्यताम् ॥५॥

अस्माकं तु स्वैरवृत्त्या प्रयाणं

कोटाग्रामध्वंसनार्थं तदासीत्।

प्राप्येदानीमन्यदेव प्रसक्तं

तद्विध्वंसस्तावदावश्यको नः ॥ ६ ॥

तदा स्वैरवृत्त्या स्वच्छन्दतया (शनैः शनैः) अस्माक तत् प्रयाणं (युद्धयात्रा) कोटाग्रामस्य भञ्जनार्थम आसीत्। अवसर प्राप्य इदानीम् अन्य एव प्रसङ्ग प्रसक्तः (उपस्थित.) अर्थात् राणाप्रभृतय. अन्येऽपि प्रतीपाः मार्गविरोधे समुपस्थिता । अत एव कोटादीना विध्वस न. अस्माकम् अत्यन्तावश्यकः अभूत् ॥६॥

इत्याभाष्य स्वैरवृत्त्या यतस्तान्
पृथ्वीभर्तुर्मन्त्रिपुत्रान् सुखार्हान्।
मध्येमार्गं प्रोज्झ्य चक्रे प्रयाणं
श्रीमान् भीमानीकिनीभिर्महीपः ॥ ७ ॥

इति पद्यद्वये प्रोक्तं वक्तव्यं कथयित्वा स्वैरवृत्त्या यतः गच्छत. ('इण्' गतौ अस्मात् शतृ । द्वितीयाबहुवचनम्) सुखार्हान् सर्वदा सुखोपभोगशीलान् दिल्लीश्वरस्य मन्त्रिसुतान् तान् मार्गस्य मध्ये एव प्रोज्झ्य (त्यक्त्वा), महीप श्रीमान् ईश्वरमहीपालः भीमाभि. प्रचण्डाभिः अनीकिनीभि. सेनाभिः सह प्रयाणं चक्रे ।।७॥

[सर्गस्याऽऽरम्भे एव जगत्सिहराणाकस्य युद्धार्थं सज्जीभावः सहायकसंघटनादिक च वर्णित तावत् । इदमत्र ऐतिहासिकं तथ्यम्—

"बूंदीराज्य पराजितं दृष्ट्वा, महाराजमीश्वरीसिंहं च दिल्लीगत श्रुत्वा सङ्कटसमयेऽस्मिन् महाराणा जगतसिंहस्य निजभागिनेयाय जयपुरं दापयितुमाशा बलवती बभूव । स हि कोटापतिं दुर्जनसालं कोटातः समाह्वयत् । स्वपक्षे महाराष्ट्रान् उत्थापयितु सलूमराऽधिपतिं सपितृव्यं कुवेरसिंह च— "मल्हारराव । ईश्वरीसिह पराजित्य भवान् माधवसिंहं जयपुराधिकारिण करोतु । एतदर्थं वयम् एककोटिमुद्राः समर्पयिष्यामः ।" इति पत्र प्रदाय प्रेषयामास । सलूमराधिपते. कुवेरसिंहस्य पितृव्यो बखतसिंहो ग्वालियर गत्वा राणाजीकस्य पुत्र जवानीनामकं निजपक्षे निनाय । उदयपुर प्राप्य महाराणामहोदयः इद वृत्तं नागोराधिपति बखतसिंहमपि सूचयामास, यस्य (बखतसिंहस्य) पुत्रो विजयसिंहो महाराणाकस्य जामाताऽऽसीत् । लक्षद्वयमुद्राः समर्प्य युद्धे साहाय्यं कर्तुं च तमेनमाह्वयत् । परं स हि महाराजाधिराजजयसिंहस्य वीरता गगवाणाग्रामस्य युद्धे सम्यगनुभूतवान् । अत. लक्षद्वयमुद्रापूर्णा स्वायत्तीकृत्याऽपि, सेना प्रेषयितुं नाऽकरोत्साहसम् । ततश्च देशकालौ विचार्य विवशो महाराणा जगतसिंहः पञ्चविंशतिसहस्रात्मकं स्वस्य, तथा दशसहस्रात्मक सैन्य माधवसिंहस्य एवं कोटाराज्यस्यापि किञ्चित्सैन्यसाहाय्यं संप्राप्य जयपुरोपर्याक्रमणमकरोत् ।

इतो जयपुरात् हेमराजबख्शी, सेनानायकस्य झिनायाधिपतेः कुमारो जसवन्तसिंह, उनियाराऽधिपति. सरदारसिंहो नरूका, एतेषामध्यक्षतया सैन्यमेकं प्रतस्थे । महाराणा जगतसिंहो निज स्कन्धावार टोडानगरे स्थापयित्वा स्वपक्षार्थमाहूताना महाराष्ट्राणा प्रतीक्षा कुर्वन्नासीत् । एतावति समये एव जयपुरराज्यस्य सैन्य तत्र प्राप ।

जयपुरसैन्यस्य सामन्ता' कुटिलसमय दृष्ट्वा साम्प्रत कूटजालं प्रासारयन्। ते हि राणासैन्ये संवादं प्रैषयन् यत्—"वयमीश्वरसिंहस्य तदेतत्कार्यं नाभिनन्दाम । यतो हि माधवसिंहस्य जन्मतः पूर्वमेव राज्यसिंहासनप्राप्तेर्लेखोऽभवत् । अतो देहलीतस्तस्मिन् समागते एव वयं तस्योपर्याक्रमण करिष्यामः । साम्प्रतं तदागमन यावत् अस्माकं सर्वमपि व्ययजातं भवान् स्वीकरोतु"। महाराणामहोदयो निरायासमेव तामिमा सफलता हस्तगता ज्ञात्वा प्रत्यहं दशसहस्रमुद्रास्तेषा सैन्यव्ययार्थं प्रेषयामास । घटनयाऽनया राणाकस्य शिविरे गीतवादित्र प्रारेभे । रात्रौ सुखशय्यामधिशयानो महाराणा स्वप्ने वीक्षते स्म—'यदहं माधवसिंहसहितो जयपुरसामन्तानामुपायनानि गृह्णन्नस्मि ।' मनोमोदकानास्वाद्य महाराणा यावत् सुखस्वप्न वीक्षते, तावत् दिल्लीपतेराज्ञा प्राप्य महाराज ईश्वरसिंहो युद्धक्षेत्राऽभिमुख समाययौ ।

इतो नीतिनिपुणः खत्री राजामल्लो महाराष्ट्रान् आत्मपक्षे कर्तुं प्रचचाल । स हि ग्वालियरे गतयोः सलूमरवासिनोः चूंडावतयोः सर्वामपि नीतिं विफलयामास । तौ च ग्वालियराद् बहिर्निर्वासयामास । मल्लारराव विहाय, अन्यान् सर्वानपि महाराष्ट्रान् स. (राजामल्लः) स्वेन सह नीत्वा युद्धक्षेत्राभिमुखो बभूव ।

राजामल्लो मार्गे समापतित कोटाराज्यं परित' परिवेष्टय तस्योपरि शतघ्नीना गोलकवर्षा चकार । सर्वमपि राज्यं जयपुरपक्षीया सेना परितो लुलुण्ठ । किन्तु तेऽपि हाडावशजाः सम्मुखे नाऽऽगच्छन् । सेयं सेना १८०१तमविक्रमवत्सरस्य माघकृष्णे महाराणा जगत्सिंहस्य सैन्यमतर्कितमाक्रमत् । आसीत्तस्मिन् समये अर्द्धरात्रिः । महाराणामहाशयः शय्याया निपत्य जयपुरविजयस्य सुखस्वप्नं वीक्षते स्म । स हि सहसा रणदुन्दुभीना सनादम्, तुरगाणा हेषाम्, शतघ्नीना भीषणोन्नाद च श्रुत्वा जागृत' सन् निजसेना सज्जीचकार । एकं प्रहरं यावद् द्वयोरपि सैन्ययोस्तुमुल बभूव । परं भगवति भास्वति समुदीयमाने एव राणाकस्य सैन्यं युद्धे विह्वलमिव ददृशे । सूर्यस्य प्रकाशे परितः प्रसृते तु राणामहाशयस्य सैन्य रणाङ्गण विहाय पश्चात्पदं पलायाचक्रे । किंकर्तव्यतामूढो जगत्सिंहो द्वात्रिंशतिलक्षाणि मुद्राणा जयपुरसैन्याय दण्डरूपे समर्प्य यथाकथचित् अभ्याहतिं लेभे । मलिनमुखश्च सन् माधवसिंहसहितोऽसौ निजमुदयपुरं परावर्त्तते । विजयोल्लासमण्डित ईश्वरीसिंह' छल-बलादिनिपुणा निजसेना सनयन् बुन्दीं प्रतस्थे । तत्र हि कोटाराज्यस्य दुर्गाधिपति. रूपसिंह, अजीतसिंहश्च पराजित' सन् आत्मसमर्पण चक्रे, कोटाराज्य प्रति च पलायामासे ।

कोटाराज्ये सन्धिः

जयपुराधिपतिपक्षीयो धूलाधिपतिर्दलेलसिंहो महाराष्ट्रवीराणा बृहत् सैन्य समादाय कोटाराज्यमाचक्रन्द । सगतपुरग्रामस्य समीपे चर्मण्वतीमतीत्य कोटानगर परितो वेष्टयामास । मासद्वयं यावदनर्गलं शतघ्नीना गोलकप्रहारैः संत्रस्तो महारावो दुर्जनसालः पर्यन्ते सन्धि चकार । सोयं सन्धि. १८०२ तमविक्रमवत्सरस्य वैशाखकृष्णे समभूत् ।

महारावो दुर्जनसालः षोडशलक्षमुद्राः दण्डरूपे दत्त्वा सन्धिं चकार । तथा चतुर्लक्षमुद्राः प्रतिवर्षं करप्रदान स्वीचक्रे । एव किल दुर्दशया दण्डितः सन् दुर्जनशालो दुःखितमना. सन् बुन्दी परितत्याज । कापरणीग्रामस्य तथा पाटनग्रामस्य राजप्रासादानपि स समर्पयामास । एवमतिलज्जितः पराजितो महाराणा जगत्सिंहो माधवसिंहश्च उदयपुरस्य मार्गं यथागत ययौ । ईश्वरीसिंहस्य भाग्यदिवाकरश्च विजयेनाऽनेन कीर्तेर्मध्याऽऽकाशे प्रदिदीपे । अतएव विजयोल्लासितो वीरखड्गमण्डितमौलिरसौ विजयदुन्दुभिं नादयन् निजपुरं सहर्षः प्रविवेश । सोय दिवसः सूर्यवशीयानामितिहासे विजयप्रमोददः समभूत् ।

आज्ञां लब्ध्वा चक्रवर्तिप्रदत्तां
राज्ञां राजा श्रीश्वरक्षोणिनाथः ।
राणाकस्योज्जृम्भणं भङ्क्तुकामो
मौढ्यावेशारब्धमेष प्रतस्थे ॥ ८ ॥

चक्रवर्तिना (दिल्लीशेन) प्रदत्ताम् आज्ञां प्राप्य, राज्ञां राजा राजसु मुकुटमणिः ईश्वरमहीपालः मौढ्यस्य मूर्खताया आवेशेन (अकस्माद् वशीभावेन) आरब्धं प्रक्रान्तं राणाकस्य उज्जृम्भणम् [स्वशक्तिम् अविचार्य महाशक्तीनां साम्मुख्यकरणादि गर्वविजृम्भितम्] नाशयितुमिच्छुः सन् एष (ईश्वरसिंहः) प्रतस्थे शीघ्रतया प्रयाणं चकार ॥८॥

तावद्राजामल्लनामाऽस्य मन्त्री
सेनावद्भिर्दाक्षिणात्यप्रवीरैः ।
अग्रे पश्चाल्लुण्ठयन् सर्वसैन्यं
राणाकस्य व्याकुलीचक्र एव ॥ ९ ॥

तावत् एतावति काले अस्य ईश्वरसिंहस्य मन्त्री (राजमल्लः) सेनासंयुक्तैः दाक्षिणात्यप्रवीरैः महाराष्ट्रभटैः (अर्थात् महाराष्ट्रवीराणां द्वारा) राणाकस्य सर्वां सेनाम् अग्रतः पश्चाद्भागाच्च लुण्ठयन् धन-उपकरणादिरहितां कुर्वन् तां सेनां व्याकुलां चकार । एवकारेण व्याकुलीकरणस्य सुनिश्चयो ध्वन्यते ॥९॥

श्रुत्वाऽऽयान्तं श्रीश्वरक्षोणिपालं
सैन्यं प्रायेणास्य पूर्वं स्थितं तत् ।
तत्संजज्ञे तत्र भूयो बलिष्ठं
जातं प्रत्येकं नु साहस्रहस्तम् ॥१०॥

अस्य (ईश्वर०) सैन्यं यत् अधिकांशतः पूर्वतः स्थितमासीत् तत् श्रीमन्तम् ईश्वरमहीपालम् आगच्छन्तं श्रुत्वा तत् सैन्यं पूर्वापेक्षया अत्यधिकबलसंपन्नं संजायते स्म । प्रत्येकसैनिकः हस्तसहस्रसंपन्न इव बल-साहसादिभिरदम्यो जात इत्याशयः ॥१०॥

एवं किल महाराज ईश्वरीसिंहस्त्रयाणां चतुर्णां वा अमीषां भूपालानां संमिलितामिमां सेनां त्रस्तां विध्वस्तां च कृत्वा अबाधारणीं कृतकार्यतां लेभे । यस्मिन् हि समये राजस्थानस्य दुग्धमुखो बालकोऽपि महाराजस्येश्वरीसिंहस्य शत्रुरूपे गर्वं प्राऽदर्शयत् ।"

[रावबहादुर ठा० नरेन्द्रसिंहमहोदयलिखितस्य 'महाराज सवाई ईश्वरीसिंहचरित्रस्य' चतुर्थसंस्करणस्य पृ० ४५–५०]

एष स्वामी कूर्मवंशावतंसः
सर्वेषां नः शासिता श्रीश्वराख्यः ।
अद्य श्वो वा सम्यगभ्येत्य हर्ता
राणाकस्य स्वान्तमौढ्यावलेपम् ॥११॥

कूर्मवशभूषणभूत सर्वेषा न (अस्माकम्) शासक ईश्वरसिंहाख्य. अस्माक स्वामी अद्य श्वो वा आगत्य राणाकस्य स्वान्तस्य चित्तस्य मूर्खताजनित बलगर्व हर्ता हरिष्यति (लुट्) ॥११॥

इत्याश्वस्तं तत्पुरस्तात्प्रयातं
सैन्यं तस्य श्रीश्वरक्षोणिभर्तुः ।
ज्ञात्वा सद्यः स्वामिनं संनिधाने
राणाकस्य द्रावयामास सेनाम् ॥१२॥

इति इत्य पूर्वोक्तरूपेण विश्वस्त तत् ईश्वरसिंहमहीपालस्य सैन्य तस्य (ईश्वर०) पुरस्तात् समुख उपयातम् । ततश्च निज स्वामिन सद्यः अतिशीघ्रम् सनिधाने समीपस्थ ज्ञात्वा राणाकस्य सेना द्रावयामास निजपराक्रमेण द्रुता (पलायिता) चकार ॥१२॥

दैन्यं कृत्वाऽप्यासितं येन पूर्वं
यावत्स्वामी काममायाति जेतुम् ।
आयातेऽस्मिंस्तत्र सैन्यं तदेव
व्यक्तं राणाकस्य गर्वं जहार ॥१३॥

यावत्काल स्वामी शत्रून् जेतु निर्भयतया यथेच्छम् आयाति तावत्काल येन सैन्येन पूर्वं दीनताम् अवलम्ब्य अपि आसित स्थितम्, अस्मिन् स्वामिनि तत्र (युद्धस्थले) आयाते सति तदेव सैन्य राणाकस्य दर्प व्यक्त (प्रकट यथा स्यात्तथा) अपजहार ॥१३॥

त्यक्तालस्यैः श्रीश्वराज्ञैकवश्यै-
र्युद्धे दीक्षादक्षिणैर्दाक्षिणात्यैः ।
लक्ष्मीं बिभ्रल्लुण्ठ्यमानः समन्ता-
च्चिन्ताक्रान्तस्वान्त आसीत्स राणः ॥१४॥

युद्धादिकर्मसु त्यक्तालस्यैः त्वरितकारिभिः श्रीमतः ईश्वरसिंहस्य आज्ञावशीभूतैः तथा युद्धकर्मणि या दीक्षा वीरताव्रत तस्मिन् चतुरैः महाराष्ट्रवीरैः समन्तात् चतुर्दिश लुण्ठ्यमानः अपह्नियमाणसपत्सामग्रीकः [यतो हि स] शोभां सपद च बिभ्रत् धारयन् आसीत्। अत एव सः राणाक चिन्ताभिभूतहृदयः अभूत् ॥१४॥

"रे रे यूयं वस्त्रभूषादिवेषं
संविभ्राणास्तुल्यरूपा नटीभिः।
श्मश्रूण्यङ्क्त्वा पौष्पतैलेन नित्यं
प्रोञ्छन्तः स्वैः पाणिभिः पौरुषार्थम् ॥१५॥

२१ तमश्लोकपर्यन्त हितचिन्तकैः किं वोध्यमान इत्याह—"लोकचित्ताकर्षकं वस्त्रभूषणादिवेषविन्यास धारयन्तः यूय नटीभिः समानरूपाः, यथा ताः वेषविन्यासादिद्वारा लोकान् आकर्षन्ति तथा मनोहरवेषादिसज्जया भवन्तोऽपि स्वशोभा सवर्द्धयन्ति। यतो हि पौष्पेण (पुष्प-जातेन) केशप्रसाधकेन तैलेन श्मश्रूणि अङ्क्त्वा (म्रक्षयित्वा, अभिरज्य) पौरुषप्रदर्शनार्थं निजैः हस्तैः श्मश्रूणि नित्य प्रोञ्छन्तः वाजयन्तः (परामृशन्तः) यूयं पौरुषम् अभिनयन्तः नटैस्तुल्यरूपा इत्यर्थः ॥१५॥

शोभामात्रायैव सौवर्णमुष्टीन्
खड्गान्नानावर्णचित्राढ्यकोषान्।
यूयं कट्यां धारयन्तः कुरुध्वे
रोषेणाप्याकर्षणं नो कदाचित् ॥१६॥

सुवर्णनिर्मितमुष्टीन् (त्सरु), नानावर्णैः चित्रैः आढ्यः युक्तः कोपः (निधानगृहम्) येषां तादृशान् खड्गान् केवल शोभामात्राय कटिप्रदेशे धारयन्तः यूयं कदाचित् रोषेणाऽपि तेषा खड्गानाम् आकर्षण अभिकृष्य उत्तोलनं न कुरुध्वे न कुरुथ। पौरुषशून्यतया वः क्रोध एव नोदेति, येन हि शत्रूणामुपरि खड्गाकर्षणस्य प्रसङ्गः समागच्छेत्। अत एव खड्गा इमे केवलं शोभामात्रार्थमेव वः कट्यामवलम्बन्ते इत्याशयः ॥१६॥

किं विज्ञाय श्रीश्वरक्षोणिभर्त्रा
वैरं कृत्वा यूयमायातवन्तः।
नापीदानीमेष वीरो भवद्भि-
र्मौढ्यावेशाद्रोषितः ध्वंस्यते च ॥१७॥

हृदये किं विचार्य ईश्वरसिंहमहीपालेन सह वैरं बध्ध्वा यूयम् अस्मिन् स्थाने समागतवन्तः ? इदानीम् एष. (ईश्वर) वीर. मूर्खतायाः आवेशात् (बलवदाक्रमणात्) भवद्भिः रोष प्रापित, अत एव एषः कदाचिदपि न क्षमा करिष्यति ॥१७॥

शौर्यावेशाद्रोषितश्चेत्क्षमेत
स्वीयान्मौढ्यावेशतो रोषितो वः ।
नैव क्षन्ता, मानसिंहक्षमाभृत्-
संतानस्य ज्ञातपूर्वं चरित्रम् ॥१८॥

स्वाभाविकवीरस्य प्रकृतिमाह—शौर्यस्य वीरताया आवेशत (सर्वाङ्गीणप्रभावात्) यदि स (ईश्वरः) रोषितः कोप प्रापित स्यात्तर्हि कदाचित् क्षमामपि कुर्यात् । यतो हि नैसर्गिकवीरः अपरस्य वीरताविजृम्भणमालक्ष्य 'निजवीरताप्रकाशनस्य अवसरोऽयमुपस्थित इति' अन्तः प्रसीदत्येव । किन्तु निजात् मूर्खताविजृम्भणात् कोपं प्रापितः स नैव क्षन्ता न क्षमिष्यते (लुट्) । मानसिंहक्षमाभृत (भूपालस्य) यः सतानः वशजः तस्य यस्य कस्याऽपि नरेशस्य चरित्र पूर्वं भवादृशैर्ज्ञातम् [जयसिंहादीना शौर्यं जगत्प्रसिद्ध सर्वप्रकारैर्विदित ते इति गूढमाक्षेपः सूच्यते] ॥१८॥

राज्ञां मौलिः सांप्रतं श्रीश्वरोऽसा-
वाज्ञां धृत्वा चक्रवर्तीश्वरस्य ।
यौष्माकीनादेव पीनापराधा-
त्कीनाशीयं मन्दिरं नेष्यते वः ॥१९॥

राज्ञा मौलि. मूर्द्धस्थानीय (श्रेष्ठः) श्रीमान् ईश्वरसिंहः चक्रवर्तिश्रेष्ठस्य दिल्लीश्वरस्य आज्ञा प्राप्य यौष्माकीनात् (भवत्सबन्धिनः, युष्मत्कृतात्) एव पीनात् वृद्धि गतात् अपराधात् कीनाशीय कीनाश (यमराज) सबन्धि मन्दिर व युष्मान् प्रापयिष्यति । भवता तथा उच्छृङ्खलता एषु दिनेष्ववलम्बिता यस्या. कारणात् सः विवश. सन् भवादृशान् नाशयेत्, तदुपरि तेन चक्रवर्तिन सकाशात् एतद्विषयिणी आज्ञाऽपि समवाप्ता । एव स्थिते क्षमाप्राप्ते. कोऽवकाश इति भाव ॥१९॥

नो चेत्स्थाता नोदयाख्यं पुरं ते
याता सद्यः शंसनात्तामवस्थाम् ।
या शैलाग्रस्थस्य चीतोडनाम्नः
पूर्वेषां ते पत्तनस्य प्रसिद्धा ॥२०॥

तव उदयाख्यं पुरम् (उदयपुरम्) एव सति न स्थाता न स्थिरं भविष्यति (लुट्)। सद्य शसनात् (सक्षेपे कथनात्) ताम् अवस्था याता यास्यति या शैलशिखरस्थितस्य चीतोडनाम्न ते तव पूर्वेषा पूर्वजाना पत्तनस्य (नगरस्य, दुर्गस्य) इतिहासे प्रसिद्धा। चीतोडदुर्गं चिराय यथा चूर्णित पतित चाऽभवत्तथा नवीनाऽऽवासितम् उदयपुरमपि नाश प्राप्स्यतीति भाव ॥२०॥

उदयपुरमशेषं नाशितं किं त्वयाऽद्य
प्रचलितमविदित्वा पौरुषं यत्स्वकीयम्।
नृपकुलभयभाजा सांप्रतं क्व प्रयातं
भवदुदरनिशान्तस्थायिना दुर्जनेन ॥२१॥"

सर्वसारभूतमाह—स्वकीय पौरुप पराक्रम प्रचलित कुत्रापि गत (नष्टम्) अज्ञात्वा त्वया अद्य अशेषमपि उदयपुर किमिति नाशितम् ? निजपराक्रमस्य परिसमाप्ति ज्ञात्वाऽपि भवता राजाधिराजसतानेन ईश्वरेण सह विरोध किमिति बद्ध ? यत्कारणात् समग्रमपि उदयपुर त्वया नाशितम्। नृपकुलाद् भयशालिना (भीरुकेण) भवतः उदरमेव निशान्त सुरक्षित भवन तत्र स्थायिना दुर्जनेन कोटाऽधिपतिना दुर्जनसिंहेन सप्रति क्व प्रयातम् ? य किल दुर्जनसिंह नृपसमूहाद् बिभेति अत एव भवदुदरे (उचिते अनुचिते वा भवत पक्षे, अथवा भवत्कृते युद्धादीना व्यये) लोभ-दारिद्र्यवशात्प्रविशति स. साम्प्रतं क्वाऽस्ति ? नरपतिमण्डलात् स भीतो भूत्वा भवतः उदरमध्ये इव भवतो गुप्तसरक्षाया प्रविशति। अथ भवताऽपि परिणाममज्ञात्वा दुर्जनः सः स्वकौयोदरे (सर्वप्रकारैः स्वीयसरक्षाया) प्रवेशित, स दुर्जन युद्धसघर्षे समापतिते क्व पलायित. इति साकूतमुच्यते ॥२१॥

इत्येवं स्वैर्बोध्यमानो भटाग्र्यै-
र्भूयोभीतः सर्वतो रुद्धमार्गः।
खिन्नस्वान्तः श्रीश्वराज्ञैकवश्यै-
र्युद्धक्रीडादक्षिणैर्दाक्षिणात्यैः ॥२२॥

अत्युद्विग्नोऽभूज्जगत्सिंहराणः
स्वीयं मौढ्यावेशजं कर्म शोचन्।
रुद्धः पश्चाच्चाग्रतो दाक्षिणात्यैः
सन्मन्त्रिश्रीराजमल्लप्रयुक्तैः ॥२३॥

इति एव, सप्तसु श्लोकेषूक्तेन प्रकारेण स्वकीयैः (महाराष्ट्रसबन्धिभि) सैनिक श्रेष्ठै. बोध्यमान. साक्षेप शिक्ष्यमाण , समन्तात् सैनिकसस्कन्दनेन अवरुद्धमार्ग , अतएव अत्यन्तं भीत. । ईश्वरसिंहस्य आज्ञावशीभूतै:, तेषा कृते युद्ध वीरक्रीडेव, तत्र सर्वत्र चतुरै दाक्षिणात्यै' महाराष्ट्रैः खेदितचित्तः ॥ सन्मन्त्रिणा राजामल्लेन प्रयुक्तै महाराष्ट्रैः अग्रभागे पश्चाद्भागे च अवरुद्धः, अतएव मूर्खताया. आवेशाज्जात निज कार्य' शोचन् सन् जगत्सिहराण अतीव उद्विग्न भयविचलित अभूत् ॥२२-२३॥ [सहाऽन्वय.]

धत्ते नित्यं भूतले पौरुहूतीं
लक्ष्मीं साक्षादीश्वरक्षोणिपालः ।
एतस्यैवाग्रेसरो राजमल्लः
पौरोवात्यं संततं संबिभर्ति ॥२४॥

मन्त्रिणो राजमल्लस्य प्रभावमाह—ईश्वरसिंहमहीपालः भूतले साक्षात् पौरुहूती (पुरुहूतस्य इय पोरुहूती ताम्, इन्द्रसबन्धिनीम्) लक्ष्मी शोभा सपद वा धत्ते धारयति । अस्यैव अग्रगामी वीरसचिवः राजमल्ल पुरोवातस्य भाव सबिभर्ति धारयति । इन्द्रस्य आगमनात्पूर्वं यथा पूर्वदिग्वायुः तस्य आगमनाय जलदाना समाहरणादिकम् अग्रतन-कर्तव्य पूरयति तथा सोय राजमल्लः ईश्वरसिंहस्याऽऽगमनात्पूर्वमेव शत्रूणा दल विपुलेन निजबलेन दलयित्वा ईश्वरसिंहस्य मार्ग पूर्वमेव परिशोधयतीति द्वयोः साम्यम् ॥२४॥

आनीयाऽऽनीयाऽभ्यतानीदिदानीं
मानी पानीयाढ्यपाथोधराभाः ।
राणाकस्योद्दामदर्पाग्निशान्त्यै
भान्तीः सेनाः शक्तिशम्पाशतेन ॥२५॥

एतदेव विस्पष्टयति—मानी मनस्वी अय राजमल्ल सजल-जलधरसदृशी , तथा शक्ति(भशुण्डी 'बरछी')शतरूपेण शम्पा(विद्युद्)शतेन शोभमाना सेनाः इतस्तत. स्थानेभ्यः निजनीतिचातुर्येण गूढमन्त्रेण च समाहृत्य अभ्यतानीत् समन्ताद् विस्तारयामास ॥२५॥

राणाकस्योद्दामदावाग्निकल्पो
दर्पोऽकस्मादेव जाज्वल्यमानः ।
श्रीमद्राजामल्लचण्डानिलोद्यत्-
सैन्याम्भोदैरेव सद्यः प्रशाम्येत् ॥२६॥

प्रयोजनमाह—राणाकस्य उद्दामदर्प. प्रचण्डगर्वः दावानलसदृश. परितः प्रसर्पति तस्य शान्तिः अनीकिनीरूपा कादम्बिनी विना न भवति । तदर्थमेव अयं सेनाः विस्तारयामास । यतो हि—राणाकस्य प्रचण्डदावानलसदृशः गर्वः अकस्मादेव सर्वतः प्रदीप्यमानः अभूत् । स हि राजामल्लरूपात् प्रचण्डपूर्वीयपवनात् उद्यद्भिः (उत्तिष्ठद्भि., प्रेरितैः) सैन्यरूपै. मेघैरेव शीघ्रतया शान्तो भवेत् ॥२६॥

नासीरस्थान् कांश्चिदास्कन्द्य वीरा-
न्यद्वै पूर्वं लेखयामास पत्रम् ।
राणाकस्तत्प्रत्ययाद्दाक्षिणात्यैः
पश्चात्क्रान्तः कच्छवाहैः पुरस्तात् ॥२७॥

अग्रभागस्थितान् कांश्चिद् वीरसैनिकान् आक्रम्य राणाकः यत्पत्रम् (अग्रे वयं भवत एव साहाय्य करिष्याम , इत्यादिकम्) बलात् लेखयामास तत्प्रत्ययात् तस्य प्रतिशोधात् (अवसरेऽस्मिन् तस्य प्रतिशोध ग्रहीतुम्), पश्चाद्भागे महाराष्ट्रवीरैः कृताऽऽक्रमणः, पुरस्तात् अग्रभागे च कच्छवाहैः, (ईश्वरसिंहसैनिकैः) कृताक्रमणः अभूत् ॥२७॥

शक्तिक्षेपे दक्षिणैर्दाक्षिणात्यै-
स्तद्वन्निस्त्रिंशोद्धुरैः कच्छवाहैः ।
अग्रे पश्चाच्चापि रुद्धान्नपानं
सैन्यं राणाकस्य दैन्यं जगाम ॥२८॥

शक्तेः भुशुण्डया ('बर्छी') परिचालने चतुरैः महाराष्ट्रवीरैः, एवमेव निस्त्रिशेन उद्धुरै उत्कटैः (खड्गपरिचालनप्रचण्डैरिति यावत) कच्छवाहवीरै. अग्रतः पश्चाद्भागे च निरुद्धे निवार्यमाणे अन्न-पाने (खाद्य पेये) यस्य तादृश राणाकस्य सैन्य (सेना) विवशं विकल च भूत्वा दीनतां प्राप ॥२८॥

राजामल्लः सैन्यभूरिप्रभावः
पूर्णोत्साहः प्राप्तसन्मन्त्रसिद्धिः ।
इत्थं युक्तो राज्यशक्तित्रयेण
क्षुल्लीचक्रेऽसौ जगत्सिंहराणम् ॥२९॥

महाराष्ट्रादीना सेनाभि भूरि बहु. प्रभाव' (प्रभुत्वम्) यस्य, सर्वेपु आर्येषु प्रभूतेन उत्साहेन युक्तः, एवमेव प्राप्ता सन्मन्त्रेपु (गुप्तमन्त्रणासु) सफलता येन ईदृशः राजमल्ल । पूर्वोक्तप्रकारेण प्रभुत्वोत्साहसिद्धिरूपेण राज्यशक्तीना त्रयेण युक्त । अतएव जगत्सिहराणामहोदयम् असौ तुच्छीचकार ॥२९॥

माद्यन्मातङ्गसंघप्रघनघनघटाघोरसंघट्टघोषैः
संग्रामोत्साहनृत्यत्तुरगवरसमुद्भूतहेषानिनादैः ।
संवर्त्तोद्यत्समीरप्रजवजलधिवज्जातसैन्यौघगर्जै-
रक्काय श्रीश्वरस्यागमनमवगतं तेन राणाह्वयेन ॥३०॥

माद्यन्तः (मत्ताः) ये हस्तिन , तेपा सघस्य समूहस्य निबिडमेघघटावत् य घोर प्रचण्डः सघट्टः समवायः तस्य निनादै. । युद्धोत्साहेन नृत्यन्त ये अश्वश्रेष्ठा, तेभ्यः समुद्भूतै हेपानिर्घोपैः । सवर्ते प्रलये उत्तिष्ठन्तः ये समीराः पवना', तेभ्य प्रकृष्टवेग-युक्ता ये जलधयः (समुद्रा) तेपा गर्जनावत् जातै' सेनासमूहस्य प्रचण्डगर्जनैः । तेन जगत्सिहराणामहोदयेन अक्काय अतर्कितम् (सहसा, अव्ययपदम्) श्रीमत ईश्वरसिंहस्य आगमन विदितम् ॥३०॥

आयातं दाक्षिणात्योद्भटसुभटबलं श्रीश्वराज्ञैकवश्यं
पश्यन्तः कच्छवाहाः सरभससमरोत्साहसज्जोच्चवाहाः ।
पाणावुद्यत्कृपाणाः कठिनतरधनुर्ज्यासमासक्तबाणा
राणाकस्य प्रमाणातिगहृदयमदं मर्दयामासुरेते ॥३१॥

दाक्षिणात्याः, युद्धे प्रचण्डाश्च ये सुभटाः योद्धारः तेपा सैन्यम् । ईश्वरसिंहस्य आज्ञामात्रेण वशीभूतं सत् समागतमस्ति इति विलोकयन्त , सरभस सभ्रमशीघ्रतासहित य युद्धोत्साहः तेन सनद्धा उच्चाः उन्नता वाहाः (अश्वा) येपा तादृशा । पाणौ (हस्ते) उत्तिष्ठन्त. खड्गा येषाम् । कठिनतरासु अतिदृढासु धनु प्रत्यञ्चासु समासक्ता आरोपिताः बाणाः येपाम् । एवविधाः इमे कच्छवाहा राणाकस्य प्रमाणातिग परिमा-णमपि अतिक्रम्य गच्छन्तम् अतिप्रमाण हृदयस्य मदं गर्वं मर्दयामासु' चूर्णयामासु ॥३१॥

वीरश्रीराजमल्लप्रथितमतिमहामन्त्रिशक्त्योपनीतैः
प्रोद्यद्भिर्दाक्षिणात्यैर्झगिति झलमलच्छक्तिनिस्त्रिंशभीमैः ।
आधावद्भिः समन्तात्पथि पथि नितरां रुध्यमानान्नपानाः
स्थानाद्गन्तुं न शक्ताः किल भयमदधुस्तत्र राणाकसैन्याः॥३२॥

वीर श्रीराजमल्लनामा यः प्रख्यातबुद्धिशाली महामन्त्री तस्य सामर्थ्यवशात् आनीतं, शीघ्रमेव भल्मल् इति चमत्कुर्वद्भ्या शक्ति (बरछी) खड्गाभ्या भयानकैः अवसरमुपलक्ष्य सर्वत धावद्भि, प्रोद्यद्भि (सर्वतः देशे अभ्युदय गच्छद्भिः) दाक्षिणात्यैः (महाराष्ट्रै) मार्गे मार्गे एव (यस्या दिशि येन मार्गेण गच्छन्ति तत्र तत्रैव) अवरुद्ध-भोज्य-पेयसामग्रीका । राणाकस्य सैनिका. विवशा सन्त. अविष्ठितस्थानात् अग्रे पदात् पदमपि गन्तुम् असमर्था सन्त तत्र (समराङ्गणे) भयं प्रापुः ॥३२॥

"आयातं किं कृतं किं निजमनसि मतं किं मुहुर्मन्त्रितं किं
प्रोक्तं किं प्रोद्यतं किं भयमिदमधुना भूरि संभावितं किम् ।
ज्ञातं किं नैव पूर्वं प्रकृतिमृदुरियं नाम शीषोदजाति-
र्जाता किं ते प्रतिज्ञा, किमजनि रचितो वीरसार्थे विकत्थः?॥३३॥"

३४ तमश्लोके वर्णित दुन्दुभिगर्जनाना तर्जनस्य प्रकारमाह—असामर्थ्ये सत्यपि आक्रमणेन अनेन किम् आगतम् (को लाभो जात. ?), अद्यावधि किमिद कृतम् ? सर्वै. युष्माभिः स्वकीये मनसि किं विचारितम् ? मुहुः मुहुः किं मन्त्रितम् ? अर्थात् वार वार या मन्त्रणासभाः सममिलन् तत्र का मन्त्रणा जाता ? भवद्भि पूर्वं किं कथितमासीत् किन्तु अग्रे किमिद प्रोद्यतम् उपस्थितम् ? इद सर्वतोऽपि विवशतया आक्रमणरूप भय पूर्वं किं संभावित विचारितमासीत् ? इद किं पूर्वं न ज्ञातमासीद् यत् इय 'सीसोदिया' (उदयपुरक्षत्रियाणा शाखाऽवटङ्कः) जातिः प्रकृत्या स्वभावादेव मृदुः कोमला (दुर्बला इत्यर्थ.)। ते तव पूर्वप्रतिज्ञा किं जाता ? पूर्वं कृता विजयप्रतिज्ञा क्व गता इत्युपहास । वीरसार्थे (युद्धवीराणां समूहे) रचितः विकत्य. विकत्थनं मिथ्याभि-मानगर्जन किम् अजनि ? तस्याऽपि संप्रति कुत्राऽवस्थितिः ? इत्युपहासः ॥३३॥

इत्थं श्रीश्वरसिंहनामनृपतेर्नासीरधीरध्वन-
त्कोणाघातगभीरदुन्दुभिमहागर्जारवैस्तर्जिताः ।
निर्धूताखिलधैर्यसम्पद इमे राणाकसैन्यव्रजाः
कृत्यं तस्य निनिन्दुरागतभयाः साक्षात्परोक्षे तथा ॥३४॥

इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण ईश्वरसिंहभूपालस्य, नासीरे सेनाऽग्रभागे धीर यथा स्यात्तया ध्वनता नादं कुर्वताम्, कोणाघातेन वादनदण्डेन ताडिताना गभीराणा दुन्दुभीना महद्भि गर्जनरवै तर्जिता भर्त्सिता । निर्धूता दूरीभूताः संपूर्णा धैर्यसपद. (धैर्यरूपा. संपत्तय) येषा ते । इमे राणाकस्य सैनिकसमूहा । आगत (प्रतिपदम् उपस्थितम् भयम्)

येषाम् एवंविधा सन्त. । तस्य (राणाकस्य) कृत्यम् (ईश्वरसिंहेन सह स्पर्द्धानिबन्धनरूपम्) साक्षात् (प्रत्यक्षम्) तथा परोक्षे च निनिन्दु. गर्हयाचक्रु ॥३४॥ (सहान्वय)

उच्चैरीश्वरसिंहनामनि महीपाले कलानां निधौ
सम्पूर्णोदितमण्डलद्युतिधरे विद्योतमाने भुवि ।
प्राप्ताः सर्वत एव पर्वतसमा मातङ्गवाजिव्रजाः
सेनासागरसान्द्रवीचिसदृशा वृद्धिं परां भेजिरे ॥३५॥

सपूर्णम् उदितम् अभ्युदय प्राप्त यत् मण्डल सचिवादिप्रकृतिमण्डलम्, तस्य शोभाधारके [चन्द्रपक्षे सपूर्णोदितस्य नि'शेषं यथा स्यात्तथा आविर्भूतस्य मण्डलस्य बिम्बस्य कान्तिधारके] पृथिव्या. पालके ईश्वरसिंहनामके कलाना निधौ चतु षष्टिकलासपन्ने चन्द्रे [चन्द्रः षोडशकलासपन्न]। एतादृशे चन्द्रे भुवि उच्चै (अतिशयेन) यथा स्यात्तथा विद्योतमाने (प्रकाशमाने) सति । सर्वत नानादिग्देशेभ्यः एव समागता, पर्वतवत् अत्युन्नताः मातङ्गवाजिव्रजाः (हस्ति-घोटकसमूहा), सेनारूपसमुद्रस्य महोन्नतनिविडतरङ्गसदृशा. सन्त. परा वृद्धि भेजिरे अत्यधिकमुत्कर्षं प्रापुः ॥३५॥

सेनासागरपूरपूरितधराचक्रे समन्तादहो
वेगादीश्वरसिंहभूपतिकलानाथे गृहीतोदये ।
सद्यः संप्रति सर्वतः समकुचत्पर्यस्तपत्रव्रजो
राणाकस्य सदुर्यशोमधुकरः सैन्यौघपद्माकरः ॥३६॥

समन्तात् सर्वत सेनारूपसमुद्रस्य पूरै ओघै पूरितधराचक्रे परितो व्याप्तभूमण्डले ईश्वरसिंहरूपे नरपतिचन्द्रे वेगात् अतिशयसमुत्साहात् गृहीतोदये प्राप्ताऽभ्युदये [चन्द्रपक्षे-क्षितिजात् स्वीकृतोपरिगमने] सति । सर्वतः समन्तात् पर्यस्त भयात् इतस्ततो विकीर्णं पत्राणा रथादिवाहनाना व्रजः समूहो यस्य तादृश [चन्द्रपक्षे—पत्राणा पल्लवानां चयः यस्य] । अतिशयित दुर्यशः (सर्वत परस्परविद्वेषजनितयुद्धोत्थापनादिका महती अकीर्ति) एव कृष्णवर्णो भ्रमरः यस्मिन् एवंविध. राणाकस्य सेनासमूहरूपः पद्माकरः कमलाना महान् खण्ड । सप्रति सद्यः भूपचन्द्रस्याऽभ्युदयकाले एव सकोच सर्वतः पराभवम् अगच्छत् ॥३६॥

आयातः पुरुहूत एष धरणेर्वीराग्रणीरीश्वरः
प्रोद्यद्वारणवारिदैर्हयबलप्रोच्चण्डपूर्वानिलैः ।
शम्पाशक्तिसमूहदीप्तिविसरैः शौर्योष्मविस्तारणै-
स्तद्राणाकहृदुत्थदर्पदहनः शान्तोऽभवत्तावता ॥३७॥

इति श्रीमत्तैलङ्गान्वयमङ्गलमहोदधिराकासुधाकरनानानरेन्द्र—मणिमुकुटकिर्मीरित-
पादारविन्द-देवर्षिश्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिकृतौ ईश्वरविलासमहाकाव्ये
राणापराभवो नाम चतुर्दश सर्ग. ।

वीराणाम् अग्रणी सर्वतः प्रधानम्, धरणेः पृथिव्याः पुरुहूतः इन्द्रः, एष ईश्वर-सिंह आयात सम्मुखे समुपस्थित । अत एव प्रोद्यन्तः उज्जृम्भमाणाः वारणाः हस्तिन एव वारिदाः मेघाः येषु तादृशैः । तथा हयबलानि अश्वसैन्यानि एव प्रोच्चण्डाः अति-तरल-विकटा पूर्वानिलाः पूर्वदिक्पवनाः येषु तैः [हयानामतिशयितशीघ्रगामितया अनि-लेन सह अभेदकल्पन कवेः परममार्मिकत्व बन्धे विपुला विच्छित्तिं च पुष्णाति] शम्पा-सरूपा (विद्युद्भिः अभिन्ना) ये शक्तिसमूहाः भुशुण्डी'वरछी'निकराः तेषां कान्ति-प्रसारो येषु तादृशैः । एवंविधैः, शूरतारूपस्य ऊष्मणः वर्षणात्पूर्वकालिकस्य धर्मस्य विस्तारैः । स राणाकस्य हृदये उत्पन्नः गर्वरूपः अग्निः [नर-तुरगादिरूपायाः देशस्य प्रभूतसामग्र्याः भस्मीकारकतया दहनसाम्य समञ्जसमेव] । तावता तथाकरणेन निर्वाणः लुप्तः अभवत् ॥३७॥

उपसंहारः

यत्र भानुकुलकान्तकृतीनां भाति कीर्तिरमला नृपतीनाम् ।
एतदीश्वरविलास-महाकाव्यं समाप्यत मनागियतैव ॥१॥

तैलङ्गभूसुरवरेण्य-समस्तविद्वद्देवर्षिवंशमणिमण्डनमण्डितोऽयम् ।
आम्बेर-बुन्दि-नरपालसमर्पितश्रीः श्रीकृष्णभट्टकविमूर्द्धमणिर्विभाति ॥२॥

तेनैतदारचि विचित्ररहस्यरम्यं
श्राव्यं गुणप्रणयिमानसहारि काव्यम् ।
एतत् चतुर्दशमितं वत सर्गमाप्य
सपूर्तिमेति, महतीह कृतेऽपि यत्ने ॥३॥

उपसंहारे वक्तव्यम्

पूर्णप्रयासे कृतेऽपि काव्यमिदमेतावत्पर्यन्तमेव समुपलब्धम् । यतो हि श्रीमत पी० के० गोडे महाभागस्य [क्यूरेटर, भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट, पूना,] अनुग्रहेण पूर्वोक्तगवेषणालयात् एतावानेव भाग समुपलब्धः । अत्र हि अन्तिमे चतुर्दशे सर्गे "राणापराभवो नाम चतुर्दश सर्ग" इति प्राप्यते समाप्तिलेख । किन्तु ग्रन्थे यादृशः प्रारम्भस्तेन एतादृश उपसंहारो न कथचिदप्यनुगुणीभव त । काव्यमिद विरच्य श्रीकृष्णभट्टकविकलानिधिमहाभागेन श्रीमते ईश्वरीसिंहभूभृते राजसभायामेव सादर समार्प्यत । काव्यश्रवणसुप्रीतेन महाराजेन च राजसभायामेव कर्मपुरनामको ग्रामः कविकलानिधिमहाभागाय सपरितोष समर्पित , इति हि काव्यस्यास्य दशमसर्गे स्वय कविनैवोपनिबद्धम् । ग्रामोऽय साम्प्रतमपि कविकलानिधिमहाभागस्य वशजैर्जयपुरनगरमधिवसद्भिर्भुज्यते ।

काव्यमिद जयपुरनगरस्य राजहर्म्यमालास्थिते पुस्तकालये [पोथीखाना] सपूर्णमप्यस्तीति परम्परात. शृणुम । किन्तु–काव्यनिर्माणकाले काव्यस्याऽस्य सर्गसमाप्तौ पद्येन 'पुष्पिका' निर्माणविचारेण प्रत्येकसर्गान्तिमपद्ये यत्परिवर्तन चिकीर्षितमासीत्, तद्धि एकस्मिन् पत्रे पाण्डुलिपिरूपेण ग्रन्थकृता स्वहस्तेन लिखितमासीत् । एतत् पाण्डुलिपिपत्र श्रीकृष्णभट्टमहाभागाना प्राचीनपुस्तकसग्रहादस्माभिरधिगतम्. एतत्काव्यप्रकाशक–'राजस्थानपुरातत्त्वमन्दिराध्यक्षाय' दर्शित च । एतदनुसारमपि काव्यस्यास्य पञ्चदश षोडश वा सर्गा अनुमीयन्ते । किन्तु प्रयासे कृतेऽपि नूतनस्य 'राजस्थानप्रबन्धस्य' महिम्ना पूर्णमिद पुस्तक नोपलब्धम् । अतएव यावदुपलब्धमिदं काव्य सहृदयाना मनस्तोषाय प्रकाश्यते नूनम् ।

प्रवीराग्रगण्यस्य ईश्वरीसिंहमहाराजस्य जीवनवृत्तविषये ग्रन्थान्तरेभ्यो यत्किल परिज्ञात तद्धि पाठकाना पुरत समुपस्थापयितुमुचितमिति यथोपलब्धमिदमधस्तात् समुद्ध्रियते—

ईश्वरीसिंहमहाराजस्य इतिहासपरिशिष्टम्

'ईश्वरीसिंहमहाराजस्य व्यक्तित्वम्' यदि विचार्येत तर्हि महाराजोऽयमसाधारणो वीर., क्षत्रियमर्यादापालकश्चासीत् । यस्मिन्काले समग्रोपि राजपुत्रप्रान्तः स्वीया स्वतन्त्रता महाराष्ट्राणा हस्ते विक्रीतवानासीत्, तस्मिन् संघर्षमयेऽपि समये क्षत्रियमर्यादाम् आम्बेरराजवशस्य वीरताभिमानं च अक्षुण्णमयं रक्षितवान् । धीरोऽय बहुतरा विपत्तीः सोढवान् , किन्तु क्षत्रियवीराणा व्रतं न कदाचित् त्यक्तवान् । उदयपुर–जोधपुर–कोटा–बूँदीप्रभृतिसमर्थराज्यानि, किमधिकम्, निजो भ्राता माधवसिंहोऽपि महाराष्ट्रसघ निजस्य त्रातार, स्वामिनं च मेने । किन्तु वीरोऽय निजप्राणेभ्योऽपि निजस्य प्रणमेव प्रगाढं पालयामास । अथवा–इदमिह कथयितु शक्यते यत्—माधवसिंहस्य कृपया मल्हाररावप्रभृतिभिर्महाराष्ट्रसेनानायकैरपि जयपुरनगरस्य दर्शनं कृतम् । अन्यथा तेषा का शक्तिरासीद् यज्जयपुरस्य सीमापर्यन्तमपि बलात्ते प्रविशेयुः ।

या महाराष्ट्रशक्तिर्हैदरअलिम्, महीशूरस्य 'नवाबम्', निजामस्य भीषण बलमपि सावहेलं धूलिसाच्चकार । दिल्लीं यथेच्छमात्मनो हस्तगतामकार्षीत् । राजपुत्रप्रदेशस्य वीरताभिमानिनो भूपालान् खड्गधाराया प्रवाहयामास । किं बहुना, यतो यतस्तैः (महाराष्ट्रैः) दृष्टिपात कृतः, तत्र तत्रैव विजयलक्ष्मीस्तै· स्ववशीभूतैव विलोकिता । किन्तु महाराजजयसिंहस्य, तदात्मजस्य च वज्रनिर्मित वक्ष स्थलं प्राप्य तीक्ष्णाऽपि महाराष्ट्राणा कृपाणधारा निःसारा सबभूव । परम्, विद्रोहिणा भ्रात्रा माधवसिंहेन, पिशुनेन अमात्यहरगोविन्दनाटानिना च सोयं चिराय कपटपाशे विवशीकृतः ।

महाराणा जगतसिंहो राजस्थानस्य एकमात्र रक्षाकवचम् (ईश्वरीसिंहम्) विचूर्णीकृत्य स्वयमपि चिरकालाय महाराष्ट्राणा कुचक्रे निपातितोऽभूत् । अन्यथा माधवसिंहायैव यदि जयपुरराजसिंहासन-प्रदापनस्य कुटिलनीतिराश्रयणीयाऽऽसीत् तर्हि ईश्वरीसिंहाय निजपुत्री किमिति विवाहिता ? भागिनेयस्य कृते यथा पक्षपुष्टिः क्रियते तथा किं जामातुः कृते सर्वात्मना पक्षपातो न कर्तव्यो भवति ? परं विपरीतस्य विधातु को वा चिकीर्षितं विद्यात् ! ईश्वरीसिंहः केवल षट् सप्तवर्षाणि राज्य चक्रे, किन्तु अवसरेऽस्मिन् न क्षणमात्रमपि युद्धव्यवसायान्निश्चलः समतिष्ठत । जना राजचरित्रे नानादोषानधिरोपयन्ति, किन्तु सर्वदा युद्धनिरतस्य शत्रुदलसंलग्नस्य राजन्तावान् समय एव कुत्राऽऽसीद् यत्राऽऽसौ अकर्मण्यस्तिष्ठेत् ! परमेन राजान प्रति लोकानामकारणक एव विद्वेषः प्रावर्तत, येन भ्रममूलिका नानाकल्पनाः समकल्प्यन्त तैः ।

किञ्च—ससारस्य सोऽयं स्वाभाविको नियमो यद् विजेतुः कीर्तिश्च गुणाश्चैव सर्वतः प्रसरन्ति । पराजिते तु नानाविधा दोषा एव बलादिव समारोप्यन्ते । महाबलो राजनीतिपटुर्दुर्योधनोऽत्र निदर्शनम् । यस्य किं महाभारते, किं वा तदाधारकेषु नाटकेषु काव्येषु वा दोषा एव कविभिर्गीताः । एतद्विपरीतम्-पाण्डवेषु तु गुणा । एवमेव चरित्रनायके ईश्वरीसिंहेऽपि भ्रान्तिपूर्णा नानाविधा किंवदन्त्यः जनैः प्रचारिताः । यतो हि ते राजदण्डान्निर्भया आसन् ।

महाराष्ट्रो मल्हारराव: सर्वं द्रव्यम्, माधवसिंहात् एककोटिमुद्राः, शतवर्षाणा कृते रामपुराप्रान्त च स्वहस्ते कृत्वा माधवसिंह सिंहासनाऽऽरूढमकरोत् । किन्तु १८०७ तमस्य विक्रमवर्षस्य पौषकृष्ण-दशम्या जयपुरराजप्रासादेन तादृशानि हृदयविदारकदृश्यान्यालोकितानि, येषा स्मरणेन चित्तौड प्रति मोगलसम्राजा ये अत्याचारा सजातास्ते नून किञ्चित् किञ्चिद् वृद्धयारूढा भवन्ति । मोगलसम्राड्भ्यो वय दोषान् दातु न शक्नुमः । किन्तु समानजातीयाना क्षत्रियाणाम्, क्षत्रियाणामाचारान् व्यवहाराश्च यथावद् जानता महाराष्ट्राणा च, क्षत्रियान् प्रति अत्याचारान् न वय निःशब्दं सोढु शक्नुमः ।

क्षत्रियमर्यादाया अद्वितीयोपासकस्य राजपूतप्रान्तीयसर्वश्रेष्ठभूपालस्य शवः एकमहोरात्र यावत् निर्धनमनुष्यवत् धराया निपतितः स्यात् । मल्हाररावो निजकोषात्तस्य अन्त्येष्टिक्रियायै सामग्री प्रदद्यात् !! या प्राप्य तस्य शवशरीरं पारम्परिके 'गेटोर'स्थाने अदग्ध्वा, जयनिवासोद्यानस्य राजान्त पुरस्य संनिकटे एव विवशमदह्यत । तत्रैका उपराजपत्नी (पडदायत) सहगमनमकरोत् [अर्थात् सती अभवत्] । किन्तु महतः शोकस्य विषयो यत् खाण्डेरावः अस्यामपि दशायामन्तःपुरात् स्त्रीरत्नानामपहरणस्य दुर्विचारमकरोत् । हन्त ! कुत्सितचेष्टामिमामालक्ष्य एकादश राजोपमहिष्यः प्रदीप्ते पावके आहुत्य निज-सतीत्वमरक्षन्, अन्याश्च राजमहिष्यः अन्तःपुरे वह्निचूर्णम् (बारूद) परितः प्रकीर्य निजशरीरहवनस्य चेष्टामकुर्वन् । अन्तःपुराधिकारिभिः पेमसिंहगोगावतप्रभृतिसामन्तेभ्यः सूचना प्रादीयत यत् यदि खाण्डेरावोऽत्र निजदुस्साहसान्न प्रतिनिवर्त्स्यते तर्हि समग्रमप्यन्तःपुरं त्वरितमेव भस्मीभवेत् ।

ते सामन्ता उम्मेदसिंह बुन्दीपतिमबोधयन् । बुन्दीपतिश्च मल्हाररावमभर्त्सयत्—यत् भवत्पुत्रः खण्डेरावस्तादृश व्यवहारमारभते येन समग्रापि क्षत्रियजातिर्निजमानभङ्गमालक्ष्य त्वरितमेव विरोधे सर्वतः समुत्तिष्ठेत् । मल्हाररावः स्वपुत्र न्यवारयत् । हन्त ! महाराष्ट्रजातेः सकाशात् यः किल जनो भारतस्य स्वतन्त्रतामाशास्ते स्म, अवश्यमसौ भ्रमजालपतितः । येषा हि नारीजातिं प्रति व्यवहारोऽयमीदृशो भवेत्ते किं कस्यचिद्देशविशेषस्य कल्याणसाधने समर्था भवेयुः ?

'चमारगोंदा' प्रदेशात् सिन्धियाऽपि समागच्छत् । स हि अर्थदण्डस्य रूप्यकाणि गृहीत्वा यथैव परावर्तितुमैच्छत् तथैव राजभक्तैर्नागरिकैर्विद्रोहिभिर्भूत्वा परःसहस्रान् महाराष्ट्रान् बलाद् घातयित्वा

हरगोविन्दनाटानीसदृशेभ्यो निर्लज्जस्वामिघातकेभ्यो विस्पष्ट शिक्षा दत्ताऽभूद् यत् पश्यत। राजभक्ताना प्रजानामिद कर्तव्यमिति। अस्तु, महाराष्ट्रा जयपुर श्रीहीन कृत्वा निजदेशं परावर्तन्त।

माधवसिंहः कुटिलैरुपायै कठिनतया राजसिंहासनमवाप्तवान्। महाराजो युधिष्ठिर. पुरा कौरवाणा मानभङ्गम् आत्मन एव शक्तित्रय परिज्ञाय यथा भूयस्तरामनुतप्तोऽभूत्, तथा नाटानी-महाराष्ट्र-महाराणाजगत्सिंहादीना सकाशाद् य' किल ढु ढारप्रदेशस्य मानभङ्गोऽभूत् स हि माधवसिंहस्य हृदय विषाक्तबाण इवाऽपीडयत्। स्वर्गतस्य पितुर्जयसिंहस्य असाधारणं यशो गौरव च, ज्येष्ठभ्रातुरीश्वरसिंहस्य राजहठो मानप्रियता च, निज सत्य स्वरूपमाविष्कृत्य एतस्य नेत्रयोः समुखे प्रकटमनृत्यत्। अनुतापस्य माधवसिंहस्य भाविजीवने विचाराणा पूर्णतया परिमार्जन चाऽभूत्। स हि ईश्वरीसिंहस्य शत्रून् निजस्य शत्रून्, तस्य मित्राणि चाऽऽत्मनो मित्राणि निर्भरमभावयत्। अतएव स हि सिंहासनाऽऽसीनो भूत्वा निजस्य असाधारणेनैव कौशलेन आम्बेरराज्यस्य शत्रून् नानाविधैरुपायै कथमिव पराजयते स्म, इति हि प्रकटमितिहासनिबन्धेषु। [पृ० १०१-१०६, महाराजसवाई ईश्वरीसिंहस्येतिहासः ठा० नरेन्द्रसिंह (मन्सबदार जोबनेर, एज्युकेशनमैम्बर कौंसिल ऑफ जयपुरस्टेट) द्वारा लिखितः]।

माधवसिंहस्यानुताप', भ्रातृभक्तिश्च

ईश्वरीसिंहस्य स्वर्गवासोत्तरं महाराजो माधवसिंहो नितरा व्यषीदत्। महाभारते कुरुवशस्य विनाशोत्तर स्वर्गतवीरेभ्यो जलाञ्जलिदानसमये युधिष्ठिरादयः पाण्डवा यथा विषण्णा अभवन्, तथा महाराजो माधवसिंहोऽपि नितरा कुण्ठितोऽभवत्। स हि अन्त.पुरे गत्वा ज्येष्ठभ्रातुः पत्न्या संमुखे खड्ग निधाय सगद्गदमवादीत्—"घोरस्य ममाऽपराधस्य प्रायश्चित्त मम रक्तप्रवाह विना न संभवेत्।" सानुतापमश्रूणि व्यमुञ्चत् महाभारते पुत्रविहीन धृतराष्ट्रं सतीशिरोमणि गान्धारीं च महायोगिनः श्रीकृष्णस्य, नीतिपटोर्विदुरस्य, महातपसो वेदव्यासस्य च, उपदेशास्तथा न असान्त्वयन् यथा विजयिनो युधिष्ठिरस्य पश्चात्ताप, बाष्पविसर्जन च असान्त्वयत्। एवमेव अत्रापि माधवसिंहस्य विनयेन कारुण्येन परिप्लाविता भूत्वा ईश्वरीसिंहस्य राजमहिषी माधवसिंहस्य सर्वानपराधान् व्यस्मरत्। सा हि सानुतापमवादीत्—"अह नान्यद् वाञ्छामि। केवल ममाऽयमेवाभिलाषो यन्मम स्वर्गतः स्वामी, कुमार कल्किश्च द्वावपि प्रतिभाऽन्वितौ पुरुषविशेषौ आस्ताम्। अत एव तयोः स्मृतिरक्षायाः कृते सुस्थिर तादृश किञ्चिदायोजनं वाञ्छामि येन कालान्तरेऽपि तौ देववत्परैपूज्येताम्।"

माधवसिंह.—तथा' इति स्वीचकार।

महाराजस्येश्वरीसिंहस्य देहो राजहर्म्यमालाया निकटे अन्तःपुरे एव अदह्यत। तत एव तत्स्थाने तदीयं मन्दिरं मर्मरपाषाणै. सुरम्य निरमीयत, यत्र तच्चरणौ वीरपूजायाः कारणात् राम-कृष्णादिचरणवत् परिपूज्येते। तन्मन्दिर च 'ईश्वरावतार' इति नाम्ना साम्प्रतमपि सादरं व्यवह्रियते। कल्किनो मन्दिरं च प्रधानराजहर्म्यमालायाः ('सिरहड्योढी') समुखे, दुन्दुभिभवनस्य (नक्कारखाना) श्रीरामचन्द्रमन्दिरस्य च मध्यत साम्प्रतमपि समुन्नतशिरस्कं विराजते[1]। तत्परिलोक्य स्वर्गतस्य राजकुमारस्य गौरवं यशश्च सर्वेषामैतिहासिकाना हृदि नितरा जागर्ति। मम विचारे पूर्वोक्तस्य तादृशमनोमालिन्यस्योत्तरं न केनचिदन्येन भूपालेन एतादृशी विशालहृदयता प्रकटीकृता भवेत् [पृ० १०७, पूर्वोक्त इतिहास]

इतिहासविभासिन्या 'विलासिन्या' समाप्यते।

मंजुनाथकृतेः सर्गः सर्ग एष चतुर्दश ॥

१—मन्दिरमिद न माधवसिंहेन निर्मापितम्। अपि तु तत्पित्रा श्रीजयसिंहमहाराजाधिराजेन प्रतिष्ठापितम्। एतद्वृत्त प्रकृतमहाकाव्यस्य षष्ठे सर्गे विलोकनीयम्।

विलासिनीनिर्मातुः परिचयः

तैलङ्गपुङ्गवानामाङ्गिरसाऽऽयास्यगौतमेति-सत्प्रवरः ।
देवर्ष्यवटङ्कवहो वंशो भूपालपूजितो जयति ॥ १ ॥

तस्मिन् वंशे श्रीमान् श्रीकृष्ण कविकलानिधिर्जातः ।
वुधसिंहवुन्दिभर्त्तुर्निकटाद्योऽनीयताऽऽम्वरेशेन ॥ २ ॥

वाणीभारतिविरुदस्तत्तनयो द्वारकानाथ[1] ।
माधवसिंहमहीन्द्रादेप कवीन्द्राधिपो ययौ मानम् ॥ ३ ॥

तत्तनयो व्रजपाल प्रतापभूपालमाननीयो य ।
नवसङ्गीतग्रन्थं विधाय समियाय भूरिसम्मानम् ॥ ४ ॥

तत्तनयाना ज्येष्ठो मण्डनमिव मण्डनो वभूव विदाम् ।
कवितातोपिनरेन्द्रा भूरिगजेन्द्रान् ददुर्यस्मै ॥ ५ ॥

प्रज्ञाचक्षुर्लक्ष्मणभट्टोऽभूत्तत्सुत सुदक्षतम ।
रामनरेन्द्राद् वुन्दीभर्त्तुर्योऽविन्दत ग्रामम् ॥ ६ ॥

जनित श्रीमल्लक्ष्मीनाथसुतद्वारकानाथैः ।
मथुरानाथ सोऽयं दत्तकपौत्रोऽभवत्तस्य ॥ ७ ॥

येन हि "जयपुरवैभव" मथ खलु "साहित्यवैभव" सृजता ।
'कविता-निकुञ्ज'[2] महिता नवछन्दोवन्धरीतिराकलिता ॥ ८ ॥

येन प्राकृतगाथासप्तशती गुम्फिता निलिम्पगिरा ।
तट्टीकाऽपि च रचिता, सृजता 'संस्कृतसुवोधिनी' प्रभृतीन् ॥ ९ ॥

यस्य कलानाथसुधी कमलानाथश्च तनयौ द्वौ ।
यस्य ध्वन्यालोके लोचनटीका कनीनिका भाति ॥१०॥

जयपुरसंस्कृतविद्यालये महाध्यापकत्वमावहता ।
'सुकविशिरोमणि'पदकं दधता सन्मञ्जुनाथपरनाम्ना ॥११॥

१—कवीनामेषां कविता-इतिहासादिपरिचयस्तु 'जयपुरवैभव-साहित्यवैभव'त. प्राप्य ।

२—'मञ्जुकवितानिकुञ्ज'स्य तदिदं भागद्वयम् । प्रथमे जयपुरराजवंश-नगर-उद्यान-नागरिक-महोत्सवादिवर्णनं संस्कृतनिवद्धकवित्त-सवैयादिछन्दस्सु नवीनरीत्या सचित्रमस्ति । द्वितीये तैरेव छन्दोभि नवरस-विहारिसप्तशतीवर्तमान-भारतादि नानाविपया. सन्ति। भागद्वयमिदम्—भट्टश्रीमथुरानाथशास्त्री, मञ्जुनिकुञ्ज, C. 8, पृथ्वीराजरोड, जयपुरतः प्राप्यम् ।

निगमनिधिनन्दचन्द्र (१६६४) प्रमिते विक्रममहीपतेर्वर्षे ।
रसगङ्गाधरटीका प्रकटीकार्याऽभवद्येन ॥१२॥

'कादम्बरीचषक' 'लिपिललन्तिका' 'प्राक्तनार्यगीर्गरिमा' ।
'भारतवैभव' 'निबन्धविद्या' 'कविताकला'दिरचयित्रा ॥१३॥

संपादयता 'सस्कृतरत्नाकर'पत्रमत्र जयनगरे ।
शिक्षोपयोगिनूतनकथानिकुञ्जादिनिर्मात्रा ॥१४॥

सम्प्रति सम्पादयता देवगिरा "भारती"पत्रम् ।
"धातुप्रयोग'कृतये सुपारिजातं निबद्धवता ॥१५॥

'ईश्वरविलास'कर्त्तुर्महिते वशे प्रसूतेन ।
देवर्ष्युपाह्वभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्रिणा प्रणयात् ॥१६॥

गगनेन्दुगगननयन (२०१०) प्रमिते किल वैक्रमे वर्षे ।
इतिहासभासिनीय **"विलासिनी"** पूर्तिमुपनीता ॥१७॥

देवर्ष्युपाह्वभट्टश्रीमथुरानाथशर्मनिर्मितिषु ।
विभ्रमविकासिनीय **"विलासिनी"** सेव्यता रसिकैः ॥१८॥

इति श्रीजयपुरमहाराजाधिराजसमानित–तैलङ्गकुलजलधि-कौस्तुभायमान–कविकलानिधि–श्रीकृष्ण-
भट्टान्ववायसभूत–मञ्जुनाथोपनामक–कविशिरोमणि–साहित्यवारिधि
देवर्षिभट्टश्रीमथुरानाथशास्त्रिसाहित्याचार्यनिर्मिता
'ईश्वरविलास' टीका विलासिनी
समाप्तिमगात् ।

१—धातुप्रयोगपारिजाताख्यो ग्रन्थो मुद्रयिष्यमाणः, यत्र धातूनां रूपाणि प्रक्रियारूपाणि, तदन्यशब्दाश्च साकल्येन संदर्शिता. ।